देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115
April 2026
Vol.-23, Issue-4

Impact Factor
8.642

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Editor :
Dr. Naresh Sihag
Advocate

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
#202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

Bohal Shodh Manjusha April 2026 Editor : Dr. Naresh Sihag, Advocate

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 23 I SSUE-4(part-one) (अप्रैल 2026) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट
एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल
विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर-335001 (राज.)

प्रकाशक :
गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :
1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा 'शंकी'
पूर्व शिक्षा अधिकारी,
साहित्यकार,
चरखी दादरी (हरियाणा)

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि.
रोहतक (हरियाणा)

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी
हिन्दी विभाग, त्रिभुवन वि.वि.
काठमाण्डू, नेपाल।

डिल्लीराम शर्मा संग्रौला
विभागीय प्रमुख, संस्कृत, पत्रकारिता, हिंदी
पद्मकन्या बहुमुखी कैंपस, काठमांडू, नेपाल।

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. इस्पाक अली
पूर्व प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
श्रीराम कॉलेज,
नई दिल्ली।

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास।

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब।

श्री राकेश शंकर भारती
साहित्यकार व अनुवादक,
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. शबाना हबीब
गवर्नमेंट कॉलेज फॉर वूमैन
त्रिवन्तपुरम, केरल।

डॉ. शिवकरण निमल
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान
एसपीसी राजकीय महा. भीम, राजस्थान।

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
भारत कला भवन
वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत विभाग
हरियाणा सरकार।

डॉ. नीलम आर्या
संस्कृत विभाग
उत्तर प्रदेश।

डॉ. रवि सुण्डयाल
हॉयर एजुकेशन डिपार्टमेंट
जम्मू कश्मीर।

प्रो. नरेन्द्र सोनी
सूचना एवं जन सम्पर्क अधिकारी,
हरियाणा सरकार।

डॉ. रोहतास
एस.जी.पी.जी.आई.एम.एस.
लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य, कैलिफोर्निया।

पठान चिन्ना जानी
सहायक प्राध्यापक
सी.एच.एस.डी. सेंट थेरेसा
महिला महाविद्यालय (ए)
एलुरु, आंध्र प्रदेश

डॉ. वैशाली सिंह
सहायक प्राध्यापक
शिक्षा विभाग, एस.एम.टी. अनार देवी
टी.टी. कॉलेज, बखराना
(कोटपुतली) राजस्थान।

डॉ. रेखा रानी
गवर्नमेंट रणबीर कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

शोध-पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका का वार्षिक शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव-10, कृतिदेव-21 में व अंग्रेजी के **Arial, Times New Roman** में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी **Email ID : grsbohal@gmail.com** पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

<u>नोट :-</u> उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज **7x9.5** पर टाईप कराकर **JPG** या **PDF** फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र : टेलीफोन, मोबाईल नं., ई-मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

★ शोध पत्र 2000-2500 शब्दों (4-6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

★ पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

★ शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।

★ सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

नोट :

सहयोग/सदस्यता राशि 1100/- रू. का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ हमें मेल कर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/- रू. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें। प्रकाशन सहयोग शुल्क वापिस देय नहीं।

बैंक का नाम	:	**पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)**
खाता धारक का नाम	:	**गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी**
बैंक खाता संख्या	:	**1182000109078119**
IFSC Code	:	PUNB0118200
MICR CODE	:	127024003

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८६/२
ISSN : 2395-7115
बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
www.bohalsm.blogspot.com grsbohal@gmail.com 8708822674 9466532152

अनुक्रमणिका - अप्रैल 2026

क्र०	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	संपादकीय	डॉ० नरेश सिहाग	10-10
2.	पारंपरिक और डिजिटल संगीत का संगम	डॉ. गीता शर्मा	11-14
3.	बी.एड व डी.एल.एड के परिक्षणार्थियों की अध्यापन व्यवसाय के प्रति अभिवृति तथा बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. जगदीप सिंह	15-19
4.	पद्मश्री के. जे. येसुदास और हिंदी सिनेमा में उनके अनमोल योगदान	डॉ. सांटी जोसफ	20-23
5.	शिवानी के उपन्यासों में नारी की सामाजिक अस्मिता और आत्मनिर्णय	मोनिका	24-27
6.	डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यास भागोंवाली में सामाजिक चेतना : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन	अभिषेक कुमार	28-32
7.	Impact Of Skill Development Programs On MSME Productivity And Entrepreneurship	Miss Nivedita Singh	33-37
8.	राजेन्द्र टोकी का काव्य-आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में	मोनिका	38-41
9.	हिन्दी साहित्य में प्रयुक्त 'भदेसपन' का स्वरूप	डा. प्रकाश नारायण सिंह चैहान, डा. सुरेन्द्र बहादुर सिंह चैहान	42-44
10.	शेखावटी नाथ साहित्य में गुरु- शिष्य सम्बन्धों का विश्लेषण, विशेष संदर्भ - श्रद्धानाथ महाराज	श्रीमती किरण कुमारी, डॉ. हंसराज चौहान	45-48
11.	Innovation for higher education	Dr. Sanjeev Vijay, Prof. (Dr.) Ankush Sharma	49-53
12.	गाँव भीतर गाँव' उपन्यास में जातिगत वर्चस्व और प्रतिरोध: एक विश्लेषण	अमृता के	54-57
13.	रांची जिला में महिला शिक्षा की स्थिति: समानता और लैंगिक न्याय के परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन	अफसाना परवीन	58-62
14.	आर्थिक विकास के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण पहलू : महिलाओं के विशेष संदर्भ में	डॉ. राजकुमारी परिहार	63-66
15.	सोशल मीडिया का बच्चों पर प्रभाव	शाहज़ाद अनवर	67-71
16.	गाँधी जी के सपनों का भारत	डॉ. अर्चना वर्मा	72-74
17.	छत्तीसगढ़ में रंगमंच कला	रामकुमार साहू	75-80

18.	The Role of Geographical Indications in Sustainable Development	PRIYA SHUKLA	81-83
19.	The Role of Nishkama Karma and Applicability of Karma Yoga in Contemporary Society	Mr. Jitendra Pratap Singh, Ramana Mohan Pusapati	84-89
20.	ভবিষ্যপুরাণোক্ত সর্পদষ্ট ব্যক্তির আয়ুর্বেদিক চিকিৎসা পদ্ধতি ও আধুনিক চিকিৎসা পদ্ধতির তুলনাত্মক অধ্যয়ন	সুপ্রিয় প্রামাণিক	90-96
21.	क्षमा शर्मा तथा मृदुला गर्ग एवं ममता कालिया के विविध विमर्शों का तुलनात्मक विश्लेषण	सुमन मिश्रा, प्रोफेसर दीपा त्यागी	97-105
22.	'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास में आदिवासी जीवन की समस्याएं एवं संघर्ष	डॉ. खुशबू	106-108
23.	भीष्म साहनी कृत 'मुआवजा' नाटक में मानवीय संवेदना और सामाजिक चेतना : एक आलोचनात्मक अध्ययन	रिम्पल सिंह, डॉ. वंदना तिवारी	109-111
24.	भारतीय ज्ञान परंपरा और सांस्कृतिक संरक्षण	दीपक कुमार, डॉ० अनिल पंवार	112-115
25.	हबीब तनवीर के नाटकों में छत्तीसगढ़ी लोक नाट्य शैली का महत्व	डॉ. निलोफर चौधरी	116-119
26.	हापुड़ में शिक्षा का अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन में विद्यालय प्रबंधन समिति की भागीदारी	Mamtesh Solanki	120-124
27.	ब्रिटिश शासन के अंतर्गत जाति व्यवस्था का विकास (1872–1941): एक अध्ययन	Rahul Soni	125-128
28.	Silence as Testimony: Narrating Partition Trauma Through the Private Sphere in Anita Desai's Fiction	Divya	129-134
29.	विद्यार्थियों में तनाव प्रबंधन में योग की भूमिका	श्री जितेन्द्र प्रताप सिंह, रिजवान	135-139
30.	समकालीन हिंदी कथा-साहित्य में वृद्ध विमर्श (बदलते पारिवारिक मूल्यों और एकाकीपन का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	पूजा	140-142
31.	गांधी चिंतन की अवधारणा	Farzana Nazeer	143-145
32.	आस्तिकदर्शनेषु देवतातत्त्वम् उपासना च	अनिल कुमार	146-149
33.	"प्राचीन भारत के विदेशी व्यापार में पूर्वी समुद्री मार्गों एवं मध्य एशियाई संपर्क पथों की निर्णायक भूमिका"	दामिनी कुमारी	150-154
34.	The Ho Adivasi Uprising of 1837: Poto Ho Struggle against Colonial Rule	Vikram Rajat Dungdung	155-158

35.	वीरेन्द्र जैन के उपन्यासों में प्रमुख पात्र	जोषी सुनिलकुमार भावेशभाई	159-161
36.	दूधनाथ सिंह के उपन्यासों में विसंगति और यथार्थ का विश्लेषण	डॉ. मनोज कुमार द्विवेदी	162-165
37.	पुराणों के आधार पर काशी का भौगोलिक सीमांकन	श्री अभिषेक तिवारी, डॉ० अंजना वर्मा	166-168
38.	एक अभियान 'बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ': चुनौतियाँ और उपलब्धियाँ	नाहिद प्रवीण	169-173
39.	शिक्षकों के कार्य-जीवन संतुलन का विश्लेषण	डॉ० सुकन्या चल्ला	174-176
40.	"प्राचीन काल में उत्तर भारत के नगरों का अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक परिदृश्य"	दामिनी कुमारी	177-181
41.	'आधुनिक हिन्दी साहित्य के कुछ हस्ताक्षर': संस्कृति का कवच	डॉ.एस. लीलाकुमारी अम्मा	182-184
42.	21 वी सदी की कविता में चित्रित नारी जीवन विशेष संदर्भ में 'कवयित्रि अनामिका'	डॉ.भूपेंद्र सर्जेराव निकाळजे	185-191
43.	"वाणभट्ट का संस्कृत साहित्य में सामाजिक योगदान"	कृष्णा जाटव	192-194
44.	त्रिलोचन के काव्य में जनपदीय चेतना एवं मानव मूल्य	डॉ० राम आशीष तिवारी	195-202
45.	फणीश्वरनाथ रेणु के साहित्य में चित्रित आंचलिकता और वर्तमान ग्रामीण : एक तुलनात्मक अध्ययन	आकाश कुमार बाल्मीकि	203-207
46.	अज़ीज़ आजाद के साहित्य में दृश्यात्मकता और उसका सिनेमाई प्रभाव	भुराराम मेघवाल, आचार्य डॉ एजाज अहमद कादरी	208-214
47.	21 वीं सदी की हिन्दी कविता कीपर्यावरणीय चेतना का सिनेमाई परिप्रेक्ष्य	विमला देवी यादव, आचार्य डॉ अनुपमा सक्सेना	215-224
48.	हिन्दी गद्य साहित्य और भारतीय सिनेमा में किसान विमर्श: एक तुलनात्मक अध्ययन	बिरदी चंद जाट	225-232
49.	MANAGEMENT OF MIND BY ANCIENT INDIAN WISDOM	Dr. Ravindra Singh	233-236
50.	नीलेश रघुवंशी की कविता 'ढाबा' : समस्यापरक अध्ययन	दिव्या एम. एस.	237-239
51.	कामायनी में वर्णित संवेदना का आलोचनात्मक मूल्यांकन	डॉ. नीलम कुमारी	240-244
52.	वैदिकोपनिषद्शास्त्रदर्शनेषु धर्मस्य दार्शनिकाधारभूतिः	विनीत कुमार शुक्ल	245-249
53.	भारतीय ज्ञान परंपरा और जय भगवान सिंगल के साहित्य में आधुनिक संदर्भ	सुनीता	250-252

संपादकीय

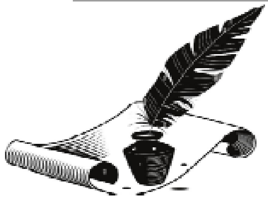

प्रिय विद्वत्जन, शोधार्थियों एवं पाठकगण,

साहित्य, शिक्षा, संस्कृति और आधुनिक विज्ञान के अंतर्संबंधों पर केंद्रित **बोहल शोध मंजूषा** का यह अप्रैल 2026 अंक आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। यह अंक विशेष रूप से उस विमर्श को आगे बढ़ाने का प्रयास है, जिसमें परंपरा और आधुनिकता का समन्वय केवल सैद्धांतिक न होकर व्यवहारिक और प्रासंगिक रूप में सामने आए।

आज का युग तीव्र परिवर्तन का युग है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विस्तार ने मानव जीवन को अभूतपूर्व सुविधाएँ प्रदान की हैं, परंतु इसके साथ ही अनेक जटिल प्रश्न भी उत्पन्न हुए हैं—मानवीय मूल्यों का क्षरण, सांस्कृतिक असंतुलन, और प्रकृति से बढ़ती दूरी। ऐसे समय में भारतीय ज्ञान परम्परा केवल अतीत की विरासत नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए एक दिशा-सूचक के रूप में हमारे सामने आती है। वेदों, उपनिषदों, आयुर्वेद, दर्शन और लोक परंपराओं में निहित ज्ञान आज भी जीवन के समग्र विकास की प्रेरणा देता है।

इस अंक का एक प्रमुख आकर्षण **आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI)** विशेष विमर्श है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने शिक्षा, चिकित्सा, साहित्य, और सामाजिक संरचनाओं में नई संभावनाओं के द्वार खोले हैं। किंतु यह भी आवश्यक है कि हम AI को केवल तकनीकी उपकरण न मानकर, नैतिकता और मानवीय संवेदनाओं के साथ जोड़कर देखें। भारतीय चिंतन में 'बुद्धि' और 'विवेक' का जो संतुलन बताया गया है, वही आज AI के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक हो उठता है।

साहित्य, समाज का दर्पण होते हुए भी, केवल प्रतिबिंब नहीं देता, बल्कि दिशा भी प्रदान करता है। समकालीन हिंदी साहित्य में सामाजिक यथार्थ, स्त्री विमर्श, पर्यावरण चेतना, और डिजिटल युग की चुनौतियों पर जो गंभीर चिंतन हो रहा है, उसे इस अंक में स्थान दिया गया है। विशेष रूप से अंतर्जाल पर उभरते साहित्यकारों की रचनात्मकता और उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता इस अंक की विशिष्ट पहचान है।

विभिन्न पद्धति पर आधारित शोध लेख भी इस अंक की विशेषता हैं। वैश्विक स्तर पर स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता ने आयुर्वेद की प्रासंगिकता को पुनः स्थापित किया है। 'स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणम्' की अवधारणा आज के समय में और अधिक सार्थक प्रतीत होती है।

हम इस अवसर पर सभी विद्वान लेखकों, शोधार्थियों, समीक्षकों और पाठकों के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करते हैं, जिनके सहयोग से यह अंक संभव हो सका। आपका सतत मार्गदर्शन और रचनात्मक सहयोग ही इस शोध पत्रिका की वास्तविक शक्ति है।

अंततः, हमारा यह प्रयास है कि **बोहल शोध मंजूषा** केवल एक शोध पत्रिका न रहकर, एक वैचारिक मंच बने—जहाँ संवाद, विमर्श और नवाचार का सतत प्रवाह बना रहे। हम आशा करते हैं कि यह अंक पाठकों के ज्ञानवर्धन के साथ-साथ चिंतन को भी प्रेरित करेगा।

आपके सुझावों और प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा रहेगी।

– **संपादक**

बोहल शोध मंजूषा

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 11-14
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

पारंपरिक और डिजिटल संगीत का संगम

डॉ. गीता शर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर– विभागाध्यक्ष – संगीत विभाग
जैन कन्या पाठशाला (स्नातकोत्तर) महाविद्यालय, मुजफ्फरनगर

भारतीय साहित्य में चौसठ प्रकार की कलाओं का वर्णन मिलता है। पश्चात्य विद्वान हीगल के अनुसार सर्वप्रथम ललित कला तथा उपयोगी कला का वर्णन प्राप्त होता है ललितकला के अंतर्गत वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, काव्यकला और संगीत कला आती हैं अतः संगीत ललित कला में एक सर्वश्रेष्ठ कला मानी गई है (गोपाल)। मूल रूप से संगीत में नाद ब्रह्म ही सर्वत्र माना गया है, गायन, वादन, नृत्य ये तीनों अंग नाद पर आधारित माने गए हैं (दामोदर)। नियमित और सुव्यवस्थित संगीत वैदिक काल में मिलता है। वास्तव में संगीत का मुख्य संबंध सामवेद से जुड़ा हुआ है। किन्तु ऋग्वेद में संगीत विषयक सामग्री मिलती है। ऋग्वेद में स्वर के उद्दात अनुद्दात स्वरित और स्वर भेद का वर्णन प्राप्त होता है (बंदोपाध्याय)।

संगीत शब्द "गीत" शब्द में "सम" उपसर्ग लगाने से बना है। संगीत शब्द का अर्थ सभी प्रकार से गाया जाने वाला संगीत कहलाता है (पुरोहित) जिसमें गायन, वादन तथा नृत्य तीनों का समावेश है। तीनों विधाओं का समावेश ही संगीत है।

संगीत रत्नाकर के अनुसार -.

"गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते" (राय)।

संगीत एक ऐसी सर्वशक्तिशाली कला है जो सभी धर्म और जाति के लोगों द्वारा प्राचीन समय से आज तक स्वीकृत कला मानी गई है। संगीत द्वारा आत्मा को शांति प्राप्त होती है। संगीत का सीधा संबंध मानव की भावनाओं से जुड़ा है। संगीत एक ऐसा माध्यम है जो व्यक्ति को मानसिक शांति प्रदान करता है। प्रसिद्ध सितार वादक देबु चौधरी संगीत के विषय में कहते हैं –

"It can make you a different kind of a person. It has a magical power." (शर्मा)

वास्तव में संगीत को भारतवर्ष के साथ–साथ सम्पूर्ण विश्व में सर्वोत्तम कला का सम्मान प्राप्त हुआ है। संगीत नाद ब्रह्म ही सर्वव्यापी है। "Music has its divine origin". (शर्मा)

समाज के प्रत्येक व्यक्ति का संगीत से संबंध किसी न किसी रूप में रहा है। प्रत्येक व्यक्ति संगीत को पसंद करता है (**शर्मा**)। इस सृष्टि के कण कण में संगीत व्याप्त है, इसलिए संपूर्ण समाज संगीत से परे नहीं है। संगीत मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक अभिन्न रहा है। प्रत्येक काल में संगीत को स्वीकार किया गया है। मानव जन्म के साथ ही संगीत का भी समाज के साथ घनिष्ठ संबंध रहा है (शारंगदेव)। संगीत की उत्पत्ति ब्रह्मा जी द्वारा हुई, यहाँ संगीत कला शिव जी को प्राप्त हुई और शिव जी ने इसे सरस्वती जी को प्रदान किया। संगीतए देवी रूप से लेकर आम जनमानस तक प्रत्येक पर्व और मनुष्य के प्रत्येक संस्कार में स्थापित रहा है (सिंह)। संगीत द्वारा हमारी भारतीय संस्कृति को संरक्षित

रखा गया है। प्राचीन काल से चली आ रही परम्पराओं के रूप में प्राप्त संगीत हमारी सांस्कृतिक परंपराओं की अमूल्य धरोहर है। संगीत हमारी संस्कृति को संजोए हुए है। संगीत द्वारा भारतीय परंपरा को निरंतर आत्मसात किया जाता रहा है (साप्ताहिक हिन्दुस्तान)।

"Music has both a very powerful force of cultural and emotional integration in the midst of the many diversities in the lives of our countrymen." (Mukherjee)

पारंपरिक संगीत गहरा सांस्कृतिक महत्व रखता है क्योंकि यह किसी समुदाय के इतिहास, पहचान और मूल्यों का भंडार होता है, जिसे अक्सर पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप में स्थानांतरित किया जाता है। इसकी भूमिका केवल मनोरंजन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सांस्कृतिक अभिव्यक्ति, सामाजिक एकता और विरासत के संरक्षण को भी दर्शाती है। भारतीय लोक संगीत की पारंपरिक संगीत विरासत का प्रबंधन दिन–प्रतिदिन संरक्षण और सतत विकास के तरीकों के माध्यम से किया जाता है, जिसमें म्यूजियम–शैली के दृष्टिकोण और सामुदायिक सहभागिता शामिल हैं।

डिजिटल संगीत प्रौद्योगिकी का विकास संगीत उद्योग में क्रांति ला चुका है। प्रमुख तकनीकी स्तंभों में डिजिटल इलेक्ट्रॉनिक्स और डिजिटल सिग्नल प्रोसेसिंग शामिल है, इन नवाचारों के परिणामस्वरूप उपकरण के आकार, किफायतीपन और उपयोगकर्ता के अनुभव में महत्वपूर्ण सुधार हुआ है। इस बदलाव का संगीत के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं पर प्रभाव पड़ा है। इसके अलावा, डिजिटल तकनीकें पारंपरिक संगीत संस्कृतियों को बचाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, विशेष रूप से उन संस्कृतियों के लिए जो समाप्त होने के कगार पर है, क्योंकि यह वर्चुअल और इंटरएक्टिव अनुभव तैयार करती हैं।

परंपरागत और डिजिटल संगीत का अध्ययन करना अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित करने और नवीन प्रौद्योगिकी को अपनाने के बीच गतिशील अंतर्संबंध को दर्शाता है। यह नई रचनात्मक अभिव्यक्तियों, व्यापक प्रसार, और बेहतर सांस्कृतिक समझ की संभावना प्रदान करता है, साथ ही तेजी से बदलते सामाजिक संदर्भ में अमूर्त सांस्कृतिक संपत्तियों को बनाए रखने की चुनौतियों को संबोधित करता है। उदाहरण के लिए, परंपरागत सांस्कृतिक तत्वों को आधुनिक ऑडियो–विजुअल नवाचारों के साथ जोड़ने वाली फिल्में और डिजिटल उत्पाद इस सामंजस्य को उजागर करते हैं। इसके अलावा, डिजिटल उपकरण कलाकारों और समुदायों को उनके संगीत के मूल तत्वों के साथ समकालीन रूपों में संलग्न होने का अवसर प्रदान करते हैं, जिससे परंपरा और नवाचार दोनों को समृद्ध करने वाले पीढ़ीगत और सांस्कृतिक संबंधों को बढ़ावा मिलता है। इस प्रकार, पारंपरिक संगीत और डिजिटल संगीत तकनीकों के बीच का परस्पर संबंध सांस्कृतिक स्थिरता, कलात्मक नवाचार और वैश्विक आदान–प्रदान को समर्थन देने के लिए अध्ययन का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। संगीत के द्वारा मनुष्य की बुद्धि, हृदय आदि को परिष्कृत किया जाता है, यह हमारी राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थिति पर निर्भरता होती है। हमारा मन ही सभी समस्याओं का कारण होता है और संगीत मात्र से ही मन को सही दिशा में कार्य करने में सफलता प्राप्त की जा सकती है (Young Time Magazine)।

पारंपरिक संगीत उन संगीतात्मक रूपों और प्रथाओं से बनता है जो पीढ़ी दर पीढ़ी एक समुदाय में हस्तांतरित होते हैं, और अक्सर लोगों की सांस्कृतिक पहचान, इतिहास और मूल्यों को दर्शाते हैं। यह आमतौर पर इसके मौखिक संचार, पारंपरिक वाद्ययंत्रों के उपयोग, और सामाजिक और औपचारिक संदर्भों में इसकी भूमिका से पहचाना जाता है, जो क्षेत्रीय, जातीय, या राष्ट्रीय विशिष्टता को संरक्षित करता है। पारंपरिक संगीत केवल मनोरंजन के रूप में ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक अभिव्यक्ति और सामाजिक एकजुटता के माध्यम के रूप में भी कार्य करता है। यह अपने लोगों के सांस्कृतिक मूल्य, ऐतिहासिक कथाएँ, सामाजिक संरचनाएँ और सामुदायिक पहचान को गीतों, धुनों, प्रदर्शन शैलियों और वाद्ययंत्रों के माध्यम से प्रतिबिंबित और सुदृढ़ करता है। पारंपरिक संगीत की भूमिका संस्कृतियों में अलग–अलग होती है, लेकिन आम तौर पर इसमें रीति–रिवाजों, उत्सवों, दैनिक कार्य गतिविधियों और विरासत को संप्रेषित करने वाले शैक्षिक कार्यों के दौरान साथ देना शामिल होता है। ऐतिहासिक रूप से, पारंपरिक संगीत लगातार बदलाव की गतिशील अंतः क्रिया के माध्यम से विकसित हुआ है। यह प्राचीन धुनों और शैलियों को संरक्षित करता है जबकि सामाजिक–राजनीतिक बदलावों, आर्थिक परिवर्तन और तकनीकी उन्नतियों के अनुसार खुद को अनुकूलित करता है।

पारंपरिक संगीत के मुख्य तत्व कई मूलभूत पहलुओं को शामिल करते हैं, जिनमें वाद्ययंत्र और ध्वनि विशेषताएँ, सुर और हार्मोनिक संरचनाएँ, और लयबद्ध पैटर्न शामिल हैं। प्रत्येक वाद्ययंत्र के पास उसके डिजाइन और बजाने की तकनीकों द्वारा आकार देने वाली अद्वितीय स्वर गुण होते हैं, जो संगीत में विशेष ध्वनि रंग और बनावट जोड़ते हैं। उदाहरण के लिए सितार और सरोद जैसे वाद्य यंत्र लयबद्ध संगत प्रदान करते हैं और लयबद्ध पदों को चिह्नित करते हैं, इस प्रकार यह दर्शाते हैं कि कैसे वाद्य यंत्र–विशिष्ट ध्वनि गुण समग्र संगीत संरचना और श्रोता की धारणाओं को आकार देते हैं।

सांस्कृतिक संगीत रूपों को बनाए रखने के प्रयासों में समुदाय–आधारित और तकनीकी रणनीतियों को शामिल करना बढ़ता जा रहा है। समुदाय स्तर पर, सहभागी योजना और स्थानीय कलाकारों और निवासियों की सक्रिय भागीदारी प्रभावी सांस्कृतिक धरोहर स्थिरता के लिए आवश्यक है। ये ज्ञान और कौशल के संरक्षक होते हैं, अक्सर परंपराओं को मौखिक प्रसारण और प्रदर्शन प्रथाओं के माध्यम से जीवित रखते हैं। प्रौद्योगिकी में प्रगति, विशेष रूप से डिजिटल संरक्षण में, पारंपरिक संगीत को संग्रहित करने और वैश्विक मंचों पर साझा करने के नए तरीके प्रदान करती है। डिजिटल संरक्षण पहलें मल्टीमीडिया रिकॉर्डिंग, डेटाबेस और बढ़ते रूप से मेटावर्स जैसी तकनीकों का उपयोग करती हैं, जो व्यापक दर्शकों के लिए सहभागिता और पहुँच को बढ़ाती हैं। ये तकनीकें न केवल ध्वनि रिकॉर्डिंग को संरक्षित करने के अवसर प्रदान करती हैं, बल्कि सांस्कृतिक प्रथाओं को आभासी अनुभवों के माध्यम से संदर्भित करने का अवसर भी देती हैं।

डिजिटल संगीत प्रौद्योगिकी का विकास कई प्रमुख चरणों में फैला हुआ है, जो इलेक्ट्रॉनिक संगीत में शुरुआती विकास से शुरू होता है। डिजिटल ऑडियो वर्कस्टेशनों का उदय संगीत उत्पादन में एक महत्वपूर्ण बदलाव का प्रतिनिधित्व करता है, जिससे रिकॉर्डिंग, एडिटिंग और ऑडियो को डिजिटल रूप से मिक्स करने के लिए एकीकृत वातावरण संभव हुआ। डिजिटल ऑडियो वर्कस्टेशनों ने लगातार एनालॉग स्टूडियो वर्कफ्लो की जगह ली, जिससे पेशेवर गुणवत्ता वाले संगीत उत्पादन तक पहुंच सभी के लिए आसान हो गई। इन उपकरणों के एकीकरण ने विभिन्न ऑडियो इफेक्ट्स और रीयल–टाइम डिजिटल प्रोसेसिंग को शामिल करते हुए निर्माता और संगीतकारों को अभूतपूर्व सटीकता के साथ ध्वनि को नियंत्रित करने की अनुमति दी।

पारंपरिक और डिजिटल संगीत को मिलाते हुए प्रामाणिकता और नवाचार के बीच संतुलन बनाए रखना एक मुख्य चुनौती बनी हुई है। पारंपरिक संगीत में गहरी सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्वपूर्णता होती है, डिजिटल तत्वों को शामिल करने से यह प्रामाणिकता कमजोर हो सकती है ,संतुलन प्राप्त करने के लिए विचारशील होना आवश्यक है ताकि डिजिटल पारंपरिक संगीत में निहित मानव अनुभव और सांस्कृतिक प्रामाणिकता को प्रतिस्थापित न करे बल्कि उसे पूरक बनाये।

पारंपरिक और डिजिटल संगीत का मिश्रण शिक्षा के महत्वपूर्ण पहलू को दर्शाता है, विशेष रूप से संगीत शिक्षा में फ्यूजन दृष्टिकोण को शामिल करने, संगीतकारों और उत्पादकों में नए कौशल को बढ़ावा देने, और अंतःविषय अध्ययन के अवसर प्रदान करने में। शैक्षिक संदर्भों में पारंपरिक और डिजिटल संगीत का एकीकरण आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस जैसी उन्नतियों द्वारा बढ़ाया गया है और बड़े पैमाने पर मुक्त ऑनलाइन पाठ्यक्रम पारंपरिक संगीत रूपों जैसे कि लोक संगीत को फैलाने और सिखाने में प्रभावी साबित हुए हैं।

पारंपरिक और डिजिटल संगीत के मिश्रण के शैक्षिक पहलू इस बात पर निर्भर करते हैं कि संगीत शिक्षा में डिजिटल और पारंपरिक तरीकों को प्रभावी ढंग से कैसे एकीकृत किया जाए, संगीतकारों और उत्पादकों को संगीत कौशल और डिजिटल तकनीक का संयोजन करने वाली हाइब्रिड क्षमताओं से रहित और ऐसे अंतरविषयक सीखने के वातावरण को बढ़ावा देना जो संगीत को व्यापक तकनीकी और सांस्कृतिक अध्ययन के साथ मिलाता है। यह एकीकरण न केवल संगीत शिक्षा को समृद्ध करता है बल्कि शिक्षार्थियों को एक रचनात्मक परिदृश्य के लिए भी तैयार करता है। डिजिटल प्लेटफॉर्म और संरचित ऑनलाइन पाठ्यक्रम पारंपरिक संगीत रूपों के प्रसार और शिक्षण को सुविधाजनक बनाते हैं। इस प्रकार, संगीतकारों और निर्माता को नए कौशल विकसित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है जो पारंपरिक तकनीकों को डिजिटल कौशल के साथ जोड़ते हैं, जिससे रचनात्मक उत्पादन और तकनीकी–समर्थित शिक्षण को समर्थन मिलता है। अंत में, अंतरविषयक शिक्षा को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए संस्थागत

समर्थन, पाठ्यक्रम का नवीनीकरण और शिक्षकों की तैयारियों की आवश्यकता होती है ताकि शिक्षण को सुविधाजनक बनाया जा सके जो अनुशासनिक कठोरता और कौशल विकास में संतुलन बनाए।

सारांश में, पारंपरिक संगीत सांस्कृतिक विरासत का एक आधारस्तंभ है जो समुदायों की अनूठी कहानियों और पहचान को संरक्षित और संचारित करता है। इसका महत्व केवल कलात्मक अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक एकजुटता और पीढ़ियों के बीच निरंतरता को भी सुनिश्चित करता है, जबकि इसका विकासात्मक मार्ग दुनिया भर के समाजों में व्यापक सांस्कृतिक परिवर्तनों और संरक्षण प्रयासों को दर्शाता है।

संदर्भ सूची

1. गोपाल, लल्लन जी. "भारतीय संस्कृति."।
2. दामोदर. "संगीत दर्पण." प्रथम अध्याय ।
3. बंदोपाध्याय, "श्रिपद. संगीत रहस्य."।
4. पुरोहित, बाल. "संगीत की मनोवैज्ञानिक उत्पत्ति." संगीत कला विहार, दिसंबर 1979।
5. राय, सुरेशवत. "संगीत के जीवन पृष्ठ."।
6. शर्मा, स्वतंत्र. "भारतीय संगीत के वैज्ञानिक विश्लेषण."।
7. शर्मा, सत्यप्रकाश. "प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता."।
8. शर्मा, स्वतंत्र. "भारतीय संगीतरू एक वैज्ञानिक विश्लेषण."।
9. शारंगदेव. "संगीतरत्नाकर." स्वराध्याय, प्रथम प्रकरण, श्लोक 21।
10. सिंह, ठाकुर जयदेव. "भारतीय संगीत का इतिहास."।
11. "साप्ताहिक हिन्दुस्तान.". 15 मार्च 1981, पृ. 32।
12. Mukherjee Bimal- "Indian Classical Music."
13. "Young Time Magazine" June 1998.

मो0 7906349755 व्हाट्सएप .9897463037

ईमेल आईडी . drgeeta24@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 15-19
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

बी.एड व डी.एल.एड के प्रशिक्षणार्थियों की अध्यापन व्यवसाय के प्रति अभिवृति तथा बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. जगदीप सिंह
मानव मंगल शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय संगरिया

सारांश–
प्रस्तुत शोध बी. एड. व डी.एल.एड. के शिक्षण प्रशिक्षणार्थियों की अध्यापन व्यवसाय के प्रति अभिवृति तथा बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन के संबध में है। अध्ययन में प्राप्त आंकडो के आधार पर निष्कर्ष प्राप्त किये गये हैं। यह अध्ययन हनुमानगढ जिले 10 शिक्षक–प्रशिक्षणक महाविद्यालयो में अध्ययनरत 200 प्रशिक्षाणर्थियों पर किया गया है। बी.एड. तथा डी.एल.एड. के प्रशिक्षणार्थियों की अध्यापन – व्यवसाय के प्रति अभिवृति व बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए प्रमाणिकृत उपकरण के रूप में डॉ एस.पी. आहूलवालिया व डा. आर के टंडन द्वारा निर्मित सामूहिक मानसिक योग्यता परीक्षा का प्रयोग किया गया है।

मुख्य शब्द – बी.एड. (बैचलर आफ एजूकेशन) डी.एल.एड (डिप्लोमा इन ऐलीमेन्ट्री एजुकेशन) अध्यापन व्यवसाय, अभिवृति, बुद्धि, प्रशिक्षणार्थी ।

प्रस्तावना – शिक्षा बालक के सर्वांगीण विकास का आधार है। शिक्षा बालक की शारीरिक नैतिक अध्यात्मिक संवेदात्मक शक्तियों का विकास करती है जिससे वह समाज का महत्त्वपूर्ण तथा उतरदायी सदस्य तथा राष्ट्र का एक सुयोग्य, कर्त्तव्य निष्ठ व सजग नागरिक बनता है। बालक की शिक्षा में विद्यालयी शिक्षा का विशेष महत्त्व है। विद्यालयी शिक्षा अध्यापक की योग्यता तथा कर्तव्यनिष्ठा पर निर्भर करती है। बालक में मानवीय तथा सामाजिक गुणों का विकास करने में गुरू का विशिष्ट स्थान होता है।

अध्यापक को युग निर्माता की संज्ञा दी जाती है। वैदिक कालीन ऋषियों ने आचार्य को छात्र का मानस पिता (Spiritual Father) कहा है। तत्कालीन आचार्य गैरव का महत्त्व निम्न पंक्तियों से स्वतः स्पष्ट हो जाती है–

गुरूः ब्रहा, गुरूः विष्णु, गुरूः देवों महेश्वरों।।
गुरूः साक्षात, पर ब्रहाः तस्मै श्री गरूवेः नमः।।

अर्थात भारतीय समाज ने में प्रमुख देवता ब्रहा, विष्णु और महेश गुरू ही है। साक्षात परब्रहा भी गुरू ही है और उस परमगुरू को नमस्कार करता है।

भक्तिकाल ने संत कवियों ने गुरू की महता का गुणगान किया है संत कबीर के विचार इस सम्बंध में दृष्टव्य है।

जीव अधम औ कुटील्य है, कब हूँ नाहिं पतिपाय।
ता को औगुन मेटि के, सतगुरू होत सहाय।।

पुरातन काल से ही भारतीय समाज में अध्यापक को भविष्य निर्माता कहा है क्योकि शिक्षक जिन बच्चों को आज शिक्षा देता है, वे भविष्य के नागरिक है। यह शिक्षक पर निर्भर करता है कि वह किस प्रकार के नागरिक तैयार करता है। शिक्षक सभी काय्रक्रमों की आधार शिला है। जिसमें अध्यापक की अध्ययन संबधी आदतें, अध्यापक की बुद्वि तथा अभिवृति का विद्यार्थियों पर सीधा प्रभाव पडता है। अध्यापक एक पीढी से दूसरी पीढी को बोद्धिक परम्परायें तथा तकनीकी कौशल पहुचानें का केन्द्र है। प्राचीन काल में अध्यापक के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता नही थी, न ही प्रशिक्षण हेतु विद्यालय या महाविद्यालय थें।

वर्तमान में जीवन के मूल्य आवश्कताएं जीवन दर्शन आदि बदल गये ऐसे समय में शिक्षकों को प्रकिया व शिक्षण नीति में बदलाव आना स्वभाविक हैं। वर्तमान में ''अध्यापक प्रशिक्षण'' शिक्षण का महत्वपूर्ण पहलू है।

शिक्षण प्रकिया के वांछित विकास हेतु अध्यापकों का समुचित प्रशिक्षण अपरिहार्य है। शिक्षकों को प्रशिक्षित करने का काम शिक्षण प्रशिक्षण विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में होता है।

सामान्यतः शिक्षक शिक्षा की तुलना में शिक्षक प्रशिक्षण शब्द अधिक प्रचालित हैं। प्रशिक्षण से प्रायः व्यवहार परिवर्तन के उन संदभों में यहां बुद्वि को प्रयोग कम होता है और उन कौशलों के सीखने का संबध अधिक रहता है वहां प्रशिक्षण का प्रयोग किया जाता है। इस हेतु शिक्षक शिक्षा सार्थक है। वस्तुतः प्रशिक्षणार्थी अपनी बुद्वि, कल्पना, चिन्तन विवेक आदि मानसिक शक्तियों का अधिगम क्षेत्र में उपयोग करता है।

वर्तमान में शिक्षक शिक्षा में सेवा पूर्व दी जाने वाली उपाधियों को बैचलर ऑफ एजुकेशन (बी. एड) तथा डिप्लोमा इन ऐलीमेन्ट्री एजुकेशन (डी.एल.एड.) कहा जाता है।

छात्र अध्यापक भावी शिक्षक है जो अध्यापन को आजीविका यापन के साधन के रूप में देखते है। उनका उदेश्य अध्ययन को अपने व्यवसाय के रूप में अपनाना होता है।

अतः शिक्षण कार्य को वर्तमान में अध्यापन व्यवसाय कहा जाता है क्योकि इसमें भी अन्य व्यवसायों की तरह प्रबधं व प्रशासन की आवश्यकता होती है। वही और दूसरी ओर शिक्षा के परम्परागत एवं सामाजिक उदेश्य के साथ साथ उसके व्यवसायिक उदेश्य की प्रासंगिकता भी बनी हुई है। इसलिये अध्यापन का व्यवसायिक रूप में अध्ययन आवश्यक है।

प्रस्तुत शोध का महत्व –

अध्यापक राष्ट्र का निर्माता होता है तथा विद्यालय व्यवस्था पर उसका प्रभाव होता है अध्यापक आपने अनुभव द्वारा विद्यालय की प्रत्येक व्यवस्था में सुधार कर राष्ट्र के निर्माण में सहयोग देने वाले योग्य नागरिकों का निर्माण कर सकता है।

वर्तमान में समाज में रोजगार की आवश्यकताएं बढी है। युवा विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार की तलाश में रहते है इसी क्रम में अध्यापन को रोजगार माना गया है। वही शिक्षण हेतु बड़े पैमाने पर प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता रहती है। विद्यालय शिक्षा के लिए अध्यापकों की आवश्यकतापूर्ति के लिए बी.एड. व डी.एल.एड जैसं सेवा पूर्व प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए गये हैं।

तुलनात्मक रूप से बी.एड. व डी.एल.डी. के प्रशिक्षाणर्थियों की आयु बुद्वि, परिस्थितिया, पाठयक्रम , रूचि व कार्य़क्षेत्र में भिन्नता होती है अतः बी.एड. व डी.एल.डी के प्रशिक्षणार्थियों में प्रचलित धारणाओं के आधार बी. एड. प्रशिक्षणार्थियों को आयु योग्यता व पाठयक्रम के आधार विशेष माना जाता है। अतः समस्त धारणाएं कितनी यथार्थ है, इनको जाने के लिए शोधकर्ता ने अध्ययन की आवश्यकता महसूस की है।

समस्या का कथन – बी.एड व डी.एल.एड के प्रशिक्षणार्थियों की अध्यापन व्यवसाय के प्रति अभिवृति तथा बुद्वि का तुलनात्मक अध्ययन

शोध शीर्षक में प्रयुक्त शब्दों का परिभाषीकरण–

1. बी.एड :–

बी. एड से तात्पर्य बैचलर आफ एजुकेशन से है। यह द्विवर्षीय सेवा पूर्व शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम है। जो स्नातक स्तर पर किया जाता है। बीएड प्रशिक्षण कार्यक्रम स्नातक के बाद माध्यमिक शिक्षण हेतु है।

2. डी.एल.एड.–

डी.एल.एड का पूरा नाम डिपलोमा इन ऐलीमेन्ट्री एजुकेशन है। यह द्विवर्षीय सेवा पूर्व शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम है। जो 12 वीं स्तर पर किया जाता है। डीएलएड प्रशिक्षण कार्यक्रम प्राइमरी शिक्षण हेतु है।

3. प्रशिक्षणार्थी :–

प्रशिक्षणार्थी का तात्पर्य ऐसे छात्रों से जो बी.एड. व डी.एलएड पाठयक्रम के अध्ययन हेतु शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालयों में अध्ययनरत है।

4. अध्यापन व्यवसाय–

किसी विद्यालय व महाविद्यालयों में शिक्षा देने का कार्य अध्यापक का होता है। यही कार्य उस अध्यापक का व्यवसाय होता है। इसलिये इसे अध्यापन व्यवसाय की संज्ञा दी है।

5. बुद्धि–

बुद्धि एक योग्यता है। इसमें मानसिक योग्यताएं समाहित होती है। यह नवीन प्ररिस्थितियों में व्यक्ति का समायोजन बनाने में क्रियाशील रहती है।

6. अभिवृति – अभिवृति किसी व्यक्ति का किसी विशिष्ट घटना, प्राणी, विचार या वस्तु के प्रति दृष्टिकोण हैं व्यक्ति का दृष्टिकोण ही उसके व्यवहार को प्रभावित करता है।

7. तुलनात्मक अध्ययन :–

तुलनात्मक अध्ययन से अभिप्राय है उस अध्ययन से है जिसमें दो या दो से अधिक विषयों के गुण–दोषों के बीच मात्रात्मक एवंगुणात्मक अंतर पाया जाना है।

❖ **अध्ययन के उद्वेश्यः–**

1. बी.एड. व डी. एल. एड.के प्रशिक्षणार्थियों की बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना
2. बी.एड. व डी. एल. एड. के प्रशिक्षणार्थियों की अध्यापन व्यवसाय के प्रति अभिवृति का तुलनात्मक अध्ययन करना।

❖ **अध्ययन की परिकल्पनाएं –**

1. बी.एड. व डी. एल. एड. के प्रशिक्षणार्थियों की बुद्धि में सार्थक अंतर नही है।
2. बी.एड. व डी. एल. एड. के प्रशिक्षणार्थियों को अध्यापन व्यवसाय के प्रति अभ्विृति में सार्थक अंतर नही है।

❖ **न्यादर्श :–**

प्रस्तुत शोध में हनुमानगढ जिले के 10 शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के 200 महिला पुरूष शिक्षार्थियों का चुनाव यादृच्छिक प्रतिचयन प्रणाली के आधार पर किया गया है। इसमें प्रत्येक समूह से 100 महिला व 100 पुरूष प्रशिक्षाणर्थियों का चुनाव किया गया है।

❖ **शोध में प्रयुक्त उपकरण –**

1. अध्यापन व्यवसाय अभिवृति मापनी –डॉ.एसपी. आहूवालिया
2. सामूहिक मानसिक योग्यता परीक्षा (1/61)–डॉ.आर. के टंडन

❖ **प्रदतों का विश्लेषण तथा विवेचन :–**

सारणी – 1 बी. एड. तथा डी. एल.एड. के प्रशिक्षणार्थियों की बुद्धि से संबंधित प्राप्त प्रदत्तों को दर्शाती सारणी।

समूह (प्रशिक्षणार्थी)	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	स्वतंत्रता की कोटि	टी मूल्य	सार्थकता स्तर
बी.एड.	100	60	14.53	195	0.13	सार्थक अन्तर नहीं है।
डी. एल. एड	100	60.3	16.457			

(Table value at 0.05 on 198 df=1.96)

सारणी 1. बी.एड. तथा डी. एल. एड के प्रशिक्षणार्थियों की बुद्धि का विश्लेषण व व्याख्या :–

उपरोक्त सारणी संख्या 01. तथा लेखाचित्र के अनुसार स्पष्ट होता है कि बी.एड. तथा डी. एल. एड के प्रशिक्षणार्थियों की बुद्धि का मध्यमान क्रमशः 60 तथा 60.3 है। इन दोनों के मध्यमानों के अंतर का टी मूल्य 0.13 है। ये मूल्य 198 स्वतंत्रता की कोटि हेतु 0.05 स्तर पर विश्वास मूल्य 1.96 तथा 0.01 के विश्वास मूल्य 2.56 से कम है। अतः दोनों स्तरों पर अंतर सार्थक नही है। इससे परिकल्पना – 1 स्वीकृत होती है।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि बी.एड. तथा डी. एल. एड के प्रशिक्षणार्थियों की बुद्धि में सार्थक अंतर नहीं है। बी.एड. के प्रशिक्षणार्थियों की बुद्धि का मध्यमान 60 व डी. एल. एड के प्रशिक्षणार्थियों का मध्यमान 60.3 है। किन्तु यह अंतर सार्थक नहीं है, जो अंतर है वह संयोगवश है अर्थात् बी.एड. तथा डी. एल. एड के प्रशिक्षणार्थियों की बुद्धि एक समान है।

सारणी – 2

बी. एड. तथा डी. एल.एड. के प्रशिक्षणार्थियों की अध्यापन व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति से संबंधित प्राप्त प्रदत्तों को दर्शाती सारणी।

समूह (प्रशिक्षणार्थी)	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	स्वतंत्रता की कोटि	टी मूल्य	सार्थकता स्तर
बी.एड.	100	251.96	16.457	198	2.77	सार्थक अन्तर है।
डी. एल. एड	100	260.26	25.04			

(Table value at 0.05 on 198 df=1.96)

सारणी 2. बी.एड. तथा डी.एल.एड. के प्रशिक्षणार्थियों की अध्यापन व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति का विश्लेषण का व्याख्या –

उपरोक्त सारणी संख्या 02. तथा लेखाचित्र के अनुसार स्पष्ट होता है कि बी.एड. तथा डी. एल. एड के प्रशिक्षणार्थियों की अध्यापन व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति का मध्यमान क्रमशः 251.96 तथा 260.26 है। इन दोनों समूहों का प्रमाप विचलन क्रमशः 16.457 व 25.04 है। अतः दोनों के मध्यमानों के अंतर का टी मूल्य 2.77 है। ये मूल्सारणी य 198 स्वतंत्रता की कोटि हेतु 0.05

स्तर पर विश्वास मूल्य 1.96 तथा 0.01 के विश्वास मूल्य 2.56 से अधिक है। अतः दोनों स्तरों पर अंतर सार्थक है। इससे परिकल्पना – 2 निरस्त होती है।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि बी.एड. तथा डी. एल. एड. के प्रशिक्षणार्थियों की अभिवृत्ति में सार्थक अंतर है। बी.एस.टी.सी के प्रशिक्षणार्थियों की अभिवृत्ति का मध्यमान 260.26, बी.एड. के प्रशिक्षणार्थियों का मध्यमान 251.96 से अधिक है। अतः डी. एल. एड. के प्रशिक्षणार्थियों की अभिवृत्ति बी.एड. के प्रशिक्षणार्थियों से अधिक है।

❖ भावी शोध हेतु सुझाव :–

प्रस्तुत शोध के आधार पर संबंधित क्षेत्र के नीचे लिखें विषय कल्पित किये गये हैं जिसके बारे अध्ययन संभव है।

1. इस शोध कार्य में बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों की अभिवृति को आधार बनाकर शोध किया गया है। इसके अलावा अन्य क्षेत्रों में भी शोध कार्य किया जा सकता है।

2. भावी शोध में बड़े न्यादर्श का चयन किया जा सकता है इसके लिए महाविद्यालयों व प्रशिक्षणार्थियों की संख्या को बढ़ाया जा सकता है।

3. प्रस्तुत शोध कार्य राजस्थान के हनुमानगढ़ जिले तक ही सीमित है। भविष्य में इसे अन्य जिले या राज्य स्तर पर भी किया जा सकता है।

4. प्रस्तुत शोध कार्य शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय स्तर पर किया गया है। इसमें विद्यालयों स्तर पर भी शोध कार्य किया जा सकता है।

❖ संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. अग्रवाल, जे.सी. (1966). 'इज्यूकेशनल रिसर्च इन इन्ट्रोडक्शन' नई दिल्ली, आर्य बुक डिपो।
2. उसमान और ओलिम, (2004). ''प्राथमिक विद्यालयों में सेवारत तथा सेवापूर्व अध्यापकों में शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृति''।
3. कपिल, डॉ. एच. के. (2008). 'सांख्यिकी के मूल तत्त्व' विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
4. शर्मा, वी.एन. (2004). 'शिक्षा मनोविज्ञान' साहित्य प्रकाशन आगरा।
5. चौहान, मीना (2009). 'विभिन्न वर्गों के शिक्षकों में सामाजिक समरसता, शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृति व व्यवसायिक प्रतिबद्धता का अध्ययन' शोधकार्य।
6. सिद्धू, के. सी. (1985). 'मैथड़ोलोजी ऑफ रिसर्च इन इज्यूकेशन' एटालेंग पब्लिशर्स।
7. शर्मा, अजय (2018). ''बी. एड. प्रशिक्षणार्थियों की मध्यापन व्यवसाय के प्रति अभिवृति का अध्ययन व्यवसाय के प्रति अभिवृति का अध्ययन'' लघुशोध ग्रामोत्थान विद्यापीठ शिक्षा महाविद्यालय (सी.टी.ई.) संगरिया।
8. वर्मा, रचना (2009). ''माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की गणित विषय में उपलब्धि बुद्धि एवं रूचि के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन'' शोधकार्य।
9. शर्मा, राधा (2016). ने ''माध्यमिक स्तर के अध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि एवं भूमिका प्रतिबद्धता का अध्ययन'' पी.एच.डी. स्तरीय शोध कार्य, वनस्थली विद्यापीठ।

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 20-23
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

पद्मश्री के. जे. येसुदास और हिंदी सिनेमा में उनके अनमोल योगदान

डॉ. सांटी जोसफ ,
सह आचार्या ,
हिंदी विभाग , संत अलोशियस महाविद्यालय,एडत्वा,आलप्पुषा , केरल। पिन : 689 573

सारांश : दृश्य कला का हिस्सा रही सिनेमा की दुनिया ने हमेशा से दुनिया भर के हर आयु वर्ग के लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया है। जीवन की वास्तविकताऐं ,काल्पनिक कहानियां ,पौराणिक कथाऐं और इतिहास -ये सभी सिनेमा का विषय रहे हैं। शुरुआती दौर की मूक फिल्मों से लेकर आज तक रिलीज़ हुई सभी फिल्मों ने अलग -अलग कारणों से जनता का ध्यान खींचा है। कुछ फिल्मों में उनके गीत लोगों के बीच इतने लोकप्रिय हो जाते हैं कि वे 'हिट बन जाते हैं। वास्तव में ,किसी फिल्म को अर्थपूर्ण बनाने के लिए उसमें सन्दर्भ के अनुसार उचित गानों का होना अनिवार्य है। सर्वगुण संपन्न एक गायक फिल्म की सफलता में चमत्कार कर सकता है ; के जे येसुदास एक ऐसे ही ईश्वरीय वरदान प्राप्त गायक है जिन्होंने अपनी मधुर आवाज से भारत के हर उम्र के व्यक्ति के मन को जीत लिया है।

मुख्य शब्द : पार्श्व गायक , आवाज़ का जादू , महान संगीतज्ञ , भारत की आवाज़।

प्रस्तावना : संगीत बहुत आनंददायक होता है और मानव जीवन में इससे सकारात्मक बदलाव आ सकते हैं। यह सुननेवाले और गानेवाले दोनों को आनंद प्रदान करता है। आधुनिक युग में संगीत का उपयोग चिकित्सा के रूप में भी किया जाता है। तनाव को कम करने के लिए संगीत बहुत लाभदायक है। और हमारे मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य को सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संगीत का हमारे जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है और यह हमें सकारात्मक ऊर्जा से भर देता है। यह वास्तव में ईस्वर का वरदान है जो हमारे जीवन को समृद्ध और खुशहाल बनाता है। माताएं अपने नन्हे बच्चों को वात्सल्य से भरे गीत गाकर सुलाती हैं । जब बच्चे थोड़े बड़े हो जाते हैं ,तो वे कहानियां सुनाकर उनकी जिज्ञासा जगाती हैं । गीत और कहानी का यही संगम सिनेमा में हम देख सकते हैं।सिनेमा संगीत कई प्रकार के होते हैं। सिनेमा में वात्सल्य से भरपूर गीत ,प्रेम गीत ,मंगल गीत (शुभ अवसरों के गीत) विदाई गीत ,शोक गीत ,पैरोडी और हास्य गीत जैसे विभिन्न प्रकार के गीतों का उपयोग किया जाता है ।

सारांश : एक राष्ट्र के अभिमान ,' गानगंधर्वन ' के नाम से सम्मानित ,विभिन्न भाषाओं में संगीत आलापनेवाली एक महान प्रतिभा है पद्मश्री के जे येशुदास। उन्हें पद्मश्री (1973), पद्मभूषण (2002) और पद्मा विभूषण (2017) पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। उनकी आवाज़ का जादू हर किसी को अपनी और आकर्षित करता है। उन्होंने

सर्वश्रेष्ठ पार्श्व गायक का राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार 8 बार जीता है। उन्होंने हिंदी ,मलयालम और तमिल सहित भारत की कई भाषाओं में गाने गाए हैं।उन्होंने सर्वश्रेष्ठ पुरुष पार्श्व गायक के लिए दक्षिण फ़िल्म् फेयर पुरस्कार पांच बार और राज्य द्वारा दिए गए पुरस्कारों सहित सर्वश्रेष्ठ पार्श्व गायक के लिए राज्य पुरस्कार 36 बार जीता हैं I उनकी उम्र अब 87 वर्ष है ,लेकिन आज भी उनकी आवाज़ बहुत मधुर है। " येसुदास की आवाज़ के माध्यम से इश्वर ,शैतान धर्म ,राजनीति ,क्रांति ,दर्शन, विज्ञान ,इतिहास ,विचारधाराओं ,पुराणों और महाकाव्यों से सम्बंधित विचार आम लोगों तक सम्प्रेषित हुए।"1

काटाशेरिल जोसफ येसुदास -के जे येसुदास- का जन्म जनवरी को केरल के फोर्ट कोच्चि में एक लैटिन कैथोलिक परिवार में भागवतर अगस्टीन जोसफ और एलिसकुट्टी के पुत्र के रूप में हुआ था। नाटककार और शास्त्रीय संगीतज्ञ रहे उनके पिता ही येसुदास के प्रथम गुरु थे। उन्हें शम्मांकुडी श्रीनिवास अय्यर ,चेम्बई वैद्यनाथ भगवतर और वी. दक्षिणामूर्ति जैसे कई दिग्गजों के मार्गदर्शन में संगीत सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आर्थिक कठिनाईओं के कारण कई बार उनकी शिक्षा में बाधा आई ,लेकिन उनकी प्रतिभा की चमक कभी कम नहीं हुई और वह निरंतर प्रज्वलित रही। उन्होंने असमिया ,कोंकणी और कश्मीरी को छोड़कर लगभग सभी भारतीय भाषाओं में गीत गाए हैं।भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त ,उन्होंने मलय ,रूसी ,अरबी ,लैटिन और अंग्रेजी जैसी विदेशी भाषाओं में भी एक महान संगीतज्ञ के रूप में अपनी चमक बिखेरी। केरल के लोग उन्हें आदरपूर्वक ' गानगंधर्व 'और ' दासेट्टन 'कहकर पुकारते हैं। " मलयाली लोग येशुदास को गानगन्धर्व और गन्धर्व गायक जैसे प्यार भरे नामों से पुकारते हैं और उन्हें बहुत स्नेह करते हैं। इससे भी एक कदम आगे बढ़कर ,उनके संगीत को गन्धर्व संगीत और उनकी आवाज़ को गन्धर्व नाद (देवलोक की आवाज़)कहकर सम्बोधित किया जाता है। " 2 दरअसल येशुदास की आवाज़ सर्व -समुदाय सद्भाव का एक सांस्कृतिक प्रतीक बन गई है। कई फिल्में मानवीय मन में केवल उनके गीतों के जादू और आकर्षण के कारण बसी हुई हैं।

वी .आर. सुधीश द्वारा लिखित येसुदास पर आधारित पुस्तक में ,हम कुछ ऐसे सामान्य लोगों को देख सकते हैं जो येसुदास को भगवान की तरह मानते हैं। "बचपन से ही मैं येसुदास का प्रशंसक रहा हूं। दास एट्टन (बड़े भाई)मेरे भगवान् हैं। मेरे केवल एक ही भगवन हैं " प्रतापन ने बड़ी सौम्यता के साथ ये शब्द कहे। 3 वह आगे कहते है कि " वह आवाज इश्वर कीआवाज हैं।" 4" संगीत प्रेमियों के दैनिक जीवन का एक अभिन्न अंग बन गया है ,विशेषकर येसुदास का संगीत। " हम येसुदास के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते। हमारे दैनिक जीवन में हम जिस तनाव का अनुभव करते हैं ,उससे हमें मुक्त करने की शक्ति येसुदास के संगीत में है ;वह एक औषधि के सामान अनुभव होता है ।" 5 वास्तव में येसुदास अक्षरों का स्पष्ट उच्चारण करने और गायन में शास्त्रीय उत्कृष्टता बनाये रखने में सक्षम हैं।

येसुदास ने पार्श्व गायक के रूप में अपना पहला गीत ' कल्पादुकाल ' नामक मलयालम फिल्म में गाया था। 1970 के दशक में उन्होंने बॉलीवुड में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। उन्होंने अपना पहला हिंदी गीत **'जय जवान जय किसान** 'फिल्म के लिए गाया था ,लेकिन रिलीज़ होनेवाली उनकी पहली हिंदी फिल्म **' छोटी सी बात'** थी। उन्होंने अमिताभ बच्चन ,अमोल पालेकर और जितेंद्र जैसे कई प्रसिद्ध हिंदी अभिनेताओं के लिए अपनी सुरीली आवाज दी है। येसुदास ने रवींद्र जैन ,बप्पी लाहिरी ,उमर खय्याम राजकमल और सलिल चौधरी जैसे दिग्गज संगीतकारों द्वारा संगीतबद्ध किये गए गीतों को अपनी आवाज दी है। येसुदास के हिंदी फ़िल्मी गानों में सबसे अधिक लोकप्रियता 1976 की फिल्म ' चितचोर ' के गीतों को मिली प्रस्तुत सिनेमा के गाने " गोरी तेरा गांव बड़ा प्यारा " के लिए येसुदास जी को उनका दूसरा राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार मिला । इस फिल्म का संगीत निर्देशन प्रख्यात दृष्टिबाधित संगीतकार रवींद्र जैन ने किया था। रवींद्र जैन जी ने एक साक्षात्कार में कहा था कि " यदि मुझे जीवन में कभी आंखों की रौशनी वापस मिल जाए ,तो में सबसे पहले जिसे देखना चाहूँगा ,वह येसुदास है। " 6 इसे येसुदास के लिए मिले सबसे बड़े सम्मानों में से

एक माना जाता है। रवींद्र जैन जी अक्सर उन्हें " भारत की आवाज़ " कहकर सम्बोधित करते थे। 7 येसुदास ने हिंदी सिनेमा में लगभग 200 से 250 गाने गए हैं । इनके आलावा प्रसिद्ध हिंदी भजन और भक्ति गीत ,हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत और भक्ति संगीत आध्यत्मिक भजन ,तुलसी रामायण के विभिन्न दोहे और चौपाइयां आदि में भी उनकी पकड़ अतुलनीय है। इनके आलावा येसुदास जी ने लगभग 75 भक्ति गीतों और ललित संगीत को संगीतबद्ध किया है और उनकी धुनें तैयार की हैं।8

न केवल भारत में ,बल्कि कई विदेशों में भी उन्हें संगीत कार्यक्रम प्रस्तुत करने के अवसर मिले हैं । उनकी ईश्वरीय वरदान प्राप्त आवाज़ यूरोप,अमेरिका ,पाकिस्तान ,श्रीलंका ,बांग्लादेश और मलेशिया जैसे देशों तक पहुँची है। 14नवम्बर 1999 को यूनेस्को के तत्वावधान में पेरिस में आयोजित " म्यूजिक फॉर पीस " नामक कार्यक्रम में उन्हें विशेष रूप से सम्मानित किया गया था। दुनिया के कई महानगरीय में येसुदास जी के संगीत कार्यक्रमों का आयोजन किया गया है। 1965 में सोवियत संघ की सर्कार ने उन्हें रूसी शहरों में संगीत कार्यक्रम प्रस्तुत करने के लिए आमंत्रित किया था। उन्होंने इंटरनेशनल पार्लियामेंट फॉर सेफ्टी एंड पीस में सीनेट सदस्य के रूप में भी अपनी सेवाएँ दीं। वे कर्णाटक के कोल्लूर मूकाम्बिका मंदिर में अपने जन्म दिन से शुरू होनेवाले नौ दिवसीय संगीत उत्सव का आयोजन करते आ रहे हैं । वहां वे वाग्देवी (विद्या की देवी) सरस्वती की उपासना करते हुए कीर्तनों का गायन करते हैं। उनके कुछ प्रतिष्ठित हिंदी गीतों और उपलब्धियों की सूची दी गयी है :-

चितचोर (1976) -गोरी तेरा गांव बड़ा प्यारा .....
-आज से पहले आज से ज्यादा .....
-जब दीप जले आना .....।
छोटी सी बात (1976) -जान ए मन तेरे दो नैन .....
स्वामी (1977) -क्या करुं सजनी आये ना बलम .....
साजन बिना सुहागन (1978) -मधुबन खुशबू देता है .....

सावन को आने दो (1979) - चाँद जैसे मुखड़े पे .....
- तुझे देख कर .....
- जानम जानम .....
दाद (1979) -दिल के टुकड़े टुकड़े करके .....
सदमा (1983)- सुरमई अखियों में .....
आलाप (1977) -चाँद अकेला जाए सखी .....
- कोई गाता मैं सो जाता .....
सफ़ेद छूट (1977)-नीले अम्बर के तले .....
टूटे खिलौने (1978) -माना हो तुम बेहद हसीं .....
त्रिशूल (1978) -मोहबत बड़े काम की चीज़ है .....
-जाने मन तुम कमाल करते हो .....
सावन को आने दो (1979)-चाँद जैसे मुखड़े पे .....
- तेरी तस्वीर को सीने से .....

- तुझे देखकर जगवले …..

बातों बातों में (1979)-सुनिए कहिए कहते सुनते …..

लहू के दो रंग (1979)-जिद न करो अब तो रुको …..

सुनयना (1979)-सुनयना आज इन नजरों को …..

अपने पराये (1980)-श्याम रंग रंगा रे …..

साजन की सहेली (1981) -मधुबन खुशबू देता है …..

एक बार कहो (1980)-चारों तरफ यूँ पिंजरे .....

मान अभिमान (1980) -आये है बाहर देखो….. आदि।

सम्मान एवं पुरस्कार :

पद्मश्री -1975

पद्मा भूषन -2002

पद्मा विभूषण- 2017

येसुदास एक दिन में विभिन्न भाषाओं में नए गाने गाये और रिकॉर्ड करने केलिए विश्व रिकॉर्ड रखते हैं। उन्होंने सर्वश्रेष्ठ पुरुष पार्श्व गायक के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार रिकॉर्ड 8 बार दक्षिण फ़िल्म् फेयर पुरस्कार 5 बार और राज्य द्वारा दिए गए पुरस्कारों सहित सर्वश्रेष्ठ पार्श्व गायक के लिए राज्य पुरस्कार 36 बार जीता हैं। केरल ,भारत और विदेशों के विश्वविद्यालयों ने संगीत में उनके योगदान को देखते हुए मानद डॉक्टरेट (Honorary Doctorate) से सम्मानित किया हैं। इनके आलावा येसुदासजी को उनके संगीत में उत्कृष्ट योगदान के लिए कई अन्य पुरस्कार और सम्मान भी मिले हैं।

संक्षेप : संगीत ईस्वर की देन है जिसे हर कोई महसूस कर सकता है ,पर याद वही रहता है जिसे ईश्वरीय आशीर्वाद मिले। येसुदास जी के पास वही दिव्य आवाज़ है। यही आशा है कि भारत जैसे विविध भाषाओं वाले देश में लोगों के मन को ख़ुशी और उत्साह से भरने में येसुदास जी का संगीत आगे भी सफल होता रहे।

सन्दर्भ :

1. आत्मगानम -वी .आर .सुधीश. 2004,मातृभूमि बुक्स, कोषिक्कोड ,केरल। . पृष्ट संख्या.44
2. जनप्रियसंगीतम - रमेश गोपालकृष्णन दिसंबर,2012 डी सी बुक्स कोट्टयम पृष्ट संख्या .34
3. आत्मगानम -वी .आर .सुधीश. 2004,मातृभूमि बुक्स, कोषिक्कोड ,केरल। . पृष्ट संख्या.93
4. आत्मगानम -वी .आर .सुधीश. 2004,मातृभूमि बुक्स, कोषिक्कोड ,केरल। . पृष्ट संख्या.93
5. जनप्रियसंगीतम रमेश गोपालकृष्णन दिसंबर,2012 डी सी बुक्स कोट्टयम पृष्ट संख्या .32
6. इतिहास गायकन येसूदासिनटे संगीतम ,जीवितं ,शाजन सी मैथ्यू 2020 ,मनोरमा बुक्स ,कोट्टयम ,केरल। पृष्ट संख्या .18
7. इतिहास गायकन येसूदासिनटे संगीतम ,जीवितं ,शाजन सी मैथ्यू 2020 ,मनोरमा बुक्स ,कोट्टयम ,केरल। पृष्ट संख्या .18
8. आत्मगानम -वी .आर .सुधीश. 2004,मातृभूमि बुक्स, कोषिक्कोड ,केरल। . पृष्ट संख्या.41
9. विक्किपीडिआ

Mob:9447120285 E-mail :santyjoseph@aloysiuscollege.ac.in

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 24-27
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

शिवानी के उपन्यासों में नारी की सामाजिक अस्मिता और आत्मनिर्णय

मोनिका
सहायक आचार्य (हिंदी),
बी०के०डी० डिग्री कॉलेज फॉर वुमन पांवटा साहिब, जिला सिरमौर,हिमाचल प्रदेश

सारांश :- हिंदी साहित्य की सशक्त और प्रतिष्ठित लेखिका **गौरा पंत 'शिवानी'** समकालीन कथा-साहित्य में एक विशिष्ट और प्रभावशाली स्थान रखती हैं। उन्होंने अपने साहित्यिक सृजन के माध्यम से समाज के यथार्थ, उसकी जटिलताओं और अंतर्विरोधों को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त किया है। शिवानी का संपूर्ण साहित्य सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का प्रामाणिक दस्तावेज़ है, जिसमें व्यक्ति और समाज के बीच के संबंधों को गहराई से उकेरा गया है। उनके उपन्यासों के पात्र केवल कथा-नायक या नायिकाएँ नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक विमर्श को नई दिशा देने वाले चेतन पात्र हैं, जिनमें संघर्ष, आत्मसम्मान और जीवन को अर्थपूर्ण बनाने की आकांक्षा स्पष्ट दिखाई देती है। हिंदी समकालीन कथा-साहित्य में शिवानी का योगदान नारी-जीवन के सामाजिक, मानसिक और सांस्कृतिक यथार्थ को अभिव्यक्त करने की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उनके उपन्यासों में नारी केवल पीड़िता के रूप में उपस्थित नहीं होती, बल्कि वह आत्मसंघर्ष से गुजरती हुई प्रतिरोध और आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर होती है। शिवानी अपने साहित्य-सृजन के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए मानती हैं कि समाज में व्याप्त अराजकता, भ्रष्टाचार, अनाचार, कुरीतियों और विसंगतियों को आम जनमानस के समक्ष लाना साहित्यकार का दायित्व है। उनका विश्वास है कि साहित्य ऐसा होना चाहिए जो केवल मनोरंजन तक सीमित न रहकर जनसाधारण को चेतन, जागरूक और उन्नत बनाए। प्रस्तुत शोध-पत्र में शिवानी के चयनित उपन्यासों के माध्यम से यह अध्ययन किया गया है कि किस प्रकार लेखिका ने पुरुष-सत्तात्मक समाज, परम्परागत रूढ़ियों और सामाजिक विसंगतियों के बीच नारी की अस्मिता, चेतना और संघर्ष को स्वर प्रदान किया है। यह शोध-पत्र नारी-विमर्श को जीवन की वास्तविक परिस्थितियों से जोड़ते हुए लेखिका शिवानी के साहित्यिक दृष्टिकोण को रेखांकित करता है।

मूल शब्द :-- नारी-चेतना, आत्मसंघर्ष, प्रतिरोध, आत्मनिर्भरता, पितृसत्ता, सामाजिक यथार्थ

हिंदी की महिला लेखिकाओं में शिवानी की पहचान एक बहुआयामी और सशक्त रचनाकार के रूप में स्थापित है। पुरुष-सत्तात्मक समाज में नारी के आत्मसंघर्ष, सामाजिक संघर्ष और अस्तित्व-संकट को उन्होंने अपने उपन्यासों का केंद्रीय विषय बनाया है। स्वतंत्रता के पश्चात् नारी की सामाजिक स्थिति, उसकी भूमिका और अधिकारों को लेकर साहित्य में नए प्रश्न उभरते हैं। इसी संदर्भ में शिवानी का साहित्य विशेष महत्त्व रखता है। उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से नारी के आंतरिक संघर्ष, सामाजिक दबाव और आत्मसम्मान की रक्षा की आकांक्षा को अत्यंत संवेदनशीलता से चित्रित किया है। उनका साहित्य न केवल नारी-पीड़ा का आख्यान है, बल्कि नारी-चेतना का सशक्त उद्घोष भी है। आधुनिकता से प्रभावित होते हुए भी उनके पात्र भारतीय संस्कृति और मानवीय मूल्यों में गहराई से रचे-बसे हैं। यही संतुलन उनके साहित्य को विशिष्ट बनाता है।

शिवानी के उपन्यासों में नारी का जीवन निरंतर संघर्ष से घिरा हुआ दिखाई देता है। **चौदह फेरे** की नायिका **नंदी** अनमेल विवाह के कारण उपेक्षा और अपमान सहती है। पति द्वारा लगातार तिरस्कृत किए जाने के बावजूद वह आत्मसम्मान से समझौता नहीं करती और अंततः संन्यास का मार्ग अपनाकर अपने अस्तित्व की रक्षा करती है। यह संघर्ष केवल वैवाहिक असफलता का नहीं, बल्कि नारी की आत्मचेतना के जागरण का प्रतीक है। उपन्यास का नायक एवं नंदी का पति कर्नल शिवदत्त उसे अपने साथ शहर लाने पर हिदायत देते हुए कहता है कि—"तुम्हें इसी कमरे में रहने होगा, मेरे किसी काम में तुम दखल नहीं दे सकोगी I अगर इस समझौते के लिए तैयार हो तो शौक से रहो I"[1] अपने पति के रंगीन और उपेक्षापूर्ण जीवन से आहत होकर नंदी संन्यासियों की टोली में सम्मिलित हो जाती है। वह संन्यास को पलायन नहीं, बल्कि आत्मसम्मान की रक्षा का साधन बनाती है। अपार संपत्ति और सांसारिक सुखों का मोह उसे विचलित नहीं कर पाता। वह स्वाभिमान के साथ त्याग का मार्ग चुनती है। यहाँ यह स्पष्ट होता है कि **'शिवानी'** ने अपने नारी पात्रों को आत्मनिर्णय की क्षमता भी प्रदान की है। नंदी अपने अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा के लिए पति के अनुचित व्यवहार का त्याग कर साहसिक निर्णय लेती है।

इसी प्रकार लेखिका के उपन्यास **कालिंदी** में नारी की पीड़ा, घुटन और सामाजिक असुरक्षा को स्वर मिला है। इस उपन्यास में लेखिका उस सामाजिक विडंबना को उजागर करती हैं, जहाँ अपराधी स्वतंत्र रहता है और पीड़िता को ही बंधनों में जकड़ दिया जाता है। यह स्थिति नारी के आत्मसंघर्ष को और अधिक जटिल बना देती है। उपन्यास में रामलीला देखने गई **अन्ना** के साथ डॉक्टर जोशी द्वारा दुर्व्यवहार किया जाता है | यह दुर्व्यवहार स्त्री की सामाजिक असुरक्षा को उजागर करता है। इस घटना के बाद अन्ना का घर से निकलना बंद हो जाता है | अन्ना को घर में ही बंद करना समाज की विकृत मानसिकता को दर्शाता है। लेखिका का मानना है कि –"कहाँ मुक्त हुई है नारी? क्या भारतीय नारी जीवन के अधिकांश अंगों में सदा पुरषाश्रित ही रहेगी? हम भले ही नारी स्वाधीनता और प्रगति का मिथ्या प्रचार करते न थके, भले ही हमारा संविधान कहे कि उसने अबला को सबला बना दिया है तब भी नारी उतनी ही विवश है, उतनी ही असहाय है I"[2] यहाँ लेखिका एक गहरी विडंबना की ओर संकेत करती हैं। अपराध करने वाला व्यक्ति स्वतंत्र रूप से घूमता रहता है, जबकि पीड़िता को ही सीमाओं में बाँध दिया जाता है।

शिवानी की नारी केवल सहनशील नहीं, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर प्रतिरोध भी करती है। उपन्यास **श्मशान चंपा** की नायिका **चंपा** सामाजिक रूढ़ियों और अंतरजातीय विवाह को लेकर व्याप्त संकीर्ण मानसिकता पर प्रश्नचिह्न लगाती है। वह परम्परा को स्वीकार करती है, किंतु उसी सीमा तक जहाँ वह मानवीय विवेक और स्वतंत्रता के विरुद्ध न हो। उपन्यास की नायिका चंपा, धरणीधर की पुत्री है एवं पेशे से डॉक्टर है। उसकी बहन जूही परिवार की इच्छा के विरुद्ध तनवीर बेग से अंतरजातीय विवाह कर लेती है। कुछ समय पश्चात् चंपा को देखने के लिए डॉक्टर

मधुकर आते हैं। पारिवारिक सहमति से सगाई की रस्म भी संपन्न हो जाती है। किन्तु जैसे ही जूही के अंतरजातीय विवाह का रहस्य खुलता है, चंपा की सगाई तोड़ दी जाती है। इस घटना से चंपा को गहरा मानसिक आघात पहुँचता है। फिर भी वह अंतरजातीय विवाह को अनुचित नहीं मानती। वह कहती है –"अपने समाज में यदि सुयोग्य पात्र नहीं जुटता तो दूसरे समाज को अपनाने में भला क्या दोष है? अपने ही समाज में कन्यादान निभाने की मूर्खता के पीछे हमारा कुमायूँ कैसा चौपट हुआ जा रहा है।"[3] चंपा का प्रगतिशील दृष्टिकोण यह संकेत देता है कि परम्परा वही सार्थक है, जो मनुष्य की विवेकशीलता और स्वतंत्रता को बाधित न करे।

उपन्यास **रथ्या** की **बसंती** समाज और पुरुष दोनों की स्वार्थी मानसिकता का शिकार होती है, किंतु अंततः वह किसी के सहारे की अपेक्षा किए बिना अपना मार्ग स्वयं चुनती है। उसका यह निर्णय सामाजिक प्रतिरोध का सशक्त रूप बन जाता है। अनाथ बचपन, असफल प्रेम और सामाजिक उपेक्षा उसे वेश्यावृत्ति के दलदल तक पहुँचा देती है। उपन्यास की नायिका बसंती एक अनाथ बालिका है, जिसका पालन-पोषण माता-पिता के निधन के पश्चात उसकी बुआ करती है। गाँव में ही उसका परिचय विमलानंद से होता है और दोनों के बीच प्रेम विकसित होता है, किंतु कुंडली न मिलने के कारण उनका विवाह संभव नहीं हो पाता। यही अस्वीकृति बसंती के जीवन का निर्णायक मोड़ सिद्ध होती है। घर त्यागने के बाद भी वह अपने प्रेम को भुला नहीं पाती और उस सामाजिक संकीर्णता से निरंतर जूझती रहती है, जिसने उसे अपने अधिकार से वंचित किया। परिस्थितियों के दबाव में वह अनेक हाथों की कठपुतली बनती हुई अंततः सर्कस में कैबरे नर्तकी और फिर 'रथ्या' नामक उस मार्ग तक पहुँच जाती है, जो वेश्याओं के मोहल्ले की ओर जाता है। जब विमलानंद उसे इस अवस्था में अपनाने की बात करता है, तब बसंती समाज और पुरुष-मानसिकता के दोहरे मापदंडों को पहचान चुकी होती है, इसलिए वह सोचती है—"जब वह प्रेम में थी, तब न विमलानंद ने उसे अपनाया, न समाज ने सहारा दिया। तब आज उसकी स्वीकृति कैसे संभव है?[4] बसंती अंततः उससे केवल यह चाहती है कि उसके घर की सड़क को एक अच्छा नाम दिया जाए। किंतु विमलानंद व्यंग्य करते हुए उसका नाम 'रथ्या' रख देता है। यह सुनकर बसंती गहरे दुःख से भर उठती है। लेखिका ने स्पष्ट किया है कि प्रेम में असफलता और सामाजिक अस्वीकृति बंसती को पतन की ओर धकेलती है, किंतु अंततः उसके भीतर आत्मबोध और प्रतिरोध की चेतना जागृत होती है।

शिवानी के उपन्यासों में नारी-मुक्ति का मार्ग आत्मनिर्भरता से होकर गुजरता है। **सुरंगमा** की नायिका **राजलक्ष्मी** शिक्षा और रोजगार के माध्यम से अपने जीवन को नई दिशा देती है। आत्मनिर्भरता उसके आत्मविश्वास और स्वतंत्र अस्तित्व का आधार बनती है। सुरंगमा लेखिका का एक समस्या-प्रधान उपन्यास है, जिसमें राजनीति, भ्रष्टाचार और वेश्यावृत्ति जैसी सामाजिक विकृतियों का सशक्त चित्रण मिलता है। नायिका राजलक्ष्मी अनेक संघर्षों के बाद शिक्षा और रोजगार के माध्यम से आत्मनिर्भर बनती है।

उपन्यास की नायिका राजलक्ष्मी का जीवन अनेक सामाजिक और व्यक्तिगत समस्याओं से जुड़ा हुआ है। वह निरंतर जटिल परिस्थितियों से संघर्ष करती रहती है। घर से भागकर वह अपने संगीत अध्यापक से विवाह कर लेती है। प्रारंभ में उसे सब कुछ सुखद प्रतीत होता है। परंतु धीरे-धीरे पति का वास्तविक स्वरूप उसके सामने आ जाता है। उसका दांपत्य जीवन तनावपूर्ण हो उठता है। निराशा से घिरकर वह आत्महत्या का विचार करती है। रेलवे गार्ड रॉबर्ट मेरी की सतर्कता से उसका जीवन बच जाता है। उनके सहयोग से वह अपनी बेटी को जन्म देती है। आगे चलकर वह राजलक्ष्मी के रूप में एक दृढ़ निश्चयी नारी के रूप में उभरती है। वह अपनी अधूरी पढ़ाई पुनः आरंभ करती है। कठिन परिश्रम से शिक्षा पूर्ण करती है। अंततः एक सफल अध्यापिका बनकर आत्मनिर्भर हो जाती है। रॉबर्ट और मेरी उसका

पूरा ध्यान रखते हैं। वे उसे सहारा देते हैं। फिर भी राजलक्ष्मी अधिक दिनों तक उनके घर पर आश्रित रहना नहीं चाहती। वह स्वाभिमान के साथ अपने पैरों पर खड़ा होना चाहती है। राजलक्ष्मी की आत्मनिर्भरता को निम्नलिखित पंक्तियों में स्पष्ट किया गया है –“आपने मुझे अब इस योग्य बना दिया है कि मैं स्वतंत्रता से रह सकूँ l मुझे आज्ञा दीजिए तो मैं कॉलेज के पास ही छोटा सा मकान ढूंढ लूंगी |”[6] यह आत्मनिर्भरता शिवानी की नारी-दृष्टि का केंद्रीय बिंदु है, जिसके माध्यम से वे स्त्री को पितृसत्तात्मक शोषण से मुक्त करने की आकांक्षा व्यक्त करती हैं।

इसी प्रकार लेखिका के उपन्यास **चल खुसरो घर आपने** की **कुमुद** कामकाजी नारी के दोहरे दायित्व और शोषण का प्रतीक है। परिवार और समाज की उपेक्षा के बावजूद वह अपने कर्तव्यों का निर्वाह करती है। उपन्यास में नायिका कुमुद अकेले ही घर की समस्त जिम्मेदारियाँ उठाती है। वह परिवार के पालन-पोषण के लिए निरंतर परिश्रम करती है। उसके श्रम में समर्पण और त्याग दोनों निहित हैं। किन्तु उसके भाई-बहन न तो उसके प्रयासों का सम्मान करते हैं और न ही आभार व्यक्त करते हैं। उलटे वे पथभ्रष्ट होकर उसके सपनों को आघात पहुँचाते हैं। उनके आचरण से कुमुद के मन को गहरी पीड़ा होती है। फिर भी वह अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होती। वह धैर्य और दृढ़ता के साथ अपने दायित्वों का निर्वाह करती रहती है। यही उसकी नैतिक शक्ति और आंतरिक गरिमा का प्रमाण है। “उद्दंड भाई, अबाध्यता छोटी बहन का निर्लज्ज आचरण, निरीह अम्मा की विवशता किसी को भी क्षमा नहीं कर पा रही थी l यह सब ना होता तो शायद अपना लखनऊ ना छोड़ती l उसे अंधकारमयी निर्जन सड़क पर तेजी से भाग जा रही कार में बैठी कुमुद की आंखें छलक आई l उसके बिना अम्मा कितनी असहाय हो उठेगी! कौन उसका राशन लाकर रखेगा, मकान का किराया,बिजली का बिल,पिता की पेंशन, उसका सब काम कौन करेगा l”[7] यहाँ शिवानी ने आधुनिक नारी की विडंबनापूर्ण स्थिति को उजागर किया है।

निष्कर्ष उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि शिवानी का साहित्य नारी-जीवन की संघर्षगाथा का सशक्त और संवेदनशील आख्यान है। उनके उपन्यासों में नारी आत्मसंघर्ष से गुजरते हुए प्रतिरोध और आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर होती है। शिवानी नारी को केवल करुणा की पात्र न बनाकर उसे चेतन, विवेकशील और निर्णयक्षम व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत करती हैं। इस दृष्टि से उनका साहित्य नारी-विमर्श को जीवन की ठोस वास्तविकताओं से जोड़ता है और समकालीन हिंदी कथा-साहित्य में स्थायी महत्त्व रखता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शिवानी, चौदह फेरे, पृष्ठ 14
2. वही,कालिंदी पृष्ठ 143-144
3. वही, श्मशान चंपा, पृष्ठ 26
4. वही, रथ्या, पृष्ठ 126
5. शिवानी, सुरगमा, पृष्ठ 41-42
6. वही, चल खुसरों घर आपने,पृष्ठ 167-168

7018503963

hindimonika07@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 28-32
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यास भागोंवाली में सामाजिक चेतना : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

अभिषेक कुमार
शोधार्थी ,
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

शोध सार- सामाजिक चेतना भारतीय समाज की आत्मपरक समझ है। यह चेतना ऐतिहासिक अनुभवों, सामाजिक संघर्षों और बौद्धिक विमर्श से निर्मित होती है। भारतीय समाजशास्त्रियों के विचार यह स्पष्ट करते हैं कि सामाजिक चेतना न केवल समाज को समझने का माध्यम है, बल्कि सामाजिक न्याय और समानता की स्थापना का आधार भी है। डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यास भागोंवाली में निहित सामाजिक चेतना का विस्तृत और विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। उपन्यास एक साधारण मध्यवर्गीय शिक्षक परिवार की कथा के माध्यम से भारतीय समाज की वर्ग संरचना, स्त्री-स्थिति, शिक्षा की भूमिका, श्रम-संस्कृति तथा सामुदायिक मूल्यों को उभारता है। 'भागोंवाली अम्मा' का चरित्र सामाजिक रूढ़ियों, पितृसत्तात्मक व्यवस्था और मानवीय धैर्य के बीच संतुलन का प्रतीक है। भागोंवाली उपन्यास यह सिद्ध करता है कि सामाजिक चेतना किसी वैचारिक घोषणापत्र की भाँति नहीं, बल्कि जीवन के दैनिक संघर्षों, नैतिक आचरण और मानवीय संबंधों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है।

बीज शब्द: सामाजिक चेतना, स्त्री-विमर्श, शिक्षा, श्रम-संस्कृति, मध्यवर्गीय, सामुदायिक जीवन।[1]

मूल आलेख- हिंदी उपन्यास का विकास सामाजिक यथार्थ, मानवीय संवेदना और जीवनानुभवों की अभिव्यक्ति के साथ निरंतर आगे बढ़ता रहा है। प्रारंभिक दौर में उपन्यासों में नैतिक आदर्शवादी और सुधारवादी चेतना प्रमुख रही, जिसका चरम रूप प्रेमचंद के यथार्थवादी उपन्यासों में दिखाई देता है। इसके पश्चात् आधुनिक हिंदी उपन्यास में मनोवैज्ञानिक जटिलताओं, सामाजिक विसंगतियों, स्त्री-जीवन, पारिवारिक संरचना और ग्रामीण- शहरी संघर्ष को केंद्र में रखा गया। समकालीन उपन्यासों में यह चेतना और अधिक व्यापक होकर सामान्य जनजीवन के अनुभवों से जुड़ती चली गई। हिंदी उपन्यास परंपरा में सामाजिक चेतना एक केंद्रीय तत्त्व के रूप में विद्यमान रही है। प्रेमचंद के यथार्थवादी उपन्यासों से लेकर समकालीन साहित्य तक, समाज की संरचना और उसकी विसंगतियों को रेखांकित करना हिंदी उपन्यास का प्रमुख उद्देश्य रहा है। समाज केवल व्यक्तियों का समूह नहीं, बल्कि उनके बीच स्थापित सामाजिक संबंधों, पारस्परिक क्रियाओं, मूल्यों, मान्यताओं और संस्थाओं की संगठित व्यवस्था है। समाज को एक गतिशील सामाजिक संरचना के रूप में समझा जाता है, जिसमें व्यक्ति परस्पर निर्भर होकर जीवन यापन करता है। पाश्चात्य विचारक मैकाईवर एवं पेज का मानना है कि 'समाज सामाजिक संबंधों का जाल है''।[1] सामाजिक चेतना

भारतीय समाज की आत्मपरक समझ है जो वर्गीय भेद, लैंगिक असमानता, आर्थिक संघर्ष तथा नैतिक मूल्यों के प्रति जागरूक दृष्टि से है। साहित्य में सामाजिक चेतना तब प्रभावी होती है जब लेखक समाज की समस्याओं को केवल चित्रित नहीं करता, बल्कि उनके कारणों और प्रभावों पर भी विचार करता है। इसी विकासशील परंपरा में डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' का उपन्यास लेखन महत्वपूर्ण स्थान रखता है। निशंक जी के उपन्यासों में समाज के विविध पक्ष संघर्ष, संवेदना, नैतिकता, पारिवारिक विघटन, स्त्री-स्थिति और मानवीय मूल्यों का क्रमिक विकास दिखाई देता है। डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' का उपन्यास भागोंवाली इसी परंपरा का विकसित रूप प्रस्तुत करता है। भागोंवाली में यह चेतना परिवार, शिक्षा, स्त्री और समुदाय जैसे सामाजिक संस्थानों के माध्यम से विकसित होती है। यह उपन्यास किसी राजनीतिक आंदोलन या वैचारिक बहस के स्थान पर सामान्य जनजीवन के अनुभवों को आधार बनाकर सामाजिक यथार्थ को उद्घाटित करता है।

'भागोंवाली' उपन्यास मध्यवर्गीय समाज, टूटते पारिवारिक मूल्यों और मानवीय संवेदनाओं का एक जीवंत दस्तावेज़ है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से यह उपन्यास भारतीय परिवार की संरचना में आ रहे बाधाओं और वृद्धों की स्थिति पर गहरा प्रहार करती हैं। उपन्यास की केंद्रीय स्त्री-पात्र 'भागोंवाली अम्मा' यह नाम उन्हें उनके छह बच्चों (दो बेटियों और चार बेटे) के कारण मिला था जो भारतीय मध्यवर्गीय स्त्री का प्रतिनिधि चरित्र है। पति की आकस्मिक मृत्यु के बाद उनके जीवन की स्थिति को लेखक अत्यंत संवेदनशील ढंग से चित्रित किया है- "शास्त्री जी के जाने के बाद घर का सारा बोझ जैसे भागोंवाली के कंधों पर आ पड़ा था"।[2] यह पंक्ति स्पष्ट करती है कि स्त्री का जीवन निजी शोक से अधिक सामाजिक उत्तरदायित्वों से घिरा रहता है। भागोंवाली अम्मा किसी प्रत्यक्ष विद्रोह का मार्ग नहीं अपनातीं, बल्कि धैर्य और सहनशीलता के माध्यम से जीवन को आगे बढ़ाती हैं। भागोंवाली उपन्यास मध्यवर्गीय समाज के भीतर घटित होने वाले पारिवारिक विघटन, संवेदनहीन होते संबंधों और मानवीय मूल्यों के क्षरण को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करता है। इसमें भारतीय परिवार की बदलती संरचना, वृद्धों की बढ़ती असहायता और स्त्री के जीवन-संघर्ष को यथार्थ रूप में उकेरा गया है। भागोंवाली अम्मा का चरित्र उस स्त्री का प्रतिनिधित्व करता है जो पति की मृत्यु के बाद भी किसी प्रत्यक्ष विद्रोह के बिना धैर्य, सहनशीलता और त्याग के माध्यम से परिवार को संभाले रखती है। उपन्यास यह दिखाता है कि मध्यवर्गीय स्त्री का जीवन निजी पीड़ा से अधिक सामाजिक दायित्वों से संचालित होता है और यही उसकी सबसे बड़ी विडंबना भी है।

भागोंवाली अम्मा का नाम ही उस पितृसत्तात्मक मानसिकता को रेखांकित करता है, जिसमें स्त्री की पहचान उसके व्यक्तित्व से नहीं, बल्कि उसके 'भाग्य' से निर्धारित की जाती है। शास्त्री जी की मृत्यु के पश्चात् पारिवारिक विघटन, रिश्तों की स्वार्थपरकता और उपभोक्तावादी सोच का प्रभाव स्पष्ट रूप से सामने आता है। संपत्ति के साथ-साथ माँ और छोटे भाइयों की जिम्मेदारी का बँटवारा यह दर्शाता है कि आधुनिक समाज में मानवीय संबंध किस हद तक वस्तु करण का शिकार हो गए हैं। 'निशंक' इस प्रसंग के माध्यम से बेटों द्वारा माँ को बोझ समझने की मानसिकता पर गहरा प्रहार करते हैं और सामाजिक-नैतिक पतन की भयावह तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। उनका नाम ही समाज की उस मानसिकता को उजागर करता है, जिसमें स्त्री की पहचान उसके 'भाग्य' से जोड़ दी जाती है- 'लोग उसे नाम से नहीं 'भागोंवाली' कहकर पुकारते थे।'[3] आज जहाँ युवा पीढ़ी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज और परिवार को छोड़कर उपभोक्तावादी संस्कृति को अपनाते हैं। वहीं शास्त्री जी के जीवित रहते परिवार की खुशियाँ फूल जैसी नातिन और नए घर के इर्द-गिर्द सिमटी थीं लेकिन शास्त्री जी के मृत्यु के पश्चात पारिवारिक विघटन, रिश्तों का द्वंद्व और भावनात्मक पतन शुरू हो जाता है, बेटों के बीच संपत्ति का ही नहीं, बल्कि छोटे भाइयों और माँ की ज़िम्मेदारी का बँटवारा होता है- "बँटवारा?, कुछ समझ नहीं पाई थी अम्माँ। संपत्ति का बँटवारा तो सुना था, किन्तु जीते-जागते इनसानों का बँटवारा?..........सुना तो नहीं था आज तक आज पहली बार मनुष्यों के बँटवारे की बात सुनी।"[4] डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' इस प्रसंग के माध्यम से यह स्पष्ट करते हैं कि उपभोक्तावादी और स्वार्थपरक

सोच के प्रभाव में पारिवारिक संबंध किस प्रकार अमानवीय होते जा रहे हैं। बेटों द्वारा माँ को बोझ समझकर एक घर से दूसरे घर भेजना न केवल मातृत्व और पुत्र के पवित्र संबंध को खंडित करता है, बल्कि सामाजिक नैतिक मूल्यों के गहरे क्षरण को भी दर्शाता है। यह स्थिति उस मध्यवर्गीय समाज की विडंबना को उजागर करती है, जहाँ संपत्ति का अधिकार तो स्वीकार्य है, किंतु बुज़ुर्गों की जिम्मेदारी असहज और अवांछनीय मानी जाने लगती है। इस प्रकार यह प्रसंग उपन्यास में सामाजिक पतन का सशक्त प्रतीक बनकर उभरता है और पाठक को संवेदनात्मक स्तर पर झकझोरता है।

उपन्यास के अन्तर्गत शिक्षा के माध्यम से सामाजिक चेतना के साथ-साथ पुरुष मानसिकता के प्रभाव को भी उजागर करता है। शास्त्री जी निर्धन विद्यार्थियों के प्रति संवेदनशील और प्रगतिशील शिक्षक हैं, किंतु बेटियों की शिक्षा के प्रश्न पर उनकी सोच रूढ़िगत और संकुचित है। यह पुरुष-केंद्रित मानसिकता बालिकाओं की शिक्षा को सीमित कर देती है और उनके बौद्धिक तथा सामाजिक विकास को बाधित करती है। उपन्यास यह स्पष्ट करता है कि पुरुषों की ऐसी सोच केवल व्यक्तिगत निर्णय नहीं रहती, बल्कि पीढ़ियों तक स्त्रियों के अवसरों और आत्मनिर्भरता को प्रभावित करती है। इस प्रकार शास्त्री जी का चरित्र सामाजिक प्रगति और पितृसत्तात्मक मानसिकता के द्वंद्व को प्रभावी ढंग से सामने लाता है।

शास्त्री जी का शिक्षक-चरित्र उपन्यास में सामाजिक चेतना का सशक्त माध्यम है। वे शिक्षा को मात्र आजीविका का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक दायित्व मानते हैं। निर्धन एवं कमजोर छात्रों को निःशुल्क पढ़ाना तथा समान शिक्षा का आग्रह सामाजिक समता की चेतना को पुष्ट करता है। हालाँकि, बेटों और बेटियों की शिक्षा के प्रति उनका भिन्न दृष्टिकोण तत्कालीन सामाजिक यथार्थ को उजागर करता है जहाँ बेटियों को केवल पाँचवीं तक पढ़ाकर स्कूल बंद करावा देना उस समय की सामाजिक सोच को दर्शाता है। शास्त्री जी भी बेटों की शिक्षा के प्रति अत्यंत सजग थे लेकिन बेटियों की शिक्षा के मामले में उनकी सोच संकुचित थी- “बेटियाँ को तो बस चिट्ठी-पत्री पढ़नी-लिखनी आ जाए,यही काफी है उनके लिए,”[5] यह उद्धरण यह दर्शाता है की शास्त्री जी अपनी रूढ़ियों और परम्पराओं से इतने गहरे जकड़े हुए थे की शिक्षित होने के बाद भी उन पितृसत्ता का प्रभाव देखने को मिलता है।

‘भागोंवाली’ उपन्यास में मध्यवर्गीय जीवन की आर्थिक विवशताओं और उससे उपजे मानवीय संकट को प्रभावशाली ढंग से उजागर करता है। सीमित आय, अतिरिक्त श्रम और सादगी पूर्ण जीवन-शैली के माध्यम से लेखक श्रम की गरिमा और ईमानदार जीवन-मूल्यों को स्थापित करता है। इसके विपरीत, महानगरीय और उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव में रिश्तों में बढ़ता स्वार्थ, संवेदनहीनता और नैतिक पतन स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आता है। बेटों द्वारा माँ को आर्थिक रूप से उपेक्षित करना तथा बहुओं की दृष्टि का माँ के गहनों पर टिक जाना मानवीय संवेदना के निम्नतम स्तर को दर्शाता है। इस प्रसंग के माध्यम से ‘निशंक’ उपभोक्तावादी मानसिकता की तीखी आलोचना करते हुए संतोष, श्रम और ईमानदारी जैसे मानवीय मूल्यों को सामाजिक आदर्श के रूप में प्रस्तुत करते हैं। सीमित वेतन, अतिरिक्त ट्यूशन, सादगीपूर्ण जीवन-शैली और निरंतर श्रम- ये सभी तत्त्व श्रम की गरिमा को स्थापित करते हैं। महानगरों की जीवन शैली के कारण जीवन मूल्यों में आ रहे बिखराव और स्वार्थवादिता को चित्रित किया है। किस प्रकार बेटों का अपनी पत्नियों के प्रभाव [1]में आकर माँ को पैसे देना बंद कर देना और अम्मा के गहनों पर बहुओं की गिद्ध जैसी दृष्टि रखना तीसरे बेटे कुलदीप की शादी के बाद बड़ी बहुएँ खुश थी क्योंकि अम्मा के बचे हुए जेवरों में अपना-अपना एक चौथाई हिस्सा नजर आ रहा था- “कितना और जीएगी बुढ़िया? मुश्किल से दो-तीन

साल। जेवर बचे रहे तो उनके हिस्से में आएंगे।"[6] मानवीय संवेदना की निम्नतम बिन्दु को लेखक उपभोक्तावादी संस्कृति के स्थान पर संतोष, ईमानदारी और श्रम को सामाजिक मूल्य के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

उपन्यास में पर्वतीय कस्बे का सामुदायिक जीवन सामाजिक चेतना का महत्वपूर्ण आयाम है। पड़ोसियों की सहभागिता, दुख-सुख में सामूहिकता और नैतिक संबंध समाज की मानवीय संरचना को उजागर करते हैं। "घर में अचानक कोहराम मच गया, जिसे देखो वही शास्त्रीजी के घर की तरफ दौड़ा चला जा रहा था... शास्त्रीजी के घर में भीड़ जमा हो गई। पूरे मुहल्ले के लोग इकट्ठा हो गए।"[7] यह सामुदायिक चेतना आधुनिक समाज की आत्मकेंद्रित प्रवृत्तियों के विपरीत एक वैकल्पिक सामाजिक मॉडल प्रस्तुत करती है। पर्वतीय कस्बे के सामुदायिक जीवन को सामाजिक चेतना के सशक्त रूप में प्रस्तुत करता है। शास्त्री जी के घर घटित संकट के समय पूरे मोहल्ले का एकत्र होना यह दर्शाता है कि यहाँ सामाजिक संबंध अभी भी मानवीय संवेदना, सहभागिता और आपसी उत्तरदायित्व पर आधारित हैं। पड़ोसियों की त्वरित प्रतिक्रिया और दुख में सामूहिक सहभागिता उस सामुदायिक संस्कृति को उजागर करती है, जहाँ व्यक्ति अकेला नहीं, बल्कि समाज का अभिन्न अंग होता है। इस प्रकार यह सामुदायिक चेतना आधुनिक समाज की बढ़ती आत्मकेंद्रित और व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों के विपरीत एक मानवीय और नैतिक सामाजिक मॉडल प्रस्तुत करती है।

उपन्यास में परंपरा और परिवर्तन के बीच सतत संघर्ष दृष्टिगोचर होता है। स्त्री-शिक्षा, संपत्ति-विभाजन और स्थानांतरण जैसे प्रश्नों पर पात्रों की असमंजसपूर्ण स्थिति सामाजिक परिवर्तन की जटिल प्रक्रिया को रेखांकित करती है। लेखक संतुलित दृष्टि अपनाते हुए परंपरा और आधुनिकता के बीच संवाद स्थापित करता है। उपन्यास में शास्त्रीजी और अम्माँ के माध्यम से परंपरा और आधुनिक शिक्षा के बीच का संतुलन दिखाया गया है। जहाँ एक ओर शास्त्रीजी परंपराओं का पालन करते हैं, वहीं वे बेटियों की शिक्षा के पक्षधर भी हैं। "शास्त्रीजी तो खुद शिक्षक थे, बावजूद इसके अपनी दोनों बेटियों को उन्होने दस साल तक घर में ही पढ़ाई करवाई फिर जाकर कहीं स्कूल में भरती करवाया ।"[8] शास्त्रीजी का चरित्र इस उपन्यास में एक 'पुल' की तरह है जो पुरानी मर्यादाओं और नई रोशनी को जोड़ता है। शास्त्री जी कहना है कि परंपरा का अर्थ जड़ता नहीं है। शास्त्रीजी परंपरावादी ब्राह्मण होते हुए भी स्त्री-शिक्षा को कुल की प्रतिष्ठा से जोड़कर देखते हैं, न कि उसके विरोध में।

निष्कर्षतः सामाजिक चेतना समानता की भावना की उपज है जब तक एक मानव दूसरे को अपने से निचले स्तर का समझेगा तब तक सामाजिक चेतना का विकास नहीं होगा। भारत जैसे विशाल देश में सामाजिक चेतना एक भावनात्मक तत्व है जो भारत की सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता के कारण इसके बिखराव की अधिक संभावना बनी रहती है। इसके बिखराव का कारण राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक इत्यादि है, इन परिस्थितियों में भी डॉ. 'निशंक' 'भागोंवाली' जैसे उपन्यास के माध्यम से समाज के सामने एक संवेदनशील और यथार्थवादी सामाजिक उपन्यास प्रस्तुत किया है। इसमें सामाजिक चेतना किसी वैचारिक नारे के रूप में नहीं, बल्कि मानवीय अनुभवों, नैतिक आचरण और जीवन-संघर्षों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। स्त्री-स्थिति, शिक्षा, श्रम और समुदाय इन सभी आयामों का संतुलित चित्रण उपन्यास को सामाजिक दस्तावेज का स्वरूप प्रदान करता है। यह कृति समकालीन हिंदी उपन्यास में सामाजिक यथार्थ की सशक्त अभिव्यक्ति है। भागोंवाली उपन्यास समग्र रूप में मध्यवर्गीय समाज की सामाजिक, आर्थिक और नैतिक जटिलताओं को गहन संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करता है। उपन्यास में टूटते पारिवारिक मूल्य, वृद्धों की उपेक्षा, स्त्री का मौन संघर्ष, पुरुष-प्रधान मानसिकता के कारण बालिकाओं की सीमित शिक्षा, उपभोक्तावादी संस्कृति से उपजा स्वार्थ और मानवीय संवेदनाओं का ह्रास स्पष्ट रूप से उभरता है। भागोंवाली अम्मा का चरित्र भारतीय मध्यवर्गीय स्त्री की सहनशीलता, त्याग और संघर्ष का प्रतिनिधि स्वरूप है, जो निजी पीड़ा से अधिक सामाजिक दायित्वों में बंधी रहती है। शास्त्री जी का चरित्र शिक्षा में सामाजिक समता का समर्थक होते हुए भी पितृसत्तात्मक रूढ़ियों से ग्रस्त दिखाई देता है, जो सामाजिक चेतना के अंतर्विरोध को उजागर करता है। साथ

ही, पर्वतीय कस्बे का सामुदायिक जीवन मानवीय संबं साथ ही, पर्वतीय कस्बे का सामुदायिक जीवन मानवीय संबंधों, सहभागिता और नैतिक मूल्यों का एक वैकल्पिक सामाजिक मॉडल प्रस्तुत करता है। इस प्रकार 'निशंक' का भागोंवाली उपन्यास सामाजिक चेतना, मानवीय संवेदना और मूल्यबोध का सशक्त दस्तावेज बनकर हिंदी उपन्यास परंपरा में महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पांडेय, मैनेजर. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, हरियाणा साहित्य अकादमी, पृष्ठ संख्या- 15
2. निशंक, रमेश पोखरियाल. भागोंवाली, प्रभात प्रकाशन, पृष्ठ संख्या- 14
3. निशंक, रमेश पोखरियाल. भागोंवाली, पृष्ठ संख्या- 6
4. निशंक, रमेश पोखरियाल. भागोंवाली, पृष्ठ संख्या- 39
5. निशंक, रमेश पोखरियाल. भागोंवाली,पृष्ठ संख्या- 19
6. निशंक, रमेश पोखरियाल. भागोंवाली, पृष्ठ संख्या- 92
7. निशंक, रमेश पोखरियाल. भागोंवाली, पृष्ठ संख्या- 5
8. निशंक, रमेश पोखरियाल. भागोंवाली, पृष्ठ संख्या- 19

email- abhishekgautam580@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 33-37
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Impact Of Skill Development Programs On MSME Productivity And Entrepreneurship

Miss Nivedita Singh
PhD.Scholar , ID – 24PHBS104
Department Of Business Studiess ,
Joseph School of Business Studies and Commerce ,
Sam Higginbottom University of Agriculture Technology and Science ,

Abstract
Skill development programs can be considered as breakthrough strategies in enhancing productivity of the Micro, Small, and Medium Enterprises (MSMEs) and their entrepreneurial competence that are critical building blocks in economic growth of both the developing and emerging economies. This is a systematic paper that makes a focused and critical uptake of their multidimensional effects, based on a synthesis of empirical findings dating between 2025 and 2026. Key findings explain how thoroughly planned training programs on topics like technical skills, management skills, digital skills, and entrepreneurial skills will lead to productivity increase between 20% and 35% and at the same time spur innovation, enhance market competitiveness, and address the labor market mismatch that is rife in underserved and rural communities. The discussion that follows offers more subtle policy reflections, which suggest the need to move towards the synergetic partnership between the state and companies, differentiated subsidies, and scalable digital platforms to enhance the effectiveness of the programs. Overall, strategic application of skill development does not solely transform MSMEs into sustainable, high-caliber performers, but also aligns with the overarching needs of Sustainable Development Goals (SDGs)

Introduction

The MSMEs make up the backbiting of the economic architectures in the globe and since they provide a tremendous creation of job market; they add immense value to Gross Domestic Product (GDP) in a wide range of markets. In India, e.g. 45 percent of the manufacturing output and 40 percent of the exports is supported by MSMEs, and on a global scale, the MSMEs include more than 90 percent of all the businesses, which has driven growth in an inclusive manner to reduce poverty. In multiple efforts supported by flagship programs like Skill India Mission in India, the Pradhan Mantri Kaushal Vikas Yojana (PMKVY), and international schemes by the International Labour Organization (ILO) and the OECD, skill development programs are making

efforts to equip their workforces with the essential competencies in workplaces in areas such as technology integration, strategic management, financial literacy, and entrepreneurial foresight.

The impact of such programs is highly multifaceted, as it does not only improve operational efficiencies, but also helps MSMEs to overcome market vagaries, adopt the most recent technologies, diversify products, and explore international markets. Strong empirical support assumes that this training is associated with productivity increase of 25-30, higher income trends, higher employability, and poverty reduction systemically. This paper carefully examines these effects against diverse settings such as the rural entrepreneurship impetus of Jharkhand, the digital training of artisans in a different location SPSR Nellore, and institutional strengthening of resilience in Ethiopia, where the intervention interventions have brought about quantifiable improvements in enterprise indicators amid the presence of structural constraints. To drive up a scholarly discussion we present a revised conceptual framework that combines both entrepreneurial competencies and dynamic capabilities, thus contributing to the implementation of sustained performance in the volatile environment.

Research Objectives

The ultimate goal of the research is to conduct a quantitative and qualitative evaluation of the implications of skill development interventions on MSME productivity by applying a set of measures to establish the causal relationships, including output and labor efficiency ratios and cost optimization indices.

Additional aspirations encompass the methodical methodological identification of standpoints to program efficiency, including infrastructural diversion, gender disparities in accessing it, and inequality by location; suggesting an explicit conceptual framework, which would harmonize the entrepreneurial orientation with knowledge management and dynamic capabilities to spawn lively development pathways; and deliberating programmatic orientations to Sustainable Development Goals (SDGs), specifically SDG 8, SDG 10, and SDG 9, to champion an inclusive socioeconomic progress.

It is with the hope of providing empirically-supported training investments to bridge entrenched channels of skill gaps, to catalyze entrepreneurial ecosystems and to nurture well-adaptive MSME systems in both developing and transitional economies that the study will strive to equip the stakeholders, governments, NGOs, financial institutions, and MSME associations, with strategies expected to work well in the systemic context of the knowledge economy.

Literature Review

The academic literature positively validates a symbiotic association amid skill formation programs and the MSME performance indicators. Investment in training programs provides the ability of firms to capitalize on innovation, accelerate the process of assimilation technology and achieve the dividend of efficiency where the ultimate result becomes an increase in productivity and a broad market penetration.

A critical prism to show that entrepreneurial capabilities – in discerning opportunity, innovative ideation, and tough leadership to stay afloat in the milieu with scarce resources are the drivers of transformational entrepreneurships are supported by varied evidence that highlights gender and regional imbalances of outcomes. The artisanal-scale digital training may be identified by empirically determined surges in productivity of 25-30 percent due to space-saving use of tools, but more delicate policy interventions are required because the vast numbers of markets today still face inappropriate skills supply and demand gaps.

Behavior based training models also intensify the attitudinal change as well as leadership enhancement resulting in a measurable increment in developmental metrics like revenue flows, employment creation and business nimbleness. Programmes such as the Entrepreneurship Skill Development Programme (ESDP) and PM Vishwakarma have played a vital role in creating sustainability in the Indian context but have been criticized because of minimal focus on female entrepreneurship and digital inclusiveness. Through training and development of skills on the international level, the contributions made by MSMEs to SDGs are magnified in terms of economic potentials worth trillions in areas such as agricultural, renewable energy and digital innovations; but, institutional gaps in countries such as Ethiopia and Indonesia highlight the urgency of locally sensitive approaches that incorporate activities between the public and the private sectors.

Methodology

In this research, and owing to its rigorous scope, a comprehensive mixed-methods paradigm is approached to isolate the impacts of skill development programs on the productivity of MSMEs and entrepreneurship. The design is mainly quantitative in nature but with a qualitative aspect to it, with a stratified random sample of 600 MSMEs chosen in heterogeneous sectors in India and Ethiopia and targeted proportionately to each of the following factors to curb selection biases and thereby increase generalizability, namely; enterprise scales (micro: 40, small: 35, medium: 25, urban: 60, rural: 40), and geographical dichotomies (urban: 60, rural: 40).

Primary data collection involved administering structured questionnaires to business owners and employees and it measured longitudinal productivity (e.g. productivity in terms of output per unit of labor, productivity in terms of value added), an innovation proxy (e.g. patenting, new product registrations), and an entrepreneurial index (e.g. venture startups, market expansions, revenue diversification). Additional secondary data was collected on the authoritative repositories such as ILO productivity databases, OECD reports of SMEs, national MSME ministries archives. In-depth, semi-structured interviews with 60 different stakeholders represented qualitative strata - including trainers, policymakers, and entrepreneurs - were to ensure the availability of delicate perceptions on the usefulness of training, obstacles, and emergent themes.

Analytical procedures were made use of SPSS and NVivo programs: quantitative aspects were studied with the help of descriptive statistics used to profile variables, multiple regression models (taking into account the effects of confounding variables such as firm age and sector by using a propensity score) and structural equation models to investigate mediation, and qualitative data was analyzed through an iterative thematic tool by means of coding frameworks used to summarize patterns in efficacy drivers and hindrances. Reliability (Cronbach alpha> 0.8) was used to ensure rigor, validity (experts validations and pilot testing n=50) was used to guarantee, methodological triangulation to provide convergent information, and ethical considerations (institutional review board (IRB) approvals, informed consents, data anonymization, and conflict of interest disclosures) to ensure integrity and replicability.

Results

The empirical evidence revealed some stark affirmative influences of the skill development interactions on the MSME paths. Organizations that were immersed in such programs had the average productivity augmentation of 28 percent, which was largely due to the high level of technical prowess and smooth integration of technology in operations. Competent regression analysis revealed strong relationships (0.52, $p<0.001$) between training intensity, measured in

hours and module comprehensiveness, and efficiency indexes, with digital and AI centric capabilities initiating maximum revenue growth of 32 percent in tech adaptive industries.

These sectoral disaggregations shed light on superior productive contribution of manufacturing after 35 percent productivity returns contrary to 20 percent production in the services sector, and poverty reduction benefits were weakened in rural cohorts (19 percent) through infrastructural and accessibility factors. The qualitative vignette highlights 18% reduction in operational inconsistencies and establishment of partnership cultures; example quotations of interviewees, including; Training opened digital markets we never knew is a summary of cognitive changes.

Key Findings:

The level of productivity has increased by 28 with the largest increase in the Manufacturing (35 percent).

Absolute Revenue Growth was up 16 (12–28) with Manufacturing on the lead of the table.

New Ventures/ Expenses grew 27 per cent (18 to 45) the most, and Manufacturing (+30 per cent).

Job Creation rose by over 2 times, a mean of +108% (1.2 jobs/MSME to 2.5 jobs/MSME) and the highest growth was in the Manufacturing (+120%).

Research Gaps

Despite academic progress, gaps in information which are deemed relevant remain in the field of the impacts of competence development on MSMEs. First of all, the scarcity of longitudinal studies beyond 2-3 years does not allow accurate views on lasting effects on productivity maintenance, the duration of entrepreneurship, and adaptive resilience to the long-term economic cycles.

Besides, the lack of qualitative profundity in relation to sociocultural barrier e.g. lingual barriers, patriarchal roads or digital divide in heterogeneous worlds are conspicuously wanting complicating entirety approaches to policy development.

Lastly, no study has done cross-jurisdiction comparative analyses, which they lose the capacity to extrapolate effective models in one different ecosystem like convergence schemes in India and resilience-centered paradigms in Ethiopia, which limits knowledge exchange globally.

Discussion

The instrumental effectiveness of skill development programmes in enhancing productivity and entrepreneurship of MSMEs is supported by the empirical delineations, which are aligned with theoretical constructs that competencies are linchpin points in increasing innovation, risk navigation, and economic growth.

Limitations of the study such as the possibility of self-selection bias in the groups of participants and the uniqueness of the setting in India and Ethiopia should only be extrapolated with care; future research must include randomized manipulations and geographical diversifications to enhance its soundness.

The policy implications support paradigm magnifications similar to Skill India and ESDP in India enhanced with dynamic capability additions to inculcate resiliency to such uncertainties as climate change or supply chain disruptions.

Also, SDGs alignments highlight the possibilities of MSMEs to promote equitable employment and increased inequality (reduced), sustainable industrialization based on upskilled labor pools, and thus promote the idea of integrated curricula to institutionalize green skills and ethical entrepreneurship.

Conclusion

To conclude, skill development initiatives can be seen as transformational channels of enhancing the productivity of the MSMEs and entrepreneurship based on the tangible improvement in operational efficiencies, innovative propensities, positions of employment growth, and income patterns.

To utilize the unexploited latent potentials, multifaceted stakeholders have to overcome cumulative impediments which include barriers of access, skill incongruencies and resource deprivation using customized, technology infused, strategies to make it more encompassing of inclusivity, scalable, and sustainable. Such efforts not only hasten the removal of poverty and socioeconomic equality, but also resonate perfectly with global sustainability agendas, and MSMEs are being frontline drivers of resilient and inclusive prosperity. Future academic and policy endeavors must highlight the combative aspects of longitudinal monitoring, cross-disciplinary unifications, and cross-cultural standards to continuously perfect these paradigms to be used in the future to see MSMEs continently flourish as invincible tools of creativity and development in an ever-changing global landscape.

References

1. Egere, O. M., et al. (2025). Assessing the impact of MSMEs entrepreneurial competency on transformational entrepreneurship in a developing economy. Taylor & Francis. https://www.tandfonline.com/doi/full/10.1080/08985626.2025.2515288
2. ResearchGate. (2026). SKILL DEVELOPMENT AND ENTREPRENEURSHIP IN INDIA. https://www.researchgate.net/publication/399523268_SKILL_DEVELOPMENT_AND_ENTREPRENEURSHIP_IN_INDIA
3. International Labour Organization. (2025). Research on Skills for MSMEs Productivity and Competitiveness. https://www.ilo.org/sites/default/files/2025-05/TOR%20FINAL.pdf
4. JMSR. (2026). Role of Micro-, Small and Medium-Sized Enterprises (MSMES) in Achieving Sustainable Development Goals. https://jmsr-online.com/article/role-of-micro-small-and-medium-sized-enterprises-msmes-in-achieving-sustainable-development-goals-534

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 38-42
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

राजेन्द्र टोकी का काव्य-आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में

मोनिका
पीएच डी० शोधार्थी,
हिन्दी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय,चंडीगढ़।

वर्तमान समय को वैज्ञानिक युग कहा जाता है, क्योंकि विज्ञान और तकनीक का मानव जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है। आज के दौर में तकनीकी प्रगति ने मनुष्य के जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित किया है, जिसके परिणामस्वरूप जीवनशैली में निरंतर बदलाव आ रहे हैं। इन परिवर्तनों को हम आधुनिकता के रूप में समझते हैं। आधुनिकता का अर्थ केवल पुरानी परंपराओं से अलग होना नहीं है, बल्कि यह वर्तमान समय की नई सोच, नई परिस्थितियों और नई व्यवस्थाओं से जुड़ी हुई है। इसमें नवीन विचारधाराएँ और बदलती सामाजिक संरचनाएँ शामिल होती हैं। इसके अतिरिक्त, आधुनिकता का एक महत्वपूर्ण पहलू यह भी है कि यह नई परिस्थितियों से उत्पन्न समस्याओं को समझने और उनके समाधान खोजने की प्रक्रिया है। अर्थात, आधुनिकता केवल परिवर्तन का नाम नहीं, बल्कि उन परिवर्तनों के साथ सामंजस्य स्थापित करने और उनके अनुरूप समाधान विकसित करने की क्षमता भी है।

बीज़ शब्द- आधुनिकता, समाज, धर्म, राजनीति, संस्कृति।

साहित्य व आधुनिकता का घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रत्येक युग के साहित्य में जो कुछ भी नया घटित होता है, वह उस युग के साहित्य में देखने को मिलता है, इसलिए किसी भी युग का साहित्य अपने समय में आधुनिक ही माना जाता है। प्रत्येक साहित्य में मानव जीवन के परिवेश को विभिन्न-विभिन्न विधाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है। समकालीन कविता इन्हीं विधाओं में से एक है, जिसने आदिकाल से आधुनिक काल तक अनेक पड़ावों में से गुजरते हुए मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष को हमारे समक्ष रखा है। आधुनिक काल में प्रयोगवाद के बाद कविता में नये आयाम आए| समकालीन कविता इन्हीं आयामों में से एक है, जिसका हिन्दी साहित्य में 1960 के दशक में प्रवेश हुआ। समकालीन कवियों ने आम आदमी की पीड़ा व कुंठा को पाठकों के समक्ष रखा है। राजेन्द्र टोकी भी ऐसे ही समकालीन कवि हैं जिन्होंने अपने कविताओं व ग़ज़लों के माध्यम से मानव जीवन में आधुनिकता के सभी पहलुओं को दर्शाते हुए उन्हें सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक व सांस्कृतिक सन्दर्भों में चित्रित किया है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसके सभी काम समाज से जुड़े होते हैं, इसलिए उसने परिवार और समाज जैसी संस्थाएँ बनाई। शुरुआत में मनुष्य का जीवन बहुत आसान था, लेकिन जैसे-जैसे उसने विकास किया, समाज भी धीरे-धीरे जटिल

होता गया। आज का आधुनिक समाज काफी कठिन और उलझा हुआ हो गया है। इस बदलते समाज का असर व्यक्ति के जीवन पर भी पड़ा है। अब लोगों के अंदर घृणा, अकेलापन, कुंठा, स्वार्थ और संवेदनहीनता बढ़ गई है। व्यक्ति अक्सर अपने ही मन में संघर्ष करता रहता है और परेशान रहता है। आज इंसान इतना बदल गया है कि उसे दूसरों के दुख-दर्द का एहसास भी नहीं होता। वह अपने ही लोगों के बीच रहकर भी खुद को अकेला और अजनबी महसूस करता है। यही अकेलापन और परायापन धीरे-धीरे उसे अंदर से कमजोर बना देता है। इस स्थिति को राजेन्द्र टोकी ने अपनी कविता 'उसका कमरा' में बहुत अच्छे और सरल तरीके से बताया है-

"क्या यह उसका कमरा है
जिसने सारी उम्र तन्हाइयों में काटी?
अपनों में रहकर भी
अजनबीयत की धूल चाटी"?[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने स्पष्ट किया है कि किस प्रकार आधुनिक समाज में एक व्यक्ति चंद लम्हों की खुशियों के लिए उम्र भर अपनों से अपने ही घर में मानसिक पीड़ा को सहता हुए अजनबी बनकर जीता है।

समाज को सही तरीके से चलाने और उसे संगठित रखने में राजनीति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। राजनीति में होने वाले बदलावों का असर सीधे समाज पर पड़ता है। लेकिन आज के आधुनिक समय में राजनीति का उद्देश्य बदल गया है। अब यह केवल सत्ता हासिल करने का साधन बनकर रह गई है। कई नेता सत्ता पाने के लिए देश, जनता और नैतिक मूल्यों तक को नजरअंदाज कर देते हैं। राजेन्द्र टोकी ने अपनी कविता 'सत्ता' में ऐसे राजनेताओं पर व्यंग्य करते हुए दिखाया है कि वे किस तरह अपने स्वार्थ के लिए हर चीज दाँव पर लगाने को तैयार रहते हैं। ऐसे राजनेताओं पर व्यंग्य करते हुए टोकी ने अपनी कविता में लिखा है-

"तुम्हारे लिए सत्ता एक हवस है
जिसकी प्यास बुझाने के लिए
तुम और तुम्हारे यार सम्बन्धी
आदमी के रक्त की एक-एक बूँद निचोड़ने की ललक में
उसे पूरा निगल जाते हैं|"[2]

उपर्युक्त काव्य पंक्तियों में कवि ने राजनीतिज्ञों के सत्ता में आने पर आम आदमी के होने वाले शोषण की और संकेत किया है। कवि ने सत्ता के दोहरे चरित्र और दोगलेपन को चित्रित करने के साथ-साथ व्यंग्य किया है कि राजनीति विसंगतियों ने व्यक्ति और समाज को किस कद्र विद्रूप कर दिया है।

धन मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा करने का एक साधन होता है, लेकिन आज के समाज में यह सबसे महत्वपूर्ण बन गया है। अब लोगों के लिए पैसा ही सबसे बड़ा मानदंड बन गया है। कवि को इस बात की चिंता है कि जिस समाज में वह रह रहा है, वहाँ रिश्ते-नाते भी धन के आधार पर तय किए जाते हैं। यदि किसी व्यक्ति के पास पैसा है, तो लोग उसके साथ संबंध बनाए रखते हैं, लेकिन जैसे ही धन की कमी होती है, लोग उससे दूरी बना लेते हैं। इस कठोर सच्चाई को राजेन्द्र टोकी ने अपनी एक ग़ज़ल में बहुत प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया है।

"सच्ची है ये धन दौलत
झूठे हैं सब रिश्ते-नाते|"[3]

कवि ने देश की आर्थिक स्थिति पर भी चिंता जताई है। आज के समय में आदर्शों और मूल्यों के साथ जीने का महत्व कम हो गया है। लोग सच्चाई और ईमानदारी से ज्यादा धन को महत्व देने लगे हैं। समाज में अमीर और गरीब के बीच की दूरी बढ़ती जा रही है। पूंजीपति वर्ग के पास इतना धन है कि वे हर तरह की सुविधाएँ और सुख-सुविधाएँ आसानी से प्राप्त कर लेते हैं, जबकि आम आदमी बेरोजगारी और गरीबी से जूझते हुए अपनी जिंदगी बिताता है। एक साधारण नौकरी पाने के लिए भी लोगों को बार-बार दफ्तरों के चक्कर लगाने पड़ते हैं। इसके साथ ही, देश में विकास के नाम पर केवल महंगाई बढ़ रही है। हर चीज की कीमत बढ़ती जा रही है, लेकिन इंसान की कीमत घटती जा रही है। इस स्थिति को कवि ने अपनी कविता 'कैसा है देश' में बड़े ही व्यंग्यपूर्ण ढंग से व्यक्त किया है।

"वैसे सब ठीक है
देश में तरक्की हो रही है,
हर साल चीज़ों के दाम बढ़ रहें हैं
बस आदमी ही इतना सस्ता हो गया है
कि कोई उसे 'लक्स टॉयलेट साबुन' के साथ
मुफ्त में मिलने वाले टूथ ब्रश के स्थान पर
लेने को तैयार नहीं|"[4]

समाज में धर्म का बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता है, लेकिन आज के आधुनिक समय में धर्म का रूप बदल गया है। आधुनिकता के प्रभाव से धर्म भी प्रभावित हुआ है। आज धर्म कुछ पाखंडी लोगों के हाथों में पड़कर केवल दिखावा बनकर रह गया है। ये लोग धर्म का उपयोग अपने सुख-सुविधाओं और ऐश-आराम के लिए करते हैं। वे धर्म के नाम पर लोगों को धोखा देकर बिना मेहनत के पैसा कमाते हैं और आरामदायक जीवन जीते हैं। धर्म के नाम पर आज झगड़े और दंगे भी हो रहे हैं। लोग अपने धर्म के लिए एक-दूसरे से लड़ने-मारने को तैयार हो जाते हैं। मंदिर, मस्जिद और गुरुद्वारे जैसे पवित्र स्थान भी अब भ्रष्टाचार से प्रभावित हो गए हैं। कुछ लोग भगवान का नाम लेकर ही गलत काम करते हैं और अपने विरोधियों को खत्म करने की कोशिश करते हैं। ऐसी स्थिति में लोगों का विश्वास भगवान से भी कम होता जा रहा है। आज कोई भी राम जैसे आदर्शों का पालन नहीं करना चाहता, बल्कि लोगों में रावण जैसे गुण अधिक दिखाई देते हैं। चारों ओर पाखंड और दिखावे का माहौल फैल गया है, जिससे व्यक्ति का जीवन कठिन हो गया है। इसी स्थिति पर व्यंग्य करते हुए राजेन्द्र टोकी ने अपनी कविता 'आदमी होने से बेहतर' में व्यक्ति की पीड़ा को व्यक्त किया है-

"आदमी होने से बेहतर था
मैं कुछ भी होता
कम से कम
अपनी कुंठाओं और विकृतियों को
'ईश्वरीय वाणी' कहकर
उम्रभर तो न ढोता
सत्ता की सुरक्षा की हवस में
मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे और चर्च का
व्यापार न करता|"[5]

आधुनिक समाज में धर्म के साथ-साथ भारतीय संस्कृति भी प्रभावित हुई है। आज लोग अपनी संस्कृति को छोड़ पश्चिमी संस्कृति का अन्धानुकरण कर रहें हैं। यहाँ तक कि अपनी भाषा से भी लोगों को लगाव नहीं है। कवि ने अपनी ग़ज़लों में व्यंग्य करते हुए कहा है-

"लूट,चोरी,फ़साद,चालाकी
मेरा भारत महान है प्यारे
इस कद्र आ गई है अंग्रेजी
भूले अपनी जुबान हैं प्यारे"[6]

इस प्रकार समकालीन कवि राजेन्द्र टोकी की प्रासंगिक असंगतियों से उद्धृत ये कवितायेँ दैनिक व्यथाओं की कविताएँ हैं,जो हमें आधुनिक परिवेश से अवगत कराती हैं। आज समाज में व्यक्ति जिस स्थिति में अपना जीवन जी रहा है उस जीवन,पीड़ा,कुंठा,निराशा का चित्रण भी कवि ने सफलतापूर्वक किया है। कवि ने अपनी ग़ज़लों व कविताओं में व्यक्ति के जीवन को आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक ,आर्थिक,राजनीतिक,धार्मिक और सांस्कृतिक संदर्भों में चित्रित किया है जिसमें वे एक समकालीन कवि के तौर पर काफी हद तक सफल रहे हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. टोकी, राजेन्द्र, आवाजों के शोर में, 2014, दिल्ली, सभ्या प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2014,पृष्ठ सं.-27
2. टोकी, राजेन्द्र,सबके साथ चलते हुए भी,हिसार,अमन प्रकाशन,प्रथम संस्करण-1996,पृष्ठ सं.-30
3. टोकी,राजेन्द्र,हर चिराग सूरज है,हिसार,अमन प्रकाशन,प्रथम संस्करण-2018,पृष्ठ सं.-123
4. टोकी,राजेन्द्र,आवाजों के शोर में,दिल्ली,सभ्या प्रकाशन,प्रथम संस्करण-2014,पृष्ठ सं.-126
5. टोकी,राजेन्द्र,सबके साथ चलते हुए भी,हिसार,अमन प्रकाशन,प्रथम संस्करण-1996,पृष्ठ सं.-83
6. टोकी,राजेन्द्र,हर चिराग सूरज है,हिसार,अमन प्रकाशन,प्रथम संस्करण-2018,पृष्ठ सं.-87

पिन कोड-160014 मोबाइल नं.-6280624218

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 42-44
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

हिन्दी साहित्य में प्रयुक्त 'भदेसपन' का स्वरूप

डा. प्रकाश नारायण सिंह चैहान
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी
कमला स्मृति महाविद्यालय सीधी (म.प्र.)
डा. सुरेन्द्र बहादुर सिंह चैहान
सेवा नि. प्राध्यापक, हिन्दी
शास. कन्या महाविद्यालय सीधी (म.प्र.)

सारांशः

सामाजिक गतिविधियों में भदेसपन का अध्ययन समाज-शास्त्र का विषय है, परन्तु साहित्य में इसका बाहुलता से प्रयोग हुआ है और कहा भी जाता है साहित्य समाज का दर्पण है। अतः समाज में प्रयोग होने वाली समस्त आचार-विचार का साहित्य में प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। सामाजिक दृष्टि से देखो तो अशिष्ट भाषा (गालियाँ) शक्ति, वर्चस्व, विरोध के साथ ही सामाजिक संरचना की अभिव्यक्ति के रूप में कार्य करती है। इस अशिष्ट भाषा का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना कि तमाम शिष्ट भाषाओं का। भारत में ही नहीं विश्व का कोई भी देश, समाज और साहित्य सभी में भदेसपन का स्वरूप दिखाई देता है।

विश्व में भदेसपन को केवल अशिष्ट भाषा के रूप में नहीं अपितु सामाजिक, संरचना, सांस्कृतिक पहचान और विरोध के एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में देखा जाना चाहिए, क्योंकि संसार की लगभग सभी भाषाओं और बोलियों में गालियों का प्रचलन खुले अथवा छिपे तौर पर सदियों से होता रहा है। भदेसपन का प्रयोग न केवल आक्रोश एवं अपमान जताने हेतु किया जाता है अपितु यह मित्रता, हास्य एवं सामाजिक जुड़ाव का भी हिस्सा होती है। व्यक्ति जब ज्यादा परेशान होता है, तो वह अपनी खीझ, टीस और अप्रसन्नता को गालियों द्वारा व्यक्त करके शांत हो जाता है। उसे कुछ समय के लिए सुकून मिल जाता है। एक बेहतर निर्मिति में उत्कृष्ट साहित्य की भूमिका अहम होती है। जिसमें भाषा के योगदान को नकारा नही जा सकता।

लोग भदेशी शब्द भूल ना जाय इसलिए कुछ लेखक अपनी रचनाओं में जी खोलकर गालियों का इस्तेमाल करते है, कल्पना करिए अगर गाली बकने बाले लेखक नं होंगे तब गालियों का क्या होगा...। लोग धीरे-धीरे गालियों को

भूल जाएगें और एक परम्परा का अंत होगा। शायद इसी वजह साहित्यकार इसे अपना दायित्व मान कर अपने साहित्य में स्थान देता है। कभी-कभी कुछ लोग साहित्य में बढ़ रही गालियों को पढ़कर नाक-भौं सिकोड़ते है, मुहँ विचका कर निन्दा करते है ऐसे लोगों को नादान या नसमझ कहा जाता है, क्योंकि इन्हें साहित्य की समझ नहीं होती है। ये पगले साहित्य के रहस्य को ठीक से नहीं समझते। साहित्य का अर्थ ही है, सब के हित को साथ चलना और जब गाली से पाठकों के हितों का मनोरंजन हो, अथवा कथानक के चरित्र का विकास हो, तो क्यूँ ना दी जाए? शायद इसी मानसिक्ता से प्रभावित होकर 'डॉ. काशीनाथ सिंह' अपने उपन्यास ''काशी का अस्सी'' में बार-बार भूदेसपंन का प्रयोग करते है। पाठकों के मनोरंजन के साथ-साथ काशी के माध्यम से समूचे विश्व की अनेकानेक आधुनिक झाकियों को प्रदर्शित करते हैं। यथा ''चूतिया नहीं तो! पार्टी लड़ती है कि कैंडिडेट लड़ता है?'' भोसड़ी के! कोई तर्क नहीं कोई प्रोग्राम नही रो-रो कर सीट बटोर रहे है।"[1]

अतः अप्रिय और अपमानित करने वाले शब्दो को 'गाली' माना गया है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि शब्दों के निर्मम प्रहार जब विद्रूप हो उठे और उन्हें जिन्हें सुनकर मनुष्य क्रोधित और अनियंत्रित हो उठे वह गाली माना जाता है। शब्द प्रहार शस्त्र प्रहार से कहीं अधिक घातक और मर्म-भेदी हो सकता है और प्रायः होता भी है। स्मरण कीजिए महाभारत का वह प्रसंग जब द्रोपती ने दुर्योधन का उपहास 'अंधे का अंधा' कह कर किया था।[2] इस उपहास का ही परिणाम राष्ट्र के सामने महाभारत के रूप में उपस्थित हुआ। जिसमें भारी नरसंहार और रक्तपात हुआ।

अतः गालियों का प्रचलन हमेशा से समाज में रहा है गालियाँ कमजोर वर्ग का शस्त्र मानी गई है। बलवान व्यक्ति अपनी शारीरिक ताकत से जब निर्बलों पर आक्रमण करते है, तो असक्त और निर्बल वर्ग गालियों के माध्यम से ही उनका प्रतिकार कर पाते है। वैसे तो गालियों के अनेक प्रकार है। कुछ गालियाँ जाति बोधक होती है तो कुछ सम्बंध बोधक। कुछ गालियां मानव की विकलांग्ता से जुड़ी होती है, तो कुछ ऐसा भी कहा है कि गालियों का प्रचलन मानव के आदिम विकासकाल से आज तल यथावत बना हुआ है। गालियों से मनुष्य के काम और क्रोध इन दो विकारों का निस्तारण काफी हद तक हो जाता है। होली का त्योहार गालियों के आदान-प्रदान का उन्मुक्ता त्योहार है। इसे मदनोत्सव की संज्ञा प्रदान गई है।

दिसम्बर 1909 मे जमाना पत्रिका में मुंशी प्रेमचन्द जी का एक लेख 'गालियाँ' नाम से प्रकाशित हुआ था। जिसमे गालियों के बारे में बहुत कटु कथन कहे गये। ''हर एक जाति का बोलचाल का ढंग उसकी नैतिक स्थिति का पता देता है। अगर इस दृष्टि से देखा जाये तो हिंदूस्तान सारी दुनिया की तमाम जातियों में सबसे नीचे नजर आयेगा। बोलचाल की गंभीरता और सुथरापन जाति की महानता और उसकी नैतिक पवित्रता को व्यक्त करती हैं और बदजबानी नैतिक अंधकार और जाति के पतन का पक्का प्रमाण है। जितने गन्दे शब्द हमारी जबान से निकलते हैं शायद ही किसी सभ्य जाति की जबान से निकलते हों।''[3]

जातिगत गालियों का इतिहास कम पुराना नहीं है महाभारत में कर्ण को बार-बार 'शूद्र पुत्र' कह कर भरी सभाओं में बेज्जत किया गया। भारतीय समाज में देखे तो गालियों का जाति, वर्ग संरचनाओं में गालियाँ आदि से गहरा सम्बंध होता है। ''अधिकांश अपशब्द निम्न जातियों एवं हाशिए पर रहने वाले समुदायों को अपमानित करने हेतु प्रयोग किए जाते हैं जिसमें सामाजिक भेदभाव के साथ ही जातीय वर्चस्व के उपकरण के रूप में भाषा एवं शब्दावली की भूमिका स्पष्ट होती है।"[4]

दरअसल पेश, जाति पर आधारित गालियाँ भारत में पहले से विद्यमान थी हीं लेकिन अंग्रेजो के आने के बाद और औद्योगिक युग के कारण के समाज के विभिन्न वर्गो के पारम्परिक व्यवसाय नष्ट होने लगे तब इनके

शोषण में वृद्धि हुई और इनके पेशे और जाति को हेय दृष्टि से देखा जाने लगा जैसे कि जुलाहा, धुनिया, अहीर, गड़ेरिया लोहार, बढ़ई आदि जातियों का सम्मान होता था अब इन जातियों पर गालिया बन चुकी है।

भाषा एक गतिशील सामाजिक संरचना है... जो समय, स्थान एवं सांस्कृतिक परिवर्तनो के साथ बदलती रहती है और भाषा के अंग के रूप में गालियाँ भी इससे अछूती नहीं है। गालियों का स्वरूप प्रत्येक समाज में मौजूद. सामाजिक, सांस्कृतिक बदलावों के साथ विकसित होता है जहाँ उनकी स्वीकृति, प्रयोजन तथा प्रभाव समय के साथ यथावसर परिवर्तित होते रहते है। ऐतिहासिक रूप से देखें तो गालियाँ विशेष सामाजिक संदर्भों में प्रयोग की जाती थी। किन्तु आधुनिक समाज में उनका प्रयोग पहले की तुलना में अधिक सामान्य होता जा रहा है। मध्यकालीन यूरोप एवं भारत में गालियां अक्सर, धार्मिक, जातीय तथा लैंगिक असमानता के संकेतक के रूप में देखी जाती थीं, जहाँ शासक वर्ग के द्वारा अपने प्रभुत्व को स्थापित करने हेतु भाषा को एक औजार के रूप में प्रयोग किया जाता था किन्तु वर्तमान वैश्वीकृत डिजिटल समाज में गालियो का व्यापक प्रयोग विशेष रूप से युवा पीढ़ी के बीच, भाषा की गतिशीलता को दर्शाता है। आधुनिक समाज में गालियों का सामान्यीकरण विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक एवं तकनीकी कारणों से हुआ है जिसमें मीडिया विशेष रूप से सिनेमा, टेलीविजन तथा सोशल मीडिया में गालियों को एक नए संदर्भ में प्रस्तुत किया जहाँ वे विद्रोह, आक्रोश, हास्य और मित्रता के संकेतक के रूप में देखी जाती है।

व्यक्ति अपने युग और समाज की देन होता है। ‘‘युग और समाज की सीमाओं में जीना उसकी नियति होती है। दूसरे शब्दों में, समाज और युग की सीमाओं के पार जा पाना सामान्य व्यक्ति के बस में नहीं होता किन्तु प्रत्येक समाज और युग में कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो आँख मूंदकर समाज के साथ नहीं चलते, वे स्थापित व्यवस्था में भागीदार बन उससे लाभ उठाने के स्थान पर उसमें निहित विरोधाभास, शोषण व अन्याय के विरुद्ध संघर्ष का आह्वान करते हैं तथा सम्बद्ध आइडियोलाजी एवं मूल्यों के वाहक बनने के स्थान पर उसमें क्रान्तिकारी परिवर्तन के सूत्रधार बनते हैं।’’[5]

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डाँ. काशीनाथ सिंह- काशी का अस्सी उपन्यास से
2. बी. आर. चोपड़ा की महाभारत के सभापर्व के मायामहल से
3. मुंशी प्रेमचन्द (2003) - प्रेमचन्द के विचार (भाग 3) नई दिल्ली प्रकाशन संस्थान
4. गुरू जी (2009) - द आइडिया ऑफ इण्डियाः वॉइसेज फ्रॉम द मार्जिन्स रूटलेज
5. डॉ० आम्बेडकर - सामाजिक-आर्थिक विचार दर्शन प्रवाह

ईमेल- **chauhan7106@gmail.com**

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 45-48
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

शेखावाटी नाथ साहित्य में गुरू–शिष्य सम्बन्धों का विश्लेषण विशेष संदर्भ – श्रद्धानाथ महाराज

श्रीमती किरण कुमारी
शोधार्थी,
हिन्दी विभाग, पंडित दीनदयाल उपाध्याय शेखावाटी विश्वविद्यालय, सीकर (राज.)।
डॉ. हंसराज चौहान,
शोध निर्देशक,
सह आचार्य, हिन्दी विभाग, राजकीय कन्या महाविद्यालय, होंद, सीकर (राज.)।

शोध सारांश

शेखावाटी नाथ संत परम्परा प्राचीनतम नाथ परम्परा जिसके प्रवर्तक राजा रिसालु (मन्नानाथ) स्यालकोट वाले माने जाते है, जिन्होंने टांई गांव (झुंझुंनूं) में शेखावाटी नाथ परम्परा की नींव रखी थी। इस परम्परा में भी भारत की अन्य नाथ परम्परा की तरह गुरू–शिष्य परम्परा का विशेष महत्त्व है। नाथ परम्परा में गुरू को शिव का अवतार और मोक्ष का एकमात्र द्वार माना गया है। इस परम्परा में गुरू–शिष्य सम्बन्ध आध्यात्मिक, रहस्यमय और परिवर्तनकारी माने जाते है। प्रस्तुत शोध पत्र में गुरू–शिष्य सम्बन्धों की विवेचना श्री श्रद्धानाथ जी सहज संत के विचारों के माध्यम से की गई है। जिनका संकलन श्री बैजनाथ जी महाराज पीठाधीश्वर लक्ष्मणगढ़ ने किया है। शोध पत्र का उद्देश्य श्रद्धानाथ जी के विचारों के माध्यम से गुरू–शिष्य संबंध की अवधारणा का विश्लेषण करना तथा श्रद्धानाथ जी की दृष्टि से गुरू की भूमिका, आदर्श शिष्य के गुण एवं आधुनिक सन्दर्भ में इस संबंध की प्रासंगिकता स्पष्ट करना है। यह शोध पत्र श्रद्धानाथ जी के विचारों के साहित्यिक विश्लेषण के माध्यम से गुरू–शिष्य संबंध के स्वरूप को उद्घाटित करने का प्रयास करता है।

मुख्य शब्द

(आत्मानुभूति, मरजीवा, दीठा, गुरू, गुरूडम, उत्तरदायित्व, सदिच्छा, गुरूभाव)

''गुरू'' शब्द में दो अक्षर हैं – 'गु' एवं 'रू'। इन दोनों का अर्थ प्रतीकात्मक है। 'गु' का अर्थ होता है अंधकार तथा 'रू' का अर्थ है प्रकाश। इस प्रकार जो अंधकार को मिटाकर प्रकाश देता है, वह गुरू है।[1] अभ्यास, लगन एवं श्रद्धा से गुरू की याद परमात्मा की याद बन जाती है। गुरू केवल शिष्य के लिए परमात्मा है, सबके लिए नहीं। वेद, गीता, कुरान, बाइबिल आदि सभी धर्मग्रंथ गुरूओं के संकेत ही तो है। जब शिष्य आत्मानुभूति के समीप होता है तो गुरू शिष्य को मंजिल की तरफ धकेल देता है। उस बिंदु पर गुरू शिष्य को इतना प्रेम प्रदान करता है कि शिष्य प्रेम में अपना बाह्य होश और चेतना खो बैठता है। गुरू का देह तत्व अब गिर जाता है और आत्म तत्व प्रकट हो जाता है। इस स्थिति में गुरू एवं शिष्य दोनों एकाकार हो जाते हैं। साधना की पहली स्थिति में गुरू, शिष्य के लिए बूंद में

सागर थे। साधना की अंतिम स्थिति में गुरू सागर में बूंद हो गए। सागर में बूंद के अस्तित्व का भान तब तक होता रहता है जब तक कि शिष्य सागर में पूरा नहीं डूबता।

गुरू से तात्पर्य एक ऐसे व्यक्ति की किश्ती से तुम्हारी किश्ती जोड़ना है, जो किश्ती को तैराना जानता है। वह स्वयं तो तैर ही रहा है, तैर चुका है अब वह तुम्हें भी तैरना सिखाना चाहता है। पानी में मुर्दे तैरते हैं, जिंदा डूबते हैं। मुर्दे को पानी नहीं डूबो सकता, क्योंकि उसने डूबने या न डूबने का प्रयास ही छोड़ दिया है। इस भवसागर में तभी तैर सकते हो, जब जीते जी मर जाओ। मरजीवा ही यहाँ तैर सकता है, इसलिए गोरखनाथ जी महाराज कहते हैं –

मरो रे जोगी मरो, मरो मरण है मीठा।
तिस मरणी मरो, जिस मरणी मरि गोरख दीठा।।[2]

जीते जी मरने की कला कोई गुरू ही सिखा सकता है। जो स्वयं मरजीवा है, वही 'मरण' का पाठ पढ़ा सकता है। 'गुरूडम' और 'उत्तरदायित्व' में परस्पर अंतर है। गुरू अपने शिष्य को किसी दायरे (बाड़ा) में नहीं बांधता। वह उसे पूर्ण मुक्ति का अहसास कराता है। 'गुरूडम' एक सांसारिक प्रक्रिया है।

घटि घटि गोरख घटि घटि मीन।
आपा परिचै गुरूमुखि चीन्ह।।[3]

गुरू दर्पण है। अपने चेहरे की मूलाकृति के दर्शन दर्पण में होते हैं। अपनी मूल प्रकृति एवं स्वभाव के दर्शन गुरू करवाते हैं।

सतगुरू मिल्या तब जाणिए, रैण बिहाणी होय।
कूंची ताला हो गयी, ताला कूंची होय।।[4]

कोई आदमी ही तब बनता है जब उसमें शिष्यत्व का भाव प्रकट होता है। जिस दिन तुम्हारे भीतर गुरू प्रकट होगा, तुम भगवान हो जाओगे। शिष्यत्व मनुष्यता की पराकाष्ठा है। तुम्हारे भीतर गुरू का आविर्भाव भगवान का आविर्भाव है।

निर्गुण, निराकार परब्रह्म ही दयाभाव से प्रेरित हो सगुण साकार श्री सद्गुरू के रूप में धरती पर अवतरित होते हैं। गुरू कृपा से बंधन ही मोक्ष रूप हो जाता है, जीव भाव ही आत्म भाव बन जाता है। देव साधना से देवभाव आ सकता है पर आत्मभाव तो गुरू कृपा से ही प्राप्त होता है। शास्त्रों एवं ग्रंथों का आधार बनाकर साधना करने वाला साधक सौ जन्म भी आत्मभाव को उपलब्ध नहीं कर सकता, जबकि गुरू–कृपा से यह महत उपलब्धि कुछ क्षणों में ही संभव हो जाती है। गुरू कृपा बिना परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती। गुरू पवित्र आत्मा वाला होता है। गुरू शिष्य के भीतर छिपी सदिच्छा को जागृत करता है और वह सदिच्छा स्वतः एक प्रभावशाली रूप धारण करके शिष्य को एक नये लोक में ले जाती है।

गुरू और शिष्य के बीच लेन–देन भी होता है। शिष्य गुरू को अपनी आत्मा भेंट करता है और गुरू शिष्य के कल्याण की जिम्मेदारी लेता है। इन दोनों स्थितियों में संतुलन होना चाहिए। दोनों का व्यवहार सत्य होना चाहिए। गुरू देता है, लुटाता है और शिष्य लेता है और आह्लादित होता है। जैसी निष्ठा पतिव्रता स्त्री में अपने पति के प्रति होती है और वह उसे परमेश्वरतुल्य मानती है ऐसा ही गुरू भाव शिष्य के मन में होना चाहिए। संसार में कई तरह के गुरू होते हैं जिनसे शिष्य कुछ सीखता है। अर्थात् जो सिखाता है, वह गुरू है और वह सिखाता तभी है जब उसके प्रति गुरूभाव हो। संतों की शक्ति उनके गुरू हैं। गुरू कृपा से ही उन्हें आत्मानुभव एवं ईश्वर की प्राप्ति होती है। गुरू शिष्य में गुरू दक्षिणा एवं गुरू दीक्षा इस प्रकार का लेन–देन होता है। शिष्य के लिए पूर्ण श्रद्धालु दृढ़ विश्वासी, समर्पित भाव वाला, गुरू से कुछ न छिपाने वाला और आज्ञाकारी होना आवश्यक है। इन गुणों से समन्वित शिष्य ही दीक्षा का असली पात्र होता है। गुरू निःस्वार्थ भाव से शिष्य का पथ–निर्देशित करने वाला होना चाहिए। गुरू के बारे में कहा गया है –

गुरू सम दाता नहीं, भरम मिटावन हार।
बांह पकड़कर तार दे, भवसागर के पार।।[5]

गुरू देता है और शिष्य लेता है। इस लेने के लिए हर कोई शिष्य बनने को तैयार है, लेकिन गुरू शिष्य की पात्रता को देखता है और उसके कुछ देने के लिए मानस बनाता है। अतः शिष्य की पात्रता गुरू की दृष्टि में एक विचारणीय प्रश्न है। शिष्य की पांच श्रेणियां मानी गई हैं – 1. जिज्ञासु, 2. प्रेमी, 3. साधक, 4. भक्त और 5. शिष्य।

जो उत्सुकतावश सन्यासी के पास आते हैं और यह देखते हैं कि सन्यासी कैसा है तथा उसका आश्रम कैसा है ? ऐसे लोग जिज्ञसु कहलाते हैं। बार–बार साधु के दर्शन करने से ऐसे लोगों का संकोच दूर हो जाता है। वे कई बार साधु से ऐसी बातें भी पूछने लगते हैं जिनका सम्बन्ध साधना से होता है। साधु का साहचर्य उसे उत्प्रेरणा एवं प्रफल्लता प्रदान करता है जो इस बात का परिचायक है कि उसके मन में साधु के प्रति प्रेम का बीजांकुरण हो गया है। वह प्रेमी शिष्य कहलाता है। साधक इस श्रेणी में शिष्य साधु द्वारा सुनी हुई बातों को जीवन में उतारने के लिए किसी साधना प्रणाली की ओर उन्मुख होने लगता है। आसन, प्राणायाम एवं हठयोग की क्रियाओं को समझकर उन्हें धीरे–धीरे जीवन में अपनाने लगता है और इस तरह साधना मार्ग पर अग्रसर होने का क्रम शुरू होता है। भक्त शिष्य की वह श्रेणी है जब साधक को गुरू की पहचान हो जाती है, सभी शंकाओं का स्वतः निवारण हो जाता है और जीवन में स्थिरता आ जाती है। यह साधनावस्था गुरू के प्रति पूर्ण समर्पण भाव की होती है। भक्त के ह्रदय में गुरू के प्रति श्रद्धाभाव जगता है। साधना में ठोस सफलताएं प्राप्त होती हैं। उसे आत्मानुभव की प्रतीती होने लगती है और उसका अहं (मैं) विसर्जित हो जाता है। उसे सर्वत्र 'तू ही तू' (परमात्मा) दिखाई देने लगता है। इस स्थिति में फिर भी गुरू और भक्त के बीच थोड़ा फासला रहता है। वे एकाकार नहीं होते। शिष्य साधना मार्ग की अंतिम अवस्था है। इसमें ऐसा अनुभव होने लगता है –

गुरू मूरत मुख चन्द्रमा, शिष्य नयन चकोर।
अष्ट पोर निरखत रहूं, गुरू चरनन की ओर।।[6]

यहाँ गुरू और शिष्य का द्वैत समाप्त हो जाता है। शिष्य को लगता है कि मंजिल आ चुकी है, उसका 'आपा' मिट जाता हैं, अहंकार विगलित हो जाता है और साधना में यही स्थिति तादात्म्य भाव की है। इस स्थिति में आराधक और आराध्य, यात्री और मंजिल तथा भक्त और ईश्वर एकाकार हो जाते हैं। भिन्नता मिट जाती है। गुरू शिष्य और शिष्य गुरू हो जाता है। इस प्रकार गुरू शिष्य का सम्बन्ध पवित्रम सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध लोकोत्तर है।[7] यह सम्बन्ध जीवन पर्यन्त का सम्बन्ध है। गुरू–शिष्य के सम्बन्धों में भी सभी लौकिक सम्बन्ध एक साथ समाविष्ट है। अतः अलौकिक सम्बन्ध है।

निष्कर्ष

श्रद्धानाथ जी की दृष्टि में गुरु कोई बाहरी व्यक्ति मात्र न होकर आंतरिक प्रकाश का स्रोत एवं 'सहज' अवस्था का द्वार है। वे गुरु को 'सत' का प्रतीक मानते हैं। शिष्य के लिए पूर्ण समर्पण, सेवा–भाव एवं गुरु वचन में अटल विश्वास को सर्वोच्च गुण बताया गया है। उनके विचारों में यह सम्बन्ध एक दिव्य यात्रा है, जहाँ गुरु मार्गदर्शक है और शिष्य पथिक। इसकी भाषा अत्यंत सरल, प्रतीकात्मक एवं शेखावाटी बोली से युक्त है, जो जटिल साधना को लोकजन के लिए बोधगम्य बनाती है। सहज संत श्री श्रद्धानाथ जी के विचार शेखावाटी नाथ साहित्य की एक अनमोल धरोहर हैं, जिनमें गुरु–शिष्य सम्बन्ध की गहन अध्यात्मिक अवधारणा को लोकजीवन के निकट लाने का सफल प्रयास दृष्टिगोचर होता है।[8] श्रद्धानाथ जी के विचारों में गुरु का स्थान ईश्वर से भी ऊँचा है। गुरु ही अज्ञान के अंधकार को दूर करने वाला 'दीपक' एवं संसार सागर से पार उतारने वाला है। वे गुरु को 'सहज' की अनुभूति कराने वाला एकमात्र साधन मानते हैं। उनकी दृष्टि में शिष्य में छल–कपट रहित सरलता, निश्छल समर्पण एवं अंधानुकरण न करने वाली बुद्धिमत्ता का समन्वय होना चाहिए। शिष्य का कर्तव्य है गुरु–आज्ञा को शिरोधार्य करना, गुरु–सेवा को ही सर्वोत्तम साधना मानना और गुरु द्वारा दिखाए गए मार्ग पर अडिग रहना। आध्यात्मिक सहयात्राः यह सम्बन्ध स्वामी–दास भाव का न होकर एक परम सत्य की खोज में साथ चलने वाले दो पथिकों का है, जहाँ एक (गुरु) मार्ग जानता है और दूसरा (शिष्य) उस पर चलने का प्रयास करता है। इसमें प्रेम, विश्वास और ज्ञान का त्रिवेणी संगम है। सहज अवस्था' की प्राप्तिः इस सम्पूर्ण गुरु–शिष्य सम्बन्ध का अंतिम लक्ष्य नाथ परम्परा की परम उपलब्धि 'सहज समाधि' अर्थात् सहज भाव में निरंतर स्थित रहना है। गुरु शिष्य को इसी अवस्था में स्थापित करने का माध्यम है। श्रद्धानाथ जी ने इस गूढ़ विषय को स्थानीय बोली, लोकप्रचलित उपमाओं एवं सरल पदों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। यह शेखावाटी क्षेत्र में दार्शनिक विचारों का लोकव्यापीकरण है। यह अध्ययन न केवल नाथ दर्शन के एक पक्ष को उजागर करता है, बल्कि शेखावाटी की सांस्कृतिक–धार्मिक पहचान को सुदृढ़ करता है। आज के समय में, जब गुरु–शिष्य की पारम्परिक संकल्पना कहीं आडम्बर तो कहीं संशय के घेरे में है, श्रद्धानाथ जी का सहज, निःस्वार्थ एवं ज्ञानकेंद्रित दृष्टिकोण इस सम्बन्ध की मूल

भावना को पुनर्स्थापित करने में सहायक हो सकता है। शेखावाटी नाथ साहित्य के इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि स्थानीय संतों ने सार्वभौमिक सत्यों को किस सहजता से क्षेत्रीय रंग में रंगकर जन–जन तक पहुँचाया। इस विषय पर और अधिक गहन शोध की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रन्थ :–

1. महाराज श्री बैजनाथ जी पीठाधीश्वरकृत सहजयोगी संत श्री श्रद्धानाथ जी महाराज साधना और विचार, प्रकाशक, श्री नाथ जी महाराज का आश्रम (ट्रस्ट) लक्ष्मणगढ़ (सीकर), संस्करण–प्रथम, वर्ष–1996, पृष्ठ–16
2. वही, पृष्ठ–17
3. वही, पृष्ठ–18
4. वही, पृष्ठ–18
5. वही, पृष्ठ–24
6. वही, पृष्ठ–27
7. पीठाधीश्वर श्री बैजनाथ जी महाराजकृत जीवनी सहजयोगी संत श्री श्रद्धानाथ जी महाराज, प्रकाशक, श्री नाथ जी महाराज का आश्रम (ट्रस्ट) लक्ष्मणगढ़ (सीकर), संस्करण–तृतीय, वर्ष–2016, पृष्ठ–
8. पत्रिका, राजस्थान भारती, राजस्थान साहित्य अकादमी, वर्ष–2015, अंक–42

kirankumarimeenas@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 49-53
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Innovation for higher education

Dr. Sanjeev Vijay
Associate Professor,
Education Department, Jagannath University, Jaipur
Prof. (Dr.) Ankush Sharma
Head,
Education Department, Jagannath University, Jaipur

Abstract

Curriculum innovation is essential for adapting education systems to meet contemporary needs. Curriculum innovation has become a central focus in higher education to ensure learning remains relevant, flexible, and aligned with evolving societal and industry needs. This paper explores three significant innovations—gamification, micro-credentials, and project-based learning. This paper explores the concept and significance of curriculum innovation, reviews existing literature, highlights major research insights, discusses key challenges and strategies, and suggests future directions. By integrating these methodologies, educational institutions can enhance student engagement, personalize learning experiences, and improve outcomes.

Keywords: Curriculum Innovation, Higher Education, Gamification, Micro-Credentials, Project-Based Learning, Student Engagement.

Introduction

In the rapidly changing landscape of education, traditional teaching methods are increasingly being supplemented, or replaced, by innovative approaches that foster deeper learning and skill acquisition. Gamification, micro-credentials, and project-based learning are pivotal in reshaping curriculum design and teaching methodologies.

In the 21st century, rapid technological change and globalization are reshaping how knowledge is created, shared, and applied. Higher education institutions (HEIs) are therefore under pressure to rethink traditional curricula that may no longer fit current or future needs. *Curriculum innovation* refers to intentional changes made to the structure, content, pedagogy, and assessment of academic programs to promote deeper learning and better prepare students for complex challenges.

This paper aims to analyze key trends and research in curriculum innovation and understand how HEIs can build more responsive and meaningful learning experiences.

Review of Literature

1. **Gamification**:
   - **Definition**: Gamification involves applying game-design elements in non-game contexts to enhance user engagement and motivation (Deterding et al., 2011).
   - **Applications**: Studies suggest that gamification can improve motivation and engagement (Hamari, Koivisto, & Sarsa, 2014). For example, platforms like Kahoot! and Duolingo utilize gamified elements to make learning enjoyable.
2. **Micro-Credentials**:
   - **Definition**: Micro-credentials are short, focused credentials that demonstrate specific skills and competencies (Rogers, 2016).
   - **Impact**: Research indicates that micro-credentials can provide flexible and personalized learning pathways, enabling students to acquire targeted skills (Perrin, 2019). They are increasingly being integrated into professional development programs.
3. **Project-Based Learning (PBL)**:
   - **Definition**: PBL is an instructional methodology that encourages students to learn and apply knowledge through engaging in real-world projects (Thomas, 2000).
   - **Benefits**: Studies show that PBL improves critical thinking, collaboration, and problem-solving skills (Bell, 2010). Programs like High Tech High exemplify the successful implementation of PBL in various subjects.
4. **Defining Curriculum Innovation**

   Curriculum innovation involves revising learning goals, content organization, teaching methods, and evaluation techniques to align with stakeholder expectations, technological advancements, and global trends (Smith & Jones, 2019). It may involve interdisciplinary programs, experiential learning, flexible pathways, and industry partnerships.
5. **Drivers of Innovation**

   Several factors encourage curriculum change:
   - **Technological Advancements:** Integration of digital tools, online learning, AI support systems (Brown, 2021).
   - **Workforce Needs:** Skills such as critical thinking, creativity, and collaboration are increasingly valued (Lee & Kim, 2020).
   - **Student Diversity and Expectations:** Greater demand for personalized and inclusive learning experiences.
   - **Globalization:** Need for globally aware graduates capable of cross-cultural communication.
6. **Models of Curriculum Innovation**

   Researchers have proposed various models. For example:
   - **Collaborative Model:** Involves faculty, students, employers, and community stakeholders in decision-making.
   - **Outcome-Based Model:** Focuses on defining desired competencies first, then designing curriculum to achieve them.
   - **Technology-Enhanced Model:** Incorporates digital resources and blended learning strategies (Zhao, 2022).

7. **Barriers to Innovation**

Existing literature notes challenges such as faculty resistance, limited institutional support, inadequate training, rigid accreditation requirements, and resource constraints (Patel, 2018).

Conceptual Illustration of Learning Outcomes

The data from numerous studies the following general trend:

Learning Approach	Student Engagement (Relative)	Skills Acquisition (Relative)	Supporting Research Findings
Traditional Lecture-Based	Low to Moderate	Moderate	Provides baseline for comparison.
Project-Based Learning (PBL)	Moderate to High	High (especially 21st-century skills)	Improves problem-solving, teamwork, and communication skills.
Gamification/Micro-credentials	High (especially motivation)	Moderate to High	Enhances motivation, participation, and intrinsic interest; provides verifiable proof of skills.
Integrated Approach (All three)	Very High	Very High	Combining methods amplifies benefits, creating highly motivated, skilled, and engaged learners.

Summary of Key Research Insights

- **Gamification** (using points, badges, and leaderboards) significantly boosts students' motivation and active participation in learning activities, improving the learning experience.
- **Micro-credentials** (digital badges) offer verifiable proof of skill acquisition, enhancing students' extrinsic motivation and providing employers with trusted records of achievement.
- **Project-Based Learning** (PBL) engages students in real-world, meaningful tasks, leading to improved critical thinking, collaboration, and practical problem-solving skills, preparing them for the workforce.

In essence, the data supports a visual representation where the combined implementation of these strategies yields the most significant increase in both engagement and practical skill development.

From the reviewed studies, several themes emerge:

1. **Alignment with Future Skills**
   Curricula that emphasize skills like problem-solving and digital literacy lead to better graduate outcomes.
2. **Stakeholder Engagement Matters**
   Innovations are more successful when all stakeholders—faculty, students, employers—collaborate in design and review.
3. **Flexible Structures Improve Learning**
   Modular and competency-based pathways help cater to diverse student goals and learning styles.
4. **Technology Alone Doesn't Equal Innovation**
   Digital tools help, but meaningful innovation requires pedagogical change, not simply digitizing old content.
5. **Professional Development for Educators Is Essential**
   Faculty must be supported through training and incentives to adapt to new curriculum approaches.

Discussion

The integration of gamification, micro-credentials, and project-based learning into curricula presents a comprehensive approach to modern education. Each method complements the others: gamification can motivate students, micro-credentials offer tailored learning paths, and project-based learning fosters practical skills.

Curriculum innovation is not a one-time task but an ongoing process requiring vision, resources, and commitment. HEIs that cultivate a culture of experimentation and continuous improvement tend to lead in producing impactful learning experiences. However, the pace of innovation is uneven across institutions due to organizational and structural barriers.

Across the literature, a consensus forms that innovation is most effective when it:

- Is aligned with institutional mission and global trends.
- Encourages reflective teaching practices.
- Builds bridges between academic learning and real-world applications.
- Uses assessment not just for grading but for learning enhancement.

At the same time, innovation must be carefully evaluated to avoid superficial changes that do not contribute to deeper learning.

Conclusion

Curriculum innovation is crucial for engaging students and equipping them with necessary skills in a rapidly changing world. Educational stakeholders should prioritize integrating gamification, micro-credentials, and project-based learning to create a more dynamic, personalized, and effective educational experience.

Curriculum innovation in higher education is vital for preparing students for the challenges of the modern world. Research shows that thoughtfully designed, flexible, and stakeholder-engaged curriculum changes lead to better academic and professional outcomes. Although challenges such as resistance and resource limits exist, institutions that prioritize continuous innovation and strengthen support for faculty and learners can create more meaningful and equitable educational environments.

References

1. Bell, S. (2010). Project-Based Learning for the 21st Century: Skills for the Future. *The Clearing House, 83*(2), 39-43.

2. Deterding, S., Dixon, D., Khaled, R., & Nacke, L. (2011). From game design elements to gamefulness: defining" gamification". In *Proceedings of the 15th international academic MindTrek conference: Envisioning future media environments* (pp. 9-15).
3. Hamari, J., Koivisto, J., & Sarsa, H. (2014). Does gamification work?–A literature review of empirical studies on gamification. In *2014 47th Hawaii international conference on system sciences* (pp. 3025-3034). Ieee.
4. Rogers, S. (2016). Why micro-credentials are the future of education. *Education Technology*.
5. Perrin, K. (2019). The role of micro-credentials in an evolving workforce. *Education Week*.
6. Thomas, J. W. (2000). A review of research on project-based learning. *The Autodesk Foundation*.
7. Patel, R. (2018). *Barriers to curriculum change in universities.* Higher Education Review.
8. Smith, J., & Jones, T. (2019). *Curriculum development and innovation.* Academic Press.
9. Lee, S., & Kim, H. (2020). *Workforce readiness and curriculum design.* International Journal of Curriculum Studies.
10. Brown, A. (2021). *Digital transformation in higher education curriculum.* Journal of Educational Technology.
11. Zhao, Y. (2022). *Models of curriculum innovation: Theory and practice.* Educational Research Quarterly.

9887886441
sanjeev.vijay@jagannathuniversity.org
9509250803
ankush.sharma@jagannathuniversity.org

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 54-57
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

गाँव भीतर गाँव' उपन्यास में जातिगत वर्चस्व और प्रतिरोध: एक विश्लेषण

अमृता के ,
शोधार्थी ,
हिंदी विभाग, कार्यवट्टम कैंपस , केरल विश्वविद्यालय

संकेतशब्द:जाति, वर्चस्व, प्रतिरोध, दलित चेतना, ग्रामीण समाज, सत्ता-संरचना, लैंगिक हिंसा, श्रम-विभाजन, सामाजिक बहिष्कार, शिक्षा और मुक्ति

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में जाति केवल एक सामाजिक पृष्ठभूमि नहीं रह जाती, बल्कि वह एक ऐसी सक्रिय संरचना के रूप में उपस्थित होती है जो जीवन, श्रम, आचरण, संबंध, भाषा और देह—सब पर नियंत्रण स्थापित करती है। गाँव भीतर गाँव इसी संरचनात्मक जातिगत सत्ता को ग्रामीण समाज की आंतरिक परतों में उजागर करने वाला एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। सत्यनारायण पटेल का यह उपन्यास गाँव को किसी भौगोलिक इकाई के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसे सामाजिक तंत्र के रूप में प्रस्तुत करता है जहाँ जाति एक अलिखित क़ानून की तरह कार्य करती है—जो दिखाई नहीं देती, पर हर क्षण लागू रहती है।

उपन्यास का गाँव इक्कीसवीं सदी के मुहाने पर खड़ा अवश्य है, पर उसकी सामाजिक चेतना अब भी मध्यकालीन पदानुक्रम में जकड़ी हुई है। मनरेगा, शौचालय निर्माण, एनजीओ, पंचायत और लोकतांत्रिक संस्थाओं की मौजूदगी के बावजूद जाति का वर्चस्व समाप्त नहीं होता; बल्कि वह नए रूपों में स्वयं को सुरक्षित कर लेता है। दलित समुदाय का जीवन इस व्यवस्था में श्रम की अनिवार्यता और गरिमा के निषेध के बीच फँसा हुआ दिखाई देता है। उनका श्रम गाँव की अर्थव्यवस्था का आधार है, पर वही श्रम उन्हें सामाजिक रूप से "अशुद्ध" ठहराने का माध्यम भी बनता है। इस द्वंद्व को उपन्यास अत्यंत मार्मिक प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है—जैसे खाद की बोरियों से भरी ट्रॉली, जिसमें बैठे हम्मालों को लेखक "जीती-जागती आम-अवाम" के रूप में रूपांकित करता है। लेखक लिखता है कि "बोरियाँ भी मानो बोरियाँ नहीं, बल्कि जीती-जागती आम-अवाम हों, जिसे व्यवस्था की काली नीतियों की रस्सियों से बाँध, ट्रॉली में भर, किसी अँधी, गहरी विकास की खाई में डालने ले जाया जा रहा हो, और रस्सियों से बँधी बोरियाँ भीतर ही भीतर कसमसातीं, छटपटातीं"[1]।

जातिगत वर्चस्व का सबसे सघन रूप सामाजिक प्रतिबंधों में दिखाई देता है, जहाँ दलितों की उपस्थिति गाँव के जीवन में केवल उपयोगिता तक सीमित कर दी जाती है। वे गाँव में रहते हैं, पर गाँव के नहीं माने जाते। उनके लिए

सामाजिक सहभागिता सदैव सशर्त है—हाथ बढ़ाना अधिकार का संकेत नहीं, बल्कि दया की माँग मान लिया जाता है। रामरति जैसी स्त्री का जीवन इस सच्चाई का जीवित दस्तावेज़ है। मैला ढोने की प्रथा केवल एक पेशागत विवशता नहीं, बल्कि एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जो दलित शरीर को गंदगी के साथ स्थायी रूप से जोड़ देती है। रामरति का साग-रोटी लेने के लिए हाथ बढ़ाना और सवर्ण स्त्रियों द्वारा उसका डाँटना या झिड़क देना इस बात को स्पष्ट करता है कि जातिगत वर्चस्व आत्मसम्मान को कुचलने का सुनियोजित उपकरण है।

धार्मिक जीवन भी इस वर्चस्व से मुक्त नहीं है। मंदिर, भजन मंडली और धार्मिक अनुष्ठान गाँव में आध्यात्मिक समानता के स्थल नहीं, बल्कि सामाजिक विभाजन के औज़ार बन जाते हैं। कैलास का भजन गाने की इच्छा और नगजी बा के गले से प्रभावित होकर उसे अपना गुरु मान लेना एक गहरी मानवीय आकांक्षा को व्यक्त करता है—पर वही आकांक्षा जाति की दीवार से टकराकर टूट जाती है। कैलास का मंदिर के भीतर बैठकर भजन सुनने का अधिकार न होना, और बाहर बैठने को "उदारता" के रूप में प्रस्तुत किया जाना, धार्मिक वर्चस्व की पाखंडपूर्ण नैतिकता को उजागर करता है। लेखक का व्यंग्य यहाँ अत्यंत तीखा है, वे लिखता है — "गाँव भले ही इक्कीसवीं सदी के मुहाने पर खड़ा था… कैलास जाति से बलाई था। मंडली के साथ गा नहीं सकता। मंडली के साथ मंदिर में बैठ सुन नहीं सकता… गाँव में श्रीराम मंदिर था, पर श्रीराम जैसा कोई न था।"[2] यह दिखाता है कि धार्मिक व्यवस्था समानता का दावा करती है, लेकिन व्यवहार में जातिगत भेदभाव को बनाए रखती है।

शिक्षा, जिसे आधुनिक समाज में मुक्ति का मार्ग माना जाता है, उपन्यास में दलितों के लिए एक और दमनकारी क्षेत्र के रूप में उभरती है। दलित बच्चों का स्कूल जाना, पढ़ना और प्रश्न करना—यह सब सवर्ण सत्ता को असहज करता है। राधली पर दुबे मास्टर द्वारा की गई हिंसा केवल शारीरिक दंड नहीं, बल्कि जातिगत अनुशासन की सार्वजनिक स्थापना है। राधली कहती है, "जब मैंने कहा कि ये काम चपरासी वर्मा का है… मैं नहीं करूंगी… तो दुबे सर बोले कि स्कूल से नाम काट दूँगा… फिर मुझे धूप में खड़ा कर दिया।"[3] । इस तरह सफाई कार्य से इंकार करने पर कोड़े मारना और धमकी देना इस बात को स्पष्ट करता है कि शिक्षा का संस्थान भी जातिगत श्रम-विभाजन को बनाए रखने का औज़ार बन सकता है। दलित बच्ची की सलवार को घुटनों तक खींचवाना केवल हिंसा नहीं, बल्कि लैंगिक अपमान भी है, जो यह दर्शाता है कि जाति और पितृसत्ता मिलकर किस तरह दलित स्त्री देह को नियंत्रित करते हैं। इस प्रकार शिक्षा, जो सामाजिक गतिशीलता का माध्यम होनी चाहिए, यहाँ पीढ़ीगत पिछड़ेपन को बनाए रखने की रणनीति बन जाती है।

राजनीतिक स्तर पर भी जातिगत वर्चस्व उतना ही संगठित और योजनाबद्ध है। पंचायत, प्रशासन और एनजीओ—ये सभी संस्थाएँ लोकतांत्रिक दिखते हुए भी स्थानीय प्रभुत्वशाली जातियों के हित में काम करती हैं। जाम सिंह जैसे पात्र सत्ता के इस संकेन्द्रण का प्रतिनिधित्व करते हैं, जहाँ आर्थिक ताकत, सामाजिक प्रभुत्व और राजनीतिक पहुँच एक-दूसरे में घुल-मिल जाती हैं। एनजीओ और फंडिंग एजेंसियों का विवरण उपन्यास में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह दिखाता है कि कैसे प्रतिरोध के मुद्दे भी बाज़ार और परियोजनाओं में बदल दिए जाते हैं। रफीक भाई का चरित्र इसी द्वंद्व का प्रतीक है—वह मैला ढोने की कुप्रथा के खिलाफ चेतना फैलाता है, पर साथ ही उस पूरी प्रणाली का हिस्सा भी बन जाता है जो समस्याओं को "जीवित" रखकर फंडिंग सुनिश्चित करती है। यहाँ राजनीतिक दबाव केवल दमन के रूप में नहीं, बल्कि भ्रम और प्रबंधन के रूप में कार्य करता है।

इस प्रकार, गाँव भीतर गाँव जातिगत वर्चस्व को किसी एक क्षेत्र तक सीमित नहीं करता, बल्कि उसे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, शैक्षिक, राजनीतिक और लैंगिक सभी स्तरों पर एक साथ सक्रिय दिखाता है। यह वर्चस्व स्थिर नहीं, बल्कि अनुकूलनशील है—वह समय के साथ अपने औज़ार बदलता है, पर अपना उद्देश्य नहीं। गाँव की जातिगत संरचना

केवल सामाजिक पदानुक्रम तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह व्यक्ति के शरीर, श्रम, भाषा और भावनात्मक संसार तक फैल जाती है। दलित समुदाय के लिए श्रम केवल जीविका का साधन नहीं, बल्कि वर्चस्व की पुनरावृत्ति का माध्यम बन जाता है। खेत, खलिहान, निर्माण कार्य, सफ़ाई—ये सभी स्थल जाति की सत्ता को रोज़मर्रा में क्रियाशील करते हैं। श्रम का विभाजन जातिगत आधार पर इस तरह निर्धारित है कि दलित श्रम 'अनिवार्य' और 'अदृश्य' बना रहता है, जबकि उसका फल उच्च जातियों के सामाजिक और आर्थिक प्रभुत्व को मज़बूत करता है। डॉ. आंबेडकर ने ठीक यही बात Annihilation of Caste में कही है कि "The Caste System is not merely a division of labour. It is also a division of labourers. Civilised society undoubtedly needs division of labour. But in no civilised society is division of labour accompanied by this unnatural division of labourers into watertight compartments."[4] इस व्यवस्था में दलित श्रमिक की मेहनत को सम्मान नहीं, बल्कि 'कर्तव्य' के रूप में देखा जाता है—एक ऐसा कर्तव्य जिसे निभाने के बाद भी वह बराबरी का अधिकारी नहीं बन पाता।

जातिगत वर्चस्व का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष भाषा और संबोधन में भी दिखाई देता है। गाँव के सामाजिक संवाद में दलितों के लिए प्रयुक्त शब्द, लहजा और आदेशात्मक शैली सत्ता-संबंधों को स्पष्ट करती है। यहाँ भाषा केवल संवाद का माध्यम नहीं, बल्कि नियंत्रण का उपकरण बन जाती है। दलित पात्रों को नाम से नहीं, बल्कि जातिसूचक या अपमानजनक संबोधनों से पुकारा जाना उनके व्यक्तित्व के निषेध का संकेत है। यह भाषिक हिंसा शारीरिक हिंसा से कम प्रभावी नहीं होती, क्योंकि यह आत्मसम्मान और आत्मबोध दोनों को चोट पहुँचाती है।

धार्मिक आस्था और परंपरा भी इस जातिगत सत्ता को वैधता प्रदान करती हैं। मंदिर, पूजा-पाठ और धार्मिक अनुष्ठान समानता के प्रतीक नहीं, बल्कि बहिष्कार के औज़ार बन जाते हैं। धार्मिक स्थल दलितों के लिए या तो प्रतिबंधित होते हैं या सीमित शर्तों के साथ खुले होते हैं। धर्म यहाँ नैतिकता की नहीं, बल्कि सत्ता की भाषा बोलता है। धार्मिक कर्मकांडों के माध्यम से यह स्थापित किया जाता है कि सामाजिक असमानता 'दैवीय व्यवस्था' का हिस्सा है, जिससे विद्रोह करना पाप के समान है। इस तरह जातिगत वर्चस्व केवल सामाजिक नियम नहीं, बल्कि आध्यात्मिक अनुशासन का रूप ले लेता है।

इस दमनकारी संरचना में दलित स्त्री की स्थिति सबसे अधिक जटिल और पीड़ादायक बन जाती है। वह एक साथ जाति और लिंग—दोनों के वर्चस्व का सामना करती है। उसका शरीर सामंती और जातिगत सत्ता के लिए सबसे आसान निशाना बनता है। यौन हिंसा, घरेलू शोषण और सामाजिक अपमान उसके जीवन के सामान्य अनुभव बन जाते हैं। दलित स्त्री के साथ होने वाली हिंसा को अक्सर 'व्यक्तिगत घटना' कहकर टाल दिया जाता है, जबकि वास्तव में वह सत्ता के प्रदर्शन का सार्वजनिक संदेश होती है।

इसके बावजूद, दलित जीवन केवल पीड़ा का आख्यान नहीं है।लेखक लिखता है, "एक नन्हीं लौ यूँ फरफराने लगी… फिर टोपले, झाडू, खपच्ची और सूखी घास की लौ एक-दूसरे से लिपट ऐसी एकमेक हुई… देखते ही देखते लौ लपटों में बदली।"[5] ।जैसी कि प्रतिरोध छोटे स्तर से शुरू होकर सामूहिक चेतना में बदल जाता है।इसी संरचना के भीतर प्रतिरोध की चेतना भी जन्म लेती है। यह प्रतिरोध हमेशा संगठित आंदोलन के रूप में नहीं, बल्कि छोटे-छोटे दैनिक निर्णयों, असहमति और चुप्पी को तोड़ने के प्रयासों में दिखाई देता है। श्रम से इंकार, अपमानजनक आदेश का प्रतिवाद, शिक्षा की आकांक्षा और अपनी कथा स्वयं कहने की इच्छा—ये सभी प्रतिरोध के सूक्ष्म रूप हैं। शरणकुमार लिंबाले ने ठीक यही बात Towards an Aesthetics of Dalit Literature में कही है कि "Dalit literature is writing

about Dalits by Dalit writers with a Dalit consciousness. The form of Dalit literature is inherent in its Dalitness, and its purpose is to inform Dalit consciousness."[6]। उपन्यास में दलित पात्रों की ये छोटी-छोटी असहमतियाँ इसी चेतना को जागृत करने का काम करती हैं। ये क्रियाएँ भले ही सत्ता को तुरंत न बदलें, लेकिन वे उसकी नैतिक वैधता को चुनौती अवश्य देती हैं।

शिक्षा इस प्रतिरोध का एक केंद्रीय माध्यम बनकर उभरती है। दलित पात्रों के लिए शिक्षा केवल ज्ञान प्राप्ति नहीं, बल्कि सामाजिक गतिशीलता और आत्मसम्मान का साधन है। शिक्षा के माध्यम से वे जातिगत नियति को प्रश्नांकित करते हैं। हालाँकि यह मार्ग भी संघर्षों से भरा है—भेदभाव, आर्थिक अभाव और सामाजिक बहिष्कार इसके साथ जुड़े रहते हैं—फिर भी शिक्षा सत्ता के एकाधिकार को तोड़ने की संभावना प्रस्तुत करती है। यह संभावना ही वर्चस्व को सबसे अधिक असहज करती है।

इस पूरे परिदृश्य में गाँव एक स्थिर इकाई नहीं, बल्कि संघर्षशील संरचना के रूप में सामने आता है। यह ऐसा स्थान है जहाँ सत्ता और प्रतिरोध निरंतर टकराते रहते हैं। जाति यहाँ केवल परंपरा नहीं, बल्कि रोज़-रोज पुनर्निर्मित की जाने वाली सत्ता है, और दलित प्रतिरोध इस पुनर्निर्माण को बाधित करने की प्रक्रिया है। अत :जातिगत वर्चस्व को समझने के लिए उसे केवल उत्पीड़न की श्रेणी में नहीं, बल्कि एक सक्रिय सत्ता-तंत्र के रूप में देखना आवश्यक है। इसी तरह दलित प्रतिरोध को केवल प्रतिक्रिया नहीं, बल्कि एक वैकल्पिक सामाजिक दृष्टि के रूप में पढ़ा जाना चाहिए—जो समानता, गरिमा और न्याय की संभावना को जीवित रखती है।

संदर्भ सूची

1. पटेल, सत्यनारायण। गाँव भीतर गाँव। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2016, पृ. 9।
2. वही, पृ. 10।
3. वही, पृ. 115।
4. आंबेडकर, भीमराव। Annihilation of Caste। नई दिल्ली: नवयाना, 2014, पृ. 33।
5. पटेल, सत्यनारायण। गाँव भीतर गाँव। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2016, पृ. 59।
6. लिंबाले, शरणकुमार। Towards an Aesthetics of Dalit Literature। नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान, 2004, पृ. 19।

ग्रंथसूची:

1. पटेल, सत्यनारायण। *गाँव भीतर गाँव*। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2016।
2. आंबेडकर, भीमराव रामजी। *Annihilation of Caste*। नई दिल्ली: नवयाना, 2014।
3. लिंबाले, शरणकुमार। *Towards an Aesthetics of Dalit Literature: History, Controversies and Considerations*। अनुवाद: आलोक मुखर्जी। नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान, 2004।
4. Gramsci, Antonio. *Selections from the Prison Notebooks*. New York: International Publishers, 1971.
5. Ilaiah Shepherd, Kancha. *Why I Am Not a Hindu: A Sudra Critique of Hindutva Philosophy, Culture and Political Economy*. Kolkata: Samya, 2009.

Postal address; VNRA 341, Lali bhavan, Vikas Nagar, Venchavode, Sreekaryam, Trivandrum.
Pin code: 695017**, Mobile number**: 9645437998

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 58-62
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

रांची जिला में महिला शिक्षा की स्थिति: समानता और लैंगिक न्याय के परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन

अफसाना परवीन
सहायक प्राध्यापिका,
फातमा टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज दुबलिया, चंदवे, राँची (झारखण्ड)

सारांश (Abstract):

भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में शिक्षा सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक प्रगति और लोकतांत्रिक सुदृढ़ता का मुख्य स्तंभ है। विशेष रूप से, महिला शिक्षा को सामाजिक समानता और सशक्तिकरण का सबसे प्रभावी साधन माना गया है। प्रस्तुत अध्ययन झारखंड के रांची जिले में महिला शिक्षा की वर्तमान स्थिति का व्यापक विश्लेषण करता है। यह शोध प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर छात्राओं के नामांकन, नियमित उपस्थिति, शैक्षणिक उपलब्धि और विद्यालयी सुविधाओं का गहन परीक्षण करता है।

अध्ययन के निष्कर्ष दर्शाते हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय सुधार के बावजूद लैंगिक असमानता, सामाजिक रूढ़िवादिता और बुनियादी ढांचे की कमी आज भी बड़े अवरोध हैं। यह अनुसंधान गुणात्मक और मात्रात्मक पद्धतियों का उपयोग करते हुए यह जांचता है कि विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक कारक महिलाओं के शैक्षिक अवसरों को कैसे प्रभावित करते हैं। सर्वेक्षण और साक्षात्कारों के माध्यम से यह शोध रांची जिले में महिला शिक्षा की वास्तविक स्थिति का एक समग्र और प्रमाणिक चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास करता है।

मुख्य शब्द: महिला शिक्षा, लैंगिक समानता, लैंगिक न्याय, रांची जिला, शैक्षिक विकास

प्रस्तावना (Introduction):

शिक्षा मानव विकास और सामाजिक सशक्तिकरण का सबसे प्रभावी उपकरण है। एक शिक्षित महिला न केवल स्वयं आत्मनिर्भर बनती है, बल्कि स्वास्थ्य, जनसंख्या नियंत्रण और आर्थिक उन्नति के माध्यम से अपने पूरे समुदाय के जीवन स्तर को उन्नत करती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 15 और 21A सभी को शिक्षा और समानता का मौलिक अधिकार देते हैं। सरकार द्वारा 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' जैसे अभियान चलाए जाने के बावजूद, व्यावहारिक रूप से महिलाएँ आज भी सामाजिक रूढ़ियों, गरीबी और लैंगिक भेदभाव जैसी चुनौतियों से जूझ रही हैं।

झारखंड का रांची जिला अपनी भाषाई और सांस्कृतिक विविधता के लिए जाना जाता है, जहाँ आदिवासी आबादी की प्रधानता है। इस क्षेत्र में बाल विवाह और संसाधनों की कमी जैसे कारकों के कारण शिक्षा का प्रसार

अपेक्षाकृत धीमा रहा है। अतः यह शोध रांची जिले में महिला शिक्षा की वर्तमान स्थिति, बाधाओं और लैंगिक न्याय की संभावनाओं का एक समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास करता है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व (Need and Significance of the Study):

महिला शिक्षा सामाजिक प्रगति, आर्थिक सशक्तिकरण और लैंगिक समानता का आधार है। रांची जिला अपनी सांस्कृतिक और भाषाई विविधता के कारण विशेष अध्ययन की मांग करता है, जहाँ शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच शैक्षिक विषमता स्पष्ट है। यह शोध आदिवासी समुदायों की चुनौतियों और संसाधनों की कमी का विश्लेषण कर नीति-निर्माताओं को प्रभावी रणनीतियाँ बनाने में मदद करेगा, जिससे महिलाओं को आत्मनिर्भर और जागरूक बनाया जा सके।

अध्ययन के उद्देश्य (Objectives of the Study):

1. रांची जिला में महिला शिक्षा की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण करना।
2. छात्राओं के नामांकन, उपस्थिति एवं शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन करना।
3. सामाजिक एवं आर्थिक बाधाओं की पहचान करना।
4. लैंगिक समानता एवं न्याय के संदर्भ में शिक्षा की भूमिका का मूल्यांकन करना।

संबंधित साहित्य की समीक्षा (Review of Related Literature):

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP, 2020) में लैंगिक समानता और समावेशी शिक्षा पर विशेष जोर दिया गया है। तिलक (2002) के अनुसार, शिक्षा में निवेश की कमी और क्षेत्रीय असमानताएँ महिला शिक्षा के विकास में बाधा उत्पन्न करती हैं।

झारखण्ड पर केंद्रित एक अध्ययन में सिंह (2018) ने पाया कि आदिवासी समुदायों में बालिकाओं की शिक्षा पर पारंपरिक मान्यताओं और आर्थिक स्थिति का गहरा प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार, शर्मा (2020) ने ग्रामीण क्षेत्रों में शैक्षिक अवसंरचना की कमी को महिला शिक्षा में प्रमुख बाधा बताया है।

इन सभी अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि महिला शिक्षा एक बहुआयामी विषय है, जो सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं नीतिगत कारकों से प्रभावित होता है।

अनुसंधान पद्धति (Research Methodology):

यह अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है, जो रांची जिले के ग्रामीण और शहरी विद्यालयों में किया गया है। इसमें 100 छात्राएँ, 20 शिक्षक और 10 विद्यालयों को नमूने के रूप में चुना गया है। डेटा संग्रह हेतु प्रश्नावली, साक्षात्कार तथा अवलोकन जैसी तकनीकों का उपयोग किया गया है।

रांची जिला का शैक्षिक परिदृश्य (Educational Profile of Ranchi District):

रांची, झारखण्ड की राजधानी होने के कारण शिक्षा के क्षेत्र में अपेक्षाकृत विकसित जिला है, जहाँ प्राथमिक से उच्च शिक्षा तक सरकारी एवं निजी संस्थानों की उपलब्धता है। रांची विश्वविद्यालय और अन्य उच्च शिक्षण संस्थान इसे शैक्षिक दृष्टि से महत्वपूर्ण बनाते हैं। शहरी क्षेत्रों में आधारभूत सुविधाएँ बेहतर हैं, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यालयों, प्रशिक्षित शिक्षकों और संसाधनों की कमी देखी जाती है। सामाजिक एवं आर्थिक कारणों से विशेषकर बालिकाओं की शिक्षा प्रभावित होती है, जिससे क्षेत्रीय असमानता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

महिला शिक्षा की वर्तमान स्थिति (Status of Women Education):

महिला शिक्षा की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण विभिन्न आयामों—नामांकन, उपस्थिति, शैक्षिक उपलब्धि तथा ड्रॉपआउट- के आधार पर किया जा सकता है। रांची जिला में शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति होने के बावजूद, बालिकाओं की शिक्षा से जुड़ी अनेक चुनौतियाँ अब भी विद्यमान हैं।

(1) नामांकन (Enrollment): रांची जिले में सर्व शिक्षा अभियान और मध्यान्ह भोजन जैसी योजनाओं से प्राथमिक स्तर पर बालिकाओं के नामांकन में वृद्धि हुई है। अभिभावकों में शिक्षा के प्रति जागरूकता तो बढ़ी है, किंतु माध्यमिक स्तर पर पहुँचते ही नामांकन कम हो जाता है। इसका मुख्य कारण गरीबी, बाल विवाह और घरेलू जिम्मेदारियाँ जैसी सामाजिक-आर्थिक बाधाएँ हैं। साथ ही, ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च शिक्षण संस्थानों की कमी भी बालिकाओं की निरंतर शिक्षा में एक बड़ा अवरोध है।

(2) उपस्थिति (Attendance): विद्यालय में नामांकन के बाद भी ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं की नियमित उपस्थिति एक गंभीर समस्या है। घरेलू काम, भाई-बहनों की देखरेख और खेती में हाथ बटाने के कारण उनकी पढ़ाई बाधित होती है। विद्यालयों में पृथक शौचालय का अभाव, असुरक्षित परिवेश और लंबी दूरी भी बड़ी बाधाएँ हैं। साथ ही, किशोरावस्था में मासिक धर्म संबंधी जागरूकता और सुविधाओं की कमी उपस्थिति घटाती है। इसके विपरीत, शहरी क्षेत्रों में बेहतर संसाधनों और सुविधाओं के कारण छात्राओं की उपस्थिति अधिक संतोषजनक है।

(3) शैक्षिक उपलब्धि (Academic Achievement): रांची जिले में छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में भौगोलिक विषमता स्पष्ट है। शहरी क्षेत्रों में बेहतर संसाधनों और गुणवत्तापूर्ण शिक्षण के कारण प्रदर्शन उच्च है। इसके विपरीत, ग्रामीण और जनजातीय क्षेत्रों में प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी, भाषाई बाधाएँ और अभिभावकों की सीमित शिक्षा बड़ी चुनौतियाँ हैं। डिजिटल संसाधनों का अभाव और पहली पीढ़ी की शिक्षार्थी होना ग्रामीण छात्राओं की प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता को प्रभावित करता है, जिससे वे पिछड़ जाती हैं।

(4) ड्रॉपआउट (Dropout): रांची में माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं में ड्रॉपआउट की दर अधिक है। इसके मूल कारण गरीबी, बाल विवाह, सामाजिक रूढ़ियाँ और विद्यालयों की दूरी हैं। विशेषकर ग्रामीण एवं जनजातीय क्षेत्रों में सुरक्षा और परिवहन की कमी बाधा बनती है। हालांकि सरकारी व गैर-सरकारी प्रयासों से सुधार हो रहा है, किंतु पूर्ण समाधान हेतु अभी और व्यापक प्रयासों की आवश्यकता है।

लैंगिक समानता और न्याय का विश्लेषण (Gender Equality and Justice):

लैंगिक समानता का अर्थ स्त्री-पुरुष को समान अवसर, अधिकार और संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करना है। रांची जिले के अध्ययन से स्पष्ट है कि शिक्षा में प्रगति के बावजूद ग्रामीण और वंचित वर्गों में अब भी लैंगिक भेदभाव व्याप्त है। परिवारों में बालकों की तुलना में बालिकाओं की शिक्षा को कम प्राथमिकता दी जाती है। साथ ही, घरेलू निर्णय प्रक्रिया और संसाधनों के वितरण में महिलाओं की सीमित भूमिका उनके आत्मविश्वास को प्रभावित करती है। वास्तविक समानता हेतु शिक्षा के साथ-साथ सामाजिक दृष्टिकोण में बदलाव अनिवार्य है।

महिला शिक्षा में बाधाएँ (Barriers to Women Education):

महिला शिक्षा के विकास में अनेक प्रकार की बाधाएँ उपस्थित हैं, जो सामाजिक, आर्थिक तथा संस्थागत स्तर पर प्रभाव डालती हैं। ये बाधाएँ विशेष रूप से ग्रामीण एवं वंचित वर्गों में अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं और बालिकाओं की शिक्षा को निरंतर प्रभावित करती हैं।

(1) सामाजिक बाधाएँ (Social Barriers): सामाजिक स्तर पर परंपरागत और रूढ़िवादी धारणाएँ महिला शिक्षा में बड़ी बाधा उत्पन्न करती हैं। अनेक परिवारों में अब भी यह माना जाता है कि लड़कियों का मुख्य दायित्व घर संभालना है, जिससे उनकी शिक्षा को महत्व नहीं दिया जाता। साथ ही, बाल विवाह की प्रथा भी एक गंभीर समस्या है, क्योंकि कम उम्र में विवाह के कारण लड़कियाँ अपनी पढ़ाई पूरी नहीं कर पातीं, जिससे उनके विकास और समाज की प्रगति दोनों प्रभावित होते हैं।

(2) आर्थिक बाधाएँ (Economic Barriers): आर्थिक कठिनाइयाँ महिला शिक्षा में महत्वपूर्ण अवरोध बनती हैं। सीमित आय वाले परिवार प्रायः लड़कों की शिक्षा को प्राथमिकता देते हैं और लड़कियों की पढ़ाई को नजरअंदाज

करते हैं। साथ ही, पुस्तकें, वर्दी और परिवहन जैसे खर्च वहन करना कठिन होने के कारण कई बालिकाएँ स्कूल छोड़ने को मजबूर हो जाती हैं।

(3) संस्थागत बाधाएँ (Institutional Barriers): संस्थागत स्तर पर कई कमियाँ महिला शिक्षा को प्रभावित करती हैं। विद्यालयों में बालिकाओं के लिए अलग शौचालय का अभाव उनकी उपस्थिति और निरंतरता को बाधित करता है। इसके साथ ही, महिला शिक्षकों की कमी के कारण छात्राएँ असहज महसूस करती हैं, जिससे उनके सीखने की गुणवत्ता, आत्मविश्वास और विद्यालय में टिके रहने की संभावना पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

सरकारी योजनाएँ और प्रभाव (Government Initiatives):

महिला शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए भारत सरकार द्वारा विभिन्न योजनाएँ संचालित की जा रही हैं, जिनका उद्देश्य बालिकाओं को शिक्षा के प्रति प्रोत्साहित करना और उनके नामांकन तथा निरंतरता को सुनिश्चित करना है।

• **बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ:** 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' योजना का उद्देश्य बालिकाओं के प्रति समाज में सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करना तथा उनकी शिक्षा को बढ़ावा देना है। इस योजना के माध्यम से जागरूकता में वृद्धि हुई है और बालिकाओं के नामांकन में सुधार देखा गया है।

• **मध्याह्न भोजन योजना:** मध्याह्न भोजन योजना (Mid-Day Meal Scheme) ने विद्यालयों में उपस्थिति बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह योजना विशेष रूप से गरीब परिवारों के बच्चों को विद्यालय आने के लिए प्रेरित करती है, जिससे बालिकाओं की भागीदारी भी बढ़ी है।

• **कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय:** कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय (KGBV) योजना के अंतर्गत वंचित वर्ग की बालिकाओं को आवासीय शिक्षा की सुविधा प्रदान की जाती है, जिससे दूरस्थ क्षेत्रों की छात्राएँ भी शिक्षा प्राप्त कर पाती हैं।

चर्चा (Discussion):

अध्ययन दर्शाता है कि सरकारी योजनाओं से बालिकाओं के नामांकन और जागरूकता में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। इसके बावजूद, ग्रामीण और वंचित वर्गों में सामाजिक रूढ़ियाँ और आर्थिक तंगी अब भी लैंगिक न्याय की राह में बड़ी बाधाएँ हैं। अतः इन समस्याओं के समाधान हेतु समग्र और प्रभावी रणनीतियाँ बनाना अनिवार्य है।

सुझाव (Suggestions):

1. छात्रवृत्ति का विस्तार: आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग की बालिकाओं के लिए छात्रवृत्ति योजनाओं का विस्तार किया जाए, ताकि वे बिना आर्थिक बाधा के अपनी शिक्षा जारी रख सकें।
2. ग्रामीण शिक्षा सुधार: ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यालयों की आधारभूत सुविधाओं, प्रशिक्षित शिक्षकों तथा डिजिटल संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित की जाए, जिससे शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हो सके।
3. जागरूकता अभियान: समाज में महिला शिक्षा के महत्व को बढ़ाने के लिए व्यापक स्तर पर जागरूकता अभियान चलाए जाएँ, ताकि अभिभावकों की सोच में सकारात्मक परिवर्तन लाया जा सके।
4. बाल विवाह रोकथाम: बाल विवाह जैसी कुप्रथाओं को समाप्त करने के लिए सख्त कानूनों का प्रभावी क्रियान्वयन और सामाजिक जागरूकता आवश्यक है।

निष्कर्ष (Conclusion)

रांची सहित झारखंड में सरकारी प्रयासों से बालिका शिक्षा में सुधार हुआ है, किंतु लैंगिक समानता अब भी एक चुनौती है। ग्रामीण और जनजातीय क्षेत्रों में सामाजिक रूढ़ियाँ, गरीबी और बाल विवाह मुख्य बाधाएँ हैं। अतः केवल नीतियों से परे, व्यावहारिक धरातल पर परिवार और समाज के समन्वित प्रयासों की आवश्यकता है। शिक्षित और सशक्त महिलाएँ ही एक न्यायपूर्ण और प्रगतिशील समाज की आधारशिला रख सकती हैं।

संदर्भ सूची:

1. शिक्षा मंत्रालय. (2023).भारत में शिक्षा पर वार्षिक रिपोर्ट. भारत सरकार।
2. एनसीईआरटी. (2023).ग्रामीण भारत में शिक्षा की स्थिति. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद।
3. संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP). (2023). मानव विकास रिपोर्ट 2023. https://hdr.undp.org
4. विश्व बैंक. (2022). विश्व विकास रिपोर्ट 2022. विश्व बैंक प्रकाशन।
5. भारत सरकार. (2022). राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS-5). स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय।
6. झारखण्ड सरकार. (2022). झारखण्ड शिक्षा सांख्यिकी रिपोर्ट. शिक्षा विभाग, झारखण्ड।
7. राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय (NSSO). (2022).भारत में शिक्षा की स्थिति रिपोर्ट. भारत सरकार।
8. शर्मा, पी. (2022). ग्रामीण भारत में शिक्षा की चुनौतियाँ. अंतरराष्ट्रीय शिक्षा जर्नल, 10(2), 45–52।
9. यूनेस्को. (2021). वैश्विक शिक्षा निगरानी रिपोर्ट. यूनेस्को प्रकाशन।
10. ीति आयोग. (2021).राष्ट्रीय बहुआयामी गरीबी सूचकांक रिपोर्ट. भारत सरकार।

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 63-66
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

आर्थिक विकास के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण पहलू : महिलाओं के विशेष के संदर्भ में

डॉ. राजकुमारी परिहार
अतिथि व्याख्याता (अर्थशास्त्र)
शासकीय स्नातक महाविद्यालय डभरा जिला – शक्ति (छ.ग.)

सार

शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता दोनों महिलाओं के लिए आवश्यक है। शिक्षा महिलाओं को अपने जीवन के सभी पहलुओं में बेहतर निर्णय लेने में सक्षम बनाती है। यह उन्हें अपने अधिकारों और अवसरों के बारे में जागरूक करती है, और उन्हें अपने लिए और अपने परिवार के लिए बेहतर जीवन बनाने में मदद करती है। आर्थिक स्वतंत्रता महिलाओं को अपने जीवन पर नियंत्रण रखने में सक्षम बनाती है। यह उन्हें अपने वित्तीय निर्णय लेने, अपने स्वयं के लक्ष्य निर्धारित करने और अपने जीवन के सपनों को साकार करने की स्वतंत्रता देती है। शिक्षा महिलाओं को अपने अधिकारों के बारे में जागरूक करती है और उन्हें अपने निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करती है। यह उन्हें अपने जीवन में बेहतर विकल्प बनाने में मदद करती है, जैसे कि विवाह, शिक्षा, और करियर। शिक्षा महिलाओं को अधिक उत्पादक नागरिक भी बनाती है। आर्थिक स्वतंत्रता महिलाओं को अपने जीवन को नियंत्रित करने में मदद करती है। यह उन्हें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने और अपने और अपने परिवार की जरूरतों को पूरा करने में सक्षम बनाती है। आर्थिक स्वतंत्रता महिलाओं को हिंसा और अन्य शोषण से बचाने में भी मदद करती है।

मूल शब्द – आर्थिक, स्वतंत्रता, महिला, शिक्षा, विकास, अधिकार, चुनौती।

शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता महिलाओं को अपने जीवन में सफल होने और सशक्त बनने में मदद करती हैं। यह उन्हें समाज में समान अधिकार और अवसर प्राप्त करने में मदद करती है। शिक्षा महिलाओं के लिए आवश्यक है क्योंकि यह उन्हें एक बेहतर जीवन जीने में मदद करती है। शिक्षा महिलाओं को अपने अधिकारों के बारे में जागरूक बनाती है और उन्हें उन्हें सुरक्षित करने में मदद करती है। शिक्षा महिलाओं को अपने बच्चों को शिक्षित करने में सक्षम बनाती है, जिससे अगली पीढ़ी के लिए बेहतर भविष्य सुनिश्चित होता है। शिक्षा महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने में मदद करती है, जिससे उन्हें अपने परिवारों की बेहतर देखभाल करने में मदद मिलती है। शिक्षा महिलाओं के लिए आवश्यक है क्योंकि यह उन्हें अपने व्यक्तित्व और क्षमताओं को विकसित करने में मदद करती है। शिक्षा महिलाओं को अपने विचारों और भावनाओं को व्यक्त करने में सक्षम बनाती है, जिससे उन्हें अपने जीवन में अधिक नियंत्रण महसूस होता है। शिक्षा महिलाओं को अपनी क्षमताओं का अधिकतम करने में मदद करती है, जिससे ये अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने और अपने सपनों को पूरा करने में सक्षम होती है।

शिक्षा महिलाओं के लिए आवश्यक है क्योंकि यह समाज के लिए आवश्यक है। शिक्षा महिलाओं को एक अधिक न्यायपूर्ण और समान दुनिया बनाने में मदद करती है। शिक्षा महिलाओं को सशक्त बनाती है, जिससे वे अपने परिवारों, अपने समुदायों और अपने देश के लिए एक सकारात्मक प्रभाव डाल सकती

है। शिक्षा महिलाओं को अपने स्वास्थ्य के बारे में जागरूक बनाने में मदद करती है। इससे ये अपने स्वास्थ्य संबंधी निर्णय बेहतर तरीके से ले सकती है, जैसे कि परिवार नियोजन, मातृ स्वास्थ्य देखभाल और यौन संचारित रोगों से बचाय। शिक्षा महिलाओं को लैंगिक समानता के बारे में जागरूक बनाने में मदद करती है। इससे ये अपने अधिकारों के लिए लड़ सकती है और लैंगिक पूर्वाग्रहों को दूर करने में मदद कर सकती हैं। शिक्षा महिलाओं को राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लेने के लिए सक्षम बनाती है। इससे वे अपने हितों का प्रतिनिधित्व करने के लिए चुनाव लड़ सकती हैं या राजनीतिक मुद्दों पर अपने विचार व्यक्त कर सकती हैं।

शिक्षा महिलाओं को एक बेहतर भविष्य बनाने में मदद करती है। यह उन्हें अपने जीवन में सफल होने के लिए आवश्यक कौशल और ज्ञान प्रदान करती है। इसलिए, यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि सभी महिलाओं को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुंच हो। भारत में महिला शिक्षा में पिछले कुछ दशकों में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। 2023 में, भारत में महिला साक्षरता दर 64.46ः है, जो 2001 में 54.16ः थी। हालांकि, अभी भी कुछ चुनौतियां हैं जिनका सामना किया जाना है। ग्रामीण क्षेत्रों में महिला साक्षरता शहरी क्षेत्रों की तुलना में कम है। इसके अलावा, कुछ समुदायों में, लड़कियों को स्कूल भेजने की बजाय घर पर रहने और घरेलू काम करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। भारत सरकार महिला शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए कई कार्यक्रम चला रही है। इनमें से कुछ कार्यक्रमों में शामिल हैं ।सशक्तीकरण और सामाजिक परिवर्तन के लिए राष्ट्रीय मिशन (NSM) यह कार्यक्रम महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य और आर्थिक सशक्तिकरण के क्षेत्रों में सशक्त बनाने के लिए काम करता है। राष्ट्रीय बाल योजनाय यह योजना 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए शिक्षा और पोषण सुनिश्चित करने के लिए काम करती है। बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ अभियानय यह अभियान लड़कियों के जन्म और शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए काम करता है। इन कार्यक्रमों के परिणामस्वरूप, भारत में महिला शिक्षा में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। हालांकि, अभी भी कुछ चुनौतियां है जिनका सामना किया जाना है। इन चुनौतियों को दूर करने के लिए, सरकार और समाज को मिलकर काम करने की आवश्यकता है।

शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता दोनों महिलाओं के लिए आवश्यक है। शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता महिलाओं को निम्नलिखित तरीकों से सशक्त बना सकती है। ये महिलाओं को अपने अधिकारों और क्षमताओं के बारे में जागरूक बनाती है। शिक्षा महिलाओं को अपने अधिकारों और क्षमताओं के बारे में जानने में मदद करती है, जिससे वे अपने जीवन के बारे में अधिक निर्णय लेने में सक्षम हो जाती है। उदाहरण के लिए, शिक्षित महिलाएं अपने स्वास्थ्य और परिवार नियोजन के बारे में अधिक जानकारी रखती हैं, और ये घरेलू हिंसा के बारे में अधिक जागरूक होती हैं। ये महिलाओं को अधिक उत्पादक नागरिक बनने में मदद करती हैं। शिक्षित महिलाएं अधिक उत्पादक नागरिक बनती है, क्योंकि वे अपने समुदायों और राष्ट्रों में अधिक योगदान देती हैं। उदाहरण के लिए, शिक्षित महिलाएं अधिक बार मतदान करती हैं, और वे अपने बच्चों की शिक्षा और स्वास्थ्य में अधिक निवेश करती है। ये महिलाओं को अपने परिवारों और समुदायों में अधिक योगदान देने में मदद करती हैं। शिक्षित महिलाएं अपने परिवारों और समुदायों में अधिक योगदान देती हैं, क्योंकि वे अपने बच्चों को शिक्षित करने और अपने परिवारों के लिए आर्थिक रूप से सहायक होने में सक्षम होती है।

शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता महिलाओं को निम्नलिखित तरीकों से लाभान्वित करती है। ये महिलाओं को अधिक स्वस्थ जीवन जीने में मदद करते हैं। शिक्षित महिलाएं अधिक स्वस्थ जीवन जीती हैं, क्योंकि वे अपने स्वास्थ्य और परिवार नियोजन के बारे में अधिक जानकारी रखती है। वे महिलाओं को अधिक सुरक्षित जीवन जीने में मदद करते हैं। शिक्षित महिलाएं अधिक सुरक्षित जीवन जीती है, क्योंकि ये घरेलू हिंसा और अन्य शोषण से अधिक सुरक्षा प्रदान करती है। ये महिलाओं को अधिक खुशहाल जीवन जीने में मदद करते हैं। शिक्षित महिलाएं अधिक खुशहाल जीवन जीती हैं, क्योंकि ये अपने जीवन के बारे में अधिक नियंत्रण महसूस करती है।

शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता महिलाओं को एक बेहतर भविष्य बनाने में मदद कर सकती है। यह उन्हें अपने जीवन के बारे में अधिक निर्णय लेने, अपने परिवारों और समुदायों में अधिक योगदान देने और अधिक स्वस्थ और सुरक्षित जीवन जीने में सक्षम बनाता है। शिक्षा महिलाओं को अपने जीवन के सभी पहलुओं में सशक्त बनाती है। यह उन्हें अपने अधिकारों और अवसरों के बारे में जागरूक करती है, और उन्हें उन्हें प्राप्त करने में मदद करती है। शिक्षा महिलाओं को अधिक उत्पादक और जिम्मेदार नागरिक

बनने में मदद करती है। यह उन्हें अपने परिवारों और समुदायों के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करती है। शिक्षा महिलाओं को बेहतर नौकरी पाने और अधिक आय अर्जित करने में मदद करती है। यह उन्हें अपने परिवारों के लिए अधिक आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने में सक्षम बनाता है। शिक्षा महिलाओं को अपने अधिकारों और अवसरों के बारे में जागरूक करती है। यह उन्हें इन अधिकारों और अवसरों को प्राप्त करने के लिए लड़ने में सक्षम बनाता है।

शिक्षा महिलाओं को अपने स्वास्थ्य और कल्याण के बारे में बेहतर निर्णय लेने में मदद करती है। यह उन्हें सुरक्षित यौन संबंध बनाने, परिवार नियोजन करने और अपने बच्चों के स्वास्थ्य की देखभाल करने में सक्षम बनाता है। शिक्षा महिलाओं के लिए एक शक्तिशाली उपकरण है जो उन्हें अपने जीवन में सफल होने में मदद कर सकती है। यह उन्हें अपने परिवारों और समुदायों के लिए एक बेहतर भविष्य बनाने में सक्षम बनाता है। भारत में, महिलाओं की शिक्षा में पिछले कुछ दशकों में काफी प्रगति हुई है। 2023 में, भारत में महिलाओं की साक्षरता दर 64.46% है, जो पुरुषों की साक्षरता दर (74.04) से कम है, लेकिन यह 1951 में 9.4% से काफी बढ़ी है। हालाँकि, भारत में अभी भी महिलाओं की शिक्षा में कई चुनौतियों है। इनमें ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की पहुंच में कमी, लिंग भेदभाव और आर्थिक अभाव शामिल हैं। भारत सरकार महिलाओं की शिक्षा को बढ़ाया देने के लिए कई कार्यक्रम चला रही है। इनमें कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना, पोषण और शिक्षा अभियान और शिक्षा का अधिकार अधिनियम शामिल हैं।

इन कार्यक्रमों से भारत में महिलाओं की शिक्षा में और अधिक प्रगति होने की उम्मीद है। शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता महिलाओं को निम्नलिखित लाभ प्रदान करती है। स्वास्थ्य और कल्याण में सुधार, शिक्षित महिलाओं की अपने स्वास्थ्य और कल्याण के बारे में बेहतर समझ होती है। वे परिवार नियोजन के बारे में जागरूक होती हैं, और ये अपने बच्चों को स्वस्थ तरीके से पालने में सक्षम होती हैं। आर्थिक रूप से स्वतंत्र महिलाएं अपने स्वास्थ्य और कल्याण के लिए बेहतर देखभाल प्राप्त करने में सक्षम होती हैं। आर्थिक सुरक्षा, शिक्षित महिलाएं बेहतर नौकरी पा सकती हैं, और वे अधिक देतन अर्जित कर सकती है। आर्थिक रूप से स्वतंत्र महिलाएं अपने परिवारों की आर्थिक सुरक्षा में योगदान दे सकती हैं। समाज में भागीदारी, शिक्षित महिलाएं समाज में अधिक सक्रिय भूमिका निभा सकती हैं। ये राजनीतिक प्रक्रिया में भाग ले सकती है, और वे अपने समुदायों में बदलाव लाने में मदद कर सकती हैं। आर्थिक रूप से स्वतंत्र महिलाएं अपने परिवारों और समुदायों में अधिक सक्रिय भूमिका निभा सकती हैं।

शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता महिलाओं के लिए महत्वपूर्ण अधिकार हैं। इन अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए सरकारों, संगठनों और व्यक्तियों को मिलकर काम करना चाहिए। भारत में, सरकार ने महिलाओं के लिए शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता को बढ़ावा देने के लिए कई कार्यक्रम शुरू किए हैं। इन कार्यक्रमों में शामिल है। सभी लड़कियों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा, यह कार्यक्रम सभी लड़कियों को 12वीं कक्षा तक मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करता है। महिला सशक्तिकरण कार्यक्रमय यह कार्यक्रम महिलाओं को आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक रूप से सशक्त बनाने के लिए विभिन्न कार्यक्रमों का संचालन करता है। स्वयं सहायता समूहय ये समूह महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने में मदद करते हैं।

इन कार्यक्रमों के परिणामस्वरूप, भारत में महिलाओं की शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता में सुधार हुआ है। हालांकि, अभी भी बहुत कुछ करना बाकी है। भारत में महिलाओं की शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता को बढ़ावा देने के लिए और अधिक प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। शिक्षा महिलाओं के लिए आवश्यक है के समर्थन में कई शोध प्रमाण उपलब्ध हैं। उदाहरण के लिए, एक अध्ययन में पाया गया कि शिक्षित महिलाओं के पास गैर–शिक्षित महिलाओं की तुलना में 27% अधिक आय होती है। एक अन्य अध्ययन में पाया गया कि शिक्षित महिलाएं अपने बच्चों को बेहतर स्वास्थ्य देखभाल प्रदान करती हैं और वे अपने बच्चों को स्कूल भेजने की अधिक संभावना रखती हैं।

भारत में शिक्षा महिलाओं के लिए आवश्यक है। भारत में, शिक्षा महिलाओं के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। भारत में महिलाओं की साक्षरता दर अभी भी पुरुषों की साक्षरता दर से कम है। 2021 में, भारत में महिलाओं की साक्षरता दर 65.46% थी, जबकि पुरुषों की साक्षरता दर 87.72% थी। भारत में शिक्षा महिलाओं के लिए कई चुनौतियों का सामना करती है। इनमें से कुछ चुनौतियों में शामिल है –

- गरीब परिवारों में अक्सर लड़कियों को स्कूल भेजने के लिए पैसे नहीं होते हैं।

- कुछ समाजों में, लड़कियों को शिक्षित करना अवांछनीय माना जाता है।
- स्कूलों में अक्सर लिंग भेदभाव होता है, जिससे लड़कियों को शिक्षा प्राप्त करने में कठिनाई होती है।
- इन चुनौतियों को दूर करने के लिए, भारत सरकार और गैर–सरकारी संगठनों ने महिलाओं की शिक्षा को बढ़ाया देने के लिए कई कार्यक्रम शुरू किए हैं। इन कार्यक्रमों में शामिल है।
- भारत सरकार ने 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के लिए एक कानून बनाया है।
- सरकार और गैर–सरकारी संगठन लड़कियों को शिक्षा जारी रखने के लिए छात्रवृत्ति प्रदान करते हैं।
- सरकार और गैर–सरकारी संगठन लड़कियों को अपने अधिकारों और स्वतंत्रता के लिए खड़े होने के लिए सशक्त बनाने के लिए कार्यक्रम चलाते हैं।

इन कार्यक्रमों के कारण, भारत में महिलाओं की शिक्षा में सुधार हुआ है। हालांकि, अभी भी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। भारत में महिलाओं की साक्षरता दर को बढ़ाने और उन्हें शिक्षा प्राप्त करने के लिए समान अवसर प्रदान करने के लिए सरकार और गैर–सरकारी संगठनों को मिलकर काम करना होगा।

निष्कर्ष

शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता महिलाओं के लिए एक शक्तिशाली उपकरण है जो उन्हें अपने जीवन में सफलता प्राप्त करने और अपने समुदायों में सकारात्मक बदलाव लाने में सक्षम बनाती है। भारत में, शिक्षा महिलाओं के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि यह उन्हें गरीबी, सामाजिक रूढ़ियों और लिंग भेदभाव के खिलाफ लड़ने में मदद कर सकती है।

शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता महिलाओं के लिए महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे उन्हें अपने जीवन में सफल होने और सशक्त बनने में मदद करती है। यह उन्हें समाज में समान अधिकार और अवसर प्राप्त करने में भी मदद करती है।

संदर्भ सूची

1. शर्मा, डॉ. सुषमा. शिक्षा और महिला सशक्तिकरण, प्रकाशक विद्या भारती, पृष्ठ संख्या 225
2. सिंह, प्रो. प्रिया. महिलाओं की शिक्षा चुनौतियाँ और संभावनाएँ, प्रकाशक रॉयल पब्लिकेशन, पृष्ठ संख्या 195
3. शर्मा ,डॉ. मनोज कुमार, महिलाओं की शिक्षा एक सामाजिक–आर्थिक विश्लेषण, प्रकाशक विनोद प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 250
4. प्रियंका, महिलाओं की शिक्षा एक आवश्यक आवश्यकता, प्रकाशन दैनिक जागरण, 20 जुलाई, 2021
5. गीतांजलि, शिक्षा महिलाओं के लिए सशक्तिकरण का माध्यम है, प्रकाशन द हिंदू, 2 अगस्त, 2020
6. कुमार, डॉ. अरविंद. महिलाओं की शिक्षा एक विकास की कुंजी,, प्रकाशन द इकॉनॉमिक टाइम्स, 5 अगस्त, 2020
7. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, प्रकाशन भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय, 2020
8. विश्व बैंक रिपोर्ट महिलाओं की शिक्षा और विकास, प्रकाशन विश्व बैंक, 2022

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 67-71
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

सोशल मीडिया का बच्चों पर प्रभाव

शाहज़ाद अनवर
प्रभारी प्रधान अध्यापक,
मध्य विद्यालय बेलवा काशीपुर, किशनगंज

परिचय: वर्तमान समय में डिजिटल युग के दौर में सोशल मीडिया बच्चों और किशोरों के जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुका है। स्मार्टफोन, इंटरनेट और विभिन्न डिजिटल मंचों की व्यापक उपलब्धता ने बच्चों के सीखने, संवाद करने और मनोरंजन के तरीकों को बदल दिया है। सोशल मीडिया के माध्यम से बच्चे विश्व स्तर की जानकारी, शैक्षिक संसाधनों और संचार के नए अवसरों तक पहुँच प्राप्त कर रहे हैं। दूसरी ओर, इसके अत्यधिक और अनियंत्रित उपयोग से मानसिक तनाव के साथ-साथ बच्चे अपने पारिवारिक रिश्तों से दूर होने लगते हैं तथा सामाजिक जीवन से भी दूरी बना लेते हैं। ध्यान में कमी आती है , सामाजिक अलगाव और साइबर बुलिंग जैसी समस्याएँ भी सामने आ रही हैं।
प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य सोशल मीडिया के बच्चों पर पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक, शैक्षिक तथा सामाजिक प्रभावों का बहुआयामी विश्लेषण करना है। यह अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है, जिसमें राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय रिपोर्टों, मनोवैज्ञानिक अध्ययनों, शैक्षिक जर्नलों, प्रमुख पुस्तकों तथा सरकारी नीतिगत दस्तावेजों का विश्लेषण किया गया है।

अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सोशल मीडिया बच्चों के लिए ज्ञान-विस्तार, रचनात्मकता तथा वैश्विक संपर्क का सशक्त माध्यम बन सकता है, किंतु इसके अनियंत्रित उपयोग से मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ, ध्यानाभाव, नींद में कमी तथा सामाजिक व्यवहार में परिवर्तन देखने को मिलते हैं। शोध का निष्कर्ष यह दर्शाता है कि संतुलित उपयोग, अभिभावकीय मार्गदर्शन, डिजिटल साक्षरता तथा प्रभावी नीतिगत हस्तक्षेप के माध्यम से सोशल मीडिया के नकारात्मक प्रभावों को कम किया जा सकता है और इसके सकारात्मक पक्ष को बच्चों के विकास के लिए उपयोगी बनाया जा सकता है।

1. प्रस्तावना (Introduction)

वर्तमान समय को सूचना एवं प्रौद्योगिकी का युग कहा जाता है। इंटरनेट और स्मार्टफोन की बढ़ती उपलब्धता ने समाज के प्रत्येक वर्ग को प्रभावित किया है। विशेष रूप से बच्चों और किशोरों के जीवन में डिजिटल तकनीक का

प्रभाव अत्यधिक गहरा हुआ है। आज का बच्चा पारंपरिक खेल के मैदान से अधिक समय मोबाइल फोन, टैबलेट और कंप्यूटर की स्क्रीन पर बिताता है।

सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म जैसे Facebook, Instagram, YouTube, WhatsApp और Snapchat बच्चों और किशोरों में अत्यंत लोकप्रिय हैं। इन प्लेटफॉर्म के माध्यम से बच्चे न केवल मनोरंजन प्राप्त करते हैं, बल्कि शिक्षा, संवाद और रचनात्मक अभिव्यक्ति के नए अवसर भी प्राप्त करते हैं।

भारत में सस्ते इंटरनेट डेटा और स्मार्टफोन की उपलब्धता ने डिजिटल क्रांति को गति दी है। पिछले एक दशक में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या में तीव्र वृद्धि हुई है, जिसमें बच्चों और किशोरों का बड़ा हिस्सा शामिल है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने भी डिजिटल शिक्षा को बढ़ावा दिया है, जिससे बच्चों का ऑनलाइन संपर्क और अधिक बढ़ा हैकोरोना काल (COVID-19) में, जब पूरी दुनिया अपने-अपने घरों तक सीमित हो गई थी, उस समय सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म और ऑनलाइन कक्षाओं के माध्यम से ही बच्चों की पढ़ाई जारी रही। इसी अवधि में बच्चों में सोशल मीडिया के प्रति निर्भरता और लत बढ़ने लगी।

हालाँकि, सोशल मीडिया के उपयोग से कई सकारात्मक अवसर उत्पन्न हुए हैं, लेकिन इसके साथ-साथ कई चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। बच्चों में बढ़ता स्क्रीन टाइम, साइबर बुलिंग की घटनाएँ, ध्यान में कमी तथा मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ी समस्याएँ समाज के लिए चिंता का विषय बनती जा रही हैं।

इसी संदर्भ में यह आवश्यक हो जाता है कि सोशल मीडिया के बच्चों पर पड़ने वाले प्रभावों का व्यापक और संतुलित अध्ययन किया जाए। प्रस्तुत शोध-पत्र इसी दिशा में एक प्रयास है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं औचित्य

बच्चे किसी भी समाज की भविष्य की नींव होते हैं। उनके मानसिक, सामाजिक और नैतिक विकास पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन समाज की प्रगति के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। वर्तमान समय में सोशल मीडिया का प्रभाव तेजी से बढ़ रहा है। ऐसे में निम्न कारणों से इस विषय पर शोध आवश्यक हो जाता है।

बच्चों में स्क्रीन टाइम की बढ़ती मात्रा, साइबर बुलिंग और ऑनलाइन उत्पीड़न की घटनाओं में वृद्धि
डिजिटल शिक्षा का बढ़ता प्रसार, मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं में वृद्धि, सामाजिक व्यवहार में परिवर्तन।

इस शोध का उद्देश्य सोशल मीडिया को केवल सकारात्मक या नकारात्मक सिद्ध करना नहीं है, बल्कि इसके बहुआयामी प्रभावों का संतुलित विश्लेषण प्रस्तुत करना है।

साहित्य समीक्षा (Review of Literature)

विभिन्न अंतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय अध्ययनों में सोशल मीडिया के बच्चों पर प्रभावों का व्यापक अध्ययन किया गया है। यूनिसेफ (UNICEF) और संबंधित वैश्विक रिपोर्टों के अनुसार, सोशल मीडिया बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य, संज्ञानात्मक विकास और शारीरिक कल्याण पर गहरा नकारात्मक प्रभाव डाल रहा है। यह चिंता, अवसाद, नींद की कमी, कम आत्मसम्मान, साइबरबुलिंग और अवास्तविक शारीरिक छवियों की तुलना जैसी समस्याओं को बढ़ाता है। अत्यधिक उपयोग बच्चों को वास्तविक दुनिया से काटकर लत का शिकार बना रहा है। Visionias.in के अनुसार यह संज्ञानात्मक विकास, एकाग्रता और शैक्षणिक प्रदर्शन को भी कमजोर करता है।

रिपोर्टों में बच्चों के लिए सोशल मीडिया के उपयोग में सख्त आयु सत्यापन, स्क्रीन समय की सीमा और डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देने की आवश्यकता पर जोर दिया गया है, ताकि उनके डिजिटल अनुभव को सुरक्षित और स्वस्थ बनाया जा सके।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) और अन्य स्वास्थ्य अध्ययनों के अनुसार, सोशल मीडिया बच्चों और किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, जिसमें चिंता, अवसाद, नींद की कमी, कम आत्मसम्मान और साइबरबुलिंग (ऑनलाइन उत्पीड़न) के खतरे बढ़ जाते हैं। विशेष रूप से लड़कियों और किशोरों में यह प्रभाव अधिक देखा गया है, जो 11-15 वर्ष की आयु में इसके प्रति अधिक संवेदनशील हैं।

National Center for Biotechnology Information (NCBI). (2003)

मानसिक स्वास्थ्य पर असर: प्रतिदिन 3 घंटे से अधिक सोशल मीडिया का उपयोग करने वाले किशोरों में मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का जोखिम दोगुना हो जाता है। साइबरबुलिंग और अवसाद:- लगातार सोशल मीडिया का उपयोग साइबरबुलिंग से जुड़ा है, जिससे अवसाद और आत्म-हानि के विचार आ सकते हैं। शारीरिक छवि और खान-पान: सोशल मीडिया पर अवास्तविक शारीरिक मानकों की तुलना के कारण बच्चों में शारीरिक बनावट को लेकर असंतोष और अव्यवस्थित खान-पान (eating disorders) की समस्या बढ़ रही है। नींद और फोकस: सोशल मीडिया की लत के कारण नींद की गुणवत्ता खराब होती है और ध्यान केंद्रित करने में कठिनाई होती है। लैंगिक अंतर: 11-13 वर्ष की लड़कियां और 14-15 वर्ष के लड़के सोशल मीडिया के भावनात्मक प्रभावों के प्रति अधिक संवेदनशील हैं।

अनुशंसाएं: स्वास्थ्य विशेषज्ञ बच्चों के लिए सोशल मीडिया के उपयोग की सख्त निगरानी, आयु सत्यापन (age verification) और माता-पिता द्वारा समय सीमा तय करने की वकालत करते हैं।

National Center for Biotechnology Information (.gov) (2005)

शोध के उद्देश्य (Objectives of the Study)

इस अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य पर सोशल मीडिया के प्रभाव का अध्ययन करना। अध्ययनों से हम देखते हैं कि बच्चे मोबाइल या अन्य ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के अत्यधिक व अनियंत्रित उपयोग कर दिमागी रूप से कमज़ोर" या बीमार हो जाते हैं |

शैक्षिक उपलब्धि पर सोशल मीडिया के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों का विश्लेषण करना।

बच्चों के सामाजिक व्यवहार और पारिवारिक संबंधों पर इसके प्रभावों का अध्ययन करना।

सोशल मीडिया के सुरक्षित और संतुलित उपयोग के लिए सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध पद्धति (Research Methodology)

यह शोध मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों (Secondary Sources) पर आधारित है।

अध्ययन के लिए निम्न स्रोतों का उपयोग किया गया है:

अंतरराष्ट्रीय संगठनों की रिपोर्टें,

मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक जर्नल्स

सरकारी दस्तावेज और नीतिगत रिपोर्ट

डिजिटल मीडिया पर आधारित शोध अध्ययन

इस अध्ययन में विश्लेषणात्मक (Analytical) और वर्णनात्मक (Descriptive) पद्धति का प्रयोग किया गया है।

सोशल मीडिया का स्वरूप और उपयोग

सोशल मीडिया एक डिजिटल मंच है जहाँ उपयोगकर्ता सामग्री का निर्माण, साझा और आदान-प्रदान करते हैं। बच्चों द्वारा सोशल मीडिया का उपयोग मुख्यतः निम्न उद्देश्यों के लिए किया जाता है:

मनोरंजन, शिक्षा, सामाजिक संपर्क, रचनात्मक अभिव्यक्ति।

साथ ही यूट्यूब, ऑनलाइन ट्यूटोरियल और डिजिटल पुस्तकालय बच्चों के लिए सीखने के महत्वपूर्ण स्रोत बनते जा रहे हैं।

सोशल मीडिया के सकारात्मक प्रभाव

शैक्षिक विकास:- सोशल मीडिया बच्चों को विविध शैक्षिक संसाधनों तक पहुँच प्रदान करता है। ऑनलाइन कक्षाएँ, वीडियो लेक्चर और डिजिटल पुस्तकालय ज्ञान-विस्तार में सहायक होते हैं।

रचनात्मकता का विकास:- बच्चे अपनी कला, कविता, चित्रकला और संगीत को साझा कर सकते हैं। इससे आत्मविश्वास और सृजनात्मकता में वृद्धि होती है।

वैश्विक दृष्टिकोण:- सोशल मीडिया बच्चों को विभिन्न संस्कृतियों और विचारों से परिचित कराता है, जिससे उनकी सोच व्यापक होती है।

संचार कौशल का विकास:- डिजिटल संवाद के माध्यम से भाषा कौशल और अभिव्यक्ति क्षमता में सुधार हो सकता है।

सोशल मीडिया के नकारात्मक प्रभाव

मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव:- अत्यधिक सोशल मीडिया उपयोग से चिंता और अवसाद की प्रवृत्ति बढ़ सकती है।

साइबर बुलिंग:- ऑनलाइन उत्पीड़न बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य को गंभीर रूप से प्रभावित कर सकता है।

ध्यान में कमी: लगातार नोटिफिकेशन और त्वरित सामग्री से एकाग्रता प्रभावित होती है।

नींद में बाधा: रात में स्क्रीन उपयोग से नींद की गुणवत्ता प्रभावित होती है।

सामाजिक अलगाव: आभासी संबंधों की प्रधानता से वास्तविक सामाजिक संपर्क कम हो सकता है।

पारिवारिक एवं सामाजिक प्रभाव

सोशल मीडिया ने पारिवारिक संवाद को प्रभावित किया है। एक ही घर में रहने के बावजूद परिवार के सदस्य अलग-अलग डिजिटल उपकरणों में व्यस्त रहते हैं।

अभिभावकों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। यदि अभिभावक बच्चों के डिजिटल उपयोग पर निगरानी रखें और उचित मार्गदर्शन दें, तो नकारात्मक प्रभावों को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से सोशल मीडिया तत्काल संतुष्टि की प्रवृत्ति को बढ़ावा देता है।

किशोरावस्था पहचान निर्माण का समय होती है। इस चरण में सोशल मीडिया बच्चों की आत्म-छवि को गहराई से प्रभावित करता है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य

भारत में डिजिटल पहुँच तेजी से बढ़ रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में भी इंटरनेट का उपयोग बढ़ रहा है।

सरकार द्वारा डिजिटल साक्षरता कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं, किंतु साइबर सुरक्षा और डिजिटल नैतिकता पर अधिक जागरूकता की आवश्यकता है।

समाधान एवं सुझाव

संतुलित उपयोग:- अभिभावकों द्वारा यह देखना आवश्यक हो गया है कि बच्चे इंटरनेट का उपयोग संतुलित एवं "सकारात्मक कार्यों के लिए हो। विद्यालयों में डिजिटल साक्षरता पाठ्यक्रम अनिवार्य किया जाए। अभिभावकों के लिए डिजिटल जागरूकता कार्यशालाएँ आयोजित हों। बच्चों के लिए सुरक्षित ऑनलाइन प्लेटफॉर्म विकसित किए जाएँ। स्क्रीन टाइम के लिए स्पष्ट दिशा-निर्देश बनाए जाएँ।

भारतीय संदर्भ में विश्लेषण

भारत में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच डिजिटल विभाजन मौजूद है, किंतु तेजी से इंटरनेट प्रसार ने इस अंतर को कम किया है। डिजिटल साक्षरता कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं, परंतु साइबर सुरक्षा एवं डिजिटल नैतिकता पर अधिक जागरूकता की आवश्यकता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

सोशल मीडिया बच्चों के जीवन का अभिन्न हिस्सा बन चुका है। इसका प्रभाव उपयोग की मात्रा एवं उद्देश्य पर निर्भर करता है। संतुलित उपयोग, अभिभावकीय मार्गदर्शन, डिजिटल साक्षरता और नीतिगत हस्तक्षेप के माध्यम से इसके सकारात्मक पक्ष को प्रोत्साहित किया जा सकता है तथा नकारात्मक प्रभावों को कम किया जा सकता है।

संदर्भ सूची (References) – APA शैली (Indicative)

1. UNICEF. (2021). Children in a Digital World.
2. World Health Organization. (2019). Guidelines on Physical Activity, Sedentary Behaviour and Sleep for Children.
3. Government of India. (2020). National Education Policy 2020.
4. Anderson, M., & Jiang, J. (2018). Teens, Social Media & Technology. Pew Research Center.
5. "किशोर विद्यार्थियों पर सोशल मीडिया" (Social Media on Adolescent Students):
6. "बच्चे और मीडिया" (Child and Media - PMC):
7. "डिजिटल बच्चों के साथ रहना" (Living with Digital Kids):
8. "कार्टून चैनल और व्यवहार" (शोध पत्र):

ईमेल: shahzadanwer469@gmail.com

मोबाइल: 9955927505

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 72-74
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

गाँधी जी के सपनों का भारत

डॉ. अर्चना वर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर,
राजकीय महाविद्यालय अमोढ़ी (चम्पावत)

सारांश
अजातशत्रु गाँधी जी ने सत्य अहिंसा और प्रेम के माध्यम से हमें सिर्फ स्वतन्त्रता की ही थाती नहीं सौंपी, अपितु उनका संपूर्ण जीवन, कर्म, दर्शन एवं व्यवहार, विचार, अस्त व्यस्त दुनिया, देश समाज, परिवार और व्यक्ति को प्राकृतिक रूप से सहज, सरल, शांत एवं सुखद जीवन जीते रहने का मार्ग है। गाँधी का शरीर इस दुनिया में न रहने पर भी गाँधी का विचार–दर्शन या जीवन शैली पूरी दुनिया के सारे सवालों से जूझने के लिए संपूर्ण मानवता को एक नई ऊर्जा एवं प्रेरणा से सहज ही भर देता है।

मूख्य शब्द
सिद्धांत, समाज, कर्मशीलता, स्वराज, अर्थनीति

प्रस्तावना
गाँधी यदि नैतिक राजनीति ही करते होते तब भी गनीमत थी, किंतु उन्होंने मानव–जीवन के हर पहलू पर अपने विचार रखे। जो व्यक्ति केवल अपने देश की आजादी नहीं, समूची मानवता की मुक्ति के बारे में अपने अलग विचार रखता हो, समाज के हर पहलू पर अपनी राय ही नहीं, सुनिश्चित कार्य पद्धति भी रखता हो ऐसे चुम्बकीय व्यक्तित्व का स्वामि होना अपरिहार्य है।
डॉ. ऊषा भटनागर के अनुसार – ”उनके सिद्धांतों का आंशिक अनुपालन ही करने लगे तो देश का नक्शा बदल जाएगा। गाँधी का लघु व्यक्तित्व अपने विराट चिंतन में, विराट कर्मशीलता में इतना पूर्ण है कि उसका आंशिक अनुकरण भी देश का भविष्य बदल सकता है।“[1]
गाँधी जी का संपूर्ण जीवन बिना थके, बिना रुके, बिना किसी भेदभाव के समग्र जीवन जीने का मानस समाज का सबसे जीवन्त उदाहरण है। ”कर्म ही जीवन है को जीने वाले कर्मयोगी महात्मा गाँधी द्वारा अपने निजी एवं सार्वजनिक जीवन में किये गये कार्यों या प्रवृत्तियों की एक सूची यदि हम बनाने की कोशिश करें तो हमें उनके द्वारा किए गए कार्यों से निरन्तर किसी भी कार्य या प्रवृत्ति के प्रति अपना सहज कर्तव्य भाव विकसित करने की प्रेरणा मिलती है।“[2]
गाँधी जी भारत को अपने मूल रुप में कर्मभूमि मानते थे वे इसे सदैव स्वतंत्र और बलवान देखने के पक्षपाती थे। स्वराज को उन्होंने एक पवित्र शब्द के रूप में ग्रहण किया था जिसका अर्थ वे आत्मशासन और आत्म संयम के रूप में स्वीकार करते थे। 26 मार्च 1931 को यंग इण्डिया में उन्होंने स्वराज के बारे में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए थे– ‘‘मेरे सपनों का स्वराज तो गरीबों का स्वराज होगा। जीवन की जिन आवश्यकताओं का उपयोग राजा और अमीर लोग करते हैं, वही सभी को सुलभ होनी चाहिए। इसमें फर्क के लिए स्थान नहीं हो सकता, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि हमारे पास उनके जैसे महल होने चाहिए। सुखी जीवन के लिए महलों की कोई आवश्यकता नहीं। हमें महलों में रख दिया जाय तो हम घबड़ा जायें लेकिन हमें जीवन की वे सामान्य सुविधाएँ अवश्य मिलनी चाहिए जिसका उपयोग अमीर

आदमी करता है। मुझे इस बात से बिल्कुल भी संदेह नहीं है कि हमारा स्वराज तब तक पूर्ण नहीं होगा जब तक ये सारी सुविधाएँ देने के लिए वह पूर्ण व्यवस्था नहीं कर देता।''

गाँधी जी ने अर्थनीति को एक नया ढाँचा दिया था, उनका कहना था कि मनुष्य जहाँ रहता है, वहीं उसकी बुनियादी जरूरतें पूरी होनी चाहिए। इसके लिए जरुरी है कि आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन प्रकृति के सहयोग, मनुष्य की प्रतिभा, क्षमता और उत्पादक सृजनशीलता से वहीं तैयार किए जाने चाहिये।

पश्चिमी विकास मॉडल को गाँधी जी ने अंधी पागल दौड़ बताते हुए कहा था कि यह हमें विनाश की ओर ले जाता है। अगर हमें विनाश से बचना है तो हमें विकास की दिशा बदलनी होगी, शोषण पर आधारित विकास हमें नहीं चाहिए, शोषण चाहे प्रकृति का हो या समाज के कमजोर तबके का हो, वह हमें अंततः विनाश की तरफ ले जायेगा।

गाँधी के स्वप्न के समाज में सर्व का उदय ठीक लगा उसके लिए जो क्रांति की पद्धति अपनाई गई वह वैज्ञानिक से अधिक मानवीय है। सामाजिक विषमता दूर करने में सर्वोदयी दृष्टिकोण अपनाकर ही कल्याण का पथ प्रशस्त किया जा सकता है। गाँधी जी ने स्वप्न देखा था उस 'रामराज्य' का जिसमें 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय' की भावना थी। सोचा गया था कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सबको समान अवसर और अधिकार मिलेंगे। भ्रष्टाचार मुक्त समाज की स्थापना होगी। न्यायपूर्ण समाज की बात की।

गाँधी जी समाजवाद को बहुत ही शुद्ध वस्तु समझते थे और इसलिए वे चाहते थे कि शुद्ध वस्तु को प्राप्त करने का साधन भी शुद्ध ही होना चाहिए। कोई भी व्यक्ति सत्य को असत्य से नहीं पा सकता। उनके समाजवाद में समाज के सभी सदस्यों को बराबरी का स्थान प्राप्त है। राजा–प्रजा, धनी–गरीब, मालिक–मजदूर सभी बराबर हैं तभी तो उनका समाजवाद अद्वैतवाद का पर्याय कहा गया है।

गाँधी जी के जीवन दर्शन में अहिंसा का महत्वपूर्ण स्थान था। किसी पशु की हिंसा करना ही हिंसा नहीं, बल्कि दूसरे के प्रति द्वेष भावना रखना, बुरा सोचना, बुरा देखना, बुरा कहना आदि भी हिंसा ही है। अहिंसा का पालन करना कठिन है, परंतु संभव है। एक देश का दूसरे देश के टकराव के रुप में, या विभिन्न रूपों में हिंसा बढ़ रही हैं ये समस्याएँ हमें गाँधीजी की तरफ देखने के लिए मजबूर कर रही है, क्योंकि उन्होंने हिंसा के बजाय 'अहिंसा' का मार्ग सुझाया था।

गाँधी जी ने हरिजनों और नारियों को समाज में बराबरी का दरजा देकर मानव–समता का व्यावहारिक प्रतिमान उपस्थित किया। वे अपने सिद्धांतों के प्रति अत्यधिक निष्ठावान होते हुए भी दुराग्रही नहीं थे। जिस देश अथवा समाज में स्त्री का आदर नहीं होता उसे सुसंस्कृत नहीं कहा जा सकता।

स्वतंत्र भारत के नौनिहालों को अपनी इच्छा अनुसार तैयार करने की बात की थी। छोटे–छोटे बालक स्कूलों से उठा लिए जाएँ और उन्हें पैसा कमाने के लिए मजदूरी के काम में लगा दिया जाय तो यह कार्य राष्ट्रीय पतन की निशानी है। अतः कारखानों में मजदूरों के तौर पर लिए जाने वाले बालकों की उम्र बढ़ा ली जाय। दूसरी तरफ लार्ड मैकाले की शिक्षा पद्धति को आदर्श मानकर अपने भावी कर्णधारों को तैयार करने की भी बात उनके मन में जरा भी नहीं थी।

भारत का सत्तर प्रतिशत उपभोक्ता गाँवों में बसता है। गाँवों और किसानों का विकास करके ग्राम बस्तियों का पुनरुत्थान किया जा सकता है। इस दृष्टि से हर गाँव स्वावलंबी होगा। पंचायत द्वारा ग्राम इकाई के संचालन का उन्होंने स्वप्न देखा था। खादी को भी पूरा–पूरा महत्व मिलेगा और स्वतंत्रता, समानता और जनता की एकता की प्रतीक होगी। वे विकेन्द्रित आर्थिक प्रक्रिया द्वारा संपूर्ण ग्रामीण अर्थव्यवस्था को नए आधार पर पुर्नगठित करना चाहते थे। इसके अन्तर्गत उन्होंने कृषि, पशुपालन, मत्स्यपालन तथा आर्थिक गतिविधियों के माध्यम से ग्रामीण जीवन की पुनःरचना करने का लक्ष्य निर्धारित किया था।

गाँधी का राष्ट्रवाद व्यक्ति और परिवार से विकसित होते हुए दूसरे राष्ट्रों तक जाता है। गाँधी का राष्ट्रवाद किसी भी राष्ट्र के प्रति हिंसा प्रतिरोध और प्रतिक्रिया में खड़ा नहीं होता। आज यह यहाँ तक संकीर्ण हो गया है कि हमसे जो सहमत नहीं हैं, वह राष्ट्रद्रोही है। यह राष्ट्र की भावना को क्षत विक्षत करने वाली दृष्टि है।

निजी एवं सार्वजनिक जीवन का कोई भी पहलू बचा नहीं जिस पर गाँधी जी ने विचार न किया हो और जिसे सात्विक सहज एवं प्राकृतिक रूप से अपनाया न हो। श्वास प्रश्वास की तरह खुद तो जीते ही थे

और अनंत काल तक मानव समाज को ऐसी ही सहजता के साथ जीते रहने की प्रेरणा देते रहेंगे। उनके जाने के बाद भी मिट्टी में हर कहीं, बिना बताये उनके संस्कार, उनके काम बार–बार जन्म लेते हैं 5 जी के इस भयानक दौर में भी गाँधी जी 1 जी यानी एक मात्र गाँधी, एक अद्वितीय गाँधी की तरह जिंदा हैं। "इस प्रकार गाँधी एक ऐसे प्रकाश पुंज की संज्ञा है, जिसका आलोक जीवन के समस्त कक्षों को आलोकित, सभी कोनों को उजागर करता है। यह उस समय तक हमारा पथ प्रदर्शन करता रहेगा, जब तक उदात्त जीवन मूल्यों के प्रति हममें आशा और ललक रहेगी।"[3]

गाँधी ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जिस भारत का सपना देखा था, इसके सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक गतिविधियों का संचालन इस तरह से होना चाहिए था, जिसमें निचले स्तर तक कहीं भी किसी भी तरह की गैर बराबरी न हो इसलिए आज यदि देश के किसी भी हिस्से से किसी के भूख से मरने की खबर आती है, तो इसका यही मतलब है कि गाँधी के रास्ते को ठीक से नहीं समझा गया है। गाँधी ने जिस अंतिम व्यक्ति की बात की थी, उसकी जद्दोजहद अब भी जारी है। "दुनिया में पैदा होने वाला हर मनुष्य बिना किसी सहारे खुद के आत्मविश्वास के साथ निर्भयता से निरन्तर मानव निर्मित खुद की जीवन यात्रा एवं धरती माता के प्राकृतिक जीवन क्रम में बिना कोई मानव निर्मित उपद्रव खड़ा किये खुद भी जी सकता है और दूसरों को भी सहज जीवन का आनन्द लेने देने का मार्ग अनन्तकाल तक कायम रहने का विचार हम सबको निरन्तर देता रहता है।"[4]

गाँधी जी युगदृष्टा थे। उन्होंने सत्य, अहिंसा, मानवता और स्वाधीनता का पाठ लोगों को पढ़ाया था और इन्हीं के बल पर गाँधी जी ने ब्रिटिश औपनीवेशिक साम्राज्य को भारत से हटाने का संकल्प लिया था। वे आज भी अपने ओजपूर्ण व्यक्तित्व के कारण अमर हैं। उनकी सभी मान्यताओं का निष्ठापूर्वक अनुसरण करके एक यशस्वी देश का निर्माण करना संभव है। "हमारा सर्वप्रथम और पुनीत कर्तव्य यह है कि हम उनके विश्वास के अनुरूप इसकी रक्षा करें तथा उनकी कल्पना के भारत का निर्माण कर समग्र रुप में उनके सिद्धांतों को अक्षुण्ण बनाए रखें।"[5]

उद्देश्य

गाँधी ने भी जो स्वच्छता अभियान चलाया था, उसका उद्देश्य भी सिर्फ साफ–सफाई या खुद का मैला साफ करने तक सीमित नहीं था, बल्कि उसके जरिए उन्होंने उस वक्त समाज में घनघोर तरिके से व्याप्त छुआछूत के खिलाफ अभियान छेड़ा था और उम्मीद है कि यह लक्ष्य समय पर हासिल कर लिया जाएगा। इसके साथ ही यह समझने की भी जरूरत है कि गाँधी का दर्शन समावेशी था, जिसमें हर किसी के लिए समान जगह थी।

निष्कर्ष

गाँधी की बहुत बड़ी देन, जिसके कारण उन्हें सदियों तक याद किया जाएगा, वह एक स्वप्नदर्शी मानव थे। गाँधी जी का विश्वास था कि यदि सत्य नहीं बचा तो स्वाधीनता की सार्थकता समाप्त हो जाएगी। उन्होंने विसंगति रहित भारतीय समाज की कामना की थी। गाँधी सिर्फ अतीत ही नहीं, भविष्य भी हैं। उनके विचार आज भी युनिवर्सल हैं। हम किसी भी काल, युग और स्थान पर इन्हें अपना सकते हैं। आज भी देश और दुनिया के समक्ष जो चुनौतियाँ हैं, उसके समाधान के लिए लोगों का ध्यान गाँधी की तरफ जाता है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक अलबर्ट आइंस्टीन ने 2 अक्टूबर 1944 को गाँधी के जन्मदिन के मौके पर उन्हें भेजे संदेश में कहा था कि "आने वाली पीढ़ियाँ शायद ही यकीन करें कि हाड़ मांस का बना कोई ऐसा व्यक्ति भी धरती पर चलता–फिरता था। जिन्हें जानने–समझने का कूतुहल आज भी सारी दुनिया में कायम है।''

संदर्भ सूची

1. गाँधी जी को याद करते हुए – डॉ. उषा भटनागर, वीणा, जनवरी 2004, पृ. सं. 21–22
2. गाँधी दर्शन (समग्रता से जीने का सहज मार्ग) –अनिल त्रिवेदी वीणा, अक्टूबर 2009, पृ. सं.–11
3. आलोक पुंज गाँधी – डॉ. आनंद नारायण शर्मा, वीणा, अक्टूबर 1989, पृ. सं.– 5
4. समग्रता में जीने का सहज मार्ग – अनिल त्रिवेदी, वीणा, अक्टूबर 2009, पृ. सं.– 12
5. गाँधी जी की कल्पना का भारत – शिव उपाध्याय, वीणा, अगस्त 1995, पृ. सं.–51

मो. न.– 6395760122 मेल– kavitakothari56@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 75-80
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

छत्तीसगढ़ में रंगमंच कला

रामकुमार साहू
शोधार्थी,
संत गहिरा गुरू विश्वविद्यालय सरगुजा, अम्बिकापुर (छ.ग.)
संप्रतिः सहायक प्राध्यापक (हिन्दी),
शासकीय महाविद्यालय रामानुजनगर, जिला–सूरजपुर (छ.ग.)

प्रकृति में मानव अन्य जीवों से इस रूप में भिन्न है कि उसने अपनी भावना, संवेदना, करूणा, उल्लास, वात्सल्य, प्रेम घृणा आदि को अभिव्यक्ति देने के लिए सांस्कृतिक जीवन का निर्माण किया है। विभिन्न मानव समाजों में नृत्य, संगीत, रंगमंच व चित्रकला आदि का सृजन उसकी इन्हीं सांस्कृतिक अभिरुचियों के कारण हुआ। रंगमंच इन्हीं कला रूपों में से एक है, जिसमें संगीत, नृत्य, चित्रकला एवं अभिनय के भरपूर प्रयोग द्वारा मानवीय भावनाओं यथा- दुःख- सुख, राग- द्वेष एवं प्रेम आदि की मंचीय प्रस्तुति की जाती है। वाचन, नृत्य एवं संगीत रंगमंच के अभिन्न एवं आंतरिक अवयव होते हैं।

रंगमंच शब्द 'रंग' और 'मंच' से मिलकर बना है। जहाँ रंग का आशय मंचित दृश्य को आकर्षक और मनोहारी बनाने के लिए पर्दों, दीवारों एवं छतों पर रंगों के विविध प्रयोग से है, साथ ही इसका प्रयोग कलाकारों के पहनावे और उनके सौंदर्य को निखारने के लिए भी होता है। वहीं मंच का अर्थ है- प्रदर्शित किये जा रहे नाटक और नृत्य को, दर्शकों की सुविधा के लिए एक ऊचे से स्थान पर प्रस्तुत करना ताकि सभी लोग उसे ठीक से देखकर रसास्वादन कर सकें।

छत्तीसगढ़ रंगमंच के मूल स्रोत एवं स्वरूप

छत्तीसगढ़ में रंगकर्म की प्राचीनकाल से ही समृद्ध परंपरा रही है। यहाँ रंगमंच की जड़ें अत्यंत प्राचीन एवं गहरी हैं। छत्तीसगढ़ में रंगकर्म का इतिहास मौर्य काल में ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में निर्मित रामगढ़ पहाड़ी की सीताबेंगरा गुफा से प्रारंभ होता है। इस रंगशाला को एशिया की प्राचीनतम नाट्यशाला माना जाता है। इस रंगशाला से रंगमंच और दर्शक दीर्घा के साक्ष्य भी प्राप्त हुए हैं। इस रंगशाला को कालक्रम की दृष्टि से आचार्य भरतमुनि के नाट्यशास्त्र की रचना से पूर्व का माना जाता है। अट्ठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मराठों के आने के साथ ही गम्मत तथा नाचा विधाओं ने छत्तीसगढ़ के रंगमंच को पुनर्जीवित किया। अट्ठारहवीं शताब्दी को छत्तीसगढ़ राज्य में नाट्य विधा का युगांतकारी काल माना जाता है। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बंगाली एवं मराठी रंगमंच के आगमन ने छत्तीसगढ़ में आधुनिक रंगमंच की गतिविधियों को गति प्रदान की। बंगाली रंगमंच ने छत्तीसगढ़ राज्य में बांग्ला नाटकों के मंचन के लिए 'कालीबाड़ी' की स्थापना की, जिससे बंगाली कलात्मक गतिविधियों को छत्तीसगढ़ में बढ़ावा मिला।

‘कालीबाड़ी’ से ही छत्तीसगढ़ में हिन्दी नाटकों के मंचन को भी गति मिली। इन हिन्दी नाटकों पर पारसी रंगमंच का प्रभाव दिखाई देता है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हबीब तनवीर ने अपनी संस्था नये थिएटर के माध्यम से छत्तीसगढ़ रंगकर्म को नवीन स्वरूप दिया और उनके अथक प्रयासों से ‘नाचा’ को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति मिली। इस काल में विभिन्न संस्थाओं, विधाओं एवं रंगकर्मियों ने छत्तीसगढ़ की रंगशैली को नई दिशा प्रदान की। छत्तीसगढ़ में आधुनिक रंगकर्म के विकास में पद्मभूषण प्राप्तकर्ता हबीब तनवीर का योगदान महत्वपूर्ण है। भारतीय जन नाट्य संघ (इप्टा) की स्थापना 25 मई 1943 ई0 को हुई थी। ‘इप्टा’ का छत्तीसगढ़ के आधुनिक रंगकर्म के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान है। छत्तीसगढ़ के सभी अंचलों में ‘एप्टा’ की शाखाएँ खुलीं और इन शाखाओं ने तात्कालिक घटनाओं को प्रस्तुत कर छत्तीसगढ़ में नई नाट्य चेतना को जागृत किया है।

छत्तीसगढ़ में रंगमंच की प्रवृत्तियाँ

छत्तीसगढ़ रंगमंच आंग्ल रंगमंच को अपना आदर्श मानती है। इसके कारण यहाँ के रंगमंच में अंग्रेजी का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। छत्तीसगढ़ के रंगकर्मी और रंगमंच संस्कृत, पारसी, फ्रेंच और अंग्रेजी प्रभाव से युक्त है। छत्तीसगढ़ी रंगमंच के साथ हिन्दी रंगमंच भी उसी गति से कार्यरत है। यहाँ के रंगमंच में महिलाओं की भागीदारी रही है, जिसका परिणाम यह हुआ की नाटकों के विषय वस्तु में समाज में होने वाली घटनाओं का यथार्थ चित्रण संभव हो सका। छत्तीसगढ़ के रंगमंच में प्रकृति चित्रण सर्वाधिक होता है यथा- पक्षियों के कलरव, हाथी का चिंघाड़ आदि। छत्तीसगढ़ के रंगमंच में नवीनतम प्रयोगधर्मिता का प्रभाव नगण्य है। छत्तीसगढ़ का रंगमंच हिन्दी सिनेमा से भी प्रभावित रही है। नुक्कड़ नाटकों का चलन अब बढ़ा है।

वर्तमान में छत्तीसगढ़ रंगमंच की समस्याएँ

ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकतर लोग थिएटर और सिनेमा को एक ही मानते हैं एवं टेलीविजन आदि के द्वारा सिनेमा देखकर ही अपना मनोरंजन कर लेते हैं। समय की अनुपलब्धता एवं रोजगार हेतु शहर के पलायन के कारण लोकनाट्य में कमी आयी है। पूर्व में विवाह, खुशी आदि के पर रंगमंच एवं परंपरागत नृत्यों, नाटकों का मंचन होता था, किन्तु वर्तमान में आधुनिकता के प्रभाव में अश्लीलता का भी जोर है, जो कि गलत है। रंगमंच का मूल उद्देश्य नैतिक शिक्षा एवं मनोरंजन है, जबकि वर्तमान में केवल मनोरंजन को ही आधार माना गया है। छत्तीसगढ़ में रंगमंच के कार्यक्रम मुख्यतः फसल कटाई के बाद संपन्न होते हैं, जबकि विदेशों और देश के अन्य हिस्सों में पूरे वर्ष चलते रहते हैं। क्षेत्रीयता के कारण राष्ट्रीय पहचान न मिलने के कारण भी यहाँ का रंगमंच पिछड़ा हुआ है। यहाँ के रंगमंच के कलाकारों के पास जीवन-यापन की भी समस्या है। साथ ही रंगमंच को वृहद स्तर पर शासकीय संरक्षण का भी अभाव है।

छत्तीसगढ़ के प्रमुख रंगकर्मी

हबीब तनवीर

हबीब तनवीर हिन्दी की लोकधर्मी नाट्य- शैली के अत्यंत समर्थ निर्देशक हैं। उन्होंने नाटक और लोक—नाट्य के बीच सेतु का काम किया है। लोकधर्मी नाट्य- लेखन एवं निर्देशन के द्वारा उन्होंने हिन्दी नाटक और रंगमंच को एक अलग ही पहचान दी है। हबीब तनवीर का जन्म 1 सितंबर 1923 को रायपुर] छत्तीसगढ़ में हुआ। लंदन की रॉयल अकादमी ऑफ ड्रेमेट्रिक आर्ट्स से उन्होंने नाट्य- कला का प्रशिक्षण भी लिया। 1959 में दिल्ली में ‘नया थियेटर’ की स्थापना कर उन्होंने अपने नाटकों की प्रस्तुतियाँ प्रारंभ की। 1954 में हबीब तनवीर ने पहला नाटक ‘आगरा बाजार’ लिखा और उसे दिल्ली व अन्य शहरों में प्रस्तुत किया। इस प्रथम प्रस्तुति ने ही उन्हें श्रेष्ठ निर्देशक के रूप में स्थापित कर दिया। हबीब तनवीर ने हिन्दी रंगमंच को एक दर्जन से अधिक सफल नाटक दिए हैं। ‘चरणदास चोर’ और ‘बहादुर कलारिन’ उनके सर्वाधिक सफल नाटक हैं। 1982 में फ्रांस के अंतरराष्ट्रीय नाट्य- समारोह में ‘चरणदास चोर’ को सर्वश्रेष्ठ नाट्य- प्रस्तुति का पुरस्कार प्राप्त हुआ था। इस नाटक से पहली बार भारतीय रंगकर्म

की विशिष्टता संसार में पहचानी गई। विशेषकर छत्तीसगढ़ी लोक- नाट्य को विश्व में पहचान मिली। हबीब तनवीर के सफलतम नाटकों में आगरा बाजार, चरणदास चोर, गाँव का नाम ससुराल मोर नाम दामाद, मिट्टी की गाड़ी, शाजापुर की शांताबाई, जिन लाहौर नहीं देखा सड़क, लाला शोहरत राय और मुद्राराक्षस का नाम लिया जा सकता है। 'चरणदास चोर' का विश्व के 25 देशों में प्रदर्शन हो चुका है। यह उनका अत्यंत लोकप्रिय एवं सदाबहार नाटक है। इन्होंने छत्तीसगढ़ी नाट्य विधा को राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विख्यात किया।

हबीब तनवीर ने अपनी प्रस्तुतियों में छत्तीसगढ़ के लोक, कलाकारों का चयन किया। भूलवाराम, ठाकुरराम, मदनलाल, बाबूदास, लालूराम, मालाबाई, फिदाबाई आदि लोक कलाकार उनके नाटकों के प्राण रहे हैं। छत्तीसगढ़ के गाँव–गाँव जाकर उन्होंने कलाकारों को एकत्रित किया। लोक कलाकारों की तलाश में उन्हें बहुत परिश्रम करना पड़ा है। हबीब तनवीर लोक-नाटकों की शक्ति को अच्छी तरह पहचानते थे। उन्होंने अपने नाटकों में छत्तीसगढ़ी लोक-नाट्य 'नाचा' के पारंपरिक संगीत, वाद्य, नृत्य, गायन, अभिनय और मंच का अत्यंत कलात्मक एवं कल्पनाशील प्रयोग किया है। लेखक, निर्देशक, अभिनेता होने के साथ&साथ वे कवि और पत्रकार भी थे। हबीब तनवीर को नाट्य- कला में विशिष्ट योगदान के लिए कई सम्मान प्राप्त हो चुके हैं। 1969 में उन्हें संगीत नाटक अकादमी का पुरस्कार मिला। 1975 में मध्यप्रदेश शासन का शिखर सम्मान प्राप्त हुआ। 1982 में वे पद्मश्री से एवं 2002 में पद्मभूषण से भी विभूषित हुए। 1983 में उन्हें इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़ ने डी-लिट- की मानक उपाधि दी। 1990 में कालिदास सम्मान मिला। वे 1972 से 1978 तक राज्यसभा के मनोनीत सदस्य रहे। पं0 रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर की सुंदरलाल शर्मा पीठ में वे 1981 से 1984 तक विजिटिंग प्रोफेसर भी रहे। 8 जून 2009 को इनकी मृत्यु हो गई।

रामचन्द्र देशमुख

छत्तीसगढ़ में रंगकर्म के विकास में रामचन्द्र देशमुख का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनका जन्म 25 अक्टूबर, 1916 को राजनांदगाँव, छत्तीसगढ़ में हुआ था। कल्पनाशील रामचन्द्र देशमुख ने छत्तीसगढ़ में लोकमंच का इतिहास बनाया। इन्होंने 1950 में 'छत्तीसगढ़ी देहाती कला विकास मंडल' की स्थापना की थी। लोकमंच को परिमार्जित और परिष्कृत करने की दिशा में 'छत्तीसगढ़ देहाती विकास मंडल' रामचंद्र देशमुख का पहला मंचीय प्रयोग था। रामचन्द्र देशमुख ने कला को समाज सुधार एवं सामाजिक जागरण से जोड़ा। छत्तीसगढ़ अंचल के लोक-मंचीय-कला इतिहास में 'चंदैनी गोंदा' ने बड़ी क्रांति कर दी। इस मंच के माध्यम से छत्तीसगढ़ की लोक कला और लोक संस्कृति का भव्य रूप सामने आया। 'चंदैनी गोंदा' के बाद की भव्य प्रस्तुति 'देवार डेरा' थी, जो इस चंचल के सर्वाधिक उपेक्षित देवार जाति को समर्पित थी। लोक सांस्कृतिक गगन में छत्तीसगढ़ की चिरव्यथित माँ के ममतामयी ज्योत्सना लेकर 'कारी' के रूप में उदित हुई। 'कारी' इन्हीं जगमगाते मूल्यों की प्रभापुंज थी। तीन-चार वर्षो के भीतर ही अपने चालीस प्रदर्शनों से 'कारी' ने अपनी ममता की फुहार से समूचे अंचल को भिगो दिया। रामचंद्र देशमुख ने डेढ़ हजार पुस्तकों का ग्रंथालय बनाया था। वे साहित्य के अध्येता थे। कला मंच के पारखी, मर्मज्ञ, अध्ययनशील रामचन्द्र देशमुख लोकनाट्य मंच के सेतुबंध थे, जिन्होंने छत्तीसगढ़ के गाँवों में जागरण की लहर दौड़ाई।

सत्यदेव दुबे

सत्यदेव दुबे एक प्रसिद्ध भारतीय रंगमंच निर्देशक, अभिनेता, नाटककार, पटकथा लेखक और चलचित्र अभिनेता थे। इनका जन्म 19 मार्च 1936 को बिलासपुर, छत्तीसगढ़ में हुआ था। इन्होंने मुंबई के थियेटर ऑफ ड्रामेट्रिक आर्ट से प्रशिक्षण प्राप्त किया। इन्होंने हिन्दी के अलावा मराठी और गुजराती नाटकों की प्रस्तुति की। वे 30 से अधिक नाटकों का प्रदर्शन किया। उन्होंने अनेक फिल्मों का लेखन, निर्देशन तथा अभिनय भी किया। इन्होंने निर्देशन का प्रशिक्षण, पटकथा लेखन, लघु फिल्म निर्माण एवं वृत्त चित्र निर्माण आदि कार्य भी किए। उन्होंने भारतीय रंगमंच को एक नई दिशा दी और कई प्रसिद्ध नाटकों का निर्देशन किया, जिनमें 'अंधायुग' 'ययाति', 'हयबदन',

‘इन्द्रजीत’ और ‘पगला घोड़ा’ है। इन्हें मध्यप्रदेश का शिखर सम्मान, महाराष्ट्र सरकार द्वारा श्रेष्ठ निर्देशक का सम्मान, 1972 में संगीत नाटक अकादमी द्वारा सर्वश्रेष्ठ निर्देशक का पुरस्कार, 1978 में फिल्म ‘भूमिका’ के लिए राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार और 2011 में पद्म भूषण पुरस्कार प्राप्त हुआ। सत्यदेव दुबे जी का निधन 25 दिसंबर 2011 को मुम्बई में हुआ।

डॉ0 शंकर शेष

प्रसिद्ध नाटककार डॉ0 शंकर शेष का जन्म 2 अक्टूबर सन 1933 में छत्तीसगढ़ के बिलासपुर में हुआ था। उनके पिता नागोराव शेष ने छत्तीसगढ़ का प्रथम थिएटर जानकी विलास पैलेस बनाया था। इन्होंने नाटकों के अतिरिक्त उपन्यास, अनुवाद, एकांकी, बाल नाटक आदि की रचना की। इन्हें साहित्यिक वातावरण विरासत में मिली थी। उनका संपर्क आकाशवाणी से होने के बाद उन्हें रेडियो नाटक में कथा कथन का अवसर मिला और वे बहुत कम समय में ही रेडियो के लोकप्रिय कलाकार बन गये। डॉ0 शंकर शेष स्टेट बैंक ऑफ़ इंडिया, मुम्बई में राजभाषा विभाग में मुख्य अधिकारी के रूप में कार्यभार संभाला। उन्होंने हिन्दी नाटक साहित्य में नाटक, उपन्यास, बाल नाटक, एकांकी एवं पटकथा लेखन में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। इनका प्रथम नाटक ‘मूर्तिकार’ था। डॉ0 शंकर शेष ने लगभग 20 नाटकों की रचना की। इनके सर्वाधिक सफल नाटक ‘रक्तबीज’ एवं 'मायावी सरोवर थे। इसके अतिरिक्त अन्य नाटकों ‘बिन पानी के द्वीप’, ‘तिल का ताड़’, ‘बेटी वाला बाप’ ‘कोमल गांधार इत्यादि का मंचन भी प्रसिद्ध नाट्य निर्देशको द्वारा हुआ। इन्होंने बस्तर के आदिवासी जनजीवन पर आधारित नाटक रचा, जिस पर फिल्म बन चुकी है। यह मूलतः गरीब मजदूरों के शोषण की कथा है। ‘एक और द्रोणाचार्य’ उनका सबसे लोकप्रिय नाटक था, इस नाटक को अनेक बार मंच पर प्रदर्शित भी किया जा चुका है। इन्होंने ‘धर्म कुरुक्षेत्र’ नामक उपन्यास भी लिखा। मध्यवर्गीय समस्याएँ, पौराणिक कथाएँ, सामाजिक सम्बन्ध तथा आदिवासी शोषण आदि उनकी रचनाओं के प्रमुख विषय थे। उनके प्रसिद्ध नाटक ‘घरौंदा’ पर फिल्म बनी तथा ‘कोमल गांधार’ नामक नाटक को साहित्य कला परिषद् का सम्मान मिला। डॉ0 शंकर शेष को उनके नाटक ‘घरौंदा’ और ‘दूरियाँ’ के लिए मध्यप्रदेश सरकार द्वारा ‘आशीर्वाद पुरस्कार’ से सम्मानित किया गया। साथ ही फिल्मी ‘दूरियाँ’ की कहानी के लिए उन्हें फिल्मफेयर पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इनका निधन 28 अक्टूबर, 1981 को मुंबई में हुआ।

विभु कुमार

छत्तीसगढ़ के रंगकर्म को नवीन दिशा देने में सदैव अग्रसर रहने वाले विभु कुमार राज्य के प्रमुख रंगकर्मियों में से एक हैं। इनका जन्म 1942 में हुआ था। इन्होंने ‘अभिमन्यु सड़क पर’, ‘बाकी इतिहास’, ‘हत्या एक प्रकार की’, ‘मुन्नीबाई’ एवं ‘तालों में बंद प्रजातंत्र’ जैसे सुप्रसिद्ध नाटकों का मंचन व निर्देशन किया। ये लम्बे समय तक हस्ताक्षर, अग्रगामी एवं प्रयास नामक संस्थाओं के साथ सक्रिय रहे। इन्होंने अनेक नाटकों का लेखक एवं मंचन किया तथा छत्तीसगढ़ के नुक्कड़ नाटक की परम्परा की शुरुआत की।

अशोक मिश्र

अशोक मिश्र का जन्म 24 जून 1953 को छत्तीसगढ़ के रायपुर में हुआ था। इनके निर्देशन में ‘अंधेर नगरी’, ‘छतरियाँ’, ‘सिंहासन खाली है’ जैसे नाटकों ने लोकप्रियता पायी। इन्होंने ‘भारत एक खोज’, सुरभि आदि अनेक धारावाहिकों की पटकथा लिखी, साथ ही निर्देशन और अभिनय भी किया। इन्हें 1995 का मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् पुरस्कार, फिल्म ‘नसीम’ के लिए श्रेष्ठ पटकथा लेखन का पुरस्कार, 1995 एवं 1996 में वीडियोकॉन अवार्ड भी मिला तथा वर्ष 2000 में फिल्म ‘समर’ के पटकथा लेखन के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार भी प्राप्त हुआ।

अनूपरंजन पाण्डेय

इनका जन्म 21 जुलाई, 1965 को बिलासपुर, छत्तीसगढ़ में हुआ था। इन्होंने 25 राष्ट्रीय कार्यशालाओं एवं 02 अंतर्राष्ट्रीय कार्यशालाओं में भाग लिया, जिनमें से इन्होंने 20 नाटकों का निर्देशन भी किया। इन्होंने 'नया थियेटर' में बतौर अभिनेता पूरे भारत के साथ इंग्लैंड व स्कॉटलैण्ड में भी नाटकों का प्रदर्शन किया तथा अनेक पुस्तकों का लेखन एवं सम्पादन भी किया है। 2019 इन्हें पद्मश्री से भी पुरस्कृत किया गया है।

जयंत शंकर देशमुख

जयशंकर देशमुख का जन्म 19 दिसंबर] 1958 को रायपुर में हुआ था। इन्होंने बिरसा मुंडा, जूलूस, तटस्थ, अंधेर नगरी, मृत्युंजय एवं कई नाटकों का निर्देशन किया। ये वर्ष 1982 में महाराष्ट्र नाट्य मण्डल रायपुर में निर्देशक के रूप में मनोनीत किए गये। इन्होंने कार्ट जॉन मार्टिन, बेनविट्ज, बंशीकौल समेत कई प्रतिष्ठित निर्देशकों के साथ उल्लेखनीय कार्य किया। ये मानव संसाधन विकास के रंगमंच परियोजना में सहायक निदेशक, कलाकार, कला निर्देशक के तौर पर जी-टी-वी., मेट्रो चैनल, बी-बी-सी. आदि में कार्य कर चुके हैं। इन्होंने शेखर कपूर की प्रसिद्ध फिल्म बैंडिट क्वीन में भी कार्य किया है। ये भारत भवन में 1981&95 के मध्य वरिष्ठ कलाकार रहे। इन्होंने अनेक हिन्दी, अंग्रेजी और मराठा नाटकों का निर्देशन किया।

मिर्जा मसूद

छत्तीसगढ़ में रंगकर्म की विकास यात्रा के प्रमुख सह यात्रियों में मिर्जा मसूद एक प्रमुख नाम है। इन्होंने 'अवंतिका' नामक संस्था का गठन करके अब तक लगभग 20 नाटकों का सफल मंचन किया है । इनके नाटकों में लोकनाट्य का समावेश भरपूर रहता है। गोदाम, जिन लाहौर नई देखिया, हरिश्चंद्र की लड़ाई, कोर्ट मार्शल, अंधा युग, माटी का गाड़ी, कालीगुला, जामुन का पेड़ एवं उसकी माँ आदि कहानियों का इन्होंने नाट्य रूपांतरण करके अंचल में कलात्मकता का परिचय दिया है।

भैयालाल हेड़ाऊ

भैयालाल हेड़ाऊ का छत्तीसगढ़ी में रंगमंच के लिए समर्पण प्रशंसनीय है। इन्होंने सत्यजीत रे की फिल्म 'सद्गति' में अभिनय किया। आकाशवाणी से लोक गायन तथा लोक नाटकों के अभिनय एवं निर्देशन ने इन्हें एक राष्ट्रीय लोक कलाकार के रूप में प्रतिष्ठित किया। इन्होंने 'सोनहा बिहान' तथा 'चंदैनी गोंदा' नाट्य संस्थाओं के अतिरिक्त फिल्मों व धारावाहिकों में अभिनय भी किया।

राजकमल नायक

अभिनय रंगमंच के क्षेत्र में राजकमल नायक विश्व विख्यात नाम है। इन्होंने अपना रंगकर्म रायपुर की जमीन से प्रारंभ किया। आवामी मंच का इन्होनें रायपुर शहर ही नहीं अन्य स्थानों में नये रंगकर्मियों को खोज- खोज कर रंग सक्रियता में अहम भूमिका निभायी। इनकी सफल प्रस्तुतियों में लुकवा का शहनामा, गगन घटा गहराती और बकासुर प्रमुख है। इन्होंने भारत भवन में दो दशक तक रंग निर्देशन का कार्य किया। वर्ष 2017 में निर्देशन के लिए संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है।

डॉ0 कुंजबिहारी शर्मा, सोमेश अग्रवाल, राजकमल, दिनेश दीक्षित, राजेन्द्र चौबे आदि कलाकार नाट्य परंपरा को राज्य में आगे बढ़ा रहे हैं। विनय अवस्थी, प्रोफेसर जोगेलकर आदि का भी नाटक के क्षेत्र में उल्लेखनीय व्यक्तित्व हैं। भिलाई- दुर्ग में रंगकर्म की गतिविधियां बढ़ी है। यहाँ लगभग 40—50 संस्थाएँ कार्यरत हैं। यहाँ के प्रसिद्ध कलाकार सुब्रतो बोस के अतिरिक्त शक्तिपद चक्रवर्ती, राजकुमार सोनी, गोपाल राजू आदि हैं। रायगढ़ के हरि सिंह ठाकुर, अजय आठले, पुष्पराज सिंह, प्रमोद वर्मा, उमाशंकर चौबे अच्छे रंगकर्मी रहे हैं।

अभिव्यक्ति का सबसे प्राचीनतम व सबसे नवीनतम माध्यम रंगमंच ही है। छत्तीसगढ़ कला और संस्कृति का गढ़ है। छत्तीसगढ़ की रंगमंच परंपरा दुनिया में सबसे पुराना माना जाता है। दुनिया का सबसे पुराना नाट्यशाला छत्तीसगढ़ के सरगुजा में रामगढ़ के पहाड़ी पर मिलता है। रामगढ़ के सीताबेंगरा गुफा को छत्तीसगढ़ में रंगकर्म की

परंपरा का जीवंत प्रमाण के रूप में देखा जाता है। छत्तीसगढ़ रंगमंच कला समृद्ध लोक परंपराओं, नाचा और जनजाति नृत्य नाटकों का एक जीवंत मिश्रण है] जो ग्रामीण जीवन के व्यंग्य, सामाजिक मुद्दों और पौराणिक कथाओं को मंच पर जीवंत करता है। रंग परंपरा में छत्तीसगढ़ के नाचा-गम्मत शैली की परंपरा भी बेहद प्राचीन है। मशहूर रंगकर्मी हबीब तनवीर ने छत्तीसगढ़ लोक शैली और कलाकारों को अंतर्राष्ट्रीय पहचान दिलायी। हबीब तनवीर ने छत्तीसगढ़ के लोक कलाकारों के साथ मिलकर 'चरणदास चोर' जैसे नाटकों के माध्यम से रंगमंच कला को वैश्विक मंच प्रदान किया। छत्तीसगढ़ी रंगमंच न केवल मनोरंजन का साधन है, बल्कि यह सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक विरासत का वाहक भी है। छत्तीसगढ़ अपने सांस्कृतिक विरासत में समृद्ध है, राज्य में एक बहुत ही अद्वितीय और जीवंत संस्कृति है। इनके लयबद्ध लोक संगीत, नृत्य और नाटक देखना एक आनन्ददायक अनुभव है, जो राज्य की संस्कृति में अंतर्दृष्टि भी प्रदान करता है। राज्य का सबसे प्रसिद्ध नृत्य- नाटक पंडवानी, राउत नाचा, पंथी आदि है। छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य ग्रामीण अंचलों में मंचित रोचक नाट्य है। छत्तीसगढ़ में प्राचीन नाट्यशाला सदियों से मौजूद है। रायपुर में प्रतिवर्ष मुक्तिबोध स्मृति, शंकर शेष स्मृति, हबीब की यादें नाम से नाट्य समारोह की निरंतरता जारी है। उम्मीद है कि छत्तीसगढ़ की जीवंत परंपरा सदा इसी तरह कायम रहेगी।

संदर्भ ग्रंथ :–

1- छत्तीसगढ़ कला एवं संस्कृति, डॉ0 गीतेश कुमार अमरोहित

2- छत्तीसगढ़ विस्तृत अध्ययन, रमन पटेल, चंद्रशेखर बघेल

3- छत्तीसगढ़ सामान्य ज्ञान, उमेश चंद्राकर

4- जनपदीय भाषा साहित्य (छत्तीसगढ़ी), डॉ0 सत्यभामा आडिल (संपा), मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी

5- अर्वाचीन हिन्दी काव्य, डॉ0 राजेन्द्र मिश्र (संपा), मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी

6- छत्तीसगढ़ समग्र, रमेशचन्द्र देवांगन, सुनील टुटेजा (संपा),

7- छत्तीसगढ़ में रंग परंपरा, वैभव शिव पाण्डेय

8- विकीपीडिया

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 81-83
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

The Role of Geographical Indications in Sustainable Development

PRIYA SHUKLA
Research Scholar,
MGKVP Varanasi

Abstract
Geographical Indications (GIs) represent a significant category of intellectual property rights that link products to their geographical origin, ensuring authenticity, quality, and reputation. In recent years, GIs have gained prominence as instruments of sustainable development by promoting economic growth, protecting cultural heritage, and ensuring environmental sustainability. This paper critically examines the role of GIs in fostering sustainable development, with a special focus on the Indian legal framework under the Geographical Indications of Goods (Registration and Protection) Act, 1999. It also analyses judicial trends and highlights the challenges associated with effective GI protection in India.
Keywords: Geographical Indications, Intellectual Property Law, GI Act 1999, TRIPS Agreement, Legal Protection, Rural Development, Cultural Heritage, Environmental Sustainability.

Introduction

Geographical Indications (GIs) are distinctive signs used on goods that have a specific geographical origin and possess qualities, reputation, or characteristics essentially attributable to that origin.[1] They form an integral part of intellectual property law and are recognized globally under the Agreement on Trade-Related Aspects of Intellectual Property Rights (TRIPS).

The concept of sustainable development, as defined in the Brundtland Report, emphasizes the need to balance economic growth with social equity and environmental protection.[2] In this context, GIs provide a unique mechanism that integrates these three pillars by promoting localized economic development while preserving traditional knowledge and environmental resources.

---

[1] World Intellectual Property Organization, *Geographical Indications: An Introduction*, WIPO Publication No. 952 (2017), p. 8.

[2] World Commission on Environment and Development, *Our Common Future* (Oxford University Press, 1987), p. 43.

Concept and Nature of Geographical Indications

A Geographical Indication is not merely a sign but a collective right that benefits all producers within a specific region. Unlike trademarks, which are privately owned, GIs are community-based rights.[3] They indicate a direct link between the product and its place of origin, which contributes to its uniqueness.

GIs can be categorized into agricultural products, natural goods, and manufactured goods. Examples include agricultural products like tea and spices, handicrafts, and textiles. The value of a GI lies in its reputation, which is built over time and is closely tied to local traditions and environmental factors.

India enacted the Geographical Indications of Goods (Registration and Protection) Act, 1999 to comply with its international obligations under TRIPS.[4] The Act provides a comprehensive mechanism for the registration and protection of GIs in India.

Under the Act, a GI is defined as an indication that identifies goods as originating from a specific territory where a given quality or reputation is attributable to its geographical origin.[5]The Act establishes a GI Registry in Chennai and provides for the registration of authorized users.

The rights conferred under the Act include the exclusive right to use the GI and to prevent unauthorized use. Infringement occurs when an unauthorized party uses a GI in a manner that misleads consumers or constitutes unfair competition.

Economic Role in Sustainable Development

GIs significantly contribute to economic sustainability by enhancing the marketability of products. GI-tagged products often command higher prices due to their authenticity and quality.[6] This premium pricing benefits local producers, particularly in rural areas, by increasing their income and improving their standard of living.

Furthermore, GIs promote export opportunities and enhance the global competitiveness of local products. They create niche markets and reduce dependence on mass production, thereby supporting small-scale industries and artisans.

Preservation of Cultural Heritage and Traditional Knowledge

One of the most important contributions of GIs is the protection of cultural heritage. Many GI products are deeply rooted in traditional knowledge and practices passed down through generations.[6] By providing legal recognition, GIs ensure that these traditions are preserved and protected from misappropriation.

This protection also fosters a sense of identity and pride among local communities. It prevents the exploitation of traditional knowledge by external entities and ensures that the benefits accrue to the rightful custodians.

Environmental Sustainability

GIs promote environmentally sustainable practices by emphasizing the relationship between products and their geographical environment.[7] The quality of GI products often depends on natural factors such as soil, climate, and biodiversity.

---

[3] Dev Gangjee, *Relocating the Law of Geographical Indications* (Cambridge University Press, 2012), p. 25.

[4] The Geographical Indications of Goods (Registration and Protection) Act, 1999.

[5] Ibid., s. 2(1)(e).

[6] Dev Gangjee, supra note 3, p. 112.

[7] K.C. Kailasam & Ramu Vedaraman, *Law of Trademarks and Geographical Indications* (2nd edn., LexisNexis, 2010), p. 689.

As a result, producers are encouraged to adopt sustainable methods of production to maintain the quality and reputation of their products. This contributes to the conservation of natural resources and biodiversity, which is essential for long-term sustainability.

Role in Rural Development

GIs play a crucial role in rural development by generating employment and promoting local industries.[8] They reduce migration from rural to urban areas by creating livelihood opportunities within local communities.

The development of GI-based industries leads to infrastructure development, skill enhancement, and increased investment in rural areas. This contributes to balanced regional development and reduces economic disparities.

The **Indian judiciary** has played a significant role in strengthening GI protection through various decisions.

In *Tea Board of India v. ITC Ltd.*,[9] the Calcutta High Court addressed the misuse of the term "Darjeeling" by a corporate entity. The court emphasized the importance of protecting the reputation of GI products and preventing unfair competition.

Similarly, in *Scotch Whisky Association v. Golden Bottling Ltd.*,[10] the Delhi High Court upheld the protection of foreign GIs in India. The court held that the use of deceptive indications that mislead consumers violates the principles of GI protection.

These cases demonstrate the judiciary's commitment to safeguarding GI rights and ensuring compliance with international standards.

Challenges in GI Protection

Despite the potential of GIs, several challenges hinder their effective implementation. These include lack of awareness among producers, inadequate enforcement mechanisms, and limited marketing strategies.

Additionally, globalization poses a threat to GI products due to the risk of imitation and misuse. The absence of strong international enforcement mechanisms further complicates the protection of GIs.

Addressing these challenges requires coordinated efforts from the government, legal institutions, and local communities.

Geographical Indications represent a powerful tool for achieving sustainable development. They integrate economic growth, cultural preservation, and environmental sustainability in a unique manner. India's legal framework provides a strong foundation for GI protection; however, effective implementation and awareness are essential for maximizing their potential.

With proper policy support and enforcement, GIs can significantly contribute to inclusive growth and sustainable development, particularly in rural areas.

---

[8] FAO, *Linking People, Places and Products* (FAO, 2009), p. 56.

[9] *Tea Board of India v. ITC Ltd.*, (2011) 45 PTC 238 (Cal).

[10] Scotch Whisky Association v. Golden Bottling Ltd., 2006 (32) PTC 656 (Del).

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 84-89
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

The Role of Nishkama Karma and Applicability of Karma Yoga in Contemporary Society

Mr. Jitendra Pratap Singh
Assistant Professor (Yoga Vibhag)
Jagadguru Rambhadracharya Divyang State University (U.P)
Ramana Mohan Pusapati
(M.A Yoga)
Jagadguru Rambhadracharya Divyang State University (U.P)

Abstract

This paper examines nishkama karma as a tool to reform the society in the present times. In today's fast-paced, result-oriented society, there is a constant, hurried pursuit of outcomes across numerous fields. Sakama Karma binds individuals to the results of their actions, leading to a cycle of pleasure, pain, and ultimate disappointment. This study demonstrates that Nishkama Karma is the practice of performing one’s duty (Dharma) without being obsessed with the fruits or rewards of that action.It highlights the applicability of this approach with examples. It is a theoretical analysis. Following Nishkama karma is Karma Yoga, wherein your duty is converted into a spiritual practice. The human brain never wants things half done. This study analyzes initiatives aimed at fostering well-being and reducing burnout, counterproductive competition, and organizational friction in fields such as education, personal development, and corporate management. This paper aims to promote the application of nishkama karma in daily life by understanding it as a duty. Several techniques have been proposed to enhance workplace conditions and improve employee health.

INTRODUCTION

Humans lean on the Divine, much like birds finding shelter in trees, recognizing our nature as a connected part of the whole. Sri Krishna teaches Nishkama Karma, which Literally translates to "desire less action" or "action without motive". He says to fully engage in the process without becoming emotionally entangled in the desire for a specific, selfish outcome. For example, it is difficult to remember all the items to bring from the grocery store while standing in front of the shopkeeper. We often note them down on a piece of paper; otherwise, we might forget. In this example, we have shifted our focus to the process by creating a list, rather than trying to remember everything on the spot. This shows how to

perform daily duties (Karma) without being consumed by the anxiety of the results (Kamana), which is the essence of Nishkama Karma. It is not a passive philosophy; rather, it instructs us to work diligently without becoming obsessed with the outcomes. When actions are driven by desire for specific outcomes (Sakama Karma), the person becomes tied to the fruits of their actions, whether good or bad.

we are not mere human beings but actually one with the Supreme Consciousness or Soul. This is called Self-realization. By practicing service as Nishkama Karma, which is the essence of Karma Yoga, one achieves true inner peace. By analyzing case studies of companies like Infosys and Toyota, demonstrated that Nishkama karma is a highly effective, adaptable principle for enhancing workplace environment and social cohesion.

It connects with similar concepts of altruism and empathy in other traditions, driving actions that foster social cohesion and community development. Even the enlightened continue to work, not for themselves, but to set an example for the rest of the world(Bhagavad Gita (Chapter 3, verse 25).

The Philosophical and Practical Foundations of Nishkama Karma

Vidya (knowledge) is categorized into two types. (i) Para Vidya (higher knowledge), (ii) Apara Vidya (lower knowledge).

The phrase "Sa Vidya Ya Vimuktaye-Vishnu Purana " means "Knowledge is that which liberates us". According to the Mundaka Upanishad, all worldly knowledge including the literal study of the Vedas is considered Apara Vidya because it deals with mundane, temporary results. Para Vidya is the transcendental knowledge of the Absolute (Brahman) that leads to liberation. Realizing the Bhagavad Gita is regarded as Para Vidya (higher, spiritual knowledge) because it directly teaches about the Supreme Brahman and liberation. Furthermore, the end of every chapter in the Bhagavad Gita reminds us that it is Brahma Vidya (the science of God) and Yoga Shastra.

Nishkama Karma is discussed in Bhagavad gita, sankhya yoga, verse 47. It says " Karmanyevadhikaraste, Ma phaleshoukada chana, Ma karma phalaheturbhur, Ma tesangostvakarmani" which means "Never consider yourself the cause of the results of your activities, and never be attached to inaction".

Etymology

The term Nishkama Karma is derived from three Sanskrit components, "nih" a prefix meaning negation or "without", "kama" meaning "desire", and "karma" meaning "action". As the name implies, Nishkama Karma is the process of performing action without attachment to its expected results. Philosophy acknowledges that total desirelessness is impossible while living; however, one can shift the motive from personal gain (lower goal) to higher service or self-realization.

Karma yoga works together with Bhakti and Jnana yoga. There is an inner craving in every one of us for the completeness of our actions. A karma yogi is one who acts selflessly, without attachment to the results of their actions. A sthitaprajna is a person of steady wisdom who remains unperturbed by the fluctuations of life.

Karma can be classified into three divisions based on the intent or attitude.

1. Sakama karma, 2. Nishkama karma, 3. akarma.

Sakama Karma

It works with desire (kamana). Desire and ego go hand in hand. Your likes, dislikes, and ego make us slaves to our desires. The ego makes the person feel like a "separate doer" rather than an instrument. Followers of this path aim for end results, motivated by desires. It can be sustained only as long as you have the strength, resources, and desire to continue, but it is ultimately limited by the lifespan of the body.

Their satisfaction or material gains are temporary often leading to sorrow later. One can't escape the consequences(Karmic Debt) of the action. As long as we are attached to the results, negativity will persist. Individuals working under the influence of desire-driven motives remain trapped in the cycle of birth and death(samsara) indefinitely. Because Sakama Karma is driven by selfish desire, failure results in emotional bondage, preventing the individual from moving forward".

Example: Helping a person for a reward or thanks.

Nishkama Karma

In contrast to Sakama Karma, Nishkama Karma brings peace, purity, and guides us to liberation. Even in this case, one cannot escape the paradox of desire, but one works for the greater good and the divine. The focus here is on the process, not the end result.

One cannot stay calm for even a moment without work; it is necessary to perform our chores, duties, or responsibilities. Dharma is paramount. Nishkama Karma is not merely doing work without desire(without selfish motive), it is performing righteous duty (Svadharma) as an offering to the Divine. Negative activities violate basic Dharma, making it impossible to classify them as Nishkama Karma. soul is gradually released from the cycle of rebirth by continuously performing actionswithout expecting results. Performing your duty without desire (for praise or result) is not mere labor, but a spiritual practice that transforms mundane existence into a "yoga of action".

Countless practitioners, sages, and spiritual leaders have testified that working without attachment to the outcome leads to inner peace. Because the practitioner is not desperately chasing a specific outcome, they are less susceptible to depression and anxiety.

Examples: Mother's care, sun, or nature expects nothing in return.

The transformation of Ratnakar, a robber who initially followed Sakama karma (selfish action), into the Maharishi Valmiki is an impressive example of nishkama karma.

One has to learn to gradually transform oneself from Sakama to nishkama karma.

Akarma

It is action that produces no reaction-a state of inaction in action.

Examples: Food offering to God.

During the COVID-19 pandemic, economic activities were hindered even though economic structures were ready. All services provided were Nishkama Karma (selfless action), and the overarching situation was Akarma (action in inaction).

A Critical Evaluation of Nishkama Karma

To live spiritually is to consistently align one's actions with the fundamental truths below:

- Nishkama Karma is the process of detaching from desire, acting without fear of failure or hunger for success.
- It is doing your duty (Dharma) solely because it is your responsibility.
- It involves eliminating the ego by abandoning the notion of being the "doer".
- It is offering actions to God, transforming work into prayer (Ishvara Arpanam).
- It is keeping the motive Sattvic to achieve Chitta Suddhi (purification of the mind).
- It is remaining unperturbed by results (success or failure) (Samatvam or Equanimity).
- It is performing actions with perfection, known as skill in action (Yogaah Karmasu Kaushalam).

The overarching definition is action performed without attachment to the results. The other points mentioned explain how to achieve that state of mental equilibrium.

All our actions and the objects around us are composed of three gunas or qualities. They are Sattva, Rajas, and Tamas. Bhagavad Gita 3.27 states that while all activities are

actually carried out by the three modes of material nature (gunas of prakriti), the spirit soul, bewildered by false ego (ahankara-vimudhatma), mistakenly thinks 'I am the doer'."-Vedabase

In other words, only a person deluded by false ego (ahankara) mistakenly believes, "I am the doer. Sattvic nature becomes more prevalent through the continued practice of Nishkama karma, and the person becomes happy and knowledgeable. Transcending the three gunas is liberation, which can be attained by attaching the mind to God. Nishkama Karma is the primary method to purify the antahkarana (inner instrument/mind) of impurities like lust, greed, and anger. It requires acting with conscious intent rather than out of habitual, selfish reaction(Mindful Action). It is practiced by Karma Yogis, whereas the ignorant remain attached to the fruits of action.

Examples: King Janaka was a karma yogi while performing his duty.

Mahatma Gandhi followed Karma Marga.

The question is either you involve in the process(work) without being emotionally attached to the results, or somehow you wants only results without proper process. The philosophy suggests transforming desires into dedication to duty (dharma), not into attachment. Move from selfish "desires to get" to a "desire to serve". It is all about the mindset. The issue isn't simply having a desire, but becoming attached to it and letting it dictate your actions. human mind is conditioned to work for rewards (kamana).

It is the mind alone which brings pleasures and pains on itself and enjoys them through its excessive inclination towards objects. The fear of failure often causes inaction.

research suggests that Nishkama Karma is a "psychological energy conservation" technique that provides mental poise, allowing an individual to be "in the world but not of it," maintaining high commitment without the burden of excessive attachment".

Duty for Duty's Sake" (Svadharma)

We all have social and individual responsibilities. Giving up prescribed duties is not encouraged; rather, acting as a matter of duty is superior to non-action. When actions are performed as duty rather than for personal gain, they cut the bonds of ego involvement. performing your duty for duty’s sake, without expecting anything in return, simply because it is right. This involves applying universal principles to your actions.

Examples: Returning a lost wallet or a doctor healing a patient.

Equanimity (*Samata*)

It is a state of mental balance regardless of external circumstances. "Nishkama Karma (selfless action) is the crucial mechanism for achieving the state of Samata. It is The practice of Transcending dualities of life. A Karma Yogi approaches work as a worship (Seva), rather than a means to a selfish end. This "detached involvement" ensures that one does not experience the highs of victory or despair of defeat. The Bhagavad Gita defines this combination as the highest form of Yoga. "Samatvam yoga uchhate" which means Equanimity is called Yoga. It is an inner state of balance where one remains undisturbed by pleasure and pain, gain and loss, or praise and blame(regardless of external circumstances.). A mind with Samatvam is often compared to a calm, undisturbed lake, unaffected by the "waves" of favourable or unfavourable events.

The fundamental basis of Samatvam is realizing that all situations are temporary like seasons. It is understanding failure is not final and success is not an end.

Application of Samata: It is natural to be concerned about pain. Observe it without trying to escape it, both in daily life and during meditation. Similarly, tell yourself that you are experiencing anger, rather than becoming angry about the situation.

Surrender(*Ishvara Pranidhana*)

It means dedicating one's actions to the Divine. Nishkama Karma is often summarized as "work is worship. It is not about forcing a specific outcome, but about working sincerely to your maximum potential. Sincere work is worship; mindful ritual is devotion.

Karma Yoga, the spiritual discipline of action, elevates mundane chores into sacred offerings by shifting the practitioner's focus from personal gain to selfless duty and divine service.

Example: Alone, technical skills cannot build a better society. When Nishkama Karma is applied to the field of education, society flourishes holistically because the focus is on the process rather than grades.

Western Psychology vs. Eastern Philosophy

Some of the theories below resemble the concept of Nishkama Karma

Viktor Frankl and the Bhagavad Gita

According to Viktor Frankl's logotherapy, the primary human drive is the search for meaning, not pleasure or power. It doesn't really matter what we expect from life, but rather what life expects from us. One must act according to what life demands, not for personal gain. Responsibility is the essence of existence.

Immanuel Kant's deontological ethics and Bhagavad Gita:

Immanuel Kant's deontological ethics("duty for duty's sake" philosophy) define moral worth by acting from 'duty' rather than personal gain, a concept that resonates with the Bhagavad Gita's emphasis on Nishkama Karma. While Kant focuses on rational, universal duty, the Gita emphasizes svadharma (personal duty) within a spiritual framework, though both systems prioritize intention.

Integrating Yoga Principles for Holistic Workplace Wellness

Nishkama Karma (the secret to mindful productivity) is an ancient concept that remains highly relevant to all our work. Working just for personal rewards creates stress and fear of failure because you are too attached to the results. Conscious awareness of a problem can create stress. Stress becomes chronic if the pressure to work does not subside. Nishkama Karma is an internal attitude toward action, it is suitable for everyone, whether working alone or in a group. It can be applied to all work.

As one practices Nishkama Karma, ego and stress-related issues diminish, consequently stopping the rise of conflicts. Through selfless action, body, mind, and spirit unite, cultivating harmony and tranquillity. Techniques like meditation or mindfulness shift consciousness to manage stress. Different breathing techniques and asanas help reduce mental and physical ailments. Mindfulness techniques through yoga improve memory and cognitive flexibility. Practicing these relaxation methods at your desk conveniently can help you take control of your health and reduce sick leave.

Diet, relaxation, daily activities, and thoughts are all essential factors for well-being. As a result, Communication improves through group yoga sessions.

Profits are the natural consequence of well-executed, ethical, and high-quality work. The goal is to act well, and the results will naturally follow, much like fruit follows a flower. Obsession over the result is abandoned, not the result itself.

As Nishkama Karma focuses on detachment from outcomes, it works well to identify systemic flaws. While many modern techniques focus on correcting issues only after they arise, certain companies operate closer to the principles of Nishkama Karma, as mentioned below.

• Infosys was founded in 1981 in Pune by N.R. Narayana Murthy and six other engineers with an initial capital of only US$250. company grew into a global IT giant, with its early philosophy focusing on ethical, value-based growth over quick gains. the principles they

adopted align closely with Nishkama Karma. Narayana Murthy assumed the role of trustee for the company, although he is its founder.

• A major part of the Tata Group (around 66% of the holding company Tata Sons) is owned by philanthropic trusts.

• Toyota Motor Corporation) officially follows the Hindu concept of Nishkama Karma(duty for duty sake), desireless action as described in the Bhagavad Gita.

Leaders who practice this model create sustainable organizations, emphasizing long-term impact over short-term gains.

CONCLUSION

This paper demonstrates that Nishkama Karma - the philosophy of performing duty without attachment to results - will make society more stable than ever before. It represents the synthesis of Karma, Bhakti, and Jnana yogas, acting as a process for achieving completeness in action. By adopting this mindset, individuals can achieve peace of mind, improved relationships, and higher quality output in all aspects of life. Consciousness is the only true reality, while ignorance stems from failing to understand the true self. The analysis makes two things clear, the transcendence of desire and the adherence to duty (Dharma). It is primarily an internal, subjective state of mind. While the intent is subjective, the act itself must conform to objective ethical principles - duty, right conduct, and social responsibility. Research in psychology shows that selfless action (altruism) releases endorphins, producing a "helper's high" that improves psychological well-being. While this study highlights the potential for Nishkama Karma to improve personal and professional well-being, it also acknowledges that further empirical research is needed to validate these findings on a larger scale and to explore cross-cultural applications. Ultimately, as a method of aligning personal duty with the greater good, Nishkama Karma provides a sustainable, meaningful, and peaceful alternative to the greed-culture dominating today's professional and personal landscapes. The practitioner develops high emotional. intelligence, mental resilience, and the ability to maintain composure during crises.

References

• Vivekananda, Swami. (1896). .Karma Yoga:

• "Nishkama Karma - Wikipedia", Wikipedia.

• Samkhya Philosophy: Understanding One of the Oldest...", Swarajyoga

• "Karma Yoga – A method for Self-Realization," Muktipadablog, January 9, 2016.

• The Bhagavad Gita's message of Nishkama Karma Kiran Bedi(YouTube)

• The psychology of Yoga -Dr. Anjali Sharma

• The Contribution of Nishkama Karma in the Philosophies of Shankara, Ramanuja, and Madhva - Mathias Yuvan Shunmugam

Understanding Nishkama Karma in Business | PDF - Scribd.

• Corporate Governance Ethics and Comparative Study of Tata and Infosys by Pratik Raj, Dr. Chandrani Ganguly

Relevance of Bhagavad Gita in Modern Business Management Dr. Rajshree Sharma1 Dr. Vinay Bajpai2

Email : jitendrapsingh91@gmail.com

Email :rmohanpusapati@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 90-96
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

ভবিষ্যপুরাণোক্ত সর্পদষ্ট ব্যক্তির আয়ুর্বেদিক চিকিৎসা পদ্ধতি ও আধুনিক চিকিৎসা পদ্ধতির তুলনাত্মক অধ্যয়ন

সুপ্রিয় প্রামাণিক,
সহকারী শিক্ষক,
১১ নং কুমারপুর প্রাথমিক বিদ্যালয়, কুমারপুর, মুর্শিদাবাদ, 742189

(সারসংক্ষেপ)
বিশ্ব স্বাস্থ্য সংস্থা'র (WHO) দেওয়া তথ্য অনুসারে কৃষিপ্রধান ভারতবর্ষে প্রতি বছর প্রায় ২৮ লক্ষ মানুষ সর্পদংশনের শিকার হন। তার মধ্যে মারা যায় প্রায় 49,600 জন। তাই বর্তমান দিনে এই সর্পদংশন আমাদের দেশে এক জরুরী ও গুরুত্বপূর্ণ স্বাস্থ্যসমস্যা। জীবিকার তাগিদে ও অন্নসংস্থানের উদ্দেশ্যে গ্রামাঞ্চলের মানুষদেরকে খেত-খামাড়ে, জলে-জঙ্গলে ও নানা ঝুঁকিপূর্ণস্থানে ভ্রমণ করতে হয়, যার ফলে সাবধানতা বা অসাবধানতা বশতঃ সর্পদংশনের শিকার হওয়া স্বাভাবিক ব্যাপার। তাই সর্পদংশনে যাতে প্রাণহানি না হয় সেই ব্যাপারে অত্যন্ত সচেতন ও সজাগ থাকতে হয়। ভারতবর্ষে বিশেষত: গ্রীষ্ম ও বর্ষাকালে নানা ধরণের বিষধর ও বিষহীন সাপের উপদ্রব দেখা যায়, যদি সর্পদষ্ট ব্যক্তি কোন্ সাপে দংশন করেছে না দেখতে পান বা সাপটি চিনতে না পারেন তাহলে দংশিত স্থানের চিহ্ন দেখে নির্ধারণ করতে হয় বিষধর অথবা বিষহীন কোন্ সাপে দংশন করেছে। এবিষয়ে ভবিষ্যপুরাণে বলা হয়েছে, যদি দংশিত স্থানে যমদূতী লক্ষণ দেখা যায় তবে জানতে হবে, তা বিষধর সাপের দংশন। আধুনিক চিকিৎসাবিদ্যাতেও ক্ষতস্থানে দাঁতের চিহ্ন দেখে সাপের গোত্র নির্ণয় করা হয়। এছাড়াও সাপে কামড়ালে সেই সর্পদষ্ট ব্যক্তির কী কী উপসর্গ দেখা যায় সেই বিষয়েও ভবিষ্যপুরাণ ও আধুনিক চিকিৎসার মধ্যেও যথেষ্ট সাদৃশ্য দেখা যায়। সেই ব্যক্তির চিকিৎসা বিষয়ে কিন্তু আধুনিক চিকিৎসা ও ভবিষ্যপুরাণোক্ত চিকিৎসার মধ্যে বিস্তর পার্থক্য রয়েছে। তথাপি উভয় চিকিৎসারই উদ্দেশ্য প্রাণ বাঁচানো। ভারতবর্ষের এখনো বহু প্রত্যন্ত গ্রামাঞ্চলে ও আদিবাসী অঞ্চলে মানুষ আধুনিক বৈজ্ঞানিক চিকিৎসার ছত্রছায়াতে আসতে পারেনি। তাদেরকে ভবিষ্যপুরাণ বা প্রাচীন শাস্ত্রকথিত চিকিৎসা উপায়ের উপরই নির্ভর করতে হয়। তাই বর্তমান আধুনিক সমাজে ভবিষ্যপুরাণ কথিত চিকিৎসারও যথেষ্ট গুরুত্বপূর্ণ ভূমিকা আছে। আলোচ্য নিবন্ধ তারই বহিঃপ্রকাশ।
সূচক শব্দ :- যমদূতী , সর্পদষ্ট , স্বাস্থ্যসমস্যা , আধুনিক চিকিৎসাবিদ্যা , ভবিষ্যপুরাণোক্ত চিকিৎসা

ভবিষ্যপুরাণোক্ত সর্পদষ্ট ব্যক্তির আয়ুর্বেদিক চিকিৎসা পদ্ধতি ও আধুনিক চিকিৎসা পদ্ধতির তুলনাত্মক অধ্যয়ন

ভারতীয় সংস্কৃত সাহিত্যের ইতিহাসেই কেবলমাত্র নয়, ভারতীয় সমাজজীবনেও পুরাণের বিশিষ্ট ভূমিকা রয়েছে। ভারতীয় সংস্কৃতির মেরদণ্ড বলা হয় পুরাণকে।পুরাণের জ্ঞান ব্যতীত ভারতীয় সংস্কৃতির জ্ঞান অসম্পূর্ণ । মানবজীবন সম্পর্কীয় নানা বিধান লিপিবদ্ধ রয়েছে এই পুরাণে। আমাদের

আলোচ্যবিষয় সম্বন্ধীয় পুরাণ হল ভবিষ্য পুরাণ। অষ্টাদশ হিন্দুপুরাণের অন্যতম তথা একটি গুরুত্বপূর্ণ পুরাণ হল এই ভবিষ্য পুরাণ। সাধারণের বিশ্বাসানুযায়ী এই পুরাণের রচয়িতা বেদ-সংকলক ব্যাসদেব বলা হলেও বর্তমানে উপলব্দ্ধ ভবিষ্যপুরাণ কোন একক ব্যক্তির সঙ্কলন নয়। বর্তমানে উপলব্ধ এই পুরাণের চারটি পর্ব দেখা যায় – ব্রাহ্মপর্ব, মধ্যমপর্ব, প্রতিসর্গপর্ব ও উত্তরপর্ব।

ভবিষ্যপুরাণে কথিত সর্পদষ্ট ব্যক্তির লক্ষণ ও চিকিৎসা

ব্রাহ্মপর্বের অন্তর্গত **'ধাতুগতবিষলক্ষণানি'** নামক অধ্যায়ে সর্পদষ্ট ব্যক্তির লক্ষণ ও তার উপযুক্ত চিকিৎসার কথা বলা হয়েছে। সব সাপের দংশনই প্রাণঘাতক হয় না, কিন্তু যে সাপের দংশনে যমদূতিকা চিহ্ন দেখা যায় সেই দংশনকে অবশ্যই বিষধর সাপের বলে স্বীকার করতে হবে।[1] বিষধর সাপেরা যে দুটি দাঁতের দ্বারা দংশন করে অর্থাৎ সাপের দাঁতের মধ্যে যে দুটি দাঁত মুখের দুই পাশে অবস্থিত ও আকারে বড়তাকেই যমদূতী বলা হয়। সাপ যখন দংশন করে তখন খুব অল্প পরিমাণেই বিষ উদ্গিরণ করে, কিন্তু সেই বিষের তীব্রতা হয় খুব ভয়ঙ্কর। জলের দ্বারা সিক্ত কেশের অগ্রভাগ থেকে যে পরিমাণ জলবিন্দু পতিত হয় ঠিক সেই পরিমাণ বিষই উদ্গিরণ করে বিষধর সাপ দংশনের সময়।[2]বিষধর সাপের দংশনের পর কখনোই ভয় পেয়ে ইতস্ততঃ ছুটে বেড়ানো উচিত নয়। স্থিরভাবে কোন স্থানে সেই ব্যক্তিকে ভূমিতে শায়িত করে তার উপযুক্ত চিকিৎসা ব্যবস্থা আরম্ভ করা উচিত। আমাদের শরীর যেহেতু শত শত নাড়ী যুক্ত তাই অধিক হস্ত বা দৈহিক সঞ্চালনে শরীরে ঐ বিষ খুব দ্রুত সংক্রামিত হয়, যেমন বায়ুর দ্বারা আগুন খুব দ্রুত ছড়িয়ে পড়ে বা যেমন জলে পতিত তৈলবিন্দু খুব দ্রুত ছড়িয়ে পড়ে ঠিক তেনমই এই সময় সর্পদষ্ট ব্যক্তি সহস্রবার কম্পিত হয়। এছাড়াও ময়ূর যেমন তার পুচ্ছকে বিস্তৃত করে, তেমনই বিষধর সাপের বিষ মানবদেহে ছড়িয়ে পড়ে। ছড়িয়ে পড়া সেই বিষ মানবদেহের ত্বকে দ্বিগুণ, রক্তে চতুর্গুণ, পিত্তে তিনগুণ, কফে ষোড়শগুণ, বায়ুতে ত্রিশগুণ এবং মজ্জাতে ষাট্ গুণ হয়ে প্রভাব বিস্তার করে প্রাণে ও সর্ব শরীরে ব্যাপ্ত হয়ে যায়। এরকম অবস্থায় রোগীর গাত্রপীড়া দেখা দেয়। কর্ণের শ্রবণক্ষমতা হারিয়ে যায় ও শ্বাস-প্রশ্বাস বন্ধ হয়ে গিয়ে মারা যায়।[3]

জন্ম থাকলেই মৃত্যু হবে নিশ্চিত, তথাপি ভাগ্যের হাতে সঁপে না দিয়ে সর্পদষ্ট ব্যক্তিকে খুব দ্রুত উপযুক্ত চিকিৎসা দিতে হয়। কখনোই তাঁকে উপেক্ষা করা উচিত নয়।[4] চিকিৎসা করার সময় এটাও খেয়াল রাখতে হয় এই বিষ একজনের দেহ থেকে অন্যজনের স্থানান্তরিত হতে পারে।[5] বিষের বেগের ভিন্নতা বশতঃনানারকম শারীরিক সমস্যা দেখা যায়, যেমন, প্রথম বিষের বেগে রোম হর্ষ উৎপন্ন হয়, দ্বিতীয় বিষের বেগে শরীরে ঘাম হয়, তৃতীয় বিষের বেগে শরীরে কম্পন হয়, চতুর্থ বিষের

---

[1]''সবিষা দংষ্ট্রয়োর্মধ্যে যমদূতী তু বৈ ভবেৎ।'' ভবিষ্যপুরাণ,ব্রাহ্মপর্ব, ধাতুগতবিষলক্ষণানি, 1

[2]''যন্মাত্রং পততে বিন্দুর্বালাগ্রং সলিলোদ্ধৃতম্। তন্মাত্রং স্রবতে দ্রংষ্টা বিষংসর্পস্য দারুণম্॥'' ভবিষ্যপুরাণ,ব্রাহ্মপর্ব, ধাতুগতবিষলক্ষণানি,4

[3]''নাড়ীশতে তু সম্পূর্ণে দেহে সক্রমতে বিষম্। যাবত্সক্রাময়েদ্বাহুং কুঞ্চিতং বা প্রসারয়েৎ॥
অনেন ক্ষণমাত্রেণ বিষং গচ্ছতি মস্তকে।
বেপতে বিষবেগে তু শতশোঽথ সহস্রশঃ॥
বর্ধতে রক্তমাসাদ্য ততো বা তৈঃ শিখী যথা। তৈলবিন্দুর্জলং প্রাপ্য যথা বেগেন বর্ধতে॥
শিখণ্ডী আশ্রয়ং প্রাপ্য মারুতেন সমীরিতঃ। ততঃ স্থানশতং প্রাপ্য ত্বচাস্থানং বিচেষ্টিতম্॥
ত্বচাসু দ্বিগুণং বিদ্যাচ্ছোণিতেষু চতুর্গুণম্। পিত্তে তু ত্রিগুণং যাতি শ্লেষ্মে বৈ ষোড়শং ভবেৎ॥
বায়ৌ ত্রিংশদগুণং চৈব মজ্জাষষ্টিগুণং তথা। প্রাণে চৈকার্ণবীভূতে সর্বগাত্রাণি সন্ধয়েৎ॥
শ্রোত্রে নিরুধ্যমানে চ যাতিদষ্টস্ত্বসাধ্যতাম্।
ততোঽসৌ ম্রিয়তে জন্তুনিঃশ্বাসোচ্ছ্বাসবজিতঃ॥''
ভবিষ্যপুরাণ,ব্রাহ্মপর্ব, ধাতুগতবিষলক্ষণানি, 5-11

[4]''বিষার্তং ন উপেক্ষেত ত্বরিতং তু চিকিৎসয়েৎ।'' ভবিষ্যপুরাণ,ব্রাহ্মপর্ব, ধাতুগতবিষলক্ষণানি, 16

[5]''একমস্তি বিষং লোকে দ্বিতীয়ং চোপপদ্যতে।'' ভবিষ্যপুরাণ,ব্রাহ্মপর্ব, ধাতুগতবিষলক্ষণানি, 17

বেগে শ্রবণক্ষমতা নিরোধ হয়ে যায়, পঞ্চম বিষের বেগে হিক্কা (হেচকী)শুরু হয় ও ষষ্ঠ বিষের বেগে মানুষ নিজের প্রাণ থেকে বিমুক্ত হয়ে যায়।[6]

ত্বকে বিষের প্রভাবঃ – ত্বকে বিষ প্রবেশ করলে 1) শরীরে প্রত্যেকটি অঙ্গে অন্ধকার উৎপন্ন হয় অর্থাৎ ত্বকের বর্ণ নীল হতে শুরু করে 2) অঙ্গে দাহজ্বালা শুরু হয়।[7]

উপশমের ঔষধঃ – অর্কমূল (মাদার গাছের মূল), অপামার্গ (আপাঙ্ বৃক্ষ), প্রিয়ংগু(শ্যামলতা বা ফলিনীলতা) এবং তগর(টগর ফুল) এই সবগুলি আলোড়িত করে দষ্টকে দিতে হবে। এতে সুখ উৎপন্ন হবে।[8]

রক্তে বিষের প্রভাবঃ –যদি পূর্বোক্ত ঔষধে বিষের উপশম না হয় তাহলে জানতে হবে রক্তে বিষ প্রবেশ করেছে। এই সময় – 1) শরীরে দাহজ্বালা আরম্ভ হয় 2) মূর্চ্ছা যায় 3) অধিক ঠান্ডা অনুভূতি হয়।[9]

উপশমের ঔষধঃ –প্রথমে বেগে উশীর (বেনার মূল), চন্দন, কুষ্ঠ (কুড় বৃক্ষ), উৎপল, তগর (টগর ফুল), মহাকালের মূল এবং সিন্ধুবার নগের মূল (নিশিন্দা গাছের মূল) , হিংগুল, মরিচ (গোলমরিচ) এইগুলি একসাথে মিশিয়ে সর্পদষ্ট ব্যক্তিকে দিতে হয়। দ্বিতীয় বেগে বৃহতী (ছোট বেগুন), বৃশ্চিকা, কালী, ইন্দ্র-বারণীর মূল, সপ্তগন্ধ ও ঘৃত এইসব দিতে হয়। তৃতীয় বেগে সিন্ধুবার (মৌরী) ও হিংগের মিশ্রন পান করাতে হয়।[10]

পিত্তে বিষের প্রভাবঃ – 1) বার-বার উঠবার চেষ্টা করেও পড়ে যাওয়া 2) জ্বলন হয় শরীরে 3) অধিক মূর্চ্ছা যাওয়া 4) সেই ব্যক্তি যদি রোগী হয় তাহলে শরীর হলুদ হয়ে যায় অর্থাৎ জণ্ডিশ হয় 5) নিজেকে ভুলে যায় অর্থাৎ নিজের শরীর সম্পর্কে কোন জ্ঞান থাকেনা।[11]

উপশমের ঔষধঃ – এইসময় পীপল, মহুয়া, মধু, ঘৃত, অলাবু(লাউ) জাতী (মালতী ফুল) এবং ইন্দ্রবারুণীর মূল – এইসব গোমূত্র দ্বারা পেষণ করে তা নস্য দিতে হয়, পান করাতে হয় ও শরীরে অঞ্জন লেপন করতে হয়।[12]

---

[6] ''প্রথমে বিষবেগে তু রোমহর্ষোঽভিজায়তে। দ্বিতীয়ে বিষবেগে তু স্বেদো গাত্রেষু জায়তে॥
তৃতীয়ে বিষবেগে তু কম্পো গাত্রেষু জায়তে। চতুর্থ বিষবেগে তু শ্রোত্রান্তরনিরোধকৃৎ॥
পঞ্চমে বিষবেগে তু হিক্কা গাত্রেষু জায়তে। ষষ্ঠে চ বিষবেগে তু প্রাণেভ্যোঽপি প্রমুচ্যতে॥''
ভবিষ্যপুরাণ,ব্রাহ্মপর্ব, ধাতুগতবিষলক্ষণানি, 18-20

[7] ''বচঃস্থানে বিষে প্রাপ্তে তস্য রূপানি মে শৃণু।অংগানি তিমিরায়ন্তে তপন্তে চ মুহুর্মুহঃ॥''
ভবিষ্যপুরাণ,ব্রাহ্মপর্ব, ধাতুগতবিষলক্ষণানি,21

[8] '' অর্কমূলমপামার্গপ্রিয়ংগুং তগরং তথা। এতদালোড্য দাতব্যং ততঃ সংপদ্যতে সুখম্ ॥''ভবিষ্যপুরাণ, ব্রাহ্মপর্ব,ধাতুগতবিষলক্ষণানি,23

[9] ''বিষে চ রক্তং সম্প্রাপ্তে তস্য রূপানি মে শৃণু। দহ্যতে মুহ্যতে চৈব শীতলং বহু মন্যতে ॥''ভবিষ্যপুরাণ, ব্রাহ্মপর্ব, ধাতুগতবিষলক্ষণানি,25

[10] ''এতানি যস্য রূপাণি তস্য রক্তগতং বিষম্। তত্রাগদং প্রবক্ষাণি যেন সম্পদ্যতে সুখম্॥
ঊশীরং চন্দনং কুষ্টমুৎপলং তগরং তথা। মহাকালস্য মূলানি সিন্দুবাহন গস্য চ।
হিংগুলং মরিচং চৈব পূর্ববেগে তু দাপয়েৎ॥
বৃহতী বৃশ্চিকা কালী ইন্দ্রবারুণি মূলকম্। সপ্তগন্ধঘৃতং চৈব দ্বিতীয়ে পরিকীর্তিতম্॥
সিন্দুবারং তথা হিংগু তৃতীয়ে কারয়েদবুধঃ। তস্য প্রাণং চ কুর্বীত অঞ্জনং লেপনং তথা॥
''ভবিষ্যপুরাণ, ব্রাহ্মপর্ব্ব, ধাতুগতবিষলক্ষণানি,26-29

[11] ''পিত্তস্থানগতে বিপ্রবিমরূপানি মে শৃণু। উত্তিষ্ঠতে নিপততেদহ্যতে মুহ্যতে তথা॥
গত্রাতঃ পীতকঃ স্যাদ্বেদিশঃ পশ্যতি বিজানতে। বিষক্রিয়াং তস্য কুর্যাদ্যয়া সম্পদ্যতে সুখম্ ॥'' ভবিষ্যপুরাণ,ব্রাহ্মপর্ব্ব,ধাতুগতবিষলক্ষণানি,31,32

[12] ''পিপপল্যো মধুকং চৈব মধুখণ্ডং ঘৃতং তথা।মধুসারমলাবূং চ জাতিং শংকর বালুকাম্॥
ইন্দ্র বারু নিকামূলং গবাং মূত্রেণ পেষয়েৎ। নস্যং তস্য প্রযুঞ্জীত পানমালেপণাঞ্জনম্।
এতৈর্নৈবোপচারেণ ততঃ সম্পাদ্যতে সুখম্॥''

শ্লেষ্মাতে বিষের প্রভাবঃ – 1) কানে শোনা যায়না 2) নিশ্বাস-প্রশ্বাস প্রায় বন্ধ হয়ে আসে 3) মুখ দিয়ে লালা পড়ে 4) গলাতে ঘরঘর শব্দ হয়।[13]

উপশমের ঔষধঃ – শ্লেষাত্মক, ত্রিকূটী,লোধ্র, মধুমারক এইসব বস্তুর সমভাগ নিয়ে গরুর মূত্রের সাথে পেষণ করে এটি পান ও শরীরে অঞ্জন লেপন করতে হয়।[14]

বায়ুতে বিষের প্রভাবঃ – 1) পেট ফুলে যায় 2) নিজের আত্মীয় পরিজনদের চিনতে পারেনা 3) দৃষ্টি নষ্ট হয়ে যায়।[15]

উপশমের ঔষধঃ – শোনামূল, প্রিয়াল, রক্ত ও গজপীপল , ভৃঙ্গরাজ, বচ পীপল, দেবদারু, মহুয়া, মধুকসার, সিন্দুবার, হিংগ এগুলি একত্রে পেষণ করে কাজল লেপন করতে হয়, তাহলে বিষ নষ্ট হয়ে যায়। [16]

মজ্জাতে বিষের প্রভাবঃ – 1) দৃষ্টি কমে যায় 2) শরীর থেকে অঙ্গ পৃথক হয়ে গেছে এইরকম মনে হয়। এইরকম অনুভূতি হলে জানতে হবে মাথায় বিষ চলে গেছে।[17]

উপশমের ঔষধঃ – ঘৃত, মধু, চিনি ও চন্দন একসাথে পেষণ করে পান করাতে হয় ও নস্য দিতে হয়, তাহলে বিষ নষ্ট হয়ে যায় ও সুখ পাওয়া যায়।[18]

মর্মস্থলে বিষের প্রভাবঃ – 1) নিশ্চেষ্ট হয়ে ভূমিতে পড়ে যায় 2) কানে বধির হয়ে যায় 3) জলে স্নান করালেও ঠান্ডা লাগেনা 4) দণ্ডের দ্বারা আঘাত করলেও আঘাতের চিহ্ন দেখা যায় না5) অস্ত্র দিয়ে কাটলেও রক্ত পড়েনা 6) কান, হাত, পায়ের সন্ধি শিথীল হয়ে যায় এমন ব্যক্তিকে মৃত বলে জানতে হবে। আর যদি ব্যক্তি এইরকম অবস্থা প্রাপ্ত না হয় তাহলে তাকে যথাযথ চিকিৎসা করতে হবে।[19]

ভবিষ্যপুরাণ,ব্রাহ্মপর্ব্ব,ধাতুগতবিষলক্ষণানি,34,35

13''শ্লেষমস্থানং ততঃ প্রাপ্তে তস্য রুপানি মে শৃণু।
গাত্রাণি তস্য রুধ্যন্তে নিঃশ্বাসশ্চ ন জায়তে॥
লালা চ স্রবতে তস্য কন্টো ঘুরু ঘুরায়তে
॥''ভবিষ্যপুরাণ,ব্রাহ্মপর্ব্ব,ধাতুগতবিষলক্ষণানি,36

14''ত্রিকটুকী শ্লেষ্মাতকো লোধ্রংচ মধুসারকম্।এতানি সমভাগানি গবাং মূত্রেণ প্রেষয়েৎ॥
তস্য প্রাণং চ কুর্বীত অঞ্জনং লেপনং তথা।
এতেনৈবোপচারেণ ততঃ সম্পদ্যতে সুখম্
॥''ভবিষ্যপুরাণ,ব্রাহ্মপর্ব্ব,ধাতুগতবিষলক্ষণানি,38,39

15''আধ্মায়তে চ জঠরং বান্ধবাংশ্চ ন পশ্যতি। ঈদৃশং কুরুতে রূপং দৃষ্টিভগংশ্চ জায়তে॥
এতানি যস্য রূপাণি তস্য বায়ুগতং বিষম্। তস্যাগতং প্রবক্ষ্যামি যেন সম্পদ্যতে সুখম্॥'' ভবিষ্যপুরাণ,ব্রাহ্মপর্ব্ব,ধাতুগতবিষলক্ষণানি,41,42

16''শোণামূলং প্রিয়ালং চ রক্তং চ গজপিপ্পলূম্। ভাঙ্গী বচাং পিপ্পলীং চ দেবদারুম মধুকরম্॥
মধূকসারং সহসিন্দুবারং হিংগুং চ পিষ্টগুটিকাং চ কুর্যাৎ। দদ্যাচ্চ তস্যাঞ্জনলেপনাদি এষোঽগদঃ সর্পবিষানি হন্যাৎ॥''
ভবিষ্যপুরাণ,ব্রাহ্মপর্ব্ব,ধাতুগতবিষলক্ষণানি,43,44

17''বিষে মজ্জাগতং বিপ্র তস্য রূপাণি মে শৃণু।দৃষ্টিশ্চ হীয়তে তস্য ভৃশমঙ্গানি মুঞ্চতি ॥''ভবিষ্যপুরাণ,ব্রাহ্মপর্ব্ব,ধাতুগতবিষলক্ষণানি,46

18''ঘৃতমধুশর্করান্বিত মুশরীং চন্দনং তথা। এতদালোড়্য দাতব্যং পানং নস্যং চ সুখম্॥''
ভবিষ্যপুরাণ,ব্রাহ্মপর্ব্ব,ধাতুগতবিষলক্ষণানি,48

19'' নিশ্চেষ্টঃ পততে ভূমৌ কর্ণাভ্যাং বধিরো ভবেৎ। বারিণা সিচ্যমানস্য রোমহর্ষো ন জায়তে॥
দণ্ডেন হন্যমানস্য দণ্ডরাজী ন জায়তে। শস্ত্রেণছিদ্যমানস্য রুধিরং ন প্রবর্ততে॥ কেশেষু লুচ্যমানেষু নৈব কেশান্প্রবেদতে। যস্য কর্ণো চ পাশ্চে চ হস্তপাদং চ সন্ধয়ঃ।
শিথিলানি ভবন্তীহ স গতাসুরিতি শ্রুতিঃ॥ ভবিষ্যপুরাণ,ব্রাহ্মপর্ব্ব,ধাতুগতবিষলক্ষণানি,51-53

উপশমের ঔষধঃ – ময়ূরের পিত্ত, বেড়ালের পিত্ত, গন্ধনাড়ীর মূল, কুমকুম, তগর, কুষ্ঠ, কাসমর্দের ছাল, নীলপদ্ম ও কুমুদ ফুলের পরাগ এইসব সমান ভাগে নিয়ে গোমূত্রের সাথে সবগুলি পেষণ করে অঞ্জন লেপন করতে হয় ও নস্য দিতে হয়। এই ঔষধ যার হাতে থাকবে সেই দষ্ট ব্যক্তি মারা যাবেনা সে শীঘ্রই বিষহীন হয়ে যাবে।[20]

বর্তমান আধুনিক সমাজে সর্পদষ্ট ব্যক্তির লক্ষণ ও চিকিৎসা

দংশন দেখে সাপ চেনার উপায়

সাপে দংশন করলে প্রথমেই দংশিত স্থানটি ভালভাবে পরীক্ষা করে দেখতে হবে সেটি বিষধর সাপের দংশন কিনা। যদি দংশিত স্থানে দুটি তীক্ষ্ণ গভীর দাগ থাকে, তাহলে বুঝতে হবে সেটি বিষধর সাপের দংশন।[21] যেটিকে ভবিষ্যপুরাণে যমদূতী লক্ষণ বলা হয়েছে। আর যদি সেরকম দাগের বদলে কেবল ছোট ছোট এক সারি দাগ থাকে, তাহলে বুঝতে হবে সাপটি বিষধর নয়।

কিভাবে বিষ শরীরে প্রবেশ করে

সব বিষধর সাপের সামনে দুটি বিষদাঁত থাকে , যা অন্যান্য দাঁতের তুলনায় বড় ও বাঁকানো। সাপের দাঁতে কোন বিষ থাকেনা। দংশনের সাথে সাথে চোয়ালের পেছনের লালাগ্রন্থির পেশি সংকুচিত হয়ে বিষযুক্ত লালা বিষদাঁতের ছিদ্রের মধ্য দিয়ে এসে দংশিতের শরীরে প্রবেশ করে।[22]

বিষধর সাপে দংশনে সাধারণত যে উপসর্গ দেখা যায়

1) দংশিত স্থান লাল হয়ে যায় এবং চাপ দিলে ব্যাথা অনুভব হয় 2) কিছুক্ষণ পড়ে সেখানে জ্বালা-পোড়া অনুভূত হয় 3) রোগীর ঘুম ঘুম ভাব আসে 4) রোগীকে কিছুটা মুমূর্ষু মনে হয় 5) পা দুর্বল হয়ে আসে, দাঁড়িয়ে থাকতে পারে না 6) মুখ দিয়ে লালা ঝড়ে ও বমি করতে থাকে 7) জিহ্বা ও স্বরযন্ত্র ফুলে যায়, কিছু গিলতে পারেনা ও কথা বলতে পারেনা 8) দুই ঘন্টা পর শ্বাস-প্রশ্বাস লঘু হয়ে আসে 9) জ্ঞান থাকে না 10) পরিশেষে তার শ্বাসক্রিয়া ও হৃদযন্ত্র বন্ধ হয়ে যায় ও মৃত্যু হয়।[23]

সাপের দংশনে কী করা উচিত

গোখরো, কেউটে, শঙ্খচূড় প্রভৃতি কোবরা জাতীয় সাপের বিষে থাকে নিউরোটক্সিন নামক এক ধরণের রস যা স্নায়ুকে বিকল বা পঙ্গু করে দেয়। নিউরোটক্সিন দ্রুত কাজ করে, তাই এই শ্রেণির সাপের কামড়ে মৃত্যু দ্রুত হয়। তাই এই সময় প্রাথমিক যে ব্যবস্থাগুলি অবলম্বনীয় সেগুলি হল – 1) সাপে কাটলে দ্রুত চিকিৎসার ব্যবস্থা করতে হবে। রোগীকে শায়িত অবস্থায় রাখতে হবে ও যাতে কোনরকম নড়াচড়া না হয় সেদিকে লক্ষ্য রাখতে হবে 2) সর্পদংশনে আক্রান্ত ব্যক্তিকে সর্পদংশনের নিরাময়যোগ্য আধুনিক চিকিৎসার ব্যাপারে আশ্বস্ত করতে হবে, কারণ সর্পদংশনে আক্রান্ত মৃত্যুভয়ে অত্যন্ত ভীত থাকেন 3) দংশিত স্থানের কিছুটা উপরে দেড় ইঞ্চি মোটা দড়ি বা কাপড় দিয়ে বাঁধন দিতে হবে। দশ মিনিট অন্তর অন্তর তা আলগা করতে হবে 4) দংশিত স্থানটি জল দিয়ে পরিষ্কার করে দিতে হবে 5) এবার জীবাণুমুক্ত একটি ছুরি বা ধারালো ব্লেড দিয়ে দংশিত স্থানদুটির প্রত্যেকটি সতর্কভাবে 1 সেন্টিমিটার লম্বা ও 1 মিলিমিটার গভীরভাবে চিরে দিতে হবে 6) ইলেকট্রিক সাকার বা রাবার বাল্ব দিয়ে সেখান থেকে বিষরক্ত চুষে নিতে হয় 7) তারপর সেই দংশিত স্থানে আয়োডিন টিংচার বা স্পিরিট লাগাতে হবে 8) প্রাথমিক চিকিৎসার পর রোগীকে দ্রুত নিকটতম হাসপাতাল বা স্বাস্থ্যকেন্দ্রে পাঠানোর ব্যবস্থা করতে হবে, যেখানে অ্যান্টিভেনাম সিরাম বা সর্পবিষনাশী সিরাম মজুদ রয়েছে।[24]

---

[20]''তস্যাগদং প্রবক্ষ্যামি স্বয়ং রুদ্রেণ ভাষিতম্। ময়ূরপিত্তং মার্জারপিত্তং গন্ধনাড়ীমূলমেব চ॥ কুঙ্কুমং তগরং কুষ্ঠং কাসমর্দত্বঞ্চ তথা।উৎপলস্য চ কিঞ্জলকং পদ্মস্য কুমুদস্য চ ॥এতানি সমভাগানি গোমূত্রেণ তু পেষয়েৎ।এষোঽগদো যস্য হস্তে দষ্টো ন ম্রিয়তে স বৈ॥ কালাহিনাপি দষ্টেন ক্ষিপ্রং ভবতি নির্বিষঃ॥''ভবিষ্যপুরাণ,ব্রাহ্মপর্ব্ব,ধাতুগতবিষলক্ষণানি, 56-58

[21]https://www.pranirajjo.xyz>2021/05

[22]GUIDELINES FOR THE MANAGEMENT OF SNAKEBITES 2nd Edition WHO, ISBN- 978-92-9022-530-0

[23](NATIONAL HEALTH PORTAL INDIA, April 24,2019)

[24](‘প্রথম আলো’(prothomalo.com)‘সাপে কাটলে’- সেপ্টে.17,2020)

এছাড়াও বর্তমান দিনে সর্পদ্রষ্ট ব্যক্তিকে দ্রুত প্রাথমিক চিকিৎসা প্রদান করার অভিনব পদ্ধতির ব্যবহার চালু হয়েছে যাতে আক্রান্ত ব্যক্তির মূল্যবান প্রাণ রক্ষা করা যায়। এই পদ্ধতিটিকে সংক্ষেপে বলা হয় **"CARRY NO R.I.G.H.T."**। পদ্ধতিটি সম্পর্কে নিম্নে বিস্তারে আলোচনা করা হল।

CARRY(বহন) = Do not allow victim to walk even for a short distance; just carry him in any form, specially when bite is at leg.অর্থাৎ আক্রান্ত ব্যক্তিকে কোনভাবেই হাঁটতে দেওয়া যাবেনা। আর যদি সাপ পায়ে দংশন করে, তাহলে আক্রান্ত ব্যক্তিকে কোনও যানবাহনের সাহায্যে অন্যস্থানে নিয়ে যেতে হবে।

NO (না)=No- Tourniquate , তুরনিকে (রক্তপড়া বন্ধ করতে এক ধরণের বিশেষ ব্যাণ্ডেজ) ব্যবহার করা যাবে না। No- Electrotherapy,বিদ্যুৎশক্তি প্রয়োগ করে চিকিৎসা করা যাবে না। No- Cutting, কোনরকম কাটাছেঁড়া করা যাবে না। No- Pressure immobilization, খুব জোড়ে চাপ দিয়ে ব্যাণ্ডেজ করা যাবে না, Nitric oxide donor (Nitrogesic ointment/ Nitrate Spray) নাইট্রিক অক্সাইড নাইট্রোজেসিক অয়েনমেন্ট বা নাইট্রেট স্প্রে ব্যবহার করা যাবে না। **R.**= Reassure the patient. 70% of all snakebites are from non-venomous species. Only 50% of bites by venomous species actually envenomate the patient, বারবার রোগীকে আশ্বাস দিতে হবে যে 70 শতাংশ ঘটনার ক্ষেত্রে দেখা যায় সাপগুলি বিষাক্ত নয়, আর 50 শতাংশ ক্ষেত্রে বিষাক্ত সাপের ছোবলে মানুষ আক্রান্ত হয়। **I** = Immobilize in the same way as a fractured limb. Use bandagesor cloth to hold the splints, not to block the blood supply or apply pressure. Do not apply any compression in the form of tight ligatures, they don't work and can be dangerous, দেহের যে স্থানে সাপে কামড়ছে সে স্থানটিকে বেশী নাড়াচাড়া করা যাবেনা, সেখানে হালকা কোনো কাপড় দিয়ে ব্যাণ্ডেজ করতে হবে। কোনরকম ভাবে আক্রান্ত স্থানে বেশী চাপ প্রয়োগ করা যাবেনা, বেশী চাপ প্রয়োগ করলে বা চাপ দিয়ে কাপড় বাঁধলে তা বিপজ্জনক হতে পারে। **GH** = Get to Hospital Immediately, রোগীকে দ্রুত হাসপাতালে নিয়ে যেতে হবে। **T** = Tell the Doctor of any systemic symptoms that manifest on the way of hospital, রোগীকে হাসপাতাল নিয়ে যাবার পর সমস্ত লক্ষণগুলি ডাক্তারকে বলতে হবে।[25]

সাপে দংশন করলে কী করা উচিত নয়

1) সর্পদষ্ট ব্যক্তিকে কখনোই জীবনহানিকর নেতিবাচক কথা বলা যাবে না। 2) কখনোই গ্রন্থিস্থানে বা গলায় বাঁধন দেওয়া যাবে না। 3) 20 মিনিটের বেশী সময় বাঁধন দেওয়া যাবে না। 4) ক্ষতস্থানে মুখ দিয়ে রক্ত চোষা একদম উচিত নয়। 5) সর্পদষ্ট অবস্থায় কোন মায়েরই উচিত নয় সন্তানকে স্তনপান করানো। **ভারতে এক নারী সাপের কামড়ে আক্রান্ত হয়েছেন না জেনেই তাঁর তিন বছরের শিশুকে বুকের দুধ খাওয়ান। পরে হাসপাতাল নিয়ে আসলে দুজনেই মারা যায়।[26]** 6) ক্ষতস্থান থেকে অপ্রয়োজনীয় রক্ত শোষণ করা উচিত নয়। 7) কার্বলিক অ্যাসিড বা ফুটন্ত তেল দিয়ে ক্ষতস্থান পরিষ্কার করা যাবে না। 8) প্রাথমিক চিকিৎসায় বেশী সময় নষ্ট করা যাবে না। 9)কুসংস্কারের বশঃবর্তী হওয়া যাবেনা। 10) নড়াচড়া করা যাবে না।[27]

সিদ্ধান্ত

বিষধর সাপের কামড় মানেই মৃত্যু নয় – বিজ্ঞানের আশীর্বাদে এই শুভকথা আজ সকলেরই জানা। সর্পদষ্ট ব্যক্তির যত দ্রুত সুচিকিৎসা করা যাবে ততই বেশী রোগীর প্রাণ বাঁচার সম্ভাবনা থাকে। ভবিষ্যপুরাণেও উক্ত কথা খুব জোড় দিয়ে বলা হয়েছে[28] দংশন দেখে সাপ চেনা, সর্পদষ্ট ব্যক্তির উপসর্গ বিচার বিষয়ে বর্তমান সমাজ নিঃসন্দেহে ভবিষ্যপুরাণ অনুসরণ করে বললে অত্যুক্তি হয় না। কিন্তু উক্ত ব্যক্তির চিকিৎসা বিষয়ে ভবিষ্যপুরাণ ও বর্তমান সমাজের আধুনিক চিকিৎসা উপায়ের মধ্যে

[25] JAPI (Journal of The Association of Physicians of India), August-2016, ISSN 0004 – 5772, Volume: 64

[26] BBC NEWS বাংলা, 26 মে 2018

[27] GUIDELINES FOR THE MANAGEMENT OF SNAKEBITES 2nd Edition WHO, ISBN- 978-92-9022-530-0

[28] ''বিষার্তং ন উপেক্ষেত ত্বরিতং তু চিকিৎসয়েৎ।'' ভবিষ্যপুরাণ,ব্রাহ্মপর্ব, ধাতুগতবিষলক্ষণানি, 16

বিস্তর পার্থক্য রয়েছে। তবে এমনটি নয় যে, ভবিষ্যপুরাণে কথিত উপায়ে সর্পদষ্ট ব্যক্তির জীবন বাঁচানো সম্ভব নয়, কিন্তু সীমাবদ্ধ জ্ঞান আমাদের মানুষের পক্ষে উক্ত চিকিৎসা দুষ্কর ও সময়সাপেক্ষ। তার ফলে রোগীর জীবন বিপন্ন হওয়ার সম্ভাবনা থেকে যায়। তাই আজকের দিনে বর্তমান সমাজে ভবিষ্যপুরাণ কথিত উপায়ে সর্পদষ্ট ব্যক্তির চিকিৎসা না করে আধুনিক ও বৈজ্ঞানিক চিকিৎসা পদ্ধতিকে অবলম্বন করাই শ্রেয়। কিন্তু আমাদের এটিও মনে রাখতে হবে, যে সমস্ত প্রত্যন্ত গ্রামীণ অঞ্চল বা আদিবাসী সম্প্রদায় অধ্যুষিত অঞ্চল এখনো এই আধুনিক ও বৈজ্ঞানিক চিকিৎসার সংস্পর্শে আসতে পারেনি, তাদের পক্ষে ভবিষ্যপুরাণ বা অন্য শাস্ত্রোক্ত এই প্রাচীন পদ্ধতিই জীবনদায়ী ও কল্যানকর।তাই আমরা বলতে পারি বর্তমান সমাজেও ভবিষ্যপুরাণে কথিত সর্পদষ্ট ব্যক্তির লক্ষণ ও চিকিৎসার সমান ও গুরুত্বপূর্ণ ভূমিকা রয়েছে।

সহায়ক গ্রন্থপঞ্জী ও তথ্যসূত্র

1. উপাধ্যায়, পণ্ডিত বাবুরাম, (অনুবাদক), ভবিষ্য মহাপুরাণম্ (প্রথম খণ্ড), হিন্দি সাহিত্য সম্মেলন, প্রয়াগ, 2012
2. (গিরি) ভৈরব, শ্রীমৎ স্বামী পরমাত্মানন্দনাথ, (অনুবাদক ও সম্পাদক), ভবিষ্যপুরাণম্ (প্রথম ও দ্বিতীয় খণ্ড একত্রে), নবভারত পাবলিশার্স, কোলকাতা, 2013
3. সংক্ষিপ্ত ভবিষ্যপুরাণ, বর্ষ 66, সংখ্যা 1-2, গীতাপ্রেস, গোরখপুর।
4. দাস, ডঃ দেবকুমার, সংস্কৃত সাহিত্যের ইতিহাস, (সম্পাদক) সদেশ, কোলকাতা, নবম সংস্করণ 1417 বঙ্গাব্দ.
5. বন্দ্যোপাধ্যায়, শ্রীঅশোক কুমার, সংস্কৃত বাংলা অভিধান, সদেশ, কোলকাতা, 2012
6. https://www.pranirajjo.xyz>2021/05
7. GUIDELINES FOR THE MANAGEMENT OF SNAKEBITES 2nd Edition WHO, ISBN- 978-92-9022-530-0
8. NATIONAL HEALTH PORTAL INDIA, April 24,2019
9. 'প্রথম আলো'(prothomalo.com)'সাপে কাটলে'- সেপ্টে.17,2020
10. JAPI (Journal of The Association of Physicians of India), August-2016, ISSN 0004 – 5772, Volume: 64
11. BBC NEWS বাংলা, 26 মে 2018
12. 12.GUIDELINES FOR THE MANAGEMENT OF SNAKEBITES 2nd Edition WHO, ISBN-978-92-9022-530-0

Mobile number-8535945099 (Whatsapp)
Email id.- pramaniks91@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 97-105
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

क्षमा शर्मा तथा मृदुला गर्ग एवं ममता कालिया के विविध विमर्शों का तुलनात्मक विश्लेषण

सुमन मिश्रा
शोधार्थी, असिस्टेंट प्रोफेसर हिन्दी विभाग,
आचार्य नरेन्द्र देव किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बभनान गोण्डा।
प्रोफेसर दीपा त्यागी
विभागाध्यक्ष–हिन्दी विभाग,
इस्माईल नेशनल महिला पी0जी कॉलिज मेरठ।

किसी भी भाषा के साहित्य की समृद्धि का आधार उसमें व्याप्त विविधताओं में सन्निहित है। नवीन विषयवस्तुओं को साथ समकालीन विमर्श साहित्य को निरंतर नए आयाम प्रदान करते हैं। हिन्दी साहित्य के विषय में यह दृढ़ता के साथ कहा जा सकता है कि वर्तमान में इसमें विविधता और वास्तविक मुद्दों पर विमर्श निरंतर चल रहा है। आज हिन्दी साहित्य परंपरागत ढ़र्रे से हटकर यथार्थवादी और उपयोगितापरक मार्ग पर अग्रसर है। प्रारंभ में विश्व के अन्य भाषाओं के साहित्य के समान ही हिन्दी साहित्य में भी पुरुष वर्चस्व था। वह अपने तरीके से समाज के हर वर्ग की समस्याओं पर लेखन कार्य करते थे।

वर्तमान में हिन्दी साहित्य जगत में भारतीय समाज के हर वर्ग से प्रतिनिधि लेखक उभरकर सामने आ रहे हैं इसी कारण इसमें भारतीय समाज के हर वर्ग के ज्वलंत मुद्दों पर चर्चा–परिचर्चा जोरों पर है और उससे संबंधित रचनात्मक लेखन भी तीव्र गति से समृद्ध हो रहा है। इसीलिए हिन्दी वाङ्मय में विमर्श के नवीन मुद्दे जैसे–किन्नर विमर्श, आदिवासी विमर्श, पर्यावरण विमर्श, कृषक विमर्श, शैक्षिक विमर्श, दिव्यांग विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, बाल विमर्श, नारी विमर्श, अन्य पिछड़ा वर्ग विमर्श, दलित विमर्श आदि ज़ेरे बहस हैं। हिन्दी साहित्य में नारी विमर्श शुरूआती दौर में पुरुषों की कलम का मोहताज था किन्तु आज साहित्य में महिला रचनाकारों के उदय ने इस साहित्य में न केवल विविधताओं को जन्म दिया बल्कि पीड़ित, शोषित स्त्रियों की आवाज स्वयं स्त्री रचनाकारों ने जोर–शोर से उठाकर साहित्यकारों एवं समाज के बुद्धिजीवियों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। पीड़ित की कलम से उसकी पीड़ाएँ वास्तविक रूप में उजागर होती हैं क्योंकि वह उसका भोगा हुआ यथार्थ होता है। इन महिला रचनाकारों ने नारी हृदय की कोमल संवेदनाओं, दर्द, पीड़ा, व्यथा, संघर्ष आदि को अपने अनुभवों के आधार पर अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है।

बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक मुख्य रूप से 1960 के आस–पास हिन्दी साहित्य में महिता रचनाकारों की संख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई जिसने आगे चलकर आठवें दशक तक आते–आते एक शक्तिशाली तीव्र आंदोलन का रूप ग्रहण कर लिया। इस दौरान उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, ममता कालिया, शिवानी, राजी सेठ जैसी लेखिकाओं ने स्त्री मन की गहराईयों व समस्याओं को प्रमुखता से प्रकट किया। इससे पहले कुछ छिटपुट लेखिकाएँ ही हिन्दी साहित्य जगत में दृष्टिगोचर

होती थीं जिसमें राजेन्द्रबांला घोष (बंग महिला), सुभद्रा कुमारी चौहान, मल्लिका, उषा देवी मित्रा, महादेवी वर्मा आदि प्रमुख स्थान रखती हैं।

वर्तमान में महिला लेखिकाओं का लेखन विविधतापूर्ण है। उन्होंने नारी जीवन की समस्याओं को अपने लेखन में प्रमुखता तो दी है परन्तु अन्य विषयों पर भी बड़ी मजबूती के साथ अपनी कलम चलाई है। हिन्दी साहित्य में समकालीन महिला रचनाकार वर्तमान में नारी विमर्श, आदिवासी विमर्श, पर्यावरण विमर्श, किन्नर विमर्श, विज्ञान विमर्श, शैक्षिक विमर्श आदि पर प्रमुखता से अपनी कलम चला रही हैं जिनमें; चित्रा मुद्‌गल, मृदुला गर्ग महुआ माझी, क्षमा शर्मा, मैत्रेयी पुष्पा, मनीषा कुलश्रेष्ठ, गीतांजलि श्री, गीताश्री, अलका सरावगी आदि प्रमुख है।

समकालीन स्त्री रचनाकारों में क्षमा शर्मा जी का एक विशिष्ट स्थान है। उनके लेखन में विमर्शों के विविध आयाम दिखाई देते हैं। उन्होंने वर्तमान ज्वलंत मुद्दों पर बड़ी बेबाकी एवं साफगोई के साथ अपनी कलम चलाई है। क्षमा जी की अन्य अधिकांश समकालीन लेखिकाओं ने नारी अस्मिता और नारी संघर्ष को ही अपने लेखन की विषय–वस्तु बनाया है। नारी विमर्श ही उनके लेखन का केंद्र बिंदु है किन्तु क्षमा जी ने नारी विमर्श के साथ–साथ विविध नवीन विमर्शों को अपने लेखन में जगह दी है। उनके लेखन का केंद्र नारी एवं बच्चे हैं किन्तु अन्य विविध मुद्दों की तरफ भी सूक्ष्मता के साथ उन्होंने अपनी गहरी दृष्टि डालकर लेखन कार्य किया है। क्षमा जी ने अपने संपूर्ण कथा साहित्य एवं विभिन्न समाचार पत्रों में प्रकाशित स्तंभ लेखों में विविध विमर्शों के साथ–साथ समसामयिक मुद्दों को भी गंभीरतापूर्वक प्रस्तुत किया है। नवीन विषयों पर उन्होंने केवल चर्चा–परिचर्चा ही नहीं की है, अपितु समस्याओं के निदान हेतु महत्वपूर्ण सुझाव भी प्रस्तुत किये हैं किन्तु यहाँ यह भी जरूरी है कि इन्होंने जिन विमर्शों पर चर्चा–परिचर्चा किया है उसका तुलनात्मक मूल्यांकन अन्य स्त्री रचनाकारों से किया जाए जिन्होंने अपने कथा साहित्य के द्वारा नारी अस्मिता को स्पर्श किया है। यदि हम व्यापक विश्लेषण करते हैं तो क्षमा शर्मा जी की समसामयिक नारी रचनाकारों की संख्या अत्यधिक है। सभी का शलाघनीय लेखन यहाँ समाहित नहीं किया जा सकता। अतः मृदला गर्ग एवं ममता कालिया जैसी वर्तमान में सक्रिय रचनाकारों के माध्यम से हम क्षमा शर्मा जी के साथ तुलनात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत करेंगे।

क्षमा शर्मा और मृदुला गर्ग

क्षमा शर्मा और मृदुला गर्ग समकालीन हिन्दी साहित्य की सशक्त एवं अग्रणी महिला साहित्यकार हैं। इन दोनों महिला साहित्यकारों ने अपने लेखन का विषय नारी संघर्ष एवं चेतना, पर्यावरण चिंतना, बाल विमर्श तथा अन्य समसामयिक मुद्‌दों को बनाया है। दोनों लेखिकाओं के लेखन यूँ तो बहुत सारी समानताएँ हैं किन्तु नारी पात्र एवं उनकी समस्याओं के रेखांकन में गहरा अंतर दिखाई देता है। क्षमा शर्मा के कथा साहित्य की विषय वस्तु मुख्य रूप से मध्यमवर्गीय नारी के घरेलू, पारिवारिक और सामाजिक तजुर्बों से जुड़ी है। उनकी कहानियों और उपन्यासों में संबंधों का बिखराव, एकाकीपन, संत्रास भावनात्मक उपेक्षा और स्त्री की आंतरिक पीड़ा की प्रमुखता मिलती है। यहाँ संघर्ष अधिकतर अंदृश्य होता है जो शनैः शनैः आत्मबोध में परिवर्तित होता है। इसके विपरीत मृदुला गर्ग की रचनाओं में विषय–वस्तु बहुत अधिक उग्र और प्रश्नाकुल है। वह स्त्री की देह, इच्छा, कुंठा, नैतिक आजादी और सामाजिक प्रतिबंधों को कथा साहित्य के केंद्र में लाती हैं। उनकी कहानियों और उपन्यासों के पात्र पारिवारिक दायरे से निकलकर सामाजिक एवं दार्शनिक प्रश्नों से संघर्ष करते हैं। क्षमा शर्मा जहाँ जीवन को भोगे हुए यथार्थ के रूप में प्रस्तुत करती हैं वहीं मृदुला गर्ग जीवन को पुनः परिभाषित किये जाने योग्य संरचना मानती हैं। क्षमा जी की स्त्री अपने परिवेश से गहराई से जुड़ी होती है। वह कम विद्रोही होती है लेकिन अंदर ही अंदर अपनी अस्मिता और पहचान के लिये संघर्ष करती है। यहाँ स्त्री सामाजिक संरचना को पूर्ण रूप से तोड़ती हुई नहीं दिखाई देती बल्कि उसमें अपने लिये जगह बनाना चाहती है। क्षमा जी की कहानी ''काला कानून'' की मुख्य स्त्री पात्र कान्ता महेश के साथ लिव–इन में रहती है और उसे एक संतान भी होती है किन्तु महेश की मृत्यु के बाद वह अपनी संतान चुन्नु के अधिकारों के लिये समाल के सामने हार जाती है जिसे यह पंक्तियाँ यथार्थ रूप में प्रकट करती हैं– ''मेरी महेश से शादी नहीं हुई थी। इसलिए उनकी पत्नी आ गई। तलाकशुदा ही सही लेकिन है तो उनकी पत्नी। कानूनन मैं तो कुछ भी नहीं। कानून की निगाह में तो चुन्नू मेरी अवैध संतान है।''[1]

क्षमा शर्मा की कहानियों की स्त्रियाँ सहनशीलता से आत्मबोध की ओर जाती हैं जैसे 'एक है सुमन' कहानी की मुख्य पात्र सुमन धन दौलत, जमीन–जायदाद सभी को ठुकराते हुए कहती है–''जमीन जायदाद, खेती–बाड़ी और दुबेजी का नाम भी तुम रख लो, मुझे कुछ नहीं चाहिए सिर्फ दुबेजी.......... यहाँ तक कि कोई संतान तक नहीं।[2]

मृदुला गर्ग की स्त्रियाँ सामाजिक संरचना को स्वीकार करने की अपेक्षा उस पर प्रश्नचिन्ह लगाती हैं। वह संबंधों, शादी, मातृत्व और सामाजिक मूल्यों को स्वाभाविक सत्य नहीं मानती। उसका संघर्ष बाह्य और वैचारिक दोनों ही स्तरों पर दृष्टिगोचर होता है। इनकी स्त्रियाँ आत्मबोध से विद्रोह की ओर जाती हैं जैसे 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास में कंथा नायिका मनीषा कहती है कि–''प्यार करना कला नहीं जरूरत है।''[3] इसी तरह ये पंक्तियाँ मृदुला जी की प्रेम संबंधी मौलिक और बोल्ड मान्यता को रेखांकित करती है। इसी उपन्यास में मनीषा प्रेम के संबंध में कहती है कि–''यूँ तो इंसान की न जाने कितनी जरूरतें होती हैं लेकिन यह जरूरत ऐसी है जिसमें कोई अन्य व्यक्ति भी सम्मिलित रहता है बिना शोषण इसकी पूर्ति भी तभी हों सकती है जब दोनों की जरूरत एक हो। जब जरूरतें एक हों तो शरीर का मिलन अद्भुत बन जाता है।''[4]

पर्यावरण जैसे संवेदनशील एवं ज्वलंत मुद्दे पर हिन्दी साहित्य में लिखने वाली चुनिंदा लेखिकाओं में क्षगा शर्मा एवं मृदुला गर्ग अग्रणी स्थान रखती है। पर्यावरण को हो रहे नुकसान, उससे उत्पन्न समस्याएँ एवं पर्यावरणीय संकट, उससे प्रभावित होने वाले जीव–जंतुओं एवं पशु–पक्षियों के विप्लुप्त होने, आवास का संकट आदि समस्याओं पर दोनों ही लेखिकाओं ने अपने कथा साहित्य एवं स्तंभ लेखों में अपनी चिंता जाहिर की है। क्षमा शर्मा जी का 'शस्य का पता उपन्यास' पूरी तरह से पर्यावरण पर केन्द्रित है जिसमें वनों के निरंतर कटाव एवं पक्षियों के आवास के संकट पर गंभीर चिंता व्यक्त की गयी है। वहीं मृदुला गर्ग का पर्यावरण विमर्श वैश्विक पारिस्थितिकी के व्यापक संदर्भों से जुड़ा है। वह प्रसिद्ध पर्यावरण विद्वान राहिल कॉर्सन की पुस्तक 'साइलेंट स्प्रिंग' से गहराई से प्रभावित रही हैं। उन्होंने बिहार के डालमियानगर जैसे औद्योगिक क्षेत्रों के स्वयं के अनुभवों द्वारा प्रकृति के विनाश और उससे उत्पन्न प्रदूषण व अन्य समस्याओं को अपनी आँखों से देखा जो उनके लेखन का आधार बना। मृदुला गर्ग जी की कहानी 'एक भी चिड़िया नहीं चहचहाएगी' भोपाल गैस त्रासदी की घटना पर केंद्रित है। इस कहानी में मिथाइल आइसोसाइनेट नामक जहरीले गैस के रिसाव से मनुष्य से लेकर समस्त जीव–जंतुओं पर पड़ने वाले प्रभावों का चित्रण है। मृदुला जी इस कहानी में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखती हैं कि–''एक सुबह आयी कि सूरज के उगने पर एक भी चिड़िया नहीं चहचहाई, ऐसा सन्नाटा घिर आया कि कान फटने लगे और फिर धूप निकली तो न ताल में मछलियाँ जिन्दा थी और न पेड़ों पर फल–फूल सब कुछ सूख चुका था। हरे पत्ते, लाल गुलाब काले पड़ चुके थे और टहनियाँ सूखकर फिर कभी न फूलने का खौफनाक मंजर पेश कर रही थीं।''[5]

क्षमा जी का पर्यावरण विमर्श अधिक सामाजिक एवं व्यवहारिक है। वह इसे आधुनिक जीवन शैली और मध्यवर्गीय प्रयोजनों से जोड़कर देखती हैं। उनके लिये पर्यावरण का मतलब केवल जंगल बचाना नहीं अपितु उस मानसिकता को भी परिवर्तित करना है जो उपभोक्तावाद से प्रभावित होकर प्रकृति का दोहन कर रही हैं।

वर्तमान में हिन्दी साहित्य में बाल विमर्श एक ज्वलंत मुद्दे के रूप में चर्चा का केंद्र हैं। क्षमा शर्मा जी स्थापित बाल साहित्यकार के रूप में प्रसिद्ध है और उनका बाल साहित्य बहुत ही समृद्ध है। वह 37 वर्षों से निरंतर बाल पत्रिका नंदन में संपादक के रूप में कार्य कर रही हैं। उन्होंने बच्चों के जीवन से जुड़े हर पहलू को अपने कथा साहित्य में स्थान दिया है। वह बच्चों के शारीरिक एवं मानसिक विकास में खुलापन चाहती हैं। बच्चों से जुड़े ज्वलंत मुद्दे जैसे–बस्ते का बोझ एकाकीपन, तकनीकी का उन पर बुरा प्रभाव, मोबाइल पर हमेशा चिपके रहना आदि पर उन्होंने गंभीर लेखन किया है। उन्होंने अपने बाल उपन्यास 'शिब्बू पहलवान', 'पन्ना धाय','मिट्ठू का घर', 'पप्पू चला ढूंढने शेर', 'गोपू का कहुआ', 'नाहर सिंह के कारनामें', 'बोलने वाली घड़ी' एवं 'तितली की खुशी', 'बस्ते' 'पापा ने मानी गलती', 'फिटनेस मंत्र' आदि कहानियों में बच्चों से जुड़े वर्तमान मुद्दों पर अपनी कलम चलाई है।

मृदुला गर्ग जी के लेखक का केंद्र बिंदु तो नारी विमर्श है लेकिन उन्होंने बाल विमर्श पर भी अपने विचार बाल नाटकों में प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने बाल विमर्श पर कलम तो चलाई किन्तु इस मुद्दे पर बहुत अधिक नहीं लिखा है। उनके नाटक 'जादू का कालीन' और 'साम दाम दण्ड भेद' ही बच्चों से

संबंधी मुद्दे पर लिखे दृष्टिगोचर होते हैं जिसमें उन्होंने बच्चों के संज्ञानात्मक तथा मानसिक, नैतिक मूल्य, बालश्रम और पर्यावरण जैसे मुद्दों पर लिखा है। 'जादू का कालीन' एक बाल केंद्रित नाटक हैं जो बाल श्रम, प्रशासनिक भ्रष्टाचार और गरीबी के बीच बच्चों के शोषण को उजागर करता है। यह फैंटेसी और यथार्थ का मिश्रण है जहाँ बच्चे कालीन को ही मुक्ति का साधन मानते हैं। इस नाटक की ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं जो बालश्रम को यथार्थ रूप में दर्शाती है –

दलाल– एकः (हँसकर) इस उमर में तुम क्या सीखोगे? यह काम बच्चों का है। अपने लड़के को भेज दो। वह देखो कितने बाल–गोपाल जा रहे हैं हमारे साथ।''[6]

क्षमा शर्मा जी के कथा साहित्य में शैक्षिक विमर्श एक मुद्दे के रूप में उभरकर आता है। उन्होंने शिक्षा जगत में व्याप्त भ्रष्टाचार, नैतिक अवमूल्यन शिक्षा का व्यवसायीकरण एवं बाजारीकरण तथा बच्चों पर आधुनिकता के नाम पर बढ़ते बस्ते के बोझ को यथार्थ रूप में चित्रित किया है। उनका उपन्यास 'दूसरा पाठ' तो पूरी तरह ईमानदारी का चोला ओढ़े समाज के उन दुष्टों एवं भ्रष्टाचारियों पर प्रकाश डालता है जो एक ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ युवा शिक्षक को उसके कर्तव्य निर्वहन के रास्ते में बाधा बनते हैं। इसके साथ ही क्षमा जी ने अपनी कहानी 'मास्टर तोताराम' में जातिवाद, सांप्रदायिकता, संकीर्णता, कुंठा, ईष्या आदि को व्यवहारिक दृष्टिकोंण से प्रस्तुत किया है। यह कहानी वर्तमान में भी प्रासंगिक है। इसी प्रकार मृदुला गर्ग ने भी अपने कथा साहित्य में भी परंपरागत शिक्षण प्रणाली पर चोट की है वे ऐसी शिक्षा का समर्थन करती हैं जो व्यक्ति को संवदेनशीत और मानवीय बनाए कि केवल कैरियर की दौड़ में शामिल करे। इसके साथ ही उनकी कहानियों में बच्चों की शिक्षा के प्रति एक अलग दृष्टिकोण दिखाई देता है जहाँ किताबी ज्ञान से अधिक उनके मानसिक विकास और रचनात्मकता जोर दिया गया है। 'कटाक्ष' स्तम्भ के निबंधों व इंडिया टुडे के हिन्दी संस्करण में लगभग तीन साल तक स्तंभ लेख लिखा था। इन निबंधों में उन्होंने भारतीय समाज, राजनीति और नौकरशाही के साथ–साथ शिक्षा जगत में व्याप्त विसंगतियों और भ्रष्टाचार पर भी तीखे व्यंग्य किये उनके निबंध संग्रह विशेष रूप से 'चुकते नहीं सवाल' में शिक्षा प्रणाली की कमियों और उसमें मौजूद अनैतिकताओं से जुड़े कई ज्वलंत मुद्दों को उठाया है। कुछ कहानियों में भी अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षण–संस्थाओं के माहौल, शिक्षक नियुक्तियों में भ्रष्टाचार और शिक्षा के व्यवसायीकरण पर टिप्पणियाँ मिलती हैं।

क्षमा शर्मा जी की भाषा सरल, सहज, चुटीली, रोमांचक भावनात्मक है। इनका कथानक सीधा होता है और पाठक से स्नेहिल संवाद स्थापित करता है। मृदुला गर्ग जी की भाषा तर्कपूर्ण, प्रतीकात्मक और तीखी है। उनका कथाशिल्प प्रयोगधर्मी है. और कथानक पारंपरिक संरचना को तोड़ता है। इस प्रकार क्षमा शर्मा का शिल्प पारंपरिक और संवेदनात्मक है जबकि मृदुला गर्ग का शिल्प आधुनिक, प्रयोगपरक और बौद्धिक है। इस प्रकार क्षमा शर्मा और मृदुला गर्ग दोनों का कथा साहित्य स्त्री अनुभव और अन्य मुद्दों के अलग–अलग आयामों को उद्घाटित करता है। जहाँ क्षमा शर्मा संवेदना, सहानुभूति और संबंधों की कोमल जटिलताओं की कथाकार हैं, वहीं मृदुला गर्ग वैचारिक निर्भिकता, स्त्री स्वतंत्रता और सामाजिक प्रतिरोध की सशक्त आवाज हैं। अतः हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि एक–दूसरें की पूरक लेखिकाएँ है और हिन्दी कथा साहित्य को समृद्ध कर रही हैं।

क्षमा शर्मा और ममता कालिया

क्षमा शर्मा और ममता कालिया हिन्दी साहित्य जगत की महत्वपूर्ण स्त्री रंचनाकार हैं। इन दोनों ही प्रतिष्ठित महिला रचनाकारों का साहित्य स्त्री विमर्श और मध्यमवर्गीय जीवन की विडम्बनाओं पर केंद्रित है। क्षमा जी का लेखन मुख्य रूप से नारी विमर्श और बाल विमर्श पर केंद्रित है। इन्होंने नारी के दैनिक जीवन के संघर्षों और उसकी कोमल, संवेदनाओं को अपने कथा साहित्य में यथार्थ रूप में चित्रित किया है। पारिवारिक जटिलताएँ, सामाजिक विसंगतियों, कामकाजी नारियों की समस्याएँ, पुरुष द्वारा नारी का शोषण, वेश्यावृत्ति आदि पर दोनों ही रचनाकारों ने अपनी कलम चलाई है।

परिवार के अभाव में समाज का कोई अस्तित्व नहीं है किन्तु वर्तमान में सारी समस्याएँ परिवार के कारण ही पैदा हो रही हैं। नारी सदियों से पारिवारिक घुटन का शिकार होती आई है। क्षमा जी ने अपनी रचनाओं के द्वारा पारिवारिक घुटन एवं विघटन को पूरे समाज के सामने प्रस्तुत किया है। क्षमा जी की कहानी 'मातृ–ऋण' में यह घुटन स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। आज नारी पारिवारिक घुटन का सामना कैसे करती है इसका यथार्थ वर्णन इस कहानी में किया गया है। घर–परिवार की जिम्मेदारी उठाते–उठाते नारी किस प्रकार एक घुटन भरी जिन्दगी जीने को विवश है उसका चित्रण से पंक्तियाँ

स्पष्ट रूप से करती हैं–''मुझे याद है सिर से पैर तक ढकी माँ कच्चे घर में एक पैर से घूमती रहती थीं। उस पर भी दादी कहतीं–अरी बहू इस उम्र में इतने से काम मेंथक जाती हो तो आगे क्या होगा? ऐसे ही फूलों में तुलना था तो अपने बाप से कह देती किसी राजा को ब्याह देते। हमारा लड़का तो मास्टर है, उसके साथ रहोगी तो यह काम क्या बहुत कुछ करना होगा।''[7]

इसी तरह की पारिवारिक घुटन की स्पष्ट छाप ममता कालिया जी की 'ऊँचे–ऊँचे कंगूरे' कहानी में भी दिखायी देती है। कहानी की मुख्य नारी पात्र अनुभा अनेक मीठे सपने सजाए हुए अपने ससुराल पहुंचती है तो मातृ पक्ष एवं पितृ पक्ष को संतुलित करने की कोशिश में पारिवारिक घुटन में कैद हो जाती है और एक घुटन भरा जीवन जीने को विवश हो जाती है। इस कहानी की यह पंक्तियाँ अनुभा के घुटन को स्पष्ट रूप से चित्रित करती हैं–''ऊँचे–ऊँचे कंगूरे की अनुभा पिता के यहाँ उनकी मान–हानि न करवाने के डर से बंधी है और ससुराल प्राप्त हो जाने पर पैरों की धरती तक खो चुकी है। वहाँ सब कुछ है सिर्फ आजादी और खुशी नहीं। इस प्रकार उसका जीवन दोनों ही घरों में घुटकर रह गया है।[8]

भारतीय समाज में आजादी के बाद व्यापक रूप में बदलाव आया है। वर्तमान में भी प्राचीन रुढियाँ एवं परंपराएँ बहुत ही गहराई तक अपनेजड़े जमाए हुए हैं। आज चारो तरफ आधुनिकत का शोर है परंतु वास्तविकता कुछ और ही है। इन विसंगतियों की तरफ क्षमा जी एवं ममता कालिया जी का ध्यान दूर तक गया है।

क्षमा जी ने अपनी कई कहानियों में समाज में व्याप्त विसंगतियों एवं दोहरे मापदण्डों का अपनी नारी पात्रों के माध्यम से खुलकर विरोध किया है। क्षमा जी की कहानी 'बर्फ होती मुलाकात' की प्रमुख स्त्री पात्र सरिता विवाह का विरोध करती हुई कहती है कि–''मुझे अभी शादी नहीं करनी है, अपना कैरियर बनाना है। पढ़ी–लिखी लड़की का फायदा ही क्या अगर घर–गृहस्थी में वह सब कुछ भूल जाए।''[9]

इसी तरह का तीखा विरोध ममता कालिया जी की कहानी 'बोलने वाली औरत' में भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। मीरा का यह कथन सामाजिक मान्यताओं पर तीखा चोट करता है–''यह झाड़ू सीधी किसने खड़ी की? बीबी ने, त्योरी चढ़ा कर विकट मुद्रा में पूछा। जवाब न मिलने पर उन्होंने मीरा को धमकाया....... मैंने नहीं रखी'–मीरा ने ऐंठ कर जवाब दिया। 'क्यों रखी थी! तुझे इतना नहीं मालूम कि झाड़ू खड़ी रखने से घर में दलिद्दरआता है, कर्ज बढ़ता है, रोग जोड़ पकड़ लेता है। यह तो मैंने कभी नहीं सुना। ....मेरा ख्याल है झाड़ू गुरललखाने के बीचो–बीच भीगती हुई पसरी हुई छोड़ देने से दलिद्दर आ सकता है। तीलियाँ गल जाती है, रस्सीढ़ीली पड़ जाती है और गन्दी भी लगती है।''[10]

वर्तमान में नारी शिक्षित हो गई है। वह अपने पैरों पर खड़ी है। वह नौकरी कर रही है और अपने अस्तित्व को पहचानने लगी है। वर्तमान में संकुचित मानसिक सोच रखने वाले पति पत्नी का निजी अस्तित्व व अस्मिता बरदास्त नहीं कर पाते। घर और बाहर के बीच तालमेल स्थापित करने में आज की नारी अनेक कठिनाईयों का सामना कर रही है जिसका चित्रण क्षमा शर्मा व ममता कालिया दोनों ने ही अपने कथा–साहित्य में बखूबी किया है। ममता कालिया जी की कहानी 'एक अदद औरत' में एक ऐसी स्त्री का दर्द है जो पढ़ी–लिखी है, अपनी अस्मिता, आत्म सम्मान, स्वतंत्रता और अस्तित्व के लिये सजगतो है किन्तु उसे रहना और संघर्ष उसी समाज में करना है जहाँ एक पुरुष अपनी पत्नी को पराधीन और पराश्रित बनी देखना चाहता है। इस कहानी की यह पंक्तियाँ भारतीय समाज की कामकाजी नारी के दर्द को यथार्थ रूप में प्रकट करती हैं–''नहीं मुझे अपनी नाराजगी नहीं दिखानी है, एक आदर्श पत्नी की भाँति अपने को भी पतिव्रत का हिस्सा मानकर झेलना है। मुझे मुस्कुराना है, मुझे खुश होना है, मुझे सहमति से सिर हिलाते रहना है।''

क्षमा शर्मा जी की कहानी 'काहे को ब्याही विदेश' में भी नौकरी करने वाली स्त्री की वेदना को सूक्ष्म रूप में चित्रित किया गया है। इस कहनी में नायिका का भाई अपनी बहन को सुझाव देतें हुए सब कुछ चुपचाप सहने के लिये कहता है। वह कहता है कि–''यदि नौकरी करना चाहती हो तो चुप रहो। अकेले आना–जाना पड़ता है सबके–सबको दुश्मन बनाकर तेरा नौकरी करना दूभर हो जाएगा।''[12]

स्त्री जननी है किन्तु हमारे समाज की विडम्बना यह है कि पुरुष हमेशा से स्त्री का शोषण करता आया है। जब नारी का कार्यक्षेत्र सिर्फ घर की चहारदीवारी तक सीमित था तब भी वह पुरुष के शोषण का शिकार होती थी और आज जब उसका कार्यक्षेत्र बाहर है तब भी नये–नये रूपों में उसे हर

दिन शारीरिक एवं मानसिक शोषण का शिकार होना पड़ रहा है। ममता जी एवं क्षमा जी दोनों ने ही पुरुषों द्वारा नारी के शोषण को अपने नारी विमर्श के केंद्र में रखा है। ममता कालिया जी की कहानी 'जाँच अभी जारी है' में एक नौकरी करने वाली नारी का अपने ऑफिस में किस तरह शोषण होता है इस तथ्य को उजागर किया गया है। अपर्णा सोचती है कि–''खोया तो उसने और भी बहुत कुछ। अब उसे लगता है कि उसने सिन्हा और खन्ना से अदावत मोल ली है जब तो, वह उस कारण की हिफाजत भी नहीं कर सकी।''[13]

इसी प्रकार क्षमा जी ने अपनी कहानियों, लेखों के द्वारा स्त्री की दशा को समाज के सामने रखा है। उन्होंने केवल नारी के माध्यम सो ही नहीं अपितु पुरुष पात्रों के द्वारा भी स्त्री–शोषण का विरोध किया है। क्षमा जी की कहानी 'शुरुआत' का नायक कहता है कि–''अनीता मैं कभी किसी बात से परेशान नहीं होता। मैं उन परंपराओं में कतई यकीन नहीं करता, जिनसे लगातार औरत का शोषण होता रहे। औरत जिसके बिना पुरुष इस संसार में आँखें नहीं खोल सकता, उसे बराबरी का दर्जा नहीं दिया जा सकता क्यों ?[14]

क्षमा शर्मा एवं ममता कालिया जी एक प्रतिष्ठित महिला रचनाकारों में मुख्य स्थान रखती हैं। दोनों लेखिकाओं ने बाल साहित्य की रचना की है ममता जी की अपेक्षा किन्तु क्षमा जी का बाल साहित्या ममता जी की अपेक्षा काफी समृद्ध एवं व्यापक है। क्षमा जी बाल साहित्यकार के रूप में जानी जाती हैं और उन्हें उनके बाल साहित्य पर सन् 2022 में साहित्य अकादमी बाल साहित्य पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है। वह बच्चों की मासूमियत, उनकी मानसिक प्रवृत्तियों और उनके दैनिक जीवन की प्रतिक्रियाओं का बहुत ही सूक्ष्मता से चित्रण करती हैं। इसके साथ ही उनकी बाल–कहानियों एवं उपन्यासों में मध्य व निम्नवर्गीय बच्चों की आर्थिक व नैतिक समस्याओं का भी चित्रण मिलता है। इनका बाल साहित्य बहुआयामी और विस्तृत है। क्षमा जी की बाल कहानियाँ बालमन और उनकी ज्वलंत समस्याओं पर दृष्टिपात करती हैं। 'होमवर्क' क्षमा जी द्वारा लिखी गई महत्वपूर्ण व प्रसिद्ध बाल कहानी है जो मासूम बच्चों के मनोविज्ञान तथा स्कूलों द्वारा बच्चों पर थोपे गए काम के बोझ को दर्शाती है। इस कहानी का मुख्य बाल पात्र छोटू अपने स्कूल के होमवर्क से परेशान रहता है उसे महसूस होता है कि होमवर्क (गृहकार्य) एक ऐसी परेशानी है उससे उसके खेलकूद का समय और चैन–सुकून छीन लेती है। वह कल्पना करता है कि काश! कोई ऐसी मशीन होती जिससे होमवर्क अपने आप पूरा हो जाता या फिर वह बीमार हो जाए या कोई चमत्कार हो जाए तो उसे होमवर्क से आजादी मिल जाएगी। इस कहानी के द्वारा क्षमा जी ने यह संदेश दिया है कि बच्चों पर पढ़ाई–लिखाई का बहुत अधिक बोझ नहीं डालना चाहिए। यह बाल कहानी बच्चों के खेलकूद तया बच्चों की स्वतंत्रता के महत्व को चित्रित करती है। क्षमा जी की 'बस्ते कहाँ से आएगा?' 'हरा सूरज' 'पप्पू चला ढूंढ़ने शेर, 'एक रात जंगल में' आदि कहानियाँ बच्चों की समस्याओं, पर्यावरण, बस्ते के बोझ आदि को यथार्थ रूप में चित्रित करती हैं।

ममता कालिया बाल साहित्य की ऐसी सशक्त हस्ताक्षर हैं जिन्होंने बच्चों के कोमल मन की जटिलताओं तथा समाज की गंभीर चुनौतियों को अपने बाल कथा साहित्य का केंद्र बनाया है। इनका बाल साहित्य गंभीर एवं वैश्विक, पटल पर आधारित है। उनका लेखन मासूम बच्चों को सिर्फ कल्पना लोक में ही विचरण नहीं कराता अपितु उन्हें एक कर्तव्यनिष्ठ नागरिक बनाने की कोशिश करता है। ममता जी बाल मन को गहराई से महसूस करती हैं। उनकी कहानियों में मध्यवर्गीय परिवार के बच्चों के संघर्ष और उनके सपनों का सजीव चित्रण देखने कोमिलता है। ममता जी की प्रमुख बाल रचनाओं में ऐसा था बजरंगी (बाल कविता संग्रह), शाबाश चुन्नू (बाल कविता संग्रह), नन्हें मुन्ने के सपने (बाल–कविता संग्रह), जादू की, घड़ी (बाल कहानी/चित्रकथा), साकुरा का देश (बाल कहानी/चित्रकथा) आदि प्रमुख है। इनका बाल साहित्य केवल बच्चों के मनोरंजन तक ही सीमित नहीं है अपितु बच्चों को शांति, मानवीय संवेदनाओं और सामाजिक यथार्थ से रूबरू कराता है इनकी बाल कहानियों में बच्चों की नजर से संसार को देखने का प्रयत्न किया गया है। उनकी बाल कहानी 'आजादी' में एक बच्ची के द्वारा 'आजादी' के कोमल अर्थ को बताया गया है। यह कहानी एक छोटे बच्चे के चारो तरफ घूमती है जिसके लिये 'आजादी' का अर्थ बड़ों के द्वारा लादे गए नियमों से मुक्त होना है। वह बच्चा अनुभव करता है कि उसकी जिन्दगी के हर फैसले जैसे खेलना, खाना, पहनना आदि सब बड़े लोग लेते हैं। उसकी दृष्टि में सही मायने में आजादी या स्वतंत्रता वह पल है जब उसे

अपनी मर्जी से कुछ करने का मौका मिले। यह कहानी समाज को यह संदेश देती है कि स्वतंत्रता या आजादी सिर्फ एक शब्द नहीं है अपितु हर मनुष्य (जीव) का मौलिक अधिकार है।

''कमाल का है मन्नू'' ममता जी का किशोरों के लिये लिखा गया सुंदर उपन्यास है। उपन्यास के केंद्र में बोर्ड की परीक्षा की तैयारी करने वाला किशोर मानस है जिसे उसके परिवार वाले आलसी और पढ़ने में कमजोर समझते हैं किन्तु वह अंत में टॉप करता है। यह बाल उपन्यास यह संदेश देता है कि केवल परीक्षाओं में सर्वाधिक अंक लाना ही जीवन का उद्देश्य नहीं है अपितु एक कर्तव्यनिष्ठ और मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण नागरिक बनना ज्यादा महत्वपूर्ण है। इस बाल उपन्यास में वर्तमान शिक्षा प्रणाली की चुनौतियों, किशोरों में व्याप्त मानसिक उलझनों और मानवीय मूल्यों के महत्व पर दृष्टि डाली गयी है। ''ऐसा था बजरंगी'' एक बाल लघु उपन्यास है। यह एक अनाथ बच्चे बजरंगी की कहानी है जिसके जीवन में कितना संघर्ष है; कितना उतार–चढ़ाव है? इसके साथ ही 'शाबाश चुन्नु', 'नेह के नाते' में भी बाल मन की संवेदनाओं को चित्रित किया गया है।

ममता कालिया की 'साकुरा का देश' एक महत्वपूर्ण व मार्मिक चित्रकथा है जो जापान में हुए हिरोशिगा परमाणु हमले की त्रासदी एवं उसके कारण प्रभावित होने वाली अगली पीढ़ियों के संघर्ष को दिखाने की कोशिश करती है। यह एक चित्रकथा है इसलिए इसकी भाषा शैली सहज, सरल, चित्रात्मक एवं बोधगम्य है। यह एक ऐतिहासिक घटना के माध्यम से मासूम बच्चों को युद्ध के विनाशकारी प्रभाव से अवगत कराती है और शांति के महत्व से परिचित कराती है।

वर्तमान में शिक्षा विमर्श भी एक प्रमुख एवं ज्वलंत मुद्दा है जिसपर हिन्दी साहित्य जगत में समकालीन रचनाकार जोर शोर से लिख रहे हैं जिनमें क्षमा शर्मा एवं ममता कालिया का स्थान प्रमुख है। क्षमा शर्मा का उपन्यास 'दूसरा पाठ' शिक्षा जगत की खामियों को जीवंत रूप में समाज के सामने प्रस्तुत करता है वहीं ममता कालिया का कथा साहित्य भी न सिर्फ नारी विमर्श अपितु शिक्षा विमर्श का भी अत्यंत महत्वपूर्ण दस्तावेज है। उन्होंने भी भारतीय शिक्षा जगत के अंदर की खामियों व भ्रष्टाचार को एक इनसाइडर (भीतरी व्यक्ति) की नजर से देखा और चित्रित करने का प्रयास किया है। ममता कालिया जी का उपन्यास 'अँधेरे का ताला' शिक्षा जगत की वास्तविकता को यथार्थ रूप में उजागर करता है। उन्होंने इस उपन्यास में शिक्षा के व्यवसायीकरण, कोचिंग संस्कृति, एकेडमिक राजनीति व नैतिक अवमूल्यन, शिक्षक–छात्र संबंधों का बदलता स्वरूप, महिला शिक्षकों का दोहरा संघर्ष, परीक्षा केंद्रित शिक्षा प्रणाली एवं डिग्री बनाम ज्ञान के द्वंद्व जैसी विकट व गंभीर समस्याओं के प्रति समाज का ध्यान आकृष्ट किया है। उपन्यास की यह पंक्तियाँ शिक्षा जगत की सच्चाई को बखूबी दर्शाती है–''बड़ी बहन जी के दो ही रणक्षेत्र हैं–प्रवेश और परीक्षा–कर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र–जिनमें से प्रतिवर्ष सम्भवामि युगे–युगे होकर वे बच निकलती हैं। अब एक नयी चीच और पैदा हो गयी है–प्रवेश परीक्षा। कुछ छात्राएँ प्रवेश परीक्षा में रह जाती हैं। उनके अभिभावक आए दिन धरना देते हैं। लड़की चुपचाप सहमी सिमटी खड़ी है। अभिभावक बहस करता है, ''इन्टर में हमारी बेटी के अस्सी प्रतिशत अंक आए है, कैसे नहीं देंगें दाखिला हम कोर्ट केस कर देंगें।'' उपरोक्त पंक्तियाँ यह दर्शाती है आज परीक्षाओं में बच्चे कैसे अंक प्राप्त कर रहे हैं और एक प्रवेश परीक्षा तक नहीं पास कर पा रहे हैं और ऊपर से शिक्षकों को धमकियाँ देते हुए भी दिखाई दे रहे हैं। यह हमारे शिक्षा जगत की वास्तविकता है। वर्तमान में सरकारी कॉलेजों में शिक्षकों की भारी कमी भी शिक्षा जगत की एक विकट समस्या है जिसकी तरफ सरकारों का ध्यान कम ही जाता है। ममता कालिया जी के इस उपन्यास में कॉलेज के प्रबंधक अग्रवाल जी कहते हैं– ''कहो, इतनी टीचरों का क्या करोगी? अचार डालोगी? प्राइमरी में अस्सी रूपये पर एक टीचर आठ घण्टा पढ़ाती है। तुम्हारे यहाँ चार सौ में दो घण्टी पढाऐंगी, बाकी छः घण्टी घण्डे बजाएगी और तुम एम.ए.ए पी–एच.डी., पास क्या करोगी? प्रिंसीपली का मतलब यह नहीं है कि बैठी बैठी राम–राम करो। पढ़ाना तुमकों भी पड़ेगा।''[14] इसके साथ–साथ इस उपन्यास में शिक्षकों की कामचोरी, चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों की कामचोरी प्रबंधन की कमी, कॉलेजों में प्रवेश की समस्या, संसाधनों की कमी, शिक्षकों का शोषण एवं शिक्षा के बढ़ते व्यवसायीकरण पर ममता कालिया जी ने गहरी चोट की है।

क्षमा शर्मा की के उपन्यास 'दूसरा पाठ' एवं 'मास्टर तोताराम' में शिक्षा जगत की विसंगतियों का पर्दाफाश किया गया है। क्षमा जी हिन्दी साहित्य जगत की उन लेखिकाओं में शुमार की जा सकती है। जिन्होंने समाज के हर ज्वलंत मुद्दों को अपनी लेखनी का विषय बनाया है चाहे वह नारी विमर्श हो या अन्य विमर्श। उनका ध्यान जितना नारी जीवन से जुड़ी समस्याओं की ओर गया है उतना ही बच्चों,

पर्यावरण, शिक्षा राजनीति, धार्मिक मुद्दों की तरफ भी उतनी ही गहरी दृष्टि से वह सोचती है। 'दूसरा पाठ' उपन्यास में उन्होंने शिक्षा जगत में व्याप्त व्यापक भ्रष्टाचार, जातिवाद, धार्मिक पाखण्ड, शिक्षा में व्याप्त राजनीतिक व व्यवसायीकरण का यथार्थ चित्रण किया है। उपन्यास का पात्र जब एक शिक्षक के रूप में उस विद्यालय में प्रवेश करता है तो वहाँ की अव्यवस्था को देखकर चौंक जाता है। लैब की अव्यवस्था को यह पक्तियाँ यथार्थ रूप में दर्शाती हैं–''पूरी लैब में अव्यवस्था फैली हुई थी। एक कोने में बीकरों का ढ़ेर रोड़ी के ढ़ेर की तरह लगा था। दूसरे कोने में परखनलियाँ इधर से उधर बिखरी थीं। एसिडों की शीशियों के ढ़क्कन खुले पड़े थे।'' प्रयोगशाला के सामानों का रजिस्टर जब गौतम खोलता है तब देखता है कि–''पिछले छः सालों से बीकर पाँच सौ के पांच सौ ही थे। परखनलियाँ चार सौ की चार सौ ही थीं। जो भी नया मास्टर आया था उसने इसी संख्या पर हस्ताक्षर किये थे।''[16]

इसके अतिरिक्त हमारे भारतीय समाज की एक गंभीर समस्या यह भी है कि अगर कोई ईमानदारी के साथ अपने दायित्वों का निर्वहन करना चाहे तो दुष्ट प्रवृत्तियों के कुंठित व्यक्ति उन्हें उनके कार्यों को करने नहीं देते। हर संभव यह कोशिश करते हैं कि वे अपने कर्तव्यों का पालन सही ढंग से न कर पाएं। उस कर्तव्यनिष्ठ एवं ईमानदार व्यक्ति के समझ ऐसी बिकट परिस्थितियां पैदा कर देते हैं कि वह व्यक्ति निराश व परेशान होकर हार मान जाता है और उस स्थान को छोड़ने के लिये विवश हो जाता है। ऐसे घटिया लोग ईमानदार व्यक्ति को वहाँ इसलिये नहीं रहने देते जिससे वह खुलकर भ्रष्टाचार कर सकें और उनके इस धृणित कार्य में कोई बाधा पहुंचाने वाला न हो। इन परिस्थितियों को उपन्यास की यह पंक्तियाँ स्पष्ट रूप से चित्रित करती हैं–''कल और आज वह दुर्घटनाओं से बचता रहा था लेकिन वह समझ नहीं सका कि माणिक लाल उसे वहाँ से क्यों भगाना चाहते हैं? कहीं ऐसा तो नहीं कि लैब की गड़बडियों में उन्हीं का हाथ हो। आखिर लैब की चाभी तो उन्हीं के पास थी। मगर वह तो हेडमास्टर साहब को रिपोर्ट दे चुका था। उसमें किसी पर संदेह नहीं किया गया था। यह भी तो हो सकता है कि उन्हें लगता हो कि मेरे रहते अब लैब में कोई गड़बड़ी नहीं की जा सकती।''[17] ग्रामीण क्षेत्रों और यहाँ तक कि शहरों में कहीं–कहीं जातिगत भेदभाव का दंश बच्चे आज भी झेलने को विवश हैं। आश्चर्य तो तब होता है जब हमारे समाज के शिक्षक ही इस जातिवाद को बढ़ावा देते हैं। उपन्यास में जातिवाद की समस्या को सूक्ष्म रूप से चित्रित किया गया है। गौतम जब बुराई को देखता है तो वह सोच में पड़ जाता है जिसे यह पंक्तियाँ बखूबी चित्रित करती है ''गौतम का खून खौल उठता है। जब वह देखता था कि कक्षा में हरिजन और सवर्ण बच्चे को अलग–अलग बैठाया जाता था। यही नहीं इस विभाजन में अध्यापक का पूरा–पूरा योगदान रहता था।''[18]

राजनीति और पर्यावरण पर महिला रचनाकारों ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं परन्तु उनकी राजनीति में प्रकृति का कोई स्थान नहीं है। क्षमा शर्मा जी ने अपने उपन्यास 'शस्य का पता' में राजनीति और प्रकृति दोनों को शामिल कर नवीन स्वरूप में प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में वनों का दोहन, बढ़ती जनसंख्या, पशु–पक्षियों के आवास का संकट, जैसी समस्याओं को चित्रित किया गया है जबकि ममता कालिया ने पर्यावरण और राजनीति जैसे मुद्दे पर प्रत्यक्ष रूप से कम ही लिखा है।

क्षमा शर्मा जी एवं ममता कालिया जी की लेखनशैली में भी काफी अंतर है। जहाँ ममता कालियाली की लेखन शैली व्यंगात्मक यथार्थवादी, संवादात्मक सूक्ष्म, मनोवैज्ञानिक एवं विश्लेषणात्मक है तो क्षमा जी की लेखन शैली स्पष्ट, सरल, शिक्षाप्रद एवं प्रवाहमयी है। जहाँ ममता जी संबंधों की कड़वाहट और आधुनिक जीवन को उधाड़ती हैं वहीं क्षमा जी समाज के हाशिए पर खड़ी स्त्रियों और बच्चों की आवाज को संवेदनशीलता के साथ मंच प्रदान करती है। दोनों ही लेखिकाओं ने अपने–अपने ढंग से हिन्दी साहित्य में स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व को प्रतिष्ठित किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. काला कानून कहानी संग्रह शर्मा, क्षमा पृ0सं0 51
2. रास्ता छोड़ो डॉर्लिंग शर्मा क्षमा पृ0सं0 212
3. उसके हिस्से की धूप, 2002 गर्ग मृदुला पृ0सं0 33 नेशनल पब्लिक पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

4. उसके हिस्से की धूप, 2002 गर्ग मृदुला पृ0सं0 44 नेशनल पब्लिक पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
5. चुकते नहीं सवाल; गर्ग मृदुला, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली 2019, पृ0सं0 121
6. जादू का कालीन; गर्ग मृदुला, पृ0सं0 21–22 राजकम प्रकाशन नई दिल्ली
7. समाप्त पीढ़ी, शर्मा क्षमा (लव स्टोरीज कहानी संग्रह) पृ0सं0 35
8. ऊँचे–ऊँचे कंगूरे कालिया, ममता पृ0सं0 04
9. बर्फ होती मुलाकात, शर्मा क्षमा (लव स्टोरीज कहानी संग्रह) पृ0सं0 28
10. बोलने वाली औरत कालिया, ममता पृ0सं0 03
11. एक अदद औरत कहानी संग्रह कालिया ममता, पृ0सं0 126
12. काहे को ब्याही विदेश (लव स्टोरीज कहानी संग्रह) पृ0सं0 269
13. शुरूआत (कहानी संग्रह लव स्टोरीज) शर्मा, क्षमा पृ0सं0 25
14. अँधेरे का ताला, कालिया ममता पृ0सं0 43
15. 'दूसरा पाठ' उपन्यास, शर्मा, क्षमा पृ0सं0 19–20
16. वही पृ0सं0 20
17. वही पृ0सं0 27
18. वही पृ0सं0 55

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 106-108
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास में आदिवासी जीवन की समस्याएं एवं संघर्ष

डॉ. खुशबू
सहायक प्राध्यापक हिंदी विभाग,
गंगा देवी महिला महाविद्यालय पाटलिपुत्र वि. वि., पटना।

आदिवासी समाज एक सामुदायिक समाज है, जिसमें व्यक्ति विशेष के भाव के स्थान पर सामुदायिक भावों को महत्त्व दिया जाता है और समुदाय कहने से मात्र मानवों का समुदाय नहीं बल्कि उनके साथ सदियों से जीवन साझा करते आ रहे समस्त प्रकृति, जंगल के प्राणियों, पहाड़, जंगल, नदी आदि सम्मिलित हैं। वर्तमान समय में विकास के सन्दर्भ में यदि चर्चा की जाती है तो पूंजीपतियों का ध्यान सर्वप्रथम जंगलों की तरफ जाता है। तथाकथित विकास वादी समाज आदिवासी इलाकों एवं उनकी ज़मीनों पर अपना पैर जमाना चाहते हैं। सरकार प्रकृति एवं पर्यावरण की परवाह किये बिना ही जंगलों को काटती जा रही है। इस कारण पर्यावरण असंतुलित होता जा रहा है। आदिवासियों का अपना विपुल इतिहास है। अपनी अस्मिता के संकट के विरुद्ध उन्होंने सामूहिक आन्दोलन करके बचाया है। ऐसे में आदिवासी जंगलों पर जब भी किसी ने कब्ज़ा करना चाहा, तब- तब आदिवासी लड़ाकों ने अपनी अस्मिता के लिए लड़ाइयाँ लड़े हैं।

'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास में मूल समस्या विकिरण प्रदूषण और विस्थापन की है। यह समस्या उत्पन्न होने का कारण यदि देखें तो वह है देश का विकास, विकास के क्रम में केवल सभ्य समाज विकसित होता है। परंतु आदिवासियों की स्थिति दयनीय होती जाती है। यूरेनियम एवं लोहे खदानों से उत्पन्न हो रहे समस्याओं से जूझते आदिवासियों का चित्रण इस उपन्यास में मिलता है। 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास दर्द का महाकाव्य है। उपन्यास में विकास के दर्द को बेहद नाजुक तरीके से अभिव्यक्त किया गया है। इसमें लेखिका एक्टिविस्ट बनाकर यूरेनियम खदानों के आस-पास जाती है और सारंडा के जंगल में विचरण करती हैं। इस उपन्यास में महुआ माजी ने रेडिएशन के खतरनाक नतीजे पर बहुत ही बारीकी से अपने विचारों को व्यक्त किया है। यूरेनियम और उसका कचरा जीवन में लगातार जहर बोता जा रहा है, इसका अहसास आदिवासियों को बहुत देर से होता है। यदि इन खतरों से उन्हें सावधान नहीं किया गया तो इसके गंभीर परिणाम हो सकते हैं। असल में यह केवल मरंग गोड़ा के आदिवासियों की ही समस्या नहीं अपितु उन सभी आदिवासियों की समस्या है, जिसे सभ्य समाज केवल अपने विकास के लिए इनका और उनके क्षेत्र का उपयोग करते हैं। इन आदिवासियों की उपेक्षा की गई। लेखिका ने युरेनियम विकिरणों से प्रभावित आदिवासी क्षेत्र के जीवन की गहन पीड़ा, उनकी सांस्कृतिक पहचान और उनके दर्द को उजागर किया है।

उपन्यास का केंद्र बिंदु 'मरंग गोड़ा' नामक स्थान को नीलकंठ का प्रतीक माना गया है, जिसे आदिवासी समाज अपना देवता मानते हैं। आदिवासी समाज के जल, जंगल, जमीन और जीवन पर संकट आ जाता है। खनन की आड़ में जंगल उजड़ते हैं, नदियाँ दूषित होती हैं और लोग अपने घरों से बेदखल कर दिए जाते हैं। बेरोजगारी, भूख, बीमारी और सामाजिक विघटन आदिवासियों के जीवन का हिस्सा बन जाता है। इसके साथ ही उनकी भाषा, संस्कृति, पर्व, त्योहार और धार्मिक विश्वास भी खतरे में पड़ जाते हैं। उपन्यास में आदिवासी समुदाय के शोषण के साथ-साथ लेखिका ने उनके संघर्षों को भी उजागर किया है। वे अपने मरते हुए पहाड़ों और सांस्कृतिक प्रतीकों को बचाने के लिए आवाज उठाते हैं। धरती, सरहुल, सखुआ के फूल जैसे तत्व उपन्यास में आदिवासी समाज की प्रकृति और संस्कृति के गहरे रिश्ते को उजागर करते हैं। मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ केवल एक उपन्यास नहीं, बल्कि आदिवासी समाज के अस्तित्व की लड़ाई और उनकी अस्मिता का एक सशक्त दस्तावेज है।

इस उपन्यास में आदिवासियों और प्रकृति की अंतरंगता का एक विस्तृत और रोचक वर्णन है। जिनके संस्कार यहीं से उत्पन्न हुए है, जिनकी आत्मा सारंडा के जंगलों में बसती है। आज समूचा देश पर्यावरण को लेकर चिंतित है। चिंता जायज है क्योंकि पर्यावरण में असंतुलन कई घातक परिणामों को जन्म दे सकता है। आदिवासी समाज प्रकृति की तरह सहज, सरल, उदार अपने आपमें संतुष्ट रहने वाली जाति है। जंगल और जमीन में उनके प्राण बसते हैं। वैश्वीकरण के दौर में उन्नति के नाम पर जंगलों की कटाई, नदियों की दिशा में बदलाव, औद्योगीकरण और शहरीकरण, खनिज उत्खनन के नाम पर प्रकृति का जरुरत से ज्यादा दोहन, जैव विविधता का लगातार नष्ट होना मनुष्य के संवेदनहीन और लालची होते जाने का एक पहलू है।

उपन्यास में आदिवासी समुदाय के तीन पीढ़ियों का अलग-अलग समय देखने को मिलता है। सगेन उपन्यास का प्रमुख पात्र हैं। पहला समय सगेन के ततंग यानी दादा जाम वीरा का है, जो यूरेनियम उपन्यास में आदिवासी समुदाय के तीन पीढ़ियों का अलग अलग समय देखने को मिलता है। सगेन उपन्यास का प्रमुख पात्र हैं। पहला समय सगेन के त तंग यानी दादा जम्बीरा का है, जो यूरेनियम खनन से पूर्व का समय है, जिसमें आदिवासियों की सभ्यता, संस्कृति तथा समाज का सजीव परिचय मिलता है। दूसरा समय विकास की पूँजीवादी मॉडल पर यूरेनियम खनन शुरू होने के पश्चात का है। जिसके नुकसान से आदिवासी समाज अनजान हैं तथा अपनी आजीविका के लिए फैक्ट्रियों में काम करने के लिए मजबूर हैं। यूरेनियम खनन के कारण हो रहे प्रदूषण, विस्थापन तथा आदिवासियों के सांस्कृतिक विध्वंस की गाथा का उल्लेख मिलता है। तीसरा समय सगेन का है, जो पढ़ा लिखा होने के कारण मरंग गोड़ा के आदिवासी समुदाय को उनके अधिकारों के प्रति सचेत करता है। लेखिका ने यूरेनियम के बनने की प्रक्रिया तथा उससे होने वाले नुकसान से भी पाठक को अवगत कराया है। सगेन अपनी पढ़ाई के साथ साथ यूरेनियम के बारे में अनेक पुस्तकों से भी जान लेता है किकितना खतरनाक होता है यूरेनियम। दरअसल लेखिका महुआ माजी यूरेनियम के खतरों को समझने के लिए हीरोशिमा नागासाकी में हुए परमाणु बम विस्फोट के दुष्प्रभावों को बताते हुए परमाणु से होने वाले खतरे से सचेत करती हैं।

कंपनी ने खनन हेतु मूल निवासियों को उनकी झोपड़ी और खेतों से जिस तरह से विस्थापन किया है। उससे ही इन जंगलों में नक्सली अपनी जगह बना पाए हैं। सरकार के वैश्विकों और पुलिस की क्रूरता ने दी आदिवासियों से उनका जंगल छीना है। एक ओर जहाँ पूंजीपति और माफिया मिलकर जंगल की लकड़ी की तस्करी कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर जब आदिवासी चूल्हा जलाने के लिए भी लकड़ी काटते हैं, पेट भरने के लिए तोड़ते हैं तो पुलिस उन्हें प्रताड़ित करती है, जिससे आदिवासी को अराजक तत्वों की शरण में जाना पड़ता है।

इस कारण उन्होंने आंदोलन शुरू किया है जिसे समाज को देखने का नजरिया बदल गया है यह विरोध केवल यही तक सीमित नहीं रही बल्कि इसका विस्तार विदेश तक हुआ और उसके कारण आदिवासी समाज अपनी

समस्याओं का विरोध करने में सक्षम हो सके हैं। आदिवासी समाज पर जब भी संकट के बादल आये, आदिवासी लड़ाकू ने उसका खुलकर सामना किया है। कॉर्पोरेट सेक्टर की स्थापना होने पर उसका खुलकर विरोध करते रहे। अपनी अस्मिता की रक्षा की इन्होंने अलग झारखंड राज्य की भी मांग की। उपन्यास में सगेन द्वारा कॉरपोरेशन की स्थापना टीम उसके द्वारा आदिवासी जंगलों को काटे जाने का विरोध बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। आदिवासी समाज के लोग अपने पूर्वजों के जंगलों को ऐसे नहीं जाने देना चाहते थे। यह आंदोलन एक बड़ा रूप लेने लगा था। सगेन अपना सब कुछ झोंकने को तैयार था। इस आंदोलन को बढ़ते देखकर प्रशासन ने पुलिस बल बढ़ा दिया था। पुलिस के द्वारा आदिवासियों का दमन चक्र जा रही पर था पर आदिवासी अपने अधिकारों के लिए लड़ रहे थे। यूरेनियम मरंग गोड़ा के लिए धरती का दिया हुआ वरदान है लेकिन वहाँ के लोगों को क्या पता था कि यही वरदान एक दिन उनके लिए अभिशाप बन जाएगी यूरेनियम खनन से निकलने वाले विकिरण के प्रभाव ने वहाँ के लोगों को भी प्रभावित किया, जिसकी वजह से वहाँ महामारी जैसे स्थिति उत्पन्न हो गई, उनके बच्चे विकलांग पैदा हो रहे हैं या फिर पैदा होते ही मर जा रहे हैं। शरीर में काले काले धब्बे बनकर बीमारी का रूप ले रहे हैं। गाय दूध देना बंद कर रही है। फलों में बीज नहीं आ रहा आदि समस्याएं लगातार बढ़ती जा रही हैं। यूरेनियम से निकलने वाले विकिरण के दुष्परिणामों की चर्चा उपन्यास में कुछ इस तरह से किया गया है। विकिरण से प्रभावित जीवित प्राणी के जीवन के साथ तो छेड़छाड़ करता ही है। यह स्थिति पुरुष के जन्म क्षमता को प्रभावित करने की भी ताकत रखता है। सबसे बड़ी बात यह है कि बिना किसी सुरक्षा व्यवस्था के सारा काम जारी है। इसका असर खदान में काम करने वाले मज़दूरों तथा उनके पूरे परिवार, उस कंपनी के आसपास रहने वाले लोग, पेड़, जानवर सभी घातक विकिरण की चपेट में हैं। सरकार ने आदिवासियों की न केवल जल, जंगल, जमीन छिने बल्कि सभ्यता, संस्कृति और उनका जीवन भी छीनने में लगी है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि मरंग गोडा नीलकंठ उपन्यास में उन सभी बिन्दुओ को दर्शाया गया है, जिनके कारण आम जन शोषण कारी व्यवस्था के खिलाफ उठ खड़ा होता है। लेखिका ने विकिरण प्रदूषण और विस्थापन की समस्या को मुख्य रूप से रेखांकित करने की कोशिश की है। उन्होंने शोषण की परतों को उघारते हुए शोषकों को बेपर्दा किया है। वैश्वीकरण किस प्रकार से प्रकृति का क्षरण कर रही है इसका जीता जागता सबूत है यह उपन्यास।

आधार ग्रन्थ –

मरंग गोडा नीलकंठ हुआ – महुआ माजी, राजकमल प्रकाशन , नई दिल्ली, 2012

9968746826

पता- हाउस नंबर-बी 12, पी. सी. कॉलोनी कंकरबाग ,पटना 800020

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 109-111
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

भीष्म साहनी कृत 'मुआवजा' नाटक में मानवीय संवेदना और सामाजिक चेतना : एक आलोचनात्मक अध्ययन

रिम्पल सिंह
शोधार्थी,
डॉ. वंदना तिवारी
शोध निदेशक,
जे.जे.टी. विश्वविद्यालय, चुडैला, झुंझुनू (राजस्थान)

सारांश

भीष्म साहनी हिन्दी साहित्य जगत के उन शीर्षस्थ लेखकों में हैं जिन्होंने भारतीय समाज की गंभीर व जटिल विसंगतियों और मानवीय संवेदनाओं को अत्यंत गहन दृष्टि से अभिव्यक्त किया है। उनका नाटक ''मुआवजा'' स्वतंत्रत उत्तर भारत की सामाजिक–राजनीतिक परिस्थितियों का दर्पण है। नाटक में विभाजन की विभीषिका से उपजी मानवीय पीड़ा और सामाजिक विषमता का मार्मिक चित्रण मिलता है। नाटक में मुआवजा केवल आर्थक सहायता का प्रतीक नहीं, बल्कि उस मानवीय संवेदना का भी प्रतीक है जो मनुष्य की आत्मा को संबल देती है। प्रस्तुत आलेख में भीष्म साहनी की नाट्य दृष्टि, नटक की विषयवस्तु पात्रों की मानवीय संवेदनशीलता तथा सामाजिक चेतना का आलोचनात्मक विवेचन किया गया है।

मुख्य शब्द : मानवीय–संवेदना, सामाजिक चेतना, यथार्थवाद, भीष्म साहनी, मुआवजा, नाटक, करूणा, सामाजिक विषमता।

भूमिका :

गरीमामय व्यक्तित्व के धनी हिन्दी साहित्य जगत् से जुड़े भीष्म साहनी एक प्रमुख नाम है। इसे कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता। उनकी कलम से संसार के विविध विषयों ने अपनी साहित्यिक यात्रा पुरी की। उन्होंने विविध विधाओं के माध्यम से मानीय संवेदना और सामाजिक संघर्ष को वर्णित किया। लोकप्रिय लेखक भीष्म साहनी पर प्रेमचंद तथा यशपाल जैसे महान साहित्यकारों ने अपने व्यक्तित्व व लेखन कला की अमिट छाप छोड़ी। उनका बता कहने का लहजा अपने आप एक प्रकार का विशेष ढंग कहा जा सकता है। हिन्दी कथा की प्रगतिशील परंपरा के रचनाकार भीष्म साहनी यथार्थवादी विचार की अमिट छाप रहे। राष्ट्रिय चेतना, सामाजिकता, मानवीय संवेदनाओं को अपनी रचनाओं में विशेष अभिव्यक्ति प्रदान की। हानूश, कबिरा खड़ा बाजार में आदि नाटकों में मुआवजे उनका प्रमुख नाटक माना जा सकता है इन नाटय रचनाओं में उन्होंने साधारण जनता के दुःख दर्द को बड़ी चतुराई से उभारा है।

भीष्म साहनी के बारे में उनके बड़े भाई बलराज साहनी का कथन है कि ''भीष्म के मिजाज एक खुबी मैंने यह देखी कि उसमें जल्दबाजी नहीं है, वह बड़े आराम से काम करता है, सोचकर और कम बोलता है, हटधर्मी कभी नहीं करता, अपनी बात सुनाने के ज्यादा दूसरों की सुनता है, कहानी के कथावस्तु का चुनाव भी वह बड़े धीरज से करता है।''

भीष्म साहनी : जीवन और साहित्यिक परिचय :

भीष्म साहनी हिन्दी साहित्य के अत्यंत सम्मानित साहित्यकार, नाटककार और कथाकार थे। उनका जन्म 8 अगस्त 1915 रावलपिंडी में हुआ और मृत्यु 11 जुलाई 2003 दिल्ली में हुई। उनके लेखन में मानवीय संवेदना, सामाजिक यथार्थ, और करूणा की धारा सतत प्रवाहित रहती है। वे न केवल साहित्यकार थे बल्कि एक चिंतक और सामाजिक कार्यकर्ता भी थे। उन्होंने भारतीय जन नाट्य संघ के माध्यम से सामाजि सरोकारों को जन–आंदोलन से जोड़ा।

डनकी प्रमुख कृतियाँ– तमस, कबीरा खड़ा बाजार में, हानूश, मुआवजा, माधवी आदि। भीष्म साहनी का लेखन विचारधारा से अधिक मनुष्यता के प्रति समर्पित है। उन्होंने कहा था–मुझे मनुष्य में विश्वास है, उसके भीतर की करूणा ही भविष्य का आधार है।

'मुआवजा' नाटक की कथा :

भीष्म साहनी का साहित्य गांधीवादी मानवीय दृष्टि से प्रभावित है, उन्होंने मनुष्य को केन्द्र मानकर समाज के प्रत्येक वर्ग, विशेषकर पीड़ित, शोषित और आम नागरिक की समस्याओं को अभिव्यक्त किया है। 'मुआवजा' इसी परंपरा पर आधारित एक नाटय कृति है, जहां विभाजन की भयावहता केवल इतिहास नहीं, बल्कि मानवीय संवेदना का ज्वलंत उदाहरण बन जाती है। मुआवजा की कथा अत्यंत सरल किन्तु गहन व्यंग्यात्मक है। नाटक का नायक 'गुरदयाल' विभाजन के समय अपना सबकुछ खो देता है–घर, परिवार, और आत्मसम्मान। उसे केवल यह आश्वासन मिलता है कि सरकार उसे 'मुआवजा' देगी। किन्तु ज बवह सरकारी दफ्तरों में जाता है तो संवेदना की जगह केवल फाइलों, नियम, आदेश और उपेक्षा मिलती है।

गुरूदयाल का चरित्र भारतीय समाज के उस आम आदमी का प्रतीक है जो व्यवस्था के आगे लाचार है। उसके माध्यम के साहनी यह दिखाते है कि सरकारी व्यवस्था किस प्रकार मनुष्य की आत्मा को कुचल देती है, वहीं अन्य पात्र जैसे बाबू, अफसर और अन्य पीड़ित लोग–सामूहिक रूप से एक समाज का चित्रण करते हैं जहाँ मानवीय रिश्तों की जगह औपचारिकताओं ने ले ली हैं।

मानवीय संवेदना का विश्लेषण :

भीष्म साहनी ने लेखन की सबसे बड़ी शक्ति उनकी मानवीय संवेदना है मुआवजा नाटक में यह केवल किसी एक पात्र की नहीं बल्कि पुरे समाज की पीड़ा के रूप में व्यक्त होती है। विभाजन के दौरान मनुष्य की जो असहृदयता थी, वह इस नाटक में चरित्रों के संवादों और परिस्थितियों के माध्यम से सामने आती है।

गुरूदयाल जब कहता है – घर तो फिर बन जाएगा पर जो घर दिल में था, वह कहाँ मिलेगा।''

यह संवाद मनुष्य की उस आन्तरिक क्षति को प्रकट करता है जिसे कोई 'मुआवजा' नहीं भर सकता। यही भीष्म साहनी की मानवीय दृष्टि की गहराई है।

समाजिक चेतना का स्वरूप :

मुआवजा नाटक केवल मानवीय पीड़ा की कथा नहीं है, बल्कि एक सामाजिक दस्तावेज भी हैं। भीष्म साहनी ने अपने पात्रों के माध्यम से समाज के उस वर्ग को आवाज दी है जो प्रशासनिक जटिलताओं में दबा हुआ है।

नाटक में सामाजिक–चेतना का स्वरूप इस रूप में सामने आता है कि लेखक व्यवस्था को ढाँचे पर प्रश्न चिह्न लगाते है, वे दिखाते है कि किस प्रकार सरकारी नीतियाँ आम आदमी से कट गई है। जब मनुष्य की गरिमा कागजी कार्यवाही में खो जाती है, तब समाज के नैतिक मूल्य भी समाप्त होने लगते है। भीष्म साहनी का यह नाटक हमें आत्ममंथन के लिए विवष करता हैं– क्या हम एक ऐसे समाज की और बढ़ रहे है।

जहाँ संवेदना केवल शब्द रह जाएगी और न्याय एक प्रक्रिया मात्र? भीष्म साहनी जी ने इस नाटक करे प्रहसन के रूप माना है परन्तु यदि इस नाटक की कथावस्तु और घटनाओं का विश्लेषण किया जाए तो वह न तो प्रहसन की विशेषताओं को पूरा करता है और न ही एक व्यंग्य की, लेनि मुआवजा नाटक एक दृश्य विधान है। जिसमें कुल बाहर दृश्य है। यह नाटक नगर में दंगें भड़काने की आशंका से शुरू होता है। हमारी प्रशासनिक व्यवस्था, राजनेता, आम नागरिक और पुंजीपति वर्ग, इसी परिस्थितियों से निपटने की क्या व्यवस्था करेगा। बटंन फैक्टरी का मालिक नागरिकों के प्रतिनिधि मंडल का नेता बनकर पुलिस कामिश्नर के पास जाता है, और अनुरोध करता है कि नगर की सुख–शांति इसी में है कि नगरक को दंगों की आग से बचाया जाऐं। इसी बीच एक गुंडा पेशेवर नेता बन जाता है

और गरीब, मजदूर में मुआवजें लेने की होड़ लग जाती है। हालाकि भीष्म साहनी का यह नाटक कम महत्वपूर्ण माना जाता है परन्तु इसे लिखने में लेखक के स्मृति–पटल पर 1984 के दंगों ने अपनी प्रछाया डाली हुई थी। जिससे उन्होंने अपने ही भावों में बड़ी ही गंभीरता से अभिव्यक्त किया है। भीष्म साहनी के लिए साहित्य–सृजन का रास्ता अपनाना कोई मजबूरी नहीं थी।

भीष्म साहनी का संवाद–शिल्प अत्यंत सरल, स्वाभाविक और जीवन के निकट है, छोटे–छोटे कथ्य, बोलचाल की भाषा और मानवीय अनुभवों का सहज प्रवाह नाटक को जीवंत बनाते हैं। प्रशासन पर नाटककार का व्यंग्य अत्यंत प्रभावशाली है। फाइलों के ढेर रिश्वतखोरी, ये सब समाज की विसंगतियों पर कठोर चोट करते है। दफ्तर के दृश्य, काउंटरों की भीड़ बाबुओं व्यस्तता– ये सभी दृश्य भारत की नौकरशाही की वास्तविक तस्वीर प्रस्तुत करते है।

निष्कर्ष :

'मुआवजा' केवल विभाजन की कहानी नहीं है, यह मनुष्य की पीड़ा, प्रशासन की अमानवीयता और सामाजिक विसंगतियों का ऐतिहासिक दस्तावेज है। नाटक बताता है कि दर्द का कोई मुल्यांकन नहीं हो सकता–न कोई कार्य उस`नाप सकता है न कोई ऑफिस उसकी कीमत लगा सकता है। भीष्म साहनी मानवतावाद के सबसे महत्वपूर्ण लेखक है, जो पीड़ित मानवता की आवाज बनकर उभरते है। मुआवजा नाटक भारतीय जनमानस के लिए चुनौती, संवेदना व आशा का संदेश देता है।

संदर्भ सूची

1. भीष्म साहनी, मुआवजा, पृ. 23
2. भीष्म साहनी, वहीं, पृ. 39
3. रामविलास शर्मा, भारतीय नाटक की परंपरा, पृ. 28
4. आलीना प्रसाद त्रिपाठी, उतर स्वतंत्रता हिन्दी नाटक, पृ. 150
5. नामवर सिंह, आलोचना क्या है, पृ 52
6. सूर्यप्रकाश सिंह, भीष्म साहनी के नाटकों में सामाजिक चेतना, पृ. 41
7. राजेन्द्र यादव, समकालीन हिन्दी नाटक और समाज, पृ. 66

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 112-115
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

भारतीय ज्ञान परंपरा और सांस्कृतिक संरक्षण

दीपक कुमार
शोधार्थी,
डॉ० अनिल पंवार
सहायक प्रोफेसर,
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय रोहतक

महत्वपूर्ण बिंदु- शिक्षा नीति, ज्ञान परंपरा, संस्कृति, नई शिक्षा नीति, डिजिटल तकनीकी शिक्षा नीति 2020, आध्यात्मिक ज्ञान आधार का मूल्यांकन ,

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। ज्ञान और प्रज्ञा के बिना उसका जीवन अधूरा इसलिए मनुष्य जीवन में ज्ञान परंपरा और संस्कृति का विशेष महत्व है।
प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय ज्ञान परंपरा में सांस्कृतिक संरक्षण के द्वारा मनुष्य जीवन में कलाओ पारंपरिक व ऐतिहासिक विरासत को नए दौर में कैसे विकसित किया जा सकता है तथा संरक्षण की नीतियों प्रथाओं और प्रयासों से भी अवगत करवाया गया है। किसी भी समुदाय के आदित्य सांस्कृतिक तत्वों को सुरक्षित और बढ़ाने के लिए आवश्यक है। सांस्कृतिक संगठन में प्राचीन गुरू शिष्य परंपरा को आगे बढ़कर आध्यात्मिक ज्ञान को विकसित किया जा सकता है। तकनीकी शिक्षा चिकित्सा कला में ज्ञान विज्ञान में अनुसंधान पर भारतीय ज्ञान परंपरा का निर्माण किया जा सकता है। ज्ञान परंपरा के धार्मिक सिद्धांत धर्म अध्यात्म और दर्शन की आज के युग में आवश्यकता है।

आदिकाल से ही भारतीय ज्ञान परंपरा और संस्कृति मानव जीवन को प्रोत्साहित करती रही है। प्राचीन ग्रंथो उपनिषदों वह पुराने में ज्ञान की परंपरा प्रीतम है। भारत में तक्षशिला नालंदा जेनी वैकेंसी आदि शिक्षा व शोध के प्रमुख केंद्र थे जहां विभिन्न देशों के छात्र ज्ञान प्राप्ति के लिए आते थे। भारतीय ज्ञान परंपरा विज्ञान की गौरव में ही परंपरा है, समाज को आलोकित करती है। संस्कृत भाषा ने भी ज्ञान की इस परंपरा को आगे बढ़ाया है जो ज्ञान में प्रज्ञा का प्रतीक है। वेदों, उपनिषदों में लौकी के परलोक की कम धर्म में भोग त्याग की अद्भुत चर्चा है। ऋग्वेद के समय की शिक्षा नैतिक आध्यात्मिक में बौद्धिक मूल्य पर केंद्रित थी। वेदों में तो शिक्षा को मनुष्य की श्रेष्ठ का प्रमुख आधार माना जाता है ऐसा कहा जाता है कि 'सच्चा कर्म कहानी जो सभी बंधनों से मुक्त कर दे और शिक्षा वही जो मुक्ति का मार्ग दिखाएं।'
ऋग्वेद के 10.191.2 वे श्लोक में "संरक्षण समंदर सॉन्ग वह मानसी जनणतम देवमंग तथा पूर्व सजनाना उपस्ते।"1

उपनिषदों के दार्शनिक चिंतन का साहित्यिक रूप मिलता है। महाभारत में रामायण जैसे महाकाव्य राजनीति प्रेम और नैतिकता को अंतर दृष्टि प्रदान करते हैं।

मध्यकालीन साहित्य में भक्ति काव्य के प्रमुख कवि कबीर तुलसीदास व सूरदास ने भारतीय ज्ञान परंपरा को बढ़ावा दिया है। आधुनिक संदर्भ के शोधकर्ता जैसे रामचंद्र शुक्ल ने साहित्य को समाज का दर्पण मानना है। वर्तमान में भारतीय ज्ञान परंपरा में साहित्य को पर्यावरण स्थिति विकास में स्वास्थ्य के साथ जोड़ा है। बौद्ध भजन साहित्य ने भी नैतिक शिक्षा के नवीन पहलुओं को जाकर किया है ज्ञान परंपरा के समस्त दृष्टिकोण में वासुदेव कुतुबान की भावना दिखाई पड़ती है जो जीवन को प्रकृति और ब्रह्मांड को एक दूसरे से परंपरा रूप से जोड़ता है। ज्ञान परंपरा और ब्रह्मांड को एक दूसरे से परस्पर रूप से जोड़ता है। ज्ञान परंपरा की श्रृंखला को आगे बढ़ते भक्ति कल पर प्रमुख कवि कबीर, दादू दयाल, गुरु नानक, तुलसीदास, मीराबाई को जो समाज में समानता आध्यात्मिक ज्ञान में एकता के सूत्र की बात करते हैं।"२

इसके अलावा भारत के प्राचीन ग्रंथ ज्ञान अनुशासन शांति सहनशीलता परोपकार धाम प्रणेता के साथ-साथ कर्मचारी का संदेश देते हैं युद्ध के मुख्य ऋण पूर्व भी युद्ध से बचने बचाने की कोशिश कवायत कदाचित ही विश्व के किसी देश में दिखाई देगी। इस दृष्टि से भी निश्चित ही हमें ग और ज्ञान परंपरा की ओर लौटने की जरूरत है।"३

भारतीय ज्ञान परंपरा में संस्कृति संरक्षण का अर्थ विशिष्ट संस्कृति अस्मिता कलाओं परंपराओं में भाषण ऐतिहासिक विरासत को भाभी वीडियो के लिए सुरक्षित रखना वह उन्हें समाप्त होने से बचाना। सांस्कृतिक संरक्षण उन नीतियों प्रथम व प्रयासों से अवगत कराता है जो किसी समुदाय के अद्वितीय सांस्कृतिक तत्वों को सुरक्षित में बढ़ाने के लिए अपनाए जाते हैं। यदि हम भारतीय ज्ञान परंपरा के साथ-साथ सांस्कृतिक संरक्षण की बात करें तो सांस्कृतिक संरक्षण के जरिए भारतीय ज्ञान परंपरा को और भी विकसित किया जा सकता है। सांस्कृतिक संरक्षण में गुरु शिष्य परंपरा बात करें तो भारतीय संस्कृत में गुरु शिष्य परंपरा का विशेष महत्व रहा है जहां गुरु शिष्य को ज्ञान देता है और यह ज्ञान आध्यात्मिक तत्वों पर केंद्रित होता है। भारतीय संस्कृति में गुरु शिष्य परंपरा के अनुसार गुरु शिष्य को शिक्षा देते हैं फिर वही इसी से इसी परंपरा को आगे बढ़ते हैं यह परंपरा गुरुकुल एवं आश्रमों में चलती है। भारतीय इतिहास स्पष्ट करता है कि गुरु की भूमिका समाज को सुधार की ओर ले जाने वाले मार्गदर्शन का कार्य करती है गुरु का स्थान ईश्वर के समकक्ष माना जाता है।"४

भारतीय इतिहास में गुरु की भूमिका मानव जीवन के सुधार का मार्ग है जो क्रांति की दिशा दिखाने में युग प्रवर्तक रही है। इस संदर्भ में भक्ति काल के प्रमुख गुरु आचार्य शंकराचार्य, वल्लभाचार्य, राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, सावित्रीबाई फुले, विनोबा भावे का नाम स्मरण करते हैं। धीरे-धीरे वर्तमान संदर्भ में शिक्षा का स्वरूप है गुरु शिष्य संबंधों में बदलाव आया जिसके कारण शैक्षणिक संस्थाओं का आकर्षण घटना गया। परीक्षा में गलत पद्धति ने आज के दौर में शिक्षा व्यवस्था को ही बदल दिया है। आज शिक्षा के केंद्र में विद्यार्थी है, शिक्षक नहीं। सामाजिक मूल्य बदले निजी शिक्षण कोचिंग संस्थानों का बोलबाला अधिक है। अतः आज के संदर्भ में यह जरूरी है कि हम गुरु व शिष्य के बीच आत्मीय संबंधों का विकास करें हमारी संस्कृति की अमूल्य गुरुकुल परंपरा को पूर्ण जीवित करें ताकि एक अच्छे समाज या राष्ट्र का निर्माण हो। यहां राष्ट्र कवि मैथिलीशरण की प्रमुख पंक्ति प्रासंगिक भी है जो हमें भारतीय ज्ञान परंपराओं में सांस्कृतिक मूल्यों के सुधार का उदाहरण मान सकते हैं कि हम कौन थे क्या होंगे क्या होगा अभी आगे विचारे मिलकर समस्या सभी।"५

इसके साथ ही भारतीय ज्ञान परंपरा में पारंपरिक ज्ञान डिजिटल पुस्तकालय भी एक महत्वपूर्ण प्रयोजन है। पारंपरिक ज्ञान डिजिटल पुस्तकालय जो स्वदेशी और प्राचीन ज्ञान को डिजिटल रूप में व्यवस्थित करें ताकि

भविष्य को ज्ञान पद्धति को नई पीढ़ियां के लिए सुरक्षित किया जा सके। भारत में पुस्तकालय का इतिहास अत्यंत प्राचीन है नालंदा तक्षशिला में विक्रमशिला जैसे अनेक पुस्तकालय में शिक्षा का विकास हुआ। वही आधुनिक काल में पुस्तकालय का कार्य केवल किताबों का संग्रहण नहीं, विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों का भी आयोजन हुआ। जिससे डिजिटल पुस्तकालय में ज्ञान का प्रसार व प्रचार और भी अधिक शुरू हुआ। पुस्तकालय शिक्षा शोध और आत्मविश्वास का केंद्र बने हुए हैं। ऑनलाइन संसाधनों की पुस्तकों में डिजिटल अभिलेख की उपलब्धता ने और अधिक सुलभ बना दिया है ।"इंटरनेट ने भी शिक्षा को इंटरएक्टिव और अपडेटेड बनाया है जैसे कि coursera, swayam और खान एकेडमी जैसे ऑनलाइन लर्निंग प्लेटफॉर्म्स ने छात्रों को अपनी गति से सीखने का अवसर दिया है। इस प्रकार डिजिटल पुस्तकालय और इंटरनेट ने शिक्षा को लोकतांत्रिक शुल्क और आधुनिक बना दिया है। आजकल नेशनल डिजिटल लाइब्रेरी और अन्य डिजिटल संसाधनों के माध्यम से भारत में जानकारी और शोध की पहुंच अधिक बढ़ गई है। अब लोग इंटरनेट के माध्यम से किसी भी विषय पर शोध कर सकते हैं और पुस्तकालय के संग्रह तक पहुंच सकते हैं। डिजिटल पुस्तकालय में नए केवल भारत के शहरी क्षेत्र में बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में भी शिक्षा और ज्ञान प्रसार किया है। इसके अलावा पुस्तकालय में ई बुक्स और ऑनलाइन जर्नल्स की उपलब्धता ने शोधकर्ताओं और विद्यार्थियों को आसानी से ज्ञान प्राप्त करने का अवसर दिया है।"५

इसके अलावा भारतीय पुस्तकालय प्रणाली वर्तमान में अनेक चुनौतियों का सामना भी कर रही है। यदि सरकार और शैक्षिक संस्थान देश में विकास हेतु पुस्तकालय में ज्ञान संवर्धन में नवाचार के केंद्र के रूप में विकसित करें तो ज्ञान प्रणाली का पुनरुत्थान हो सकता है। भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा प्रणाली के संरक्षण में आत्म विकास नैतिक मूल्य और समग्र ज्ञान पर केंद्रित है जो अनूप 2020 के जरिए उन स्थापित कर समाज का विकास किया जा सकता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की पहली शिक्षा नीति है जिसने भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को बरकरार रखते हुए शिक्षा प्रणाली के विकास की बात करती है। यह ज्ञान प्रणाली वेदों पुराणों उपनिषदों जैसे प्राचीन ग्रंथो में निहित है। पारंपरिक केयर प्रणाली विवेचनातन विचारण के आलोक में है। नीति दर्शन सर्वोच्च माना जा सकता है यदि भारतीय संस्कृति वह दर्शन ने विश्व भर को प्रभावित किया है। क्योंकि जिस प्रकार भारत की ज्ञान परंपरा प्राचीन समय में उन्नत थी। विभिन्न विश्वविद्यालय के माध्यम से इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी इसकी सिफारिश करते हुए विभिन्न कदमों को उठाया है। जिसमें इंस्टीट्यूट आफ इमीनेंस का विश्वविद्यालय को दर्जा दिया गया है। जिसके तहत भारतीय विश्व के विभिन्न संस्थाओं के प्रोफेसर तथा छत्रकर अध्ययन अध्यापन कर सके। इसके साथ ही विज्ञान तकनीक तथा बहू विशेषता को बढ़ावा देने की बात कही गई है। विश्व के 100 विश्वविद्यालय की सूची में शामिल होने वाले विश्वविद्यालय की सूची में शामिल होने वाले विश्वविद्यालय को विश्व के अन्य देशों में इसकी शाखा स्थापित की जाएगी।"६

अतः भारत में इस शिक्षा के द्वारा देश विभिन्न लक्षण को पार कर विश्व गुरु के सपने को सही साबित कर पायेगा। जो हमारे प्राचीन समय की ज्ञान परंपरा में था भारतीय ज्ञान परंपरा में भौगोलिक संकेत के तहत पारंपरिक कला उत्पादों कृषि और हस्तशिल्प को भौगोलिक संकेत अधिनियम 1999 के जरिए सुरक्षित किया जा सकता है। भौगोलिक संकेत अन्य बौद्धिक संपदा अधिकारों के प्रति जनता को जागरूक करके भारतीय संस्कृति का संरक्षण किया जा सकता है। हमें अपनी ज्ञान परंपरा में संस्कृत दोनों संधान की नई दृष्टि से देखने की आवश्यकता है। भारत में रसायन ज्योतिष आयुर्वेद में भौगोलिक आदि विभिन्न क्षेत्रों में मानव जीवन के कल्याण के लिए अनुसंधान की आवश्यकता है। संस्कृत भाषा ग व वेदों की दृष्टि से महत्वपूर्ण भाषा है। भारतीय काव्यशास्त्र में अनेक आचार्य भरत मुनि भाव ब्राह्मण वैकुंतक ने संस्कृत ग से साहित्य में नवीन सृजन हुआ है। इसी प्रकार रस सूत्र के जरिए से रस निष्पत्ति की प्रक्रिया व रसायनों का विवेचन जो मनोवैज्ञानिक ग की आधार भूमि है। वहीं भारत का कृषि ज्ञान

व मौसम विज्ञान भी अनुसंधान की दृष्टि से विकसित हुआ है। वर्तमान युग अर्थ प्रधान युग है। कौटिल्य अथर्व चाणक्य के द्वारा लिखा गया। ग्रंथ अर्थशास्त्र भी एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है जिसमें राजनीतिक तंत्र का अर्थ तंत्र दोनों व्यवस्थाओं की दृष्टि से महत्वपूर्ण सिद्धांत निहित है। देखा जाए तो वैसे भारत के प्राचीन ग्रंथो के ज्ञान अनुशासन शांति सहनशीलता परोपकार धाम प्रणेता के साथ-साथ कर्मचारी का संदेश देते हैं। युद्ध के कुछ पूर्व भी युद्ध से बचने बचाने की कोशिश कटायत कदाचित ही विश्व के किसी भी क्षेत्र में दिखाई देगी। इस दृष्टि से भी निश्चय ही अपने ग और ज्ञान परंपरा की ओर लौटने की जरूरत है। जहां भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान का संतुलन देखने को मिलता है। वहीं चिकित्सा विज्ञान की एक अत्यंत प्राचीन प्रणाली जो जीवन को समग्र ऊपर देखने को शिक्षा देती है गणित और खगोल शास्त्र में 10 मतलब पद्धति शोर गाना बजाय मिट्टी में भारतीय ज्ञान परंपरा को बढ़ाने में प्रसिद्ध है। भारतीय ज्ञान परंपरा में सांस्कृतिक संरक्षण में नैतिक मूल्यों का भी समावेश है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था सर्जन हिटर सर्वार्जन सुखाय और शराब बंटू सकिना संतु निर्णय यह प्रणाली सभी जनों को सुरक्षित रहने का समान अवसर देती है।

आध्या नीति निर्णय से संबंधित है इसलिए आचरण का मूल्यांकन किया जाता है। यह करते समय जो भी मापदंड है क्या वह सभी स्थलों पर समान रूप से दिखाई देते आते या दिखाई देता है कि इस प्रश्न का उत्तर निषेध आत्मकथा आचरण के मापदंड सभी स्थल पर समझ से नहीं है क्योंकि यह विषय परिवर्तनशील है जिस तरह विषय परिवर्तनशील है। इस तरह समाज संस्कृति आदि भी परिवर्तनशील है। प्रत्येक युग में कई संस्कृति के निर्माता हुए थे। संस्कृति की रचना भूत भविष्य और वर्तमान में होती रहती है जिस तरह समाज और संस्कृति का विकास होता रहता है। इस तरह नैतिक चेतनाओं का भी निरंतर विकास होता रहता है। इन सामाजिक और साथ मूल्य का मनुष्य जीवन को अत्यंत गहराई से प्रभावित किया है। इसलिए वर्तमान में संस्कृत में नैतिक नैतिक मूल्यों को विकसित करना आवश्यक है। निष्कर्ष रूप में हम कहें तो भारतीय ज्ञान परंपरा में सांस्कृतिक रूप से संरक्षण करके उसे परासंगिक तोर पर युवा पीढ़ी में विकसित किया जा सकता है। भारतीय ज्ञान परंपरा ने मानव जीवन को आध्यात्मिक ज्ञान नैतिक मूल्य प्रयोग साधना के जरिए विकसित किया है।

संदर्भ ग्रंथ:-

1. नीतिशत कम
2. भारतीय परम्परा और साहित्य का महत्व: https//www.qwgp:org/en/literature/akhandijoti/1958/jaunary/2.5
3. डॉ. आनंद पाटिल, आलेख भारतीय ज्ञान परंपरा, जनहित राष्ट्रहित की सिद्धि,सबलोग, फरवरी, 29/2020
4. प्रश्नोपनिषद 1/1, छान्दोग्योपनिषद् 4/4
5. Rizal Haris, A(2016) The 21st century library retrieved from https:/www. researchgate.net publication/328528041/ the 21St century library
6. मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार: राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020
7. डॉ आनंद पाटिल, आलेख - भारतीय ज्ञान परंपरा, जनहित राष्ट्रहित की सिद्धि, सबलोग, फरवरी 29,2020
8. डॉ भदंत सावंगी मेथ कर, पालिवांग्मय में बोधिसत्व, बुद्ध भूमि प्रकाशन, नागपुर, 2000, पृष्ठ 123
9. जैन धर्म, मुनि सुशील कुमार, मा. भा. ष. स्थानक वाशी जैन कांफ्रेंस भवन नई दिल्ली, 1986, पृष्ठ 126

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 116-119
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

हबीब तनवीर के नाटकों में छत्तीसगढ़ी लोक नाट्य शैली का महत्व

डॉ. निलोफर चौधरी
सहायक प्राध्यापक,
हिंदी विभाग, एस. जी. आर. जी.शिंदे महाविद्यालय, परंडा
ता. परंडा,जिल्हा – धाराशिव,महाराष्ट्र – 413502

सारांश -

तनवीर के अधिकांश नाटक छत्तीसगढ़ी नाचा शैली में लिखे हुए हैं, क्योंकि नाटकों के कलाकार छत्तीसगढ़ी नाचा शैली में निपुन हैं। नाटकों के मंचन में छत्तीसगढ़ी के साथ पारंपारिक नाट्यशैली, लोकनाट्य शैली का प्रयोग हुआ है। तनवीर के नाटक शहरों के अलावा गाँवों में अत्यधिक लोकप्रिय हुए हैं। नाटकों में गाँव के ही लोग कलाकार है, जो अभिनय में कुशल एवं बेजोड़ हैं। तनवीर ने नाटकों में लोकधुनों का प्रयोग यथायोग्य स्थानों पर किया है। सभी नाटक छत्तीसगढ़ी बोली में मंचित हुए हैं। लोकजीवन से जुड़ी हुई लोककथाओं को अपने नाटकों में महत्त्व दिया है। नाटकों में आधुनिकता के साथ भाषा का नया मुहावरा जोड़ दिया है। उनके नाटकों के कथ्य सामाजिक है, कथ्य में विविधता है और संवाद योजना भी उत्तम है। तनवीर के मंचित सभी नाटकों में गीत प्रयोजन देखने को मिलता है। नाटक में कथावस्तु को विकसित करने के लिए गीत महत्त्वपूर्ण सिध्द हुए हैं। साथ ही नाटकों में नृत्य, संगित का प्रयोग बेमिसाल है, तभी तो उनके नाटक देश-विदेश में सहराए गए।

प्रस्तावना -

हबीच तनवीर रंगमंच के शलाका पुरुष थे। उनके रंगकर्म में हमें भारतीय लॉक परंपरा, लोक संस्कृति और वैश्विक दृष्टि का जो समन्वय दिखाई देता है, वह विकासमान जन संस्कृति का वैकल्पिक मॉडल है। उन्होंने बार-बार कहा है कि रंगमंच का मूल उद्देश दर्शकों को आनंद प्रदान करना है। लेकिन उनके किसी भी नाट्य लेख का पाठक गैर-राजनीतिक नहीं है। आजादी के बाद भारतीय रंगमंच की कोई भी चर्चा हबीब तनवीर के बिना अधूरी ही रहेगी। हवीय की उपस्थिति का मतलब रंगमंच पर कई शैलियों, अभिव्यक्तियों, अस्मिताओं का एक साथ होना है. उन्होंने रंगमंच को

सचमुच क्रीडा स्थली में बदल दिया। आज भी उनके नाटक देखने के बाद दिल और दिमाग दोनों तरोताजा और स्वस्थ होते हैं।

मुख्यभाग -

समग्रतः 'लोक' सभ्य संस्कृति का विपरीत विचार है। वह एक ऐसा जन समूह है, जो अभिजात्य संस्कार, सभ्यता और शिक्षा से रहित है तथा सुसंस्कृत लोगों की अपेक्षा अधिक सरल जीवन जीने का अभ्यासी है। उसमें कृत्रिमता नहीं होती है और वह आदिम संस्कृति के परंपरागत तत्त्वों को वहन करता है। लोक की यही ऊर्जा हबीब तनवीर की संपूर्ण नाट्यचेतना के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करती है और उन्हें अपने समकालीन अन्य भारतीय नाटककारों ओर रंगचिंतकों से अलग जमीन पर ला खड़ा करती है। हबीब ने भारतीय परंपरा की लोकशैली को सबसे पहले पहचाना और इसी को अपने रंगकर्म का आधार बनाया।

वस्तुतः हबीब तनवीर यह जानते थे कि भारतीय संस्कृति के केंद्र में लोक ही है तथा 'लोक' के साथ जुड़कर ही सार्थक रंगमंच की तलाश पूरी हो सकेगी। इसीलिए अपनी बात को अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाने के लिए वह भारत के केंद्र में पहुंचते हैं।" आज भी गाँवों में भारत की नाट्यपरंपरा अपने आदिम वैभव और समर्थता के साथ जिन्दा है। उनके पास एक गहरी लोक-परंपरा है और इस परंपरा का नैरंतर्य आधुनिक रंगमंच के लिए आवश्यक है।"1

हबीब तनवीर ने अपने नाटकों में लोकनाट्य शैली का प्रयोग रचना विधान की एक प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में किया। फलस्वरुप उनके ज़्यादातर नाटक सफल रहे हैं। रंगमंचीय प्रयोग की दृष्टि से हबीब तनवीर को रंग-यात्रा में तीन चरण उभरकर सामने आते हैं। इनकी आरंभिक प्रस्तुतियों पर पारसी रंगमंच का प्रभाव झलकता है। तदुपरांत 'आगरा बाजार' और 'मिट्टी की गाड़ी' जैसी प्रस्तुतियों में शहरी और लोक रंगमंच का संगम दिखायी देता है। सत्तर के दशक के बाद इनकी प्रस्तुतियों में संस्कृत नाट्य परंपरा, छत्तीसगढ़ी नाचा शैली और पश्चिम के रंगमंच का प्रभाव स्पष्ट रूप दिखायी देखा है।

हबीब तनवीर के नाटकों में भिन्न-भिन्न शैलियों का जो प्रभाव दृष्टिगोचर होता है. उसके बारे में हबीब तनवीर लिखते हैं कि "संस्कृत के मुख्य नाटक दिल्ली में रहकर पढ़े और ब्रेस्ट के नाटक लंदन में रहकर । ये दो महान नाट्य धाराएँ एक प्राचीन हिन्दुस्तान की और दूसरी यूरोप की इन दोनों ने मेरे दिल में ऐसी गहरी छाप डाल दी कि में शायद आज तक इन्हीं के जरेअसर काम कर रहा हैं। ये दो परंपराएँ और इनके साथ छत्तीसगढ़ की लोकनाट्य शैली, शायद इन तीन असरात (प्रभावों) ने मेरे थिएटर के मिजाज की तरकीब (रचना) में बराबर-बराबर का भाग लिया है।"2

हबीब तनवीर ने छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य शैली और छत्तीसगढ़ी भाषा को अपने नाटक का आधार बनाया। वे स्वयं छत्तीसगढ़ के थे, इस काम में कोई परेशानी नहीं हुई। तनवीर ने अपने नाट्य प्रदर्शन के लिए एक अलग प्रयोग किया। अपने नाटकों में अभिनय के लिए छत्तीसगढ़ी लोक कलाकारों को चुना। ग्रामीण इलाके के ये कलाकार अक्षर ज्ञान से कोसों दूर थे। हबीब तनवीर ने अपनी प्रतिभा और प्रतिबध्दता के बल पर न केवल उन अनपढ़ कलाकारों को निपुण बनाया बल्कि एक नए रंगकर्म की शुरुआत कर भारतीय रंगमंच को नई ऊंचाई प्रदान की।

हबीब तनवीर ने अपने लोक नाटकों में छत्तीसगढ़ी लोक परम्परा को अनुस्युत कर एक नए अध्याय की शुरुआत की। भारत वर्ष के विभिन्न लोक नाट्य शैलियों की बेहतर समझ हबीब तनवीर को थी। इस संदर्भ में वे लिखते हैं, "लोक रंगमंच जहाँ-जहाँ भी है, मैंने वहाँ काम किया है। उडीसा, हरियाणा, राजस्थान, छत्तीसगढ़ आदि कई जगहों में मैंने ये देखा विशेषकर राजस्थान में कि वहाँ के लोक रंगमंच में एक किस्म का रुकाव आ गया है।"3

हबीब तनवीर ने जब-जब लोक शैलियों का प्रयोग अपने नाटकों में किया, तब-तब उनके नाटक शहरों की अपेक्षा गाँवों एवं कस्बों में अधिक लोकप्रिय हुए। इसे स्पष्ट करते हुए तनवीर कहते हैं कि "मेरे नाटक गाँवों में भी बहुत लोकप्रिय हैं। उन्हें अपनी भाषा, अपनी ही चीज नज़र आती है। मैंने यह महसूस किया है कि शहरी समझ और गाँव की समझ जैसी कोई श्रेणियों नहीं होती। समझ के स्तर पर कही कोई खाई नहीं होती। बात आदि सलीक से कही जाए तो बच्चे, बुढ़े, जवान के स्तर पर गाँव और शहर के नागरिक के स्तर पर समान रूप से संप्रेषित होती है, शुरु में मेरी पकड़ केवल गाँव के दर्शकों पर थी. शहर में पकड़ बनाने में समय लगा।"

हबीब तनवीर ने भारतीय लोक शैलियों का अध्ययन कर अपनी रंग-यात्रा को समृध्द बनाया और इन सब शैलियों का प्रयोग उन्होंने अपनी प्रस्तुतियों में किया। परिणामस्वरुप उनकी प्रस्तुतियाँ लोक शैलियों से सम्पृकत होते हुए भी आधुनिक और समकालीन दिखती रही। हबीब के अनुसार "लोक कलाकारों के साथ काम कर रहा था. बहुत-सी लोक धुनों का इस्तेमाल कर रहा था, लेकिन मेरी जो चेतना थी, वो सारे अनुभव बटोरे हुई थी। चेतना के भू-तल पर तमाम तरह की अंत क्रियाओं की हलचल थी और लोग इसे जो भी नाम देते हो, पर में दरअसल समकालीन और आधुनिक रंगमंच ही कर रहा था, आज भी वही कर रहा हूँ। "4

तनवीर ने सदैव अपनी एक विशेष लोकशैली की परिकल्पना को ही अपने नाटकों में साकार किया और उसमें वे सफल हुए। उनकी रंग प्रस्तुतियों में नृत्य गीत भी अंतर्निहित रहे, जो कि लोक की आत्मा होती है। उनकी प्रस्तुतियों में उन्मुखता, सहजता तथा एक विशेष प्रकार का अनगढ़पन भी देखने को मिलता है। यह अनगढ़पन किसी कमी को न दर्शाकर उसे और ज्यादा सफल बना देता है। वास्तव में यही लोक है, जो किसी परम्परा में बंधना नहीं चाहता। वह तो अपने लिए एक उन्मुक्त आकाश चाहता है।

हबीब तनवीर की प्रस्तुति परिकल्पना सदैव दृढ़ नहीं होती थी। वे और उनके कलाकार समय और परिस्थिति को देखकर उसमें अपनी कल्पना से परिवर्तन कर लेते थे। यह कल्पना उस विशेष परिवेश के अनुरूप होती थी, जिससे दर्शक अपना भाव-तादात्म्य आसानी से स्थापित कर लेते हैं। हबीब तनवीर प्रयोगधर्मी रंगकर्मी है तभी तो वे नज़ीर अकबराबादी के नज़्मों पर आधारित नाटक की रचना करने में सफल हुए हैं। वे भाषा के बजाय बोली में अपनी रंग प्रस्तुति करते हैं। लोककथा एवं कहानी के आधार पर भी वे रंग प्रस्तुति करते हैं। अपने कर्म में इस तरह की प्रयोगशीलता एक निडर व्यक्तित्व की माँग करती है, वही एक डर, एक आशंका. एक अप्रत्याशित को भी जगा देती है। सहयोगियों को भी पता नहीं होता कि क्या होने बाला है।

हिंदी रंगमंच के छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य परम्परा में हबीब तनवीर का उल्लेखनीय योगदान रहा है। हबीब तनवीर ने लोकनाट्य की प्रचलित परंपराओं से हटकर आधुनिक प्रभावों से समृध्द छत्तीसगढी लोक कलाकारों को साथ लेकर अपने नाटकों का प्रदर्शन किया। हबीब तनवीर के बारे में देवेन्द्रराज अंकर लिखते हैं- "आधुनिक हिन्दी बल्कि भारतीय रंगमंच में हबीब तनवीर की उपस्थिति का ऐसे विराट वृक्ष की उपस्थिति है, जिसकी जड़े-शाखाएँ. प्रशाखाएँ सुदूर भारतीय अतीत की रचनात्मक उत्तेजनाओं, मध्यकाल के संघषों और आधुनिक समय के संकटों से रस और प्राण ग्रहण करती हुई, ग्राम्य लोकजीवन और जनजातीय समाजों से लेकर महानगरों तक पसरी हुई है। इस लिहाज से वे बृहत्तर अर्थो में, वास्तविक भारतीयता के प्रतीत पुरुष कहे जा सकते हैं।" 5

सन 1954 ई. में हबीब तनवीर 'आगरा बाजार' की प्रस्तुति करते हैं, जिसमें लोक शैली का प्रयोग गहराई से दिखायी देता है। हबीब तनवीर की पहली प्रस्तुति में लोकशैली की जड़े गहरी होने का कारण उनका संस्कृत नाटकों और पश्चिम के नाटकों से अनभिज्ञ होना था। हबीब तनवीर का रंगकर्म मूलतः लोक रंगकर्म है। हबीब तनवीर के इस लोककर्म से नाटक का विषय और शिल्प दोनों दृष्टियों से अधिक समृध्द हुआ। तत्कालीन परिवेश, विभिन्न परिस्थितियाँ और आधुनिक चेतना ने हबीब तनवीर को एक नई दृष्टि दी। हबीब तनवीर संस्कृत नाट्य परम्परा से अवगत होने के साथ-साथ पाश्चात्य नाट्यशैली से भी वाकिफ थे, जो उनके लोक नाटको में दृष्टिगीचर होता है। हबीब तनवीर अपने नाटकों के रंग संकेतों के प्रति अधिक सतर्क दिखते हैं, जिसमें वे स्थान, दृश्य विधान, वातावरण के अलावा पात्रों की स्थिति, रंग, आयु, वेशभूषा, उनकी मुद्रा तथा अन्य रंगमंच संबंधी बातों पर विशेष ध्यान देते हैं।

निष्कर्श -

हबीब तनवीर को भारतीय नाट्य आंदोलन और आंतरराष्ट्रीय कला मंच पर प्रतिष्ठित कर दिया लेकिन हबीब तनवीर अपने जीवन में प्रतिष्ठा, आराम और रईसी से कोसों दूर रहें। हबीब तनवीर रंगमंच के शताब्दी पुरुष थे, उनके रंगकर्म में हमें भारतीय परंपरा, लोक और वैश्विक दृष्टि का जो समन्वय दिखाई देता है, वह विकासमान जनसंस्कृति का वैकल्पिक मॉडल है। उन्होंने बार-बार कहा है कि रंगमंच का मूल उद्देश्य दर्शको को आनंद प्रदान करना है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1) पिछले साठ साल के अभिनय के बारे में कुछ विचार, हबीब तनवीर, नटरंग खंड-13 अंक 50,51 पृ.सं.10

2) पिछले साठ साल के अभिनय के बारे में कुछ विचार, हबीब तनवीर, नटरंग खंड-13 अंक 50,51 पृ. सं 30

3) अपनी जमीन पर, हबीब तनवीर से शम्पाशाह की बातचीत, लोक पीयूष दईया पृ.सं.659

4) अपनी जमीन पर, हबीब तनवीर से शम्पाशाह की बातचीत, लोक पीयूष दईया पृ.सं.655-56

5) जिस हबीब नइ देख्या, देवेन्द्रराज अंकुर, जनसत्ता रविवार, 1 सितंबर, 2002 पृ.सं. 1

मो .-7385527764

nilofarchaudhari@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 120-124
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

हापुड़ में शिक्षा का अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन में विद्यालय प्रबंधन समिति की भागीदारी

Mamtesh Solanki
Monad University, Hapur

शिक्षा किसी भी राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास का मूल आधार है। भारत में शिक्षा को मौलिक अधिकार का दर्जा देने के उद्देश्य से शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 (Right to Education Act – RTE) लागू किया गया। इस अधिनियम ने 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा सुनिश्चित की।

इस अधिनियम की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है विद्यालय प्रबंधन समिति (School Management Committee – SMC) का गठन, जो विद्यालयों के संचालन में समुदाय की भागीदारी सुनिश्चित करती है। यह व्यवस्था शिक्षा को केंद्रीकृत प्रशासन से हटाकर स्थानीय स्तर पर लोकतांत्रिक और सहभागी बनाती है। हापुड़ (उत्तर प्रदेश) जैसे अर्ध-शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में, जहाँ शिक्षा से संबंधित अनेक सामाजिक-आर्थिक चुनौतियाँ मौजूद हैं, SMC की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। यह शोध-पत्र SMC की संरचना, कार्य, महत्व, हापुड़ जिले में इसकी व्यावहारिक भूमिका, चुनौतियों और सुधार के उपायों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009

शिक्षा का अधिकार अधिनियम भारतीय संसद द्वारा 2009 में पारित किया गया, जो 1 अप्रैल 2010 से लागू हुआ। इसका उद्देश्य सभी बच्चों को गुणवत्तापूर्ण प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराना है।

इस अधिनियम के प्रमुख उद्देश्य हैं:

- सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देना
- शिक्षा में समानता और समावेशन सुनिश्चित करना
- विद्यालयों की गुणवत्ता में सुधार
- ड्रॉपआउट दर को कम करना

RTE अधिनियम की **धारा 21** के अंतर्गत विद्यालय प्रबंधन समिति का गठन अनिवार्य किया गया है।

विद्यालय प्रबंधन समिति (SMC) : अवधारणा और संरचना

विद्यालय प्रबंधन समिति का गठन शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के तहत प्रत्येक सरकारी और सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालय में किया जाता है। इस समिति में माता-पिता, शिक्षक, स्थानीय प्रतिनिधि और

विद्यालय से जुड़े अन्य सदस्य सम्मिलित होते हैं। इसका उद्देश्य विद्यालय के संचालन में समुदाय की भागीदारी सुनिश्चित करना है।

SMC का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि यह विद्यालय को केवल प्रशासनिक इकाई न मानकर एक सामाजिक संस्था के रूप में देखती है। जब अभिभावक और स्थानीय समुदाय विद्यालय के निर्णयों में शामिल होते हैं, तब विद्यालय अधिक उत्तरदायी, पारदर्शी और छात्र-केंद्रित बनता है।

SMC की संरचना

सामान्यतः SMC में बहुसंख्यक सदस्य बच्चों के माता-पिता या अभिभावक होते हैं। इसके अतिरिक्त विद्यालय के प्रधानाध्यापक, शिक्षक प्रतिनिधि, ग्राम पंचायत या नगर निकाय के सदस्य तथा अन्य स्थानीय प्रतिनिधि भी इसमें शामिल हो सकते हैं। महिलाओं की भागीदारी को विशेष महत्व दिया गया है ताकि शिक्षा में लैंगिक संतुलन बना रहे। यह संरचना इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे विद्यालय की समस्याएँ केवल विभागीय स्तर पर नहीं, बल्कि स्थानीय स्तर पर भी पहचानी और हल की जा सकती हैं। हापुड़ जैसे क्षेत्रों में, जहाँ समुदाय का सामाजिक ढांचा मजबूत है, यह समिति विद्यालय-सुधार का प्रभावी माध्यम बन सकती है।

विद्यालय प्रबंधन समिति एक वैधानिक निकाय (statutory body) है, जिसका गठन प्रत्येक सरकारी एवं सहायता प्राप्त विद्यालय में किया जाता है।

SMC में सदस्यों संरचना इस प्रकार होती है:

- 75% सदस्य अभिभावक/अभिभाविकाएँ
- 50% सदस्य महिलाएँ
- शेष सदस्य:
  - शिक्षक
  - प्रधानाध्यापक
  - स्थानीय निकाय प्रतिनिधि
  - शिक्षा विशेषज्ञ

यह संरचना सुनिश्चित करती है कि विद्यालय का प्रबंधन समुदाय के हाथों में रहे और अभिभावकों की सक्रिय भागीदारी हो।

SMC की प्रमुख भूमिकाएँ

1. विद्यालय की निगरानी

SMC का सबसे प्राथमिक कार्य विद्यालय की नियमित निगरानी करना है। यह देखना कि बच्चे समय पर विद्यालय आ रहे हैं या नहीं, शिक्षक नियमित रूप से उपस्थित हैं या नहीं, मध्याह्न भोजन, पेयजल, शौचालय, कक्षाओं और अन्य सुविधाओं की स्थिति क्या है—ये सभी कार्य SMC की निगरानी में आते हैं।

2. नामांकन और ठहराव बढ़ाना

हापुड़ जिले में कई स्थानों पर बच्चों के नामांकन और विद्यालय में टिकाव की समस्या देखी जा सकती है। SMC अभिभावकों को प्रेरित कर सकती है कि वे अपने बच्चों को विद्यालय भेजें और बीच में पढ़ाई न छुड़वाएँ। समिति ड्रॉपआउट दर कम करने में भी सहायक हो सकती है।

3. **विद्यालय विकास योजना**

हर विद्यालय को अपने विकास के लिए एक योजना बनानी होती है। SMC इस योजना के निर्माण, क्रियान्वयन और समीक्षा में भाग लेती है। इससे विद्यालय की आवश्यकताओं की पहचान स्थानीय स्तर पर संभव होती है।

4. सामाजिक उत्तरदायित्व

SMC विद्यालय और समुदाय के बीच संवाद को मजबूत करती है। अभिभावकों को विद्यालय की स्थिति, बच्चों की प्रगति और जरूरतों के बारे में जानकारी मिलती है। इससे शिक्षा केवल सरकारी जिम्मेदारी न रहकर सामाजिक जिम्मेदारी भी बन जाती है।

5. पारदर्शिता और जवाबदेही

SMC के माध्यम से विद्यालय के संसाधनों, अनुदानों और गतिविधियों में पारदर्शिता आती है। यदि समिति सक्रिय हो, तो भ्रष्टाचार, लापरवाही और संसाधनों के दुरुपयोग की संभावना कम होती है।

हापुड़ के संदर्भ में SMC की प्रासंगिकता

हापुड़ जिला दिल्ली-एनसीआर के निकट होने के बावजूद कई ग्रामीण और अर्ध-शहरी चुनौतियों का सामना करता है। कुछ क्षेत्रों में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी है, लेकिन कई विद्यालयों में अभी भी बुनियादी ढांचे, शिक्षक उपस्थिति, छात्र-नियोजन और माता-पिता की सक्रिय भागीदारी जैसी समस्याएँ बनी हुई हैं।

ऐसी स्थिति में SMC की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है। यदि समिति सक्रिय हो, तो वह—

- स्कूल में बच्चों की नियमित उपस्थिति सुनिश्चित कर सकती है।
- अभिभावकों को शिक्षा के महत्व के प्रति जागरूक कर सकती है।
- बालिका शिक्षा को प्रोत्साहित कर सकती है।
- विद्यालय में स्वच्छता और मूलभूत सुविधाओं की निगरानी कर सकती है।
- स्थानीय प्रशासन तक विद्यालय की समस्याएँ प्रभावी ढंग से पहुँचाई जा सकती हैं।

हापुड़ जैसे जिले में यदि ग्राम स्तर पर SMC वास्तव में सक्रिय हो जाए, तो यह शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने का एक शक्तिशाली माध्यम बन सकती है।

SMC का महत्व

विद्यालय प्रबंधन समिति शिक्षा व्यवस्था में एक लोकतांत्रिक और विकेन्द्रीकृत मॉडल प्रस्तुत करती है।
इसके प्रमुख महत्व हैं:

- शिक्षा में जनभागीदारी
- पारदर्शिता और जवाबदेही
- स्थानीय समस्याओं का समाधान
- शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार

SMC शिक्षा को "सरकारी कार्यक्रम" से "सामुदायिक जिम्मेदारी" में परिवर्तित करती है।

हापुड़ में SMC के समक्ष चुनौतियाँ

यद्यपि SMC की अवधारणा बहुत प्रभावशाली है, परंतु व्यवहार में कई चुनौतियाँ सामने आती हैं।

1. जागरूकता की कमी

कई अभिभावकों को SMC की वास्तविक भूमिका और अधिकारों की जानकारी नहीं होती। वे इसे एक औपचारिक समिति मानते हैं।

2. नियमित बैठकें न होना

समिति की बैठकें यदि नियमित रूप से न हों, तो उसका प्रभाव कम हो जाता है। कई स्थानों पर बैठकें केवल कागज़ों में दर्ज होती हैं।

3. **प्रशिक्षण की कमी**

SMC के सदस्यों को यदि विद्यालय प्रबंधन, शिक्षा अधिकार, बजट और निगरानी की प्रक्रिया का प्रशिक्षण न मिले, तो वे प्रभावी भूमिका नहीं निभा पाते।

4. प्रशासनिक निर्भरता

कई बार समिति स्वतंत्र रूप से काम नहीं कर पाती और पूरी तरह विद्यालय प्रशासन पर निर्भर हो जाती है। इससे उसका लोकतांत्रिक स्वरूप कमजोर होता है।

5. सामाजिक असमानताएँ

कभी-कभी जाति, वर्ग, लिंग या राजनीतिक प्रभाव के कारण समिति में सभी समुदायों की समान भागीदारी सुनिश्चित नहीं हो पाती।

समाधान के सुझाव

SMC को प्रभावी बनाने के लिए निम्नलिखित उपाय आवश्यक हैं—

1. समिति के सदस्यों को नियमित प्रशिक्षण दिया जाए।
2. बैठकें समयबद्ध और पारदर्शी हों।
3. अभिभावकों को SMC के अधिकारों और दायित्वों की जानकारी दी जाए।
4. विद्यालयों में SMC कार्यवाही का सार्वजनिक रिकॉर्ड रखा जाए।
5. स्थानीय प्रशासन SMC को सहयोग दे, परंतु उसके कार्य में अनावश्यक हस्तक्षेप न करे।
6. हापुड़ जैसे जिलों में ग्राम स्तर पर समुदाय-आधारित अभियान चलाए जाएँ ताकि शिक्षा के प्रति सहभागिता बढ़े।

निष्कर्ष

शिक्षा का अधिकार अधिनियम ने भारत में शिक्षा को केवल कानूनी अधिकार ही नहीं बनाया, बल्कि उसे सामाजिक उत्तरदायित्व से भी जोड़ा है। विद्यालय प्रबंधन समिति इस अधिनियम की आत्मा के रूप में कार्य करती है। यह समिति विद्यालय, परिवार और समुदाय के बीच समन्वय स्थापित करती है तथा शिक्षा के लोकतंत्रीकरण को आगे बढ़ाती है।

हापुड़ जिले के संदर्भ में SMC की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि यहाँ ग्रामीण-शहरी मिश्रित परिस्थितियों में शिक्षा सुधार के लिए स्थानीय सहभागिता आवश्यक है। यदि SMC को वास्तव में सक्रिय, प्रशिक्षित और उत्तरदायी बनाया जाए, तो यह न केवल विद्यालयों की कार्यप्रणाली सुधार सकती है, बल्कि बच्चों के नामांकन, उपस्थिति, सीखने के स्तर और समग्र शैक्षिक वातावरण में भी सकारात्मक परिवर्तन ला सकती है।

अतः यह कहा जा सकता है कि हापुड़ में शिक्षा की गुणवत्ता और समानता सुनिश्चित करने के लिए विद्यालय प्रबंधन समिति एक अनिवार्य और प्रभावशाली संस्था है। इसका सशक्तिकरण ही शिक्षा के अधिकार अधिनियम की वास्तविक सफलता का आधार है।

13. संदर्भ (References)

- शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009.
- उत्तर प्रदेश आरटीई नियमावली.
- जिला हापुड़, शिक्षा विभाग से संबंधित सार्वजनिक सूचनाएँ.

- शिक्षा मंत्रालय (2010), निःशुल्क और अनिवार्य बच्चों का अधिकार अधिनियम, 2009, भारत सरकार।
- शिक्षा मंत्रालय (2010), कार्यान्वयन के लिए समग्र शिक्षा ढांचा। भारत सरकार.
- एनसीईआरटी (2015)। विद्यालय प्रबंधन समितियों के लिए दिशानिर्देश। नई दिल्ली।
- न्यूपा (2014)। भारत में स्कूल प्रबंधन समितियाँ: एक सिंहावलोकन, नई दिल्ली।

Mob. 7500884428
Email-mamteshsolanki82@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 125-128
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

ब्रिटिश शासन के अंतर्गत जाति व्यवस्था का विकास (1872–1941): एक अध्ययन

Rahul Soni
Research Scholar,
Monad University, Hapur

समाज के एक पिलर के तौर पर जाति हमेशा से मज़बूत रही है, एक तरफ़ तो इसके अलग-अलग पैटर्न और अंतर हैं, वहीं दूसरी तरफ़ सामाजिक-आर्थिक और राजनीति में भी इसका दखल है। जाति आम लोगों पर असर डाल सकती है, इसलिए इसे बड़े पैमाने पर माना जाता है। इसकी सोच सिर्फ़ एक रस्मी रैंकिंग होने से कहीं ज़्यादा मुश्किल है, बल्कि इसे समाज के हर हिस्से में डाल दिया गया है। अक्सर यह सोचा जाता है कि जाति व्यवस्था के कॉन्सेप्ट में बदलाव की ज़रूरत है। जाति अब मूल्यों की थीम से आगे निकल गई है। जाति व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए समाज के व्यवहार पर बारीकी से नज़र रखने की ज़रूरत है। जाति व्यवस्था का इस्तेमाल अब दिखाने के बजाय समझाने के लिए किया जाता है। भारतीय समाज, अर्थव्यवस्था और राजनीति की समस्याओं को जाति के अलग-अलग इस्तेमाल से समझाया जा सकता है। जाति समाज में मौजूद अकेला हायरार्किकल सिस्टम नहीं है, इसके साथ ही नए स्टेटस ग्रुप, मोबिलिटी के बदलते रूप भी सामने आए हैं। एक संस्था के तौर पर व्यक्ति और परिवार बराबरी/असमानता पैदा करने वाली इंडस्ट्री बन गए हैं। जाति अब व्यक्ति की सोच को आकार देती है और समाज के प्रति उसका व्यवहार तय करती है। तुरंत हुए बदलावों ने जाति का चेहरा बदल दिया है। रिज़र्वेशन कोटा की पॉलिसी ने न सिर्फ़ जाति व्यवस्था को हमेशा के लिए हरा-भरा बना दिया है, बल्कि इस पॉलिसी की वजह से जो रिएक्शन सामने आया, उसने भी यही मकसद पूरा किया। शहरी इलाकों में कल्चर और वैल्यूज़ से दूरी की वजह से जाति ढूंढना मुश्किल हो सकता है, लेकिन ग्रामीण इलाकों और छोटे शहरों में यह अभी भी वैलिड है और प्रैक्टिकली लागू है. इतिहास में हमेशा से ही सत्ता पाने के लिए राजनीति में जाति का इस्तेमाल देखा गया है। निचली जातियों को हमेशा से ही कानूनी मामलों में अपनी बात रखने का सही मौका नहीं दिया गया है। लंबे समय से देश और देश की राजनीति पर ऊंचे तबके का दबदबा रहा है। निचले तबके से आने वाले नेताओं की संख्या राजनीतिक दर्शन, ब्रिटिश राज की एक विशुद्ध उपज है। ब्रिटिश शासन ने जान-बूझकर स्थानीय लोगों के रीति-रिवाजों और संस्कृति को बढ़ावा दिया। ब्रिटिश आक्रमण से पहले, जाति व्यवस्था मौजूद तो थी, लेकिन वह लचीली और गतिशील थी; परंतु आक्रमण के बाद, ब्रिटिशों ने इसे और अधिक कठोर तथा स्थिर बना दिया। ब्रिटिशों ने लोगों को सभी सीमाओं, आस्थाओं, धर्मों और आर्थिक स्थितियों से परे, अपनी जाति के अनुसार ही व्यवहार करने के लिए प्रेरित किया। जाति की अवधारणा को समझने के लिए, आम तौर पर इसके उद्भव से संबंधित कई सिद्धांत

प्रस्तुत किए जाते हैं। जाति को पूरी तरह से 'पवित्रता' और 'अपवित्रता' के संदर्भ में नहीं समझाया जा सकता—जैसा कि हाल ही में ड्यूमोंट ने प्रस्तुत किया था—क्योंकि भारत में औपनिवेशिक शासन के दौरान जाति को एक बिल्कुल नई परिभाषा दे दी गई थी। राव ने लिखा है कि ब्रिटिश दरबारों में ब्राह्मणों का प्रवेश उनके लिए अत्यंत सौभाग्यशाली सिद्ध हुआ; इसका कारण यह था कि वे धार्मिक ज्ञान में अत्यंत पारंगत थे, और उन्होंने ब्रिटिशों को अपना सहयोग तथा सहायता प्रदान की। परिणामस्वरूप, उन्होंने प्रभावशाली पद, आर्थिक लाभ और—सबसे महत्वपूर्ण—ब्रिटिशों का विश्वास अर्जित किया। इन सभी घटनाक्रमों का अंतिम परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश-शासित भारत पर ब्राह्मणवादी विचारधारा का वर्चस्व छा गया। वालिगोरा भी इसी तर्क का समर्थन करते हैं कि ब्राह्मणों ने वास्तव में अंग्रेजों पर अनावश्यक रूप से अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था, जिसके फलस्वरूप सामाजिक स्तरीकरण की धारणा स्वतः ही पुष्ट होती चली गई और जाति व्यवस्था को एक संस्थागत मान्यता प्राप्त हो गई।

सैद्धांतिक ढांचा

भारतीय सामाजिक इतिहास के पिछले कुछ दशकों में, जाति व्यवस्था के कारण होने वाले विवाद और संघर्ष तेज़ी से बढ़े हैं। ऐसे विवादों के तीन मुख्य क्षेत्र हैं, जिनमें उच्च हिंदू जातियों और अनुसूचित जातियों के बीच संघर्ष, हिंदू-मुस्लिम संघर्ष, और अंत में हिंदू और सिख संघर्ष शामिल हैं। ये सभी संघर्ष 'जातीय संघर्ष' (ethnic conflicts) की श्रेणी में आते हैं। जातीयता का सिद्धांत 1958 में मैक्स वेबर द्वारा प्रस्तुत किया गया था। जातीयता, जाति व्यवस्था के विभिन्न घटकों के बीच एक माना हुआ (परिकल्पित) लेबल है। इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि नस्ल, रीति-रिवाज और मान्यताएँ कहाँ से उत्पन्न होती हैं; एक चीज़ जिस पर वे अंततः विश्वास करने लगते हैं, वह है जातीयता। यहाँ सबसे महत्वपूर्ण बात यह समझना है कि समाज की सामाजिक गतिशीलता पर 'जातीयता' शब्द का क्या प्रभाव पड़ता है। चूंकि वेबर का मानना था कि जाति व्यवस्था विभिन्न 'बंद समूहों' (closed groups) को दर्शाती है, इसलिए यहाँ ध्यान देने योग्य महत्वपूर्ण बात यह है कि विभिन्न 'स्थिति समूहों' (status groups) के बीच किस प्रकार की अंतर्क्रिया होती है, और किस तरह स्थिति व सत्ता पर वर्चस्व स्थापित करने का क्रम निरंतर चलता रहता है। ने वेबर के सिद्धांत की व्याख्या करते हुए कहा था कि:

"जातीय रूप से पृथक समूह परस्पर विकर्षण (repulsion) और उपहास के भाव के साथ जीवन व्यतीत करते हैं। सबसे पहले, स्वतंत्र समूहों के प्रति सामाजिक भेदभाव और उनका अपमान किया जाता है। इसके बाद, इन समूहों के भीतर 'हीनता बोध' (inferiority complex) की भावना विकसित की जाती है, ताकि उनका राजनीतिक और आर्थिक शोषण संभव हो सके।"

यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि 'अधीनस्थीकरण' (sub-ordination) की यह प्रक्रिया न केवल विभिन्न समूहों का राजनीतिक और आर्थिक शोषण करती है, बल्कि इसके साथ-साथ उन पर अत्याचार भी करती है। अधिक सटीक रूप से कहें तो, ये दोनों कारक एक-दूसरे के लिए उत्प्रेरक (catalyst) का कार्य करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप आम जनता को भारी क्षति पहुँचती है। उच्च जातियों और अनुसूचित जातियों के बीच होने वाले टकराव को एक ऐसी हिंसा के रूप में परिभाषित किया गया है, जो समाज में सत्ता के पदों पर अपना वर्चस्व स्थापित करने के संघर्ष से जुड़ी हुई है। हाल के समय में भारतीय समाज में कुछ ऐसे परिवर्तन देखने को मिले हैं, जिनके परिणामस्वरूप समाज में विभिन्न समूहों द्वारा सामाजिक आंदोलन चलाए जाने की परिस्थितियाँ निर्मित हुई हैं; ऐसा इसलिए हुआ है क्योंकि समाज की मूल सामाजिक पदानुक्रम (social rankings) में अब बदलाव आने लगे हैं। इन बदलावों ने विभिन्न जातीय विभाजनों के बीच आपसी संबंधों को और अधिक बिगाड़ने में योगदान दिया है।

सरकारी कामों में जाति व्यवस्था का महत्व: सरकारी कामकाज जाति व्यवस्था को सेंटर ऑफ़ ग्रेविटी बनाकर चलाया जाता था। इससे आम इंसान की ज़िंदगी में जाति व्यवस्था की मौजूदगी और अहमियत बढ़ी क्योंकि

इसे संस्थाओं का सपोर्ट था और अधिकारियों ने इसे ऑथेंटिकेट किया था। अंग्रेजों द्वारा सही रूप में पहचान मिलने से पहले जाति व्यवस्था इतनी ज़्यादा चर्चा में नहीं आई थी। लोकल पारंपरिक कानूनों में अंग्रेजों का अंदाज़ा धीरे-धीरे गलत साबित होने लगा और फिर इसकी सच्चाई को चुनौती दी गई। 1853 तक, गवर्निंग चैनलों की आलोचना की जा रही थी कि मन्नू के लॉ कोड पर अंग्रेजों की निर्भरता सिर्फ़ भारत में जाति व्यवस्था बनाने के इर्द-गिर्द घूमती थी। इतिहास और अलग-अलग तरह के लोग जाति व्यवस्था बनाने में अहम भूमिका निभाए हैं। समाज में जाति के बारे में कोई पक्का नियम और एक जैसापन नहीं पाया गया था। पंजाब के ग्रामीण इलाकों में, लोगों में जाति के कैरेक्टर नहीं थे। भारत के अलग-अलग जगहों पर जाति और उसके मूल्य चलन में थे। जाति एक जैसी और स्थिर नहीं थी, बल्कि उसमें लचीलापन और तेज़ी थी।

जाति और वर्ण के कॉन्सेप्ट पर असर डालने वाले फैक्टर अलग-अलग इलाकों में पॉलिटिकल और मटेरियलिस्टिक थे। 19वीं सदी में, पंजाब का इलाका खेती करने वालों का था, और ज़्यादातर आबादी सीधे या इनडायरेक्टली खेती से जुड़ी हुई थी। सोशल स्टेटस तय करने वाले फैक्टर आम तौर पर ज़मीन पर कंट्रोल और असर थे। समाज और लोगों के बीच के अंतर बिल्कुल भी सख्त नहीं थे। ब्रिटिश राज के तहत जनगणना: जाति व्यवस्था और भारतीय राज्य के बीच हमेशा एक रिश्ता रहा है। जाति व्यवस्था हमेशा शासकों द्वारा इस्तेमाल किया जाने वाला एक टूल रहा है, खासकर ब्रिटिश राज के समय में। 1881 की जनगणना के दौरान लोगों को "खेती करने वाले, कारीगर, नौकर, प्रोफेशनल और आवारा" कैटेगरी में बांटा गया था। इन ग्रुप्स को प्रायोरिटी के हिसाब से रैंक किया गया था और लोकल आबादी ने वेटेज दिया था। उसी जनगणना में, चार सौ से ज़्यादा जनजातियों और नस्लों का अनुमान लगाया गया था। जनगणना में लोगों की खासियतें और खासियतें बताई गईं और इंपीरियल गजेटियर के 119 वॉल्यूम में यही कहानी बताई गई है। जातियों का संदर्भ सभ्य/असभ्य के हिसाब से दिया गया था। भारतीय आबादी की खासियतों को हिंसक, नैतिक रूप से कमज़ोर, बेवकूफ और समझदारी की कमी बताया गया था। 1901 की जनगणना में झगड़े इसलिए हुए क्योंकि इसमें जातियों को खास वर्ण के हिसाब से बांटा गया था। पूरे भारत में, जाति का दर्जा तय करने के लिए राजनीतिक बातों को पीछे रखकर रस्मी तौर पर फैसला किया गया था। इसके अलावा, 1901 की जनगणना के डॉक्यूमेंट्स में कुछ और कैटेगरी भी थीं, जैसे बिना जाति वाली जनजातियाँ, ज़मीन वाली, व्यापारी, मिलिट्री और पुजारी जातियाँ (राइज़ली,। इस बात पर बहस होती रही है कि आज जो कास्ट सिस्टम है, उसे बनाने वाले अंग्रेज़ थे और इसे बांटो और राज करो की सोच का इस्तेमाल करके समाज पर ब्रिटिश कंट्रोल पाने के लिए एक सरकारी हथियार के तौर पर इस्तेमाल किया गया था। अंग्रेज़ ही थे जिन्होंने कास्ट सिस्टम को ऊंच-नीच के हिसाब से ढाला, जिसमें जाति के अलावा दूसरी खासियतों को एक सख्त और यह एक अनुष्ठानिक घटना थी। इसे 1901 की जनगणना के दौरान रिस्ले द्वारा किया गया था |

उन्होंने जातियों और उप-जातियों के बीच अनुष्ठानिक अंतरों के आधार पर जातियों को निम्न और उच्च रैंक देने के लिए एक पैमाना (माप) विकसित किया। जाति को और अधिक राजनीतिक बनाने की प्रक्रिया 1931 की जनगणना के दौरान हटन द्वारा की गई थी; उन्होंने आम आदमी, परिवार प्रणाली और बड़े पैमाने पर समग्र रूप से भारतीय समाज के लिए जाति व्यवस्था के लाभों को गलत तरीके से प्रस्तुत किया। भारत में रहने वाली विभिन्न नस्लों की पहचान करने के लिए रीति-रिवाज, आदतें, आपसी मतभेद और शरीर की शारीरिक विशेषताएं अधिक विभाजनकारी और विवादित साबित हुईं। यह सब 1891 की जनगणना के बाद हुआ। जनगणना का निष्कर्ष था कि जाति में नस्लीय और व्यावसायिक तत्व शामिल थे। उपर्युक्त तर्क से असहमति जताते हुए, रिस्ले ने नस्ल के गुणों के आधार पर जाति के बारे में एक नया सिद्धांत विकसित किया; यह सिद्धांत दर्शाता था कि निम्न जातियों का

विकास आर्यों द्वारा ऐसी महिलाओं से विवाह करने के परिणामस्वरूप हुआ, जो उस समय सख्ती से किसी विशेष नस्ल से संबंधित नहीं थीं।

उनके सिद्धांत का निष्कर्ष था कि जाति का वर्ण-आधारित स्तरीकरण सामाजिक विकास का केवल एक विकृत विचार था। उन्होंने यह आकलन किया कि भारतीय समाज तीन प्रमुख जातियों से मिलकर बना था, जिनमें आर्य, द्रविड़ और मंगोलॉयड शामिल थे। ब्रिटिश शासकों ने व्यावसायिक विशेषताओं के आधार पर लोगों के जाति-आधारित विभाजन और जाति नामक संस्था की अवधारणा को स्पष्ट रूप से स्थापित किया।

निष्कर्ष

ब्रिटिश आक्रमण से पहले भारत में जाति व्यवस्था को किसी पूर्णतः कठोर, अपरिवर्तनीय सामाजिक या आर्थिक स्थिति के आधार पर परिभाषित नहीं किया गया था। ब्रिटिश लोगों ने समाज को बदलने की कोशिश की, और ऐसा करते समय उन्होंने अपने मूल देश (ब्रिटेन) में प्रचलित सामाजिक व्यवस्था का अनुसरण किया, क्योंकि ब्रिटेन में समाज को 'वर्ग व्यवस्था' के अनुसार विभिन्न स्तरों में विभाजित किया गया था। अपनी सुविधा के लिए, अधिकारियों ने जाति व्यवस्था को औपचारिक रूप दे दिया और इसे अपने प्रशासनिक नियमों (rules of business) में शामिल कर लिया; इस प्रकार, उन्होंने इस व्यवस्था को और भी अधिक दृढ़ और अटूट बना दिया। जाति व्यवस्था से जुड़े नकारात्मक पहलुओं के बावजूद, विद्वानों ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है कि समाज में इसके कुछ सकारात्मक पहलू भी रहे हैं। इन सकारात्मक पहलुओं में यह शामिल है कि जाति का उपयोग समाज में अनुशासन लाने के एक साधन के रूप में किया गया, जिसने लोगों के बीच आपसी प्रतिद्वंद्विता के बजाय आपसी सहमति और सौहार्द को बढ़ावा दिया। इसने लोगों की आर्थिक क्षमताओं का कुशलतापूर्वक उपयोग करने का अवसर भी प्रदान किया, क्योंकि लोगों के प्रत्येक अलग-अलग समूह के पास कोई न कोई विशेष दक्षता होती थी, जिसके परिणामस्वरूप कार्य-कुशलता का स्तर काफी ऊँचा होता था। समाज के लिए जाति व्यवस्था की प्रासंगिकता को ब्रिटिश लोगों ने बदल दिया, क्योंकि उनका एकमात्र उद्देश्य लोगों को जाति के आधार पर विभाजित करना था, ताकि वे आसानी से शासन कर सकें। भारत में लोगों का यह कठोर विभाजन अंततः केवल जातिगत पहचानों को और अधिक सुदृढ़ करने का ही कारण बना।

REFERENCES:

1. Aryal, A. 2021. Socio-political Dynamics of the Hindu Caste System. Bandyopadhyay, S. 1990. Caste, Politics, and the Raj.
2. Bayly, S. 2000. French anthropology and the Durkheimians in colonial Indochina. Modern Asian Studies.
3. Bearce, G. D. 1961. British attitudes towards India, 1784-1858, London: Oxford University Press. Briggs,
4. Dirks, N. B. 2001. Castes of Mind: Colonialism and the making of modern India. Princeton University Press.
5. Risely, H. H. 1999. The People of India. Asian Educational Services Press.
6. Risley, H., & Crooke, W. 1999. The people of India. Asian Educational Services.
7. Sharma, K. L. 2012. Is there a Today Caste System or there is the only Caste in India? Polish Sociological Review.

email- sonyrahulmkr@gmail.com mobile. 9457668688

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 129-134
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Silence as Testimony: Narrating Partition Trauma Through the Private Sphere in Anita Desai's Fiction

Divya
UGC NET English,
House no. 15/327 Bhagat Singh Colony
Barnala Road Sirsa, Haryana-125055

Abstract

This paper argues that in *Clear Light of Day* (1980), Anita Desai employs silence as the primary narrative mode through which Partition trauma is testified, preserved, and transmitted. Rather than representing the catastrophic violence of 1947 through direct narration, Desai locates its aftermath in the private domestic sphere — the decaying Das family home in Old Delhi, the emotionally paralysed figure of Bim Das, and the conspicuous absence of the Muslim neighbours whose disappearance is never explicitly mourned. Drawing on Cathy Caruth's theorisation of traumatic belatedness, Dominick LaCapra's distinction between acting out and working through, Shoshana Felman and Dori Laub's concept of the crisis of witnessing, and Judith Herman's feminist trauma theory, the paper demonstrates that Desai's silences are not narrative failures but active, resistant, and deeply political acts of testimony. Through close readings of the novel's spatial architecture, its gendered distribution of grief, and its privileging of music and Iqbal's poetry over direct speech in its closing pages, the paper ultimately contends that *Clear Light of Day* constitutes a counter-narrative to official Partition history — one that centres the domestic, the feminine, and the unspoken as the truest registers of historical catastrophe.

Keywords: Partition trauma, silence as testimony, Anita Desai, *Clear Light of Day*, domestic space, traumatic belatedness, gendered grief, postcolonial fiction, Indian English literature, feminist trauma theory, private sphere, working through, memory and displacement, counter-narrative, crisis of witnessing

Introduction

The 1947 Partition of India — an event that displaced over fourteen million people, shattered centuries of coexistence, and carved a wound into the subcontinent that has never fully healed — does not appear as a dramatic set piece in Anita Desai's *Clear Light of Day*. There is no train of corpses, no burning village, no refugee column. And yet the Partition is everywhere in the novel: in the silences at the dinner table, in a house that refuses to change,

in a woman who refuses to forgive, in the empty haveli across the road where a Muslim family once lived. Desai's narrative strategy is one of deliberate, structural absence — she tells the story of historical catastrophe by refusing to tell it directly. This is not an aesthetic evasion but a profound ethical and political choice. As Shoshana Felman and Dori Laub argue in *Testimony: Crises of Witnessing in Literature, Psychoanalysis, and History*, trauma fundamentally resists direct narration; it speaks instead through gaps, indirection, and the private registers of memory that official history cannot accommodate (57). In *Clear Light of Day*, Desai transforms these gaps into a form of testimony. The crumbling Das family home in Old Delhi becomes a crucible of unspoken Partition trauma, where silence functions not as absence but as an active, resistant, and deeply political mode of witnessing — one that exposes the gendered, domestic, and psychological costs of national violence on lives that history has otherwise forgotten.

Silence, Trauma, and the Limits of Language

To read *Clear Light of Day* as a trauma narrative is to recognise that its silences are not failures of representation but the very substance of it. Cathy Caruth, in *Unclaimed Experience: Trauma, Narrative, and History*, defines trauma as "an overwhelming experience of sudden or catastrophic events in which the response to the event occurs in the often delayed, uncontrolled repetitive appearance of hallucinations and other intrusive phenomena" (11). This belatedness — the gap between the traumatic event and the subject's ability to process it — is central to understanding Bim Das. Bim does not collapse in 1947 when Raja leaves for Hyder Ali's household, when Aunt Mira descends into alcoholism, or when the neighbourhood transforms irrevocably around her. She continues to function, to teach, to manage the household. The devastation surfaces decades later, not as confession but as paralysis — in her inability to forgive Raja's letter, in her compulsive return to childhood memories, in the emotional stasis that Tara observes with both guilt and incomprehension upon her return. Bim's present-tense condition is the belated symptom of losses she was never permitted — structurally, socially, or psychologically — to mourn at the time of their occurrence.

Felman and Laub's concept of the witness who cannot speak adds a third and crucial dimension to this theoretical framework. They argue in *Testimony* that certain historical traumas produce what they call a "crisis of witnessing" — not because there are no survivors, but because the event itself resists the structures of language and narrative that testimony requires (57). The witness falls silent not from unwillingness but from the impossibility of adequate speech. Bim is precisely such a witness. She has seen the transformation of Old Delhi, the erasure of a shared Hindu-Muslim world, the quiet violence done to women like Aunt Mira who were consumed by domestic responsibility until nothing remained. Yet she speaks of none of it directly. Her silence, read through Felman and Laub, is not passivity — it is the only honest response available to a witness for whom language has been rendered inadequate by the scale of what has been lost. Desai's formal choice to narrate through omission is thus not a stylistic preference but a rigorous ethical position: to speak the Partition too directly would be to falsify it.

The Das House as Archive of Unspoken Trauma

Bim's psychological condition is the internal register of Partition trauma, the Das family house in Old Delhi is its external, spatial equivalent. Desai renders the house not as a neutral backdrop but as a living archive of everything the family has refused to acknowledge, mourn, or release. From the novel's opening pages, the house announces itself through decay: the garden is overgrown and untended, the paint peels from the walls, the furniture sits in the

same arrangement it has occupied for decades, and the air carries the particular heaviness of rooms in which time has been deliberately stopped. To understand why this matters critically, one must turn to Gaston Bachelard, whose meditation on domestic space in *The Poetics of Space* offers the most precise theoretical language for what Desai is doing architecturally. Bachelard writes:

> Our house is our corner of the world. As has often been said, it is our first universe, a real cosmos in every sense of the word. If we look at it intimately, the humblest dwelling has beauty. Philosophers would have us admire it, and poets encourage us to dwell in it through all the arts of imagination. (4)

For Bachelard, to inhabit a house is to inhabit a version of oneself; the house thinks for us, dreams for us, and accumulates the sediment of everything we have experienced within its walls. Read through this lens, the Das house is not simply where Bim lives — it is what Bim has become. Its deterioration mirrors her deterioration; its refusal to change mirrors her refusal to change; its accumulation of objects and silence mirrors the accumulation of grief she has never permitted herself to voice. The house does not merely reflect Bim's inner life — it constitutes it, giving her trauma a physical form that persists and decays alongside her.

Each specific detail of the house functions as a carefully placed symptom in Desai's clinical narrative architecture. The overgrown garden, which Raja and Bim once played in as children and which now sprawls wild and unmanageable, figures the abandonment of a shared past that no one has tended since the family fractured. The yellowing photographs on the walls images of parents who were largely absent even when alive, shuttling between card parties in a fog of social distraction — record not affection but absence, a family already rehearsing its own dissolution before Partition gave that dissolution historical form. Most devastatingly, Aunt Mira's room stands as the house's innermost chamber of unspoken trauma. Mira, who sacrificed her own life entirely to the care of the Das children, declines into alcoholism and ultimately madness within those walls — and neither her suffering nor its causes are ever spoken of directly. Her room, after her death, is not cleared, not transformed, not grieved over openly. It remains exactly as she left it: another arrested space within an arrested house, her silence physically preserved in the geometry of rooms that no one has the courage to disturb. Desai's refusal to give Mira a spoken elegy is itself a political statement — the women who hold families together in the aftermath of historical violence receive no public mourning, only the continuation of the silence they were always made to inhabit.

The most politically charged silence in the novel's spatial register, however, concerns what lies across the road: Hyder Ali's haveli. The Muslim family that once occupied that house — whose cultural world of Urdu poetry and classical music formed the richest intellectual landscape of the Das children's youth — simply vanishes from the narrative without ceremony or explicit acknowledgement. They do not leave; they are gone, in the way that hundreds of thousands of Muslim families across Old Delhi were gone after 1947, their absence folded into the new cartography of a partitioned nation. Desai does not narrate this disappearance directly. She allows it to register only through the haveli's subsequent emptiness — its locked gates, its silence, and the absence of the music that once drifted from its courtyards into the Das children's evenings. This omission is not accidental but structural. As Felman and Laub observe, trauma "produces a crisis of truth" that renders direct testimony impossible, forcing it instead into the gaps, the pauses, and the unspeakable spaces of narrative (57). The haveli's silence across the road is precisely such a gap — a void that speaks the Partition's violence not through description but through the persistent, unanswered absence it leaves in the lives of

those who remain. Desai's most radical act as a novelist is to trust that absence to do the work that language cannot.

Bim Das: The Woman Who Stays and the Testimony She Cannot Give

The Das house is the spatial body of unspoken trauma, then Bim Das is its human embodiment — the figure upon whom the full, unacknowledged weight of Partition's domestic aftermath has settled. Yet to read Bim solely as a victim is to misread Desai's most sophisticated achievement. Bim is simultaneously the novel's moral centre, its most self-aware consciousness, and its most constrained witness. Her constraint is not accidental — it is gendered. While Raja migrates toward Hyder Ali's household and subsequently toward Hyderabad, toward poetry, toward the romantic possibility of a larger life, and while Tara escapes into marriage and the safety of diplomatic postings abroad, Bim remains. She inherits the house, the ailing Aunt Mira, the intellectually disabled Baba, and the silence that the departing family members leave behind them like unpacked luggage. Judith Herman, in *Trauma and Recovery*, argues that the experience of trauma is fundamentally shaped by the social structures that govern whose suffering is witnessed and whose is not: "the systematic study of psychological trauma therefore depends on the support of a political movement powerful enough to legitimate an alliance between investigators and patients" (9). Bim has no such political movement. Her trauma — the slow, relentless accumulation of abandonment, responsibility, and grief — belongs to no recognised category of historical suffering. It is too domestic, too feminine, too quiet to be named. The scene that crystallises this gendered silence most devastatingly is the revelation of Raja's letter — the document that has poisoned Bim's relationship with her brother for years before Tara's return brings it back into focus. Raja, now comfortably settled in Hyderabad, has written to Bim not with affection or acknowledgement of what she has carried in his absence, but with a businesslike enquiry regarding the rent from the tenants occupying part of the family property. For Bim, this letter is not merely an administrative oversight — it is the full articulation of everything that has never been said between them: the years of sacrifice rendered invisible, the grief never shared, the departure never adequately explained or mourned. Desai renders Bim's response with an interiority that is all the more devastating for its restraint:

> She had been so angry — angrier than she had ever been in her life, so that it had all come bursting out of her in a torrent of words, more words and more violent ones than she had ever used before or since. She had written to him — she could not now remember exactly what she had written, only that it had been cruel and that it had put an end to something between them, forever. (Desai 13)

It is remarkable for what it stages as much as for what it says. Bim's testimony — her one moment of direct, spoken, written grievance — is rendered absent at the very moment of its narration. She cannot remember what she wrote. The letter, her single act of articulate witness, has been swallowed by the same structure of forgetting that governs the entire novel. Felman and Laub argue that testimony erupts "when it can no longer be contained by the structures of silence that have held it in place" — but in Bim's case, even this eruption is incomplete, belated, and ultimately unretrievable (62). Her testimony is given and immediately lost, leaving only the wound it opened and the silence that rushed back in to fill it. What Desai refuses to give Bim is equally significant. There is no cathartic breakdown, no tearful reconciliation with Raja, no dramatic scene in which years of suppressed grief are finally and fully spoken. Bim's emotional life remains partial, interrupted, and stubbornly domestic in its register — she teaches her students, she tends to Baba, she manages the household. This refusal

of catharsis is Desai's most pointed political statement. As Herman observes, recovery from trauma requires "acknowledgement and understanding" from the wider community — a collective witnessing that validates the sufferer's experience (9). No such acknowledgement is available to Bim. The nation that was born from the violence of Partition has no institutional language for what women like Bim have endured — the ones who stayed, who cared, who held the domestic sphere together while history moved noisily elsewhere. Desai's narrative, by refusing to resolve Bim's silence into speech, refuses to falsify the conditions under which that silence was produced. The testimony that Bim cannot give is, in its very impossibility, the novel's most honest account of what Partition cost the women it left behind.

Iqbal's Poetry and the Voice That Speaks What Characters Cannot

Having established that Bim's silence is both gendered and politically determined — a condition imposed rather than chosen — Desai's novel does not leave its protagonist permanently sealed within that silence. In the closing pages of *Clear Light of Day*, something shifts. The agent of that shift is not language, not reconciliation, not the arrival of a letter of apology from Raja, but music — the sound of a classical performance drifting across the darkened street from what was once Hyder Ali's haveli, now occupied by strangers who have inherited the cultural world the original family left behind. It is through this music, and through the verses of the Urdu poet Allama Iqbal that it carries, that Bim moves — tentatively, incompletely, but unmistakably — toward something that Dominick LaCapra would recognise as the beginning of working through. LaCapra, in *Writing History, Writing Trauma*, describes working through as a process that does not erase or resolve trauma but allows the subject to "distinguish between past and present" and to achieve "a mode of coming to terms with traumatic residues" that acting out forecloses (22). Bim does not forget. She does not forgive entirely. But she begins, in this final sequence, to allow the past to exist at a slight distance from the present — and it is art, not speech, that makes this distance possible.

This moment resonates with Walter Pater's famous assertion that "all art constantly aspires towards the condition of music" — that music, uniquely among the arts, achieves a unity of form and content that other modes of expression can only approximate (86). Desai appears to share this conviction. In a novel structured around the failure of speech, music arrives as the one medium capacious enough to hold the full weight of what has happened — to Bim, to the Das family, to Old Delhi, to the Hindu-Muslim world that Partition erased. Crucially, the music comes from the haveli across the road — from the space of the novel's most charged political silence. The testimony of Hyder Ali's disappearance, which could never be spoken by the characters who witnessed it, is carried back to Bim through the cultural form that family bequeathed to the neighbourhood. Art, Desai suggests, transmits what history suppresses and what language cannot hold. It is the only archive that survives the silences that Partition made.

Conclusion

Anita Desai's *Clear Light of Day* does not end with resolution. Bim does not reconcile fully with Raja. The Das house does not transform. Old Delhi does not recover the pluralist world that Partition dismantled. What the novel offers instead is something far more honest and far more politically significant than resolution — it offers recognition. In the closing movement of the novel, as music drifts across the darkened street from Hyder Ali's haveli, Bim does not speak her grief. She listens. And in that listening — passive on the surface, seismic beneath it — Desai locates the only form of acknowledgement that the novel's world has made available to its women, its minorities, and its ordinary, history-battered inhabitants.

It is a recognition achieved not through language but through the body's response to art, and it is all the more powerful for the silence that surrounds it.

What this paper has argued, across its close reading of space, gender, trauma theory, and aesthetic form, is that silence in *Clear Light of Day* is never empty. It is, rather, the novel's most densely freighted register — the site where Partition's violence, which official history has narrativised into dates and borders and population statistics, is preserved in its true form: as the unspoken grief of a woman who stayed, as the arrested decay of a house that could not move forward, as the locked gates of a haveli across the road whose owners disappeared without ceremony or public mourning. Desai constructs, through these silences, a counter-narrative to the grand historical account of 1947 — one that centres not the political theatre of Mountbatten and Jinnah and Nehru but the kitchen table, the overgrown garden, the unanswered letter, the music heard alone in the dark. This is, as Felman and Laub would recognise it, testimony in its most essential form: the witness speaking from the very place where speech has been made impossible, finding in that impossibility not defeat but its own austere eloquence.

The broader critical implication of Desai's narrative strategy extends beyond *Clear Light of Day* itself. In a literary culture that has often privileged the spectacular, the maximalist, and the epic in its representations of Partition — Rushdie's magical realism, Singh's visceral realism, Sidhwa's panoramic violence — Desai's insistence on the domestic, the quiet, and the unspoken constitutes a profound artistic and ethical statement. She insists that the truest measure of historical catastrophe is not the body count or the political realignment but what happens to the people whom history does not follow into the next chapter — the women who remain in the houses that history has passed through and left damaged, the siblings who cannot speak to one another across the distance that national violence has opened between them, the neighbours whose absence is never explained and therefore never ends. Literature, Desai's novel teaches us, is uniquely equipped to hold these silences — not to resolve them, not to speak for those who cannot speak, but to preserve the precise shape of their unspeakability, so that the reader may feel the weight of what official narratives have chosen not to carry. In *Clear Light of Day*, silence is not the failure of testimony. It is testimony's most uncompromising form.

Works Cited

1. Bachelard, Gaston. *The Poetics of Space*. Translated by Maria Jolas, Penguin, 1958.
2. Caruth, Cathy. *Unclaimed Experience: Trauma, Narrative, and History*. Johns Hopkins UP, 1996.
3. Desai, Anita. *Clear Light of Day*. Penguin, 1980.
4. Felman, Shoshana, and Dori Laub. *Testimony: Crises of Witnessing in Literature, Psychoanalysis, and History*. Routledge, 1992.
5. Herman, Judith. *Trauma and Recovery*. Basic Books, 1992.
6. LaCapra, Dominick. *Writing History, Writing Trauma*. Johns Hopkins UP, 2001. Pater, Walter. *The Renaissance: Studies in Art and Poetry*. Macmillan, 1893.

Email sayadev1996@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 135-139
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

विद्यार्थियों में तनाव प्रबंधन में योग की भूमिका

श्री जीतेन्द्र प्रताप सिंह
सहायक आचार्य (योग विभाग)
जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग राज्य विश्वविद्यालय चित्रकूट (उ.प्र.)
रिजवान
(एम.ए–योग विभाग)
जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग राज्य विश्वविद्यालय चित्रकूट (उ.प्र.)

सारांश :
आज के समय में पढ़ाई का दबाव, परीक्षा की चिंता और भविष्य की चिंता के कारण विद्यार्थियों में तनाव की समस्या बढ़ती जा रही है। यह तनाव उनकी पढ़ाई, एकाग्रता और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। ऐसे में योग एक सरल और प्रभावी उपाय के रूप में मदद कर सकता है। योग के अभ्यास जैसे आसन, प्राणायाम और ध्यान करने से मन शांत होता है, शरीर स्वस्थ रहता है और तनाव कम होता है। इस अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि योग विद्यार्थियों के तनाव को कम करने में कैसे मदद करता है। नियमित रूप से योग करने से विद्यार्थियों में आत्मविश्वास, एकाग्रता और मानसिक शांति बढ़ती है। इसलिए कहा जा सकता है कि योग विद्यार्थियों के तनाव प्रबंधन के लिए एक उपयोगी और लाभदायक तरीका है।

मूल शब्द : योग, तनाव प्रबंधन, विद्यार्थी, मानसिक स्वास्थ्य, प्राणायाम, ध्यान, एकाग्रता ।

प्रस्तावना :

आज के समय में विद्यार्थियों के जीवन में पढ़ाई का दबाव, प्रतियोगिता, परीक्षा की चिंता और भविष्य की अनिश्चितता के कारण तनाव की समस्या तेजी से बढ़ रही है। अधिक तनाव होने से विद्यार्थियों की एकाग्रता, स्मरण शक्ति और मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। कई बार तनाव के कारण विद्यार्थी घबराहट, चिंता और थकान महसूस करते हैं, जिससे उनकी पढ़ाई और दैनिक जीवन प्रभावित होता है। इसलिए विद्यार्थियों के लिए तनाव को सही तरीके से नियंत्रित करना बहुत आवश्यक हो गया है।

योग एक प्राचीन भारतीय पद्धति है, जो शरीर और मन दोनों को स्वस्थ और संतुलित रखने में मदद करती है। योग के अभ्यास जैसे आसन, प्राणायाम और ध्यान करने से मन शांत होता है, शरीर में ऊर्जा बढ़ती है और मानसिक तनाव कम होता है। नियमित योग अभ्यास से विद्यार्थियों की एकाग्रता, आत्मविश्वास और सकारात्मक सोच में भी वृद्धि होती है।

आजकल कई स्कूल और कॉलेज भी विद्यार्थियों के स्वास्थ्य और मानसिक संतुलन के लिए योग को बढ़ावा दे रहे हैं। योग केवल शारीरिक व्यायाम ही नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी जीवन शैली है जो व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

इस अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि योग विद्यार्थियों के तनाव को कम करने में किस प्रकार सहायक है और उनके मानसिक स्वास्थ्य तथा शैक्षणिक प्रदर्शन को बेहतर बनाने में कैसे मदद करता है।

विद्यार्थियों में तनाव की समस्या :

आज के बदलते शैक्षणिक माहौल में विद्यार्थियों के जीवन में तनाव एक महत्वपूर्ण समस्या बनती जा रही है। पढ़ाई का अधिक दबाव, परीक्षा में अच्छे अंक लाने की अपेक्षा, भविष्य की चिंता और बढ़ती प्रतिस्पर्धा के कारण कई विद्यार्थी मानसिक दबाव महसूस करते हैं। इसके साथ–साथ सोशल मीडिया का प्रभाव, समय का सही प्रबंधन न कर पाना और परिवार की अपेक्षाएँ भी विद्यार्थियों के तनाव को बढ़ा देती हैं। अधिक तनाव होने पर विद्यार्थियों की एकाग्रता कम हो जाती है, आत्मविश्वास घटने लगता है और उनका मन पढ़ाई में ठीक से नहीं लग पाता। कई बार यह समस्या उनके मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य को भी प्रभावित करती है। इसलिए विद्यार्थियों में बढ़ते तनाव को समझना और उसे कम करने के प्रभावी उपाय अपनाना बहुत आवश्यक है, ताकि वे संतुलित और स्वस्थ जीवन जी सकें। जब विद्यार्थी लंबे समय तक तनाव में रहते हैं, तो इसका प्रभाव उनकी एकाग्रता, स्मरण शक्ति और आत्मविश्वास पर पड़ता है, जिससे उनकी शैक्षणिक प्रगति प्रभावित हो सकती है। कई बार विद्यार्थी बेचौनी, चिड़चिड़ापन, थकान और नींद की समस्या जैसी स्थितियों का अनुभव भी करने लगते हैं।

इसके साथ ही, परिवार और समाज की अपेक्षाएँ भी विद्यार्थियों के मानसिक दबाव को बढ़ा देती हैं। कई विद्यार्थी असफलता के डर से घबराने लगते हैं और अपनी समस्याओं को दूसरों के साथ साझा नहीं कर पाते, जिससे उनका तनाव और अधिक बढ़ जाता है। ऐसी स्थिति में विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। यदि उन्हें सही मार्गदर्शन, सकारात्मक वातावरण और तनाव प्रबंधन के प्रभावी उपाय मिलें, तो वे इस समस्या से बेहतर तरीके से निपट सकते हैं और अपने जीवन में संतुलन बनाए रख सकते हैं।

तनाव की अवधारणा :

तनाव एक ऐसी मनोवैज्ञानिक और शारीरिक स्थिति है जो तब उत्पन्न होती है जब व्यक्ति अपने जीवन में किसी प्रकार के दबाव, चुनौती या समस्या का सामना करता है। जब किसी व्यक्ति को यह महसूस होता है कि किसी कार्य को पूरा करना उसकी क्षमता से अधिक कठिन है या परिस्थितियाँ उसके नियंत्रण से बाहर हैं, तब उसके मन में चिंता, घबराहट और असंतुलन की भावना उत्पन्न होती है। इसी स्थिति को तनाव कहा जाता है। तनाव व्यक्ति के मानसिक, भावनात्मक और शारीरिक स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकता है।

तनाव व्यक्ति की सोच, व्यवहार और कार्य करने की क्षमता पर भी प्रभाव डालता है। सामान्य रूप से थोड़ी मात्रा में तनाव व्यक्ति को सक्रिय और जिम्मेदार बनाता है, जिससे वह अपने कार्यों को समय पर पूरा करने के लिए प्रेरित होता है। लेकिन जब तनाव अधिक बढ़ जाता है या लंबे समय तक बना रहता है, तो यह व्यक्ति के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकता है। इससे चिंता, थकान, चिड़चिड़ापन, नींद की कमी और एकाग्रता में कमी जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

आधुनिक जीवनशैली में बढ़ती जिम्मेदारियाँ, प्रतिस्पर्धा और तेज गति से बदलता वातावरण भी तनाव को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए तनाव की अवधारणा को समझना और इसे नियंत्रित करने के उपाय अपनाना बहुत आवश्यक है। योग, ध्यान, प्राणायाम और सकारात्मक सोच जैसे उपाय तनाव को कम करने और मानसिक संतुलन बनाए रखने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

इस प्रकार तनाव मानव जीवन का एक सामान्य हिस्सा है, लेकिन इसे समझना और नियंत्रित करना आवश्यक है। यदि व्यक्ति स्वस्थ जीवनशैली, सकारात्मक सोच और योग जैसे उपाय अपनाए, तो वह तनाव को कम करके अपने जीवन में संतुलन और शांति बनाए रख सकता है।

1. तनाव का अर्थ

तनाव वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति किसी परिस्थिति, कार्य या जिम्मेदारी के कारण मानसिक दबाव महसूस करता है। जब व्यक्ति को यह लगता है कि उस पर अधिक अपेक्षाएँ या जिम्मेदारियाँ हैं और वह उन्हें पूरा करने में कठिनाई महसूस कर रहा है, तब उसके मन में चिंता, घबराहट और असंतुलन की भावना उत्पन्न होती है। इस स्थिति को ही तनाव कहा जाता है। तनाव व्यक्ति के मानसिक, भावनात्मक और शारीरिक स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकता है। सामान्य रूप से थोड़ा तनाव व्यक्ति को अपने कार्यों

को बेहतर ढंग से करने के लिए प्रेरित करता है, लेकिन जब यह अधिक बढ़ जाता है तो यह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकता है।

2. तनाव के प्रकार

तनाव को सामान्यतः तीन प्रमुख प्रकारों में बाँटा जाता है:

(i) **सकारात्मक तनाव** (Eustress):

यह ऐसा तनाव होता है जो व्यक्ति को प्रेरित करता है और उसे अपने कार्यों को बेहतर ढंग से करने के लिए उत्साहित करता है। जैसे परीक्षा से पहले थोड़ा तनाव होना, जिससे विद्यार्थी अधिक मेहनत करने के लिए प्रेरित होते हैं।

(ii) **नकारात्मक तनाव** (Distress):

जब तनाव अत्यधिक बढ़ जाता है और व्यक्ति उसे संभाल नहीं पाता, तब यह नकारात्मक तनाव बन जाता है। इससे चिंता, डर, बेचैनी और मानसिक असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

(iii) **दीर्घकालिक तनाव** (Chronic Stress):

जब तनाव लंबे समय तक बना रहता है और व्यक्ति लगातार मानसिक दबाव में रहता है, तब इसे दीर्घकालिक तनाव कहा जाता है। यह स्थिति व्यक्ति के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव डाल सकती है।

3. तनाव के लक्षण

तनाव होने पर व्यक्ति में कई प्रकार के लक्षण दिखाई देते हैं, जो मानसिक, शारीरिक और व्यवहारिक हो सकते हैं।

मानसिक लक्षण: चिंता और घबराहट महसूस होना, ध्यान और एकाग्रता में कमी होना,नकारात्मक विचारों का आना

शारीरिक लक्षण: सिरदर्द और शरीर में दर्द होना, थकान और कमजोरी महसूस होना, नींद की समस्या होना

व्यवहारिक लक्षण: चिड़चिड़ापन और गुस्सा बढ़ना, पढ़ाई या काम में रुचि कम होना, अकेलापन महसूस करना

योग की अवधारणा :

योग एक प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा है जिसका मुख्य उद्देश्य शरीर, मन और आत्मा के बीच संतुलन स्थापित करना है। "योग" शब्द का अर्थ है जोड़ना या एकता स्थापित करना। इसका आशय यह है कि योग व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक पक्षों को आपस में जोड़कर एक संतुलित और स्वस्थ जीवन की ओर ले जाता है। योग केवल शारीरिक व्यायाम नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी जीवन पद्धति है जो व्यक्ति को अनुशासित, स्वस्थ और शांतिपूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा देती है।

योग के माध्यम से व्यक्ति अपने मन और विचारों को नियंत्रित करना सीखता है। योग में आसन, प्राणायाम और ध्यान जैसे अभ्यास शामिल होते हैं, जो शरीर को मजबूत बनाते हैं, श्वास को नियंत्रित करते हैं और मन को शांत रखते हैं। नियमित योग अभ्यास से शरीर में लचीलापन बढ़ता है, थकान और तनाव कम होता है तथा मानसिक एकाग्रता में वृद्धि होती है।

इसके अलावा योग व्यक्ति में आत्मविश्वास, सकारात्मक सोच और मानसिक संतुलन को भी विकसित करता है। वर्तमान समय में जब लोगों के जीवन में तनाव, चिंता और भागदौड़ बढ़ती जा रही है, तब योग का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है। इसलिए स्वस्थ शरीर, शांत मन और संतुलित जीवन के लिए योग को दैनिक जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा माना जाता है।

तनाव का मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव :

तनाव व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य को गहराई से प्रभावित करता है। जब व्यक्ति लगातार मानसिक दबाव या चिंता की स्थिति में रहता है, तो उसके विचारों और भावनाओं में असंतुलन पैदा होने लगता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति को बेचैनी, घबराहट और असुरक्षा की भावना महसूस हो सकती है। धीरे–धीरे यह स्थिति उसकी सोचने, समझने और निर्णय लेने की क्षमता को भी प्रभावित करने लगती है।

अधिक तनाव होने पर व्यक्ति की एकाग्रता कम हो जाती है और वह अपने कार्यों पर ठीक से ध्यान नहीं दे पाता। इसके साथ ही नकारात्मक विचार, चिड़चिड़ापन और उदासी जैसी भावनाएँ भी बढ़ने लगती

हैं। कई बार व्यक्ति आत्मविश्वास की कमी महसूस करता है और उसे लगता है कि वह अपनी समस्याओं का समाधान नहीं कर पाएगा।

लंबे समय तक बना रहने वाला तनाव मानसिक संतुलन को कमजोर कर सकता है और व्यक्ति के व्यवहार तथा सामाजिक संबंधों को भी प्रभावित कर सकता है। इसलिए मानसिक स्वास्थ्य को स्वस्थ बनाए रखने के लिए तनाव को समय पर पहचानना और उसे कम करने के उपाय अपनाना आवश्यक है। योग, ध्यान और सकारात्मक जीवनशैली मानसिक शांति प्रदान करते हैं और मानसिक स्वास्थ्य को मजबूत बनाने में सहायक सिद्ध होते हैं।

तनाव कम करने में योग की भूमिका :

योग तनाव को नियंत्रित करने का एक प्रभावी और प्राकृतिक माध्यम है। नियमित योग अभ्यास से शरीर और मन के बीच संतुलन स्थापित होता है, जिससे मानसिक शांति और स्थिरता प्राप्त होती है। योग व्यक्ति को अपने विचारों और भावनाओं को नियंत्रित करने की क्षमता देता है, जिससे तनाव धीरे–धीरे कम होने लगता है और मन अधिक शांत महसूस करता है।

योग के विभिन्न अभ्यास जैसे आसन, प्राणायाम, ध्यान और योग निद्रा तनाव को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आसन करने से शरीर में लचीलापन और ऊर्जा बढ़ती है, जबकि प्राणायाम के माध्यम से श्वास–प्रश्वास संतुलित होती है और मन को शांति मिलती है। ध्यान (मेडिटेशन) व्यक्ति के मन को एकाग्र करता है और नकारात्मक विचारों को कम करने में सहायता करता है।

इसके अतिरिक्त योग निद्रा भी तनाव कम करने का एक प्रभावी अभ्यास है। योग निद्रा को "योगिक नींद" कहा जाता है, जिसमें व्यक्ति गहरी शारीरिक और मानसिक विश्राम की अवस्था में पहुँचता है। इस अभ्यास से मन को गहरा आराम मिलता है, मानसिक थकान दूर होती है और तनाव कम होता है। नियमित रूप से योग निद्रा करने से एकाग्रता, स्मरण शक्ति और मानसिक संतुलन में भी सुधार होता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि योग के विभिन्न अभ्यासकृआसन, प्राणायाम, ध्यान और योग निद्राकृ मिलकर तनाव को कम करने और मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। नियमित योग अभ्यास व्यक्ति को शांत, संतुलित और स्वस्थ जीवन जीने में सहायता करता है।

मानसिक शांति में योग का योगदान :

योग मानसिक शांति प्राप्त करने का एक प्रभावी साधन है। आधुनिक जीवन में बढ़ती भागदौड़, जिम्मेदारियाँ और प्रतिस्पर्धा के कारण व्यक्ति का मन अक्सर तनाव और चिंता से घिरा रहता है। ऐसी स्थिति में योग मन को शांत करने और मानसिक संतुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। योग के नियमित अभ्यास से व्यक्ति अपने विचारों और भावनाओं को बेहतर तरीके से नियंत्रित कर पाता है, जिससे मन में स्थिरता और शांति का अनुभव होता है।

योग के माध्यम से शरीर और मन के बीच सामंजस्य स्थापित होता है। प्राणायाम और ध्यान जैसे अभ्यास मन को एकाग्र बनाते हैं और नकारात्मक विचारों को कम करने में सहायता करते हैं। इसके अलावा योग निद्रा का अभ्यास व्यक्ति को गहरी विश्राम की अवस्था में ले जाता है, जिससे मानसिक थकान दूर होती है और मन अधिक शांत महसूस करता है।

इस प्रकार योग व्यक्ति को आंतरिक शांति और मानसिक संतुलन प्रदान करता है। नियमित योग अभ्यास से व्यक्ति का मन स्थिर, सकारात्मक और संतुलित बनता है, जिससे वह अपने दैनिक जीवन की चुनौतियों का सामना अधिक शांत और धैर्यपूर्वक कर सकता है।

एकाग्रता बढ़ाने में योग का महत्व :

एकाग्रता किसी भी कार्य को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए बहुत आवश्यक होती है। विशेष रूप से विद्यार्थियों के लिए पढ़ाई में ध्यान लगाना, विषयों को समझना और उन्हें याद रखना तभी संभव होता है जब उनकी एकाग्रता अच्छी हो। वर्तमान समय में मोबाइल, इंटरनेट और अन्य बाहरी आकर्षणों के कारण विद्यार्थियों का ध्यान आसानी से भटक जाता है, जिससे उनकी पढ़ाई पर प्रभाव पड़ता है। ऐसी स्थिति में योग एकाग्रता बढ़ाने का एक प्रभावी उपाय सिद्ध हो सकता है।

योग के नियमित अभ्यास से मन शांत और स्थिर होता है, जिससे व्यक्ति अपने कार्यों पर बेहतर ध्यान केंद्रित कर पाता है। योग के अभ्यास जैसे प्राणायाम, ध्यान और योग निद्रा मन को नियंत्रित करने और मानसिक शांति प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जब मन शांत होता है, तो व्यक्ति की सोचने, समझने और याद रखने की क्षमता भी बढ़ती है।

योग शरीर और मन के बीच संतुलन स्थापित करता है, जिससे मानसिक थकान कम होती है और ऊर्जा का स्तर बढ़ता है। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति अधिक सक्रिय और जागरूक महसूस करता है। नियमित योग अभ्यास से स्मरण शक्ति, एकाग्रता और मानसिक स्पष्टता में सुधार होता है।

इस प्रकार योग न केवल शारीरिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाता है, बल्कि मानसिक क्षमता को भी विकसित करता है। यदि विद्यार्थी नियमित रूप से योग का अभ्यास करें, तो उनकी एकाग्रता बढ़ सकती है और वे अपनी पढ़ाई तथा अन्य कार्यों में बेहतर प्रदर्शन कर सकते हैं।

निष्कर्ष :

अंततः यह कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों के जीवन में बढ़ता तनाव उनकी पढ़ाई, मानसिक स्थिति और समग्र विकास पर नकारात्मक प्रभाव डालता है, लेकिन योग इस समस्या का एक प्रभावी और सरल समाधान प्रदान करता है। नियमित योग अभ्यास से मन शांत होता है, एकाग्रता बढ़ती है और व्यक्ति मानसिक रूप से अधिक संतुलित महसूस करता है। आसन, प्राणायाम, ध्यान और योग निद्रा जैसे अभ्यास न केवल तनाव को कम करते हैं, बल्कि सकारात्मक सोच, आत्मविश्वास और धैर्य को भी विकसित करते हैं। इसलिए यदि योग को विद्यार्थियों की दैनिक दिनचर्या और शिक्षा प्रणाली में शामिल किया जाए, तो यह उन्हें तनाव मुक्त, स्वस्थ और संतुलित जीवन जीने में महत्वपूर्ण सहायता प्रदान कर सकता है।

सुक्षाव : स्कूल और कॉलेज में योग की आवश्यकता

आज के बदलते शैक्षणिक वातावरण में जहाँ विद्यार्थियों पर पढ़ाई, प्रतियोगिता और प्रदर्शन का दबाव लगातार बढ़ रहा है, वहाँ योग की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। योग केवल शरीर को स्वस्थ रखने का साधन नहीं है, बल्कि यह मन को शांत, स्थिर और एकाग्र बनाने में भी सहायता करता है। स्कूल और कॉलेज स्तर पर योग को शामिल करने से विद्यार्थी तनाव और चिंता से मुक्त होकर अपनी पढ़ाई पर बेहतर ध्यान केंद्रित कर सकते हैं। इसके साथ ही योग उनमें आत्म–नियंत्रण, अनुशासन और सकारात्मक सोच का विकास करता है, जो उनके व्यक्तित्व निर्माण के लिए आवश्यक है। योग के नियमित अभ्यास से विद्यार्थी न केवल शारीरिक रूप से स्वस्थ रहते हैं, बल्कि मानसिक रूप से भी सशक्त बनते हैं और जीवन की चुनौतियों का सामना आत्मविश्वास के साथ कर पाते हैं। इसलिए शिक्षा संस्थानों में योग को अनिवार्य रूप से शामिल करना विद्यार्थियों के समग्र विकास के लिए अत्यंत आवश्यक

संदर्भ :

- अयंगर, बी. के. एस. (2005). लाइट ऑन योगा. हार्पर कॉलिन्स पब्लिशर्स।
- पतंजलि. (2009). पतंजलि योगसूत्र (एस. तैमिनी, अनुवादक). थियोसोफिकल पब्लिशिंग हाउस।
- सरस्वती, स्वामी सत्यानंद. (2002). आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बंध. बिहार स्कूल ऑफ योग।
- सिंह, वाई. (2010). मनोविज्ञान और योग. नई दिल्ली: कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी।
- शर्मा, आर. (2012). योग और मानसिक स्वास्थ्य. नई दिल्ली: एकेडमिक प्रेस।
- वर्मा, एस. के., – गुप्ता, आर. के. (2015). तनाव प्रबंधन और योग. नई दिल्ली: एकेडमिक पब्लिकेशन्स।
- भावनानी, ए. बी. (2013). तनाव प्रबंधन के लिए योग. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ योग, 6(1), 3–7।
- भारतीय मनोचिकित्सा जर्नल. (2010). तनाव कम करने में योग की भूमिका. इंडियन जर्नल ऑफ साइकियाट्री, 52(3), 201–206।
- विश्व स्वास्थ्य संगठन. (2014). मानसिक स्वास्थ्यरू एक कल्याण की स्थिति. जेनेवा: WHO प्रेस।
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद. (2006). योग: स्वस्थ जीवन का तरीका. नई दिल्ली: एनसीईआरटी।

Email : jitendrapsingh91@gmail.com

Email : rijwanrain222@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 140-142
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

समकालीन हिंदी कथा–साहित्य में वृद्ध विमर्श (बदलते पारिवारिक मूल्यों और एकाकीपन का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन)

पूजा
एम.ए.(हिंदी),नेट उत्तीर्ण ,
H.No- 363 sec 20 Huda kaithal Haryana- 136027

1. प्रस्तावना :

"साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं, उसका मार्गदर्शक भी होता है।" हिंदी साहित्य के इतिहास में 'विमर्श' की परंपरा अत्यंत समृद्ध रही है। जहाँ पूर्व में दलित, स्त्री और आदिवासी विमर्श ने समाज के हाशिए पर खड़े वर्गों को स्वर दिया, वहीं वर्तमान समय में 'वृद्ध विमर्श' एक अत्यंत गंभीर और अनिवार्य विषय बनकर उभरा है। भारतीय संस्कृति में कभी वृद्धों को 'अनुभव की पाठशाला' और परिवार का 'वटवृक्ष' माना जाता था, जहाँ उनकी आज्ञा ही अंतिम सत्य होती थी। किंतु आधुनिकता, भूमंडलीकरण और उपभोक्तावाद के तीव्र प्रवाह ने इस सामाजिक और सांस्कृतिक संरचना को मूल से हिला दिया है।

आज का वृद्ध केवल शारीरिक व्याधियों से ही नहीं जूझ रहा, बल्कि वह 'अपनों के बीच अजनबीपन' और 'पीढ़ीगत अंतराल' की गहरी खाई में गिरा हुआ है। संयुक्त परिवारों के विघटन और एकल परिवारों के बढ़ते चलन ने बुजुर्गों को घर के 'केंद्र' से हटाकर 'कोने' की वस्तु बना दिया है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य इन्हीं साहित्यिक साक्ष्यों के माध्यम से वृद्धों की भावनात्मक रिक्तता और उनके अस्तित्व के संघर्ष की पड़ताल करना है।

बीज शब्दः वृद्ध विमर्श, पीढ़ीगत अंतराल, एकाकीपन, संयुक्त परिवार का विघटन, अस्तित्ववाद, बाजारवाद, सेवानिवृत्ति, संवादहीनता, आधुनिकता, अस्मिता।

2. वृद्ध विमर्शः सैद्धांतिक पृष्ठभूमि और सामाजिक आवश्यक

वृद्ध विमर्श का अर्थ केवल वृद्धावस्था की शारीरिक कमज़ोरियों का वर्णन करना नहीं है, बल्कि उस मानसिक और सामाजिक स्थिति का विश्लेषण करना है जहाँ एक व्यक्ति अनुभव से भरपूर होने के बावजूद समाज के लिए 'अनुपयोगी' करार दे दिया जाता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो भारतीय समाज में 'पितृसत्ता' के कारण वृद्धों का सम्मान सर्वोच्च था। 'वर्णाश्रम धर्म' में वानप्रस्थ और संन्यास की व्यवस्था व्यक्ति को सम्मानजनक विदाई देती थी। किंतु आज के 'बाजारवादी युग' में व्यक्ति की महत्ता उसकी 'उपयोगिता' से मापी जाती है। जैसे ही व्यक्ति सेवानिवृत्त होता है या उसकी कमाने की शक्ति समाप्त होती है, परिवार का व्यवहार उसके प्रति बदलने लगता है। हिंदी साहित्य ने इस सूक्ष्म बदलाव और बुजुर्गों के मन में उठने वाली टीस को बहुत संजीदगी से पकड़ा है।

3. संयुक्त परिवार का बिखराव और 'वापसी' का यथार्थ

हिंदी साहित्य में वृद्धों की उपेक्षा और 'घर के भीतर बेगानेपन' का सबसे सटीक उदाहरण उषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' में मिलता है। यह कहानी केवल एक व्यक्ति के सेवानिवृत्त होने की कहानी नहीं है, बल्कि एक पूरे युग के बदलने की कहानी है।

गजाधर बाबू का संघर्षः पैंतीस साल रेलवे की नौकरी करने के बाद गजाधर बाबू इस मधुर कल्पना के साथ घर लौटते हैं कि अब वे अपनी पत्नी और बच्चों के साथ सुख से रहेंगे। लेकिन वे पाते हैं कि उनके बिना परिवार का एक अपना 'ईको–सिस्टम' बन चुका है। पत्नी रसोई और बच्चों के बीच व्यस्त है, और बच्चों के लिए उनके पिता केवल 'पैसे भेजने वाली मशीन' बनकर रह गए थे।

कहानी का वह दृश्य अत्यंत मार्मिक है जहाँ गजाधर बाबू की खाट को बैठक से हटाकर अंदर की कोठरी में डाल दिया जाता है। यह खाट का हटना दरअसल उनके सम्मान और अस्तित्व का ढहना है। गजाधर बाबू कहते हैंकृ "मैं समझता था कि परिवार का एक अंग हूँ, पर यहाँ तो मैं मेहमान से भी गया–गुज़रा हूँ।" अंततः वे अपनी पत्नी से साथ चलने की उम्मीद करते हैं, लेकिन पत्नी भी रसोई और नाती–पोतों का मोह नहीं छोड़ पाती। गजाधर बाबू चुपचाप फिर से एक मिल की नौकरी पर चले जाते हैं। यह कहानी दिखाती है कि आधुनिक मध्यम वर्ग के पास बुजुर्गों के लिए स्थान तो है, पर 'सम्मान' और 'समय' नहीं।

4. मध्यमवर्गीय संवेदनहीनता और 'चीफ की दावत'

भीष्म साहनी की कालजयी कहानी 'चीफ की दावत' वृद्ध विमर्श के एक और क्रूर और स्वार्थी चेहरे को बेनकाब करती है। यहाँ बेटा (शामनाथ) अपने प्रमोशन के लिए अपने बॉस (चीफ) को घर पर दावत देता है, लेकिन उसे अपनी बूढ़ी, अनपढ़ और ग्रामीण माँ को मेहमानों के सामने लाने में शर्म आती है।

सांस्कृतिक पतन का चित्रणः शामनाथ अपनी माँ को एक 'फालतू सामान' की तरह इधर–उधर छुपाने का प्रयास करता है। वह माँ को निर्देश देता है कि "जब साहब आएँ तो तुम सो मत जाना, खर्राटे मत लेना और चुपचाप कोठरी में बैठी रहना।" यह दृश्य आधुनिक पीढ़ी की उस मानसिकता को दर्शाता है जहाँ माता–पिता अब 'सम्मान' का नहीं बल्कि 'शर्म' का कारण बन रहे हैं।

किंतु कहानी का अंत माँ की निस्वार्थ ममता को दिखाता है। चीफ के कहने पर माँ जब लोकगीत गाती है और फुलकारी दिखाती है, तो बेटा खुश हो जाता है क्योंकि उसका 'काम' बन गया। माँ की आंखों की रोशनी कम है, फिर भी वह बेटे की तरक्की के लिए फुलकारी बनाने को तैयार हो जाती है। यह कहानी वृद्धों की उस महानता और नई पीढ़ी के उस खोखलेपन को उजागर करती है जहाँ मानवीय रिश्तों से ऊपर 'करियर' हो गया है।

5. अकेलापन और अस्तित्व का संकटः 'अंतिम अरण्य' और 'समय सरगम'

जब हम उपन्यासों की बात करते हैं, तो निर्मल वर्मा का उपन्यास 'अंतिम अरण्य' और कृष्णा सोबती का 'समय सरगम' वृद्ध विमर्श के दो अलग ध्रुवों को छूते हैं।

निर्मल वर्मा का दर्शनः 'अंतिम अरण्य' में बुढ़ापा केवल एक सामाजिक समस्या नहीं है, बल्कि एक 'मेटाफिजिकल' या आध्यात्मिक अनुभव है। निर्मल वर्मा दिखाते हैं कि कैसे मृत्यु के करीब पहुँचता व्यक्ति अपनी स्मृतियों के सहारे जीता है। यहाँ अकेलापन भयावह नहीं, बल्कि अनिवार्य है। आधुनिक शहरों में जहाँ लोग साथ होकर भी अकेले हैं, वहाँ बुजुर्गों का एकाकीपन और गहरा हो जाता है।

कृष्णा सोबती का स्वाभिमानः इसके विपरीत, 'समय सरगम' में वृद्ध पात्र 'ईशान' और 'अरण्य' अपनी वृद्धावस्था को बोझ नहीं मानते। वे आपस में बात करते हैं, सैर करते हैं और अपनी गरिमा बनाए रखते हैं। कृष्णा सोबती का यह उपन्यास संदेश देता है कि वृद्ध होना 'बेचारा' होना नहीं है। वे अपनी मर्जी से जीना चाहते हैं और बच्चों पर आश्रित नहीं रहना चाहते। सोबती जी लिखती हैंकृ "समय रुकता नहीं, वह सरगम की तरह बहता है, बस हमें उसमें अपना सुर ढूँढना होता है।"

6. वृद्ध स्त्रीः दोहरी मार और अस्मिता का प्रश्न

वृद्ध विमर्श में वृद्ध महिलाओं की स्थिति और भी जटिल है। उन्हें 'विधवा' होने के बाद अक्सर और भी बुरी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। मैत्रेयी पुष्पा और कृष्णा सोबती के साहित्य

में ऐसी स्त्रियाँ मिलती हैं जो परिवार की बंदिशों को तोड़कर अपने अस्तित्व की तलाश करती हैं। ग्रामीण अंचल में वृद्ध स्त्रियाँ अक्सर घर की 'दासी' बनकर रह जाती हैं, जबकि शहरी क्षेत्रों में वे 'आया' के रूप में नाती–पोतों को सँभालने के काम आती हैं। साहित्य ने इस अदृश्य श्रम और उनकी भावनाओं को प्रमुखता से उठाया है।

7. बाजारवाद, तकनीक और 'न्यूक्लियर फैमिली' का प्रभाव

आज के डिजिटल युग ने बुजुर्गों को और भी अधिक हाशिए पर धकेल दिया है।

टेक्नोलॉजी की खाईः नई पीढ़ी स्मार्टफोन और इंटरनेट की आभासी दुनिया में कैद है, जबकि बुजुर्ग 'संवाद' के भूखे हैं।

बाजार का खेलः बाजार ने बुजुर्गों की समस्याओं का भी 'कमर्शियलाइजेशन' कर दिया है। 'ओल्ड एज होम्स' अब एक लक्जरी बिज़नेस बन गए हैं।

फ्लैट संस्कृतिः शहरों के छोटे फ्लैट्स में बुजुर्गों के लिए न तो खुली हवा है और न ही पुराने परिचितों का साथ। वे चार दीवारों में 'डिप्रेशन' का शिकार हो रहे हैं।

8.निष्कर्षः अंत नहीं, एक नई दृष्टिः

प्रस्तुत शोध का संपूर्ण विश्लेषण इस तथ्य को पुष्ट करता है कि हिंदी कथा–साहित्य ने 'वृद्ध विमर्श' को केवल एक अवस्था के रूप में नहीं, बल्कि एक गंभीर सामाजिक और मनोवैज्ञानिक संकट के रूप में चित्रित किया है। साहित्य के दर्पण में यह स्पष्ट दिखाई देता है कि आधुनिक समाज में बुजुर्गों की समस्या केवल 'भोजन' या 'आवास' की नहीं है, बल्कि 'अस्तित्व' और 'अस्मिता की है।

शोध के मुख्य निष्कर्षः

संवादहीनता का संकटः बुजुर्गों का असली बुढ़ापा उनकी उम्र से नहीं, बल्कि परिवार की 'संवादहीनता' से आता है। जब अपनों के बीच ही व्यक्ति 'अनचाहा मेहमान' बन जाता है, तो वह मानसिक मृत्यु की ओर अग्रसर होने लगता है।

उपयोगिता बनाम भावनाः आज का बाज़ारवादी समाज व्यक्ति को उसकी 'उत्पादकता' से आंकता है। साहित्य ने इस क्रूर यथार्थ को उकेरा है कि जैसे ही व्यक्ति 'उपभोक्ता' की श्रेणी से बाहर होता है, समाज उसे 'अवांछित' समझने लगता है।

जिजीविषा और गरिमाः साहित्य यह संदेश देता है कि वृद्ध जीवन केवल दुखों का पिटारा नहीं है। यदि उन्हें सम्मान और स्वायत्तता मिले, तो वे अपने अनुभव की सुगंध से समाज को महका सकते हैं।

अंतिम विचारः साहित्य का यह 'वृद्ध विमर्श' आज की युवा पीढ़ी के लिए एक नैतिक चेतावनी भी है और संवेदनशीलता का पाठ भी। हमें 'वृद्धाश्रम' की संख्या बढ़ाने के बजाय, 'घरों के भीतर के दरवाजों' को खोलने की आवश्यकता है। जड़ें (बुजुर्ग) जितनी गहरी होंगी, समाज का वृक्ष उतना ही मजबूत होगा।

9. संदर्भ ग्रंथ सूची:

1.उषा प्रियंवदा – वापसी (कहानी), राजकमल प्रकाशन।

2.भीष्म साहनी– चीफ की दावत (प्रतिनिधि कहानियाँ), वाणी प्रकाशन।

3.कृष्णा सोबती – समय सरगम (उपन्यास), राजकमल प्रकाशन।

4. निर्मल वर्मा – अंतिम अरण्य (उपन्यास), राजकमल प्रकाशन।

5 नीलिमा सिंह, – यमदीप, भारतीय ज्ञानपीठ।

6.डॉ. रामदरश मिश्र, – हिंदी उपन्यास का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन।

Mob.No- 9992450681

Email- poojaatri7334@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 143-145
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

गांधी चिंतन की अवधारणा

Farzana Nazeer
Research Scholar,
Department of Hindi, Maharaja's College, Ernakulam

गांधी चिंतन एक विशिष्ट चिंतन परंपरा है ,जो महात्मा गाँधी के सत्य ,अहिंसा और सत्याग्रह जैसे समृद्ध सिद्धांतों पर आधारित है | गांधीजी बीसवीं शताब्दी के एक विशिष्ट विचारक थे। उनके चिंतन केवल भारत तक सीमित नहीं ,बल्कि विश्व स्तर पर आदर से स्वीकार किया जाता है| सरल रूप में कहें तो गांधी चिंतन महात्मा गांधी के आदर्शों विश्वासों , विचारों और सिद्धांतों को कहा जाता है।

गाँधी चिंतन केवल सैद्धांतिक धरातल तक सीमित नहीं है ,बल्कि यह व्यवहारिक धरातल पर भी अत्यंत प्रासंगिक और महत्त्पूर्ण है | वर्त्तमान विश्व हिंसा , नैतिक पतन और अन्य गंभीर समस्याओं से जूझ रहा है ,ऐसी हालत में गांधी चिंतन की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है |

गांधी जी ने स्वयं कहा था " गांधीवाद नाम की कोई वस्तु है ही नहीं और न मैं अपने पीछे कोई संप्रदाय छोड़ जाना चाहता हूँ | मेरा यह दावा भी नहीं है कि मैंने कोई नए तत्व या सिद्धांत का आविष्कार किया है | मैंने तो केवल जो शाश्वत सत्य है, उसके अपने नित्य के जीवन और प्रश्नों पर अपने ढंग से उतारने का प्रयास मात्र किया है| मुझे दुनिया को कोई नई चीज नहीं सिखानी है | सत्य और अहिंसा आदिकाल से चले आ रहे हैं | ऊपर मैंने जो कुछ कहा है ,उसमें मेरा तत्वज्ञान यदि मेरे विचारों को इतना बड़ा नाम दिया जा सकता है, समा जाता है | आप इसे गांधीवाद न कहिए, इसमें 'वाद' नाम की कोई वस्तु नहीं है|" इस प्रकार महात्मा गाँधी स्वयं 'गांधीवाद' नाम को अस्वीकार करने के बाद भी कुछ विद्वान इसे 'गांधीवाद' ही कहते हुए नजर आते हैं |

हिंदी साहित्य कोश के अनुसार "गांधीवाद महात्मा गांधी की विचार पद्धति का व्यापक नाम है | गांधी व्यक्तित्व के अनेक पक्ष थे | वे राजनेता थे , समाज सुधारक थे , शिक्षा शास्त्री थे और धर्मोपदेशक भी थे | समाजशासन के संगठन तथा जीवन के अन्य पक्षों के बारे में उनके अपने विचार थे , जिनका प्रतिणतन उन्होंने अपनी दैनिक साधना के मध्य से गुजरते हुए किया | मार्क्सवाद के समान कोई व्यवस्थित शास्त्रीय अध्ययन इसके पीछे नहीं है| इसी कारण उसमें किसी प्रकार की तर्कजन्य पद्धति का अभाव है | गांधीवाद का आधार तर्क नहीं स्वानुभूति है | इस विचारधारा का प्रत्येक खंड आत्म शक्ति को लेकर चलता है | इसी कारण उसमें एक प्रकार की आध्यात्मिकता और विचार स्वातंत्र्य है|"

गांधी चिंतन एक समग्र एवं बहुआयामी विचारधारा है , जिसके अंतर्गत उनकी आध्यात्मिक विचारधारा ,सामाजिक विचारधारा ,धार्मिक विचारधारा ,आर्थिक विचारधारा और राजनैतिक विचारधारा आदि एक दुसरे से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है | गांधी चिंतन मानव जीवन के हरेक पहलुओं को समग्र रूप से स्पर्श करता है |

गांधी चिंतन के मूल तत्व सत्य और अहिंसा आध्यात्मिक विचारधारा के अंतर्गत है | गांधी जी का मानना था कि जहां सत्य है वहां ईश्वर की उपस्थिति होती है ,और नैतिकता इसका मूल आधार है| गांधी जी ने कहा कि "मेरे लिए सत्य से परे कोई धर्म नहीं है और अहिंसा से बढ़कर कोई परम कर्तव्य नहीं है | इस कर्तव्य को करते-करते ही आदमी सत्य की पूजा कर सकता है | सत्य की पूजा का कोई दूसरा साधन नहीं है, यदि मेरा कोई सिद्धांत कहा जाए तो वह केवल इतना ही है|"

गांधी जी सत्य को परमेश्वर मानते हैं, और उनकी दृष्टि में सत्य के अभाव में परमेश्वर का कोई अस्तित्व नहीं है , इस सर्वव्यापी सत्य को पाने केलिए अहिंसा की साधना भी अनिवार्य है| गांधी चिंतन में सत्य को सर्वोच्च स्थान है |गांधी जी ने अपने संपूर्ण जीवन में सत्य का अनुसरण किया | उनके अनुसार सत्य के बिना समाज का विकास संभव नहीं हैं |गाँधी चिंतन के और एक मूल स्तंभ है अहिंसा | अहिंसा से तात्पर्य केवल शारीरिक हिंसा न करना ही नहीं ,बल्कि मन ,वचन और कर्म से किसी को भी हानि न पहुँचाना है |गांधीजी के अनुसार अहिंसा एक सशक्त हथियार है जिसकी मदद से समाज में शान्ति और न्याय की स्थापना कर सकते है |

गांधी जी के धार्मिक विचारधारा के अंतर्गत अपरिग्रह, शारीरिक श्रम अथवा स्वावलंबन , सर्वधर्म समभाव, नैतिक आत्मबल आदि आते हैं | गांधी जी के अनुसार "मैं संसार से सब महान धर्मों के मूलभूत सत्यों में विश्वास करता हूं| मूल में वे सब एक है|" अपरिग्रह का सिद्धांत महात्मा गाँधी का और एक महत्त्पूर्ण सिद्धांत है |अपरिग्रह से मतलब अत्यधिक संग्रह न करना है |महात्मा गाँधी के अनुसार मनुष्य अपने आवश्यकताओं से अधिक संसाधनों का संग्रह न करना चाहिए| अत्यधिक उपभोग समाज में असमानता और शोषण को बढ़ावा देता है| उनके आत्मसंयम और सादगीपूर्ण जीवन संबंधी विचार अपारिग्रह सिद्धांत के अंतर्गत समाया गया है | शारीरिक श्रम अथवा स्वावलंबन की भावना महात्मा गाँधी के धार्मिक विचारधारा के अंतर्गत आते है |उन्होंने शारीरिक श्रम को केवल आजीविका के रूप में नहीं माना बल्कि ,इसे आत्मसम्मान,आत्मविश्वास और नैतिक विकास का आधार भी माना | उनके अनुसार बिना श्रम किये खाना चोरी के सामान है | गांधीजी के मतानुसार व्यक्ति और समाज दोनों के समग्र विकास केलिए स्वावलंबन अनिवार्य है | धार्मिक विचारधारा के और एक महत्त्पूर्ण अंग है सर्वधर्म समभाव| सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता और समान आदर के भाव रखना सर्वधर्म समभाव है | उनके अनुसार सभी धर्मों के मूल प्रेम ,नैतिकता और सत्य होना चाहिए | उनके अनुसार कोई भी धर्म को उच्च या निम्न नहीं समझना चाहिए | सर्वधर्म समभाव समाज में शान्ति ,एकता और भाईचारा स्थापित करने का आधार है | इस तत्व से व्यक्ति को धार्मिक संकीर्णताओं से ऊपर उठाकर एक मानवीय दृष्टि प्रदान करता है |

गांधी जी के सामाजिक विचारधारा को भी विशेष महत्व होता है| इसके अंतर्गत अस्पृश्यता निवारण या हरिजनोद्धार , नारी उद्धार ,वेश्या उद्धार , पर्दा प्रथा विरोध , बाल विवाह विरोध, विधवा विवाह समर्थन, सती प्रथा की निंदा,अंतरजातीय विवाह का समर्थन ,सांप्रदायिक एकता और शराब मादक वस्तुओं का निषेध आदि आते हैं| गांधी जी ने लिखा था "मैं एक ऐसे विधान निमित्त चेष्टा करूंगा जो भारत को हर तरह की गुलामी व प्रभुता से मुक्त करेगी | और जरूरत पड़ने पर उसे अपराध करने का अधिकार रहेगा, जिसे गरीब से गरीब अपना देश समझेगा जहां पर सब जातियों के लोग मिलजुल कर रह सकेंगे| ऐसे भारत में अस्पृश्यता तथा मादक द्रव्यों जैसे अभिशाप के लिए कोई स्थान नहीं रहेगा | स्त्रियों की अधिकार पुरुषों के समान होंगे, चूंकि शेष विश्व के साथ न हम भिन्न-भिन्न भाव से रहेंगे ना तो किसी का शोषण करेंगे| अतः हमें कम से कम सेना की आवश्यकता होगी|"

हरिजनोद्धार एवं अस्पृश्यता का विरोध गाँधी चिंतन के सामाजिक आयाम में आनेवाला अत्यंत महत्त्पूर्ण पक्ष है| महात्मा गाँधी अस्पृश्यता के घोर विरोधी थे |छुआछूत नामक इस सामाजिक बुराई के उन्मूलन केलिए वे सदैव प्रयासरत रहे | दलितों के उत्थान के लिए उन्होंने विभिन्न प्रकार के आन्दोलनों का संचालन किया | गांधी के सामजिक चिंतन के एक महत्त्पूर्ण पक्ष थे नारी उत्थान की भावना | उनके अनुसार सामजिक प्रगति केलिए नारी उत्थान अनिवार्य है | उन्होंने स्त्रियों को मानसिक बल धारण करने के लिए प्रेरित किया| और उन्हें यह सलाह दी कि वे स्वयं को निर्बल समझने की प्रवृत्ति का त्याग करें | सांप्रदायिक एकता गाँधी चिंतन के सामाजिक पक्ष के अंतर्गत आनेवाला एक प्रमुख पक्ष है |उन्होंने सांप्रदायिक वैमनस्य के उन्मूलन के लिए सतत प्रयास किए|

गांधी चिंतन की आर्थिक विचारधारा के अंतर्गत सर्वोदय ,मशीनों का विरोध, ग्रामीण व कुटीर उद्योगों का प्रचार, खादी – चरखा, ट्रस्टीशिप सिद्धांत,स्वदेशी का सिद्धांत ,स्वावलंबन आदि आते हैं| सर्वोदय शब्द से तात्पर्य है सबका उत्थान | गांधी जी मशीनों का विरोध किया | उनके दृष्टि में मशीनों की अधिकतम उपयोग से धन - संपत्ति केवल पूंचिपतियों के साथ एकत्र हो जाती है| उन्होंने कहा कि "मेरा उद्देश्य मशीन को खत्म करना नहीं है बल्कि उस पर नियंत्रण रखना है|" गांधी जी ग्रामीण उद्योग व कुटीर उद्योगों पर अधिक बल दिया है| देश में निर्मित वस्तुओं के उपयोग पर बल ,स्थानीय उद्द्योगों को प्रोत्साहन आदि स्वदेशी का सिद्धांत के अंतर्गत आते है | देश में बड़े-बड़े कारखाने स्थापित करने से लाखों मजदूर बेरोजगार हो जाते हैं| इस बेरोजगारी को दूर करने के लिए ग्रामीण उद्द्योगों का प्रचार अनिवार्य है|गाँधी चिंतन में खादी – और चरखे की महिमा सर्वोपरि है | और एक महत्त्पूर्ण सिद्धांत है ट्रस्टीशिप| ट्रस्टीशिप में व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ती केलिए संपत्ति का उपयोग करने का अधिकार है | शेष संपत्ति एक ट्रस्टी के रूप में उसका संरक्षण करते हुए समाज के कल्याण केलिए उपयोग करना चाहिए |

गांधी चिंतन के राजनीतिक पक्ष के अंतर्गत सत्याग्रह , स्वराज ,राम राज्य, विकेंद्रीकरण,लोकतंत्र ,असहयोग और सविनय अवज्ञा आदि आते हैं| अहिंसा और नैतिक शक्ति के माध्यम से अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करना ही सत्याग्रह है| यह हथियारों के शक्ति से नहीं बल्कि आत्मा की शक्ति है| स्वराज का अर्थ राजनीतिक स्तर पर विदेशी शासन से मुक्ति प्राप्त करना नहीं है| जिसमें आत्मशासन और नैतिक स्वतंत्रता भी शामिल है |इस स्वराज का समानार्थी है गांधी का रामराज्य| गांधी जी का आदर्श राज्य लोकतांत्रिक मूल्यों एवं सत्ता के विकेंद्रीकरण के साथ जुड़ा हुआ है| इसका उद्देश्य शासन में जनता के अधिक से अधिक भागीदारी है|

संक्षिप्त रूप में कहा जा सकता है कि गाँधी चिंतन केवल एक विचारधारा ही नहीं है ,बल्कि एक संपूर्ण व्यापक जीवन – पद्धति है , जो मानवता को शान्ति ,नैतिकता और समानता की ओर अग्रसर करती है | वर्तमान समय में हमारे देश गरीबी, बेरोजगारी ,भ्रष्टाचार, सांप्रदायिकता ,पर्यावरण असंतुलन जैसे जटिल समस्याओं से जूझ रहे हैं | ये सारे समस्याओं को हलकर समाज में शांति स्थापित करने के लिए गांधी जी के तत्वों व सिद्धांतों को समाज में पुनः प्रतिष्ठित करना चाहिए| दूसरे शब्दों में कहे तो इस दिशा विहीन समाज को उचित मार्गदर्शन करने के लिए गांधी चिंतन को अपनाना बहुत आवश्यक ही है|

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गाँधी विचारधारा का हिंदी साहित्य पर प्रभाव – डॉ अरविंद जोशी -कुंजबिहारीलाल पचौरी एम कॉम जवाहर पुस्तकालय मथुरा |
2. स्वातंत्रोत्तर हिंदी साहित्य में गांधीवाद – डॉ शैल बाला – हिंदी साहित्य भण्डार |
3. हिन्द स्वराज – महात्मा गांधी ,नवजीवन प्रकाशन ,अहमदाबाद |
4. सत्य के प्रयोग – महात्मा गाँधी -नवजीवन प्रकाशन |

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 146-149
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

आस्तिकदर्शनेषु देवतातत्त्वम् उपासना च

अनिल कुमार
शोधार्थी- संस्कृत पाली एवं प्राकृत,
हिमाचलप्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला, काँगड़ा (हि.प्र.)

सारांश-
प्राचीनभारतीयविचारकानाम् अनुसारेण दर्शनं परमतत्त्वस्य प्राप्तेः साधनम् अस्ति| भारतीयदर्शनस्य विभिन्नानां सिद्धान्तानां परमोद्देश्यम् ईश्वरः एव अस्ति| 'इशावास्योपनिषदि' उक्तम् "ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्..." अर्थात् सम्पूर्णसंसारे यत् किमपि अस्ति, सर्वेषु ईश्वरः व्याप्तः अस्ति| वेदेषु अपि भारतीयदर्शनं बीजरूपे वर्णितम् अस्ति| ऋग्वेदस्य पुरुषसूक्ते उक्तम् "ऋचः सामानि जज्ञिरे" अर्थात् विराट्पुरुषात् वेदस्य उत्पतिः अभवत्| श्रीमद्भगवद्गीतायाम् उक्तमस्ति यत् यदा यदा धर्मस्य हानिः भवति अधर्मस्य च वृद्धिः भवति, तदा तदा ईश्वरः अवतरति-

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत|
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्||
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्|
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे||

"आस्तिकदर्शनेषु देवतातत्त्वम् उपासना च" इति अस्ति। अत्र मया भारतीयदर्शनेषु यानि आस्तिकदर्शनानि साङ्ख्यादीनि सन्ति तेषु देवतातत्त्वं कीदृशं भवति, कीदृशश्च उपासनाप्रकारः तत्र प्रतिपादितः अस्ति इत्यादेः विवेचना कृता वर्तते। भारतीयदर्शनस्य विभिन्नानां सिद्धान्तानां परमोद्देश्यम् ईश्वरः एव अस्ति। 'ईशावास्योपनिषदि' उक्तम् "ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंञ्च जगत्यां जगत्" अर्थात् सम्पूर्णसंसारे यत् किमपि अस्ति, सर्वेषु ईश्वरः व्याप्तः अस्ति। वेदेषु अपि भारतीयदर्शनं बीजरूपे वर्णितम् अस्ति। ऋग्वेदस्य पुरुषसूक्ते उक्तम् "ऋचः सामानि जज्ञिरे" अर्थात् विराट्पुरुषात् वेदस्य उत्पत्तिः अभवत्। ऋग्वेदे एकेश्वरवादः, मोक्षः, स्वर्गः इत्यादीनां सिद्धान्तानां निरूपणं कस्मिंश्चित् रूपे अवश्यमेव प्राप्यते। अत्र भारतीयेषु आस्तिकदर्शनेषु वर्णितस्य ईश्वरस्य चर्चा कृता अस्ति।

आस्तिकदर्शनेषु देवतातत्त्वं-

भारतीयदर्शनस्य केन्द्रबिन्दुः मूलतः वेदः एव अस्ति, वेदात् प्रारभ्य ब्राह्मणग्रन्थेभ्यः आरण्यकग्रन्थेभ्यः च प्रवहन्ती इयं दार्शनिकविचारधारा उपनिषत्सु प्रौढतया परिपक्वरूपेण व्यक्ता अभवत्। साङ्ख्यदर्शनं भारतीयदर्शनस्य प्राचीनतम-सम्प्रदायेषु परिगणितमस्ति। साङ्ख्ययोगदर्शनस्य सिद्धान्तानां संकेतः छान्दोग्योपनिषदि, प्रश्नोपनिषदि, कठोपनिषदि, विशेषतया श्वेताश्वतरोपनिषदि च प्राप्यते। महाभारते एवं च गीतायाम् अपि साङ्ख्यीयतत्त्वानां संकेता उपलब्धाः सन्ति।

साङ्ख्यदर्शने देवत्वविषये वर्णितम् अस्ति यत् बुद्धेः एकं सात्त्विकं रूपमस्ति ऐश्वर्यं, साङ्ख्यदर्शने तद्रूपं देवत्वरूपे प्रतिपादितम्। यस्मिन् यावत् ऐश्वर्यमस्ति तस्य पार्श्वे तावत् एव देवत्वमस्ति। ऐश्वर्यस्य अर्थः अस्ति ईश्वरभावः अर्थात् समर्थता। ईश्वरस्य ऐश्वर्यं साम्यातिशयाभ्याम् (अतिशयेन) शून्यमस्ति। एतत् ऐश्वर्यं कस्यापि ऐश्वर्येण अतिक्रान्तं न भवति, यतोहि यत् ऐश्वर्यम् अतिशयेन मुक्तम् अस्ति,तद् एव ईश्वरस्य ऐश्वर्यम् अस्ति। अनेन प्रकारेण यस्मिन् पुरुषे ऐश्वर्यस्य पराकाष्ठा अस्ति, स एव ईश्वरः अस्ति।

योगविद्या भारतवर्षस्य अमूल्यनिधिः अस्ति। एषा विद्या एका एतादृशी विद्या अस्ति यत्र वादविवादस्य किमपि स्थानं न अस्ति। योगविद्या समस्त-मोक्ष-साधनासु उपयुज्यमाना साधनापद्धतिः अस्ति। योगेन एव सृष्ट्याः गूढतमरहस्यानां दर्शनं क्रियते। समाधिना एव तत्त्वदर्शनम्, अतीन्द्रियदर्शनम्, आत्मदर्शनम् क्रियते। मानवजीवनस्य मुख्योद्देश्यमस्ति मोक्षस्य, कैवल्यस्य वा प्राप्तिः।

योगः स्पष्टतया ईश्वरस्य सत्तां स्वीकरोति। पतञ्जलिमुनिना ईश्वरस्य लक्षणम् एवं कृतम्-

“क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः” ईश्वरः नित्य-मुक्तः अस्ति। मुक्तपुरुषः पूर्वकाले बद्धः आसीत्, प्रकृतिलीनपुरुषस्य भविष्ये बन्धस्य सम्भावना भवति, परञ्च ईश्वरः सर्वदा मुक्तः ऐश्वर्ययुक्तः अस्ति। अयं नित्यः एवं दिक्-कालातीतः अस्ति। ईश्वरे ज्ञानस्य एवं च ऐश्वर्यस्य पूर्णता अस्ति। अविद्या इत्यादि पञ्च क्लेशैः, शुभाशुभमिश्रितादिकर्मभिः, तेषां फलानां भोगानां संस्काराणां सम्बन्धेन रहितः यत् विशिष्टचेतनतत्त्वमस्ति स एव ईश्वरः अस्ति। अस्मिन् सूत्रे ईश्वरस्य स्वरूपस्य वर्णनं कृतमस्ति। ईश्वरः अत्र पुरुषविशेषोपाधिना सम्बोधितः कृतः अस्ति। सूत्रकारः कथयति यत् सः पुरुषविशेषः ईश्वरः अस्ति।

साङ्ख्ययोगयोः एकतन्त्रत्वमस्ति। तदुक्तं गीतायां-

“साङ्ख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्।।
यत्साङ्ख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते
एकं साङ्ख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति।।

यद्विषयम् उपासनं कर्त्तव्यं भवति तद्विषयः चित्तसंयमः कर्त्तव्यो भवति। एवं च इदं सिद्धं भवति यत् चित्तसंयमं विना उपासनं न सम्भवति, चित्तवृत्तिनिरोधाय च योगशास्त्रे अभ्यासवैराग्ययोः उपायत्वेन निर्देशः कृतः अस्ति।

आस्तिकदर्शनेषु उपासना-

एवं तत्त्वाभ्यासान्नास्मि न मे नाहमित्यपरिशेषम्।
अविपर्ययाद्विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम्।।

अत्र वाचस्पतिमिश्रः कथयति-

तत्त्वेन विषयेण विषयिज्ञानम् उपलक्षयति। उक्तरूपप्रकारतत्त्वविषयज्ञानाभ्यासात् आदर नैरन्तर्यदीर्घकालसेवितात् सत्त्वपुरुषान्यतासाक्षात्कारि ज्ञानमुत्पद्यते। यद्विषयश्चाभ्यासः तद्विषयकमेव साक्षात्कारम् उपजनयति। तत्त्वविषयश्चाभ्यासः इति तत्त्वसाक्षात्कारं जनयति।

अस्य आशयः अस्ति यत् तत्त्वस्य सत्वपुरुषान्यतारूपस्याभ्यासात् तद्विषयकं विशुद्धं ज्ञानमुत्पद्यते।

वैराग्यं तु अभ्यासे सहायकं भवति। केवलात् वैराग्यात् उपासनायाः पूर्णता न भवति। केवलात् वैराग्यात् तु प्रकृतिलयः भवति। तदुक्तम् साङ्ख्यकारिकायाम्-

वैराग्यात् प्रकृतिलयः संसारो भवति राजसाद् रागात्।
ऐश्वर्यादविघातो विपर्ययात् तद् विपर्यासः।।

अत्र वाचस्पतिमिश्रः विशदयति-

वैराग्यात् प्रकृतिलयः इति। पुरुषतत्त्वानभिज्ञस्य वैराग्यमात्रात् प्रकृतिलयः, प्रकृतिग्रहणेन प्रकृतिमहदहंकारभूतेन्द्रियाणि गृह्यन्ते, तेष्वात्मबुद्ध्योपास्यमानेषु लयः।

पातञ्जलयोगदर्शने साधनपादे स्वाध्यायबलेन इष्टदेवताभिः सम्प्रयोगः उक्तः-

"स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः"

अत्र व्यासभाष्ये उक्तम्-

देवा ऋषयः सिद्धाश्च स्वाध्यायशीलस्य दर्शनं गच्छन्ति, कार्ये चास्य वर्त्तन्त इति।

अस्य आशयः अस्ति यत् जपरूपेण आत्मनिरीक्षणरूपेण वा स्वाध्यायेन उपासकः याम् याम् देवताम् इच्छति तया तया सह व्यवहर्तुं प्रभवति।

योगदर्शने उपासनाविषये उक्तम् अस्ति-

ईश्वरस्य वाचकः प्रणवः वा ओम् शब्दः अस्ति, ईश्वरीय-चैतन्यं ओम् इति उक्त्वा सम्बोध्यते। ओम् इति चैतन्यस्य निकटतमम् अस्ति, यस्य प्रयोगः ईश्वरस्य स्मरणार्थं क्रियते वा कर्त्तुं शक्यते। यदा वयम् ओंकारस्य नादं कुर्मः, तदा प्राणः चैतन्यं च पूर्णं भवति।

ओम् एकः विशेषध्वनिः अस्ति, यः चैतन्यस्य पूर्णतास्मरणार्थं निकटतमः अस्ति। 'अमीन' अपि ओम् इत्यस्य एव विकृतरूपम् अस्ति। ओम् भिन्नेषु रूपेषु सर्वेषु धर्मेषु स्वीक्रियते। बौद्धे, जैने, इस्लामे तथा च ईसाईधर्मे ओम् वा कोऽपि एतादृशो ध्वनिः यः ओम् इत्यस्य निकटतमम् अस्ति, तेषु पवित्रं मन्यते, ओम् तस्य चैतन्यस्य निकटतमम् अस्ति, तथा च सर्वे अन्ये शब्दाः कुत्रचित्-कुत्रचित् परिधेः तस्य समीपे सन्ति।

प्रणवस्य वाच्य ईश्वरः अस्ति। अयं वाच्यवाचकसम्बन्धः अवस्थितः अस्ति। परन्तु ईश्वरस्य संकेतः तस्य अवस्थितविषयस्य एव प्रकाशं करोति। येन प्रकारेण पितुः पुत्रस्य च सम्बन्धः विद्यमानो भवति परञ्च तस्य संकेतेन प्रकाशः क्रियते, अयम् अस्य पिता, अयम् अस्य पुत्रः अस्ति एवं प्रकारेण अन्यान्यसर्गेषु अपि वाच्यवाचकशक्तिसापेक्षः संकेतः क्रियते।

तस्य प्रणवस्य अर्थात् ओम् इत्यस्य जपं, प्रणवशब्दे निहित-अर्थस्य भावनां च कुर्यात्। विभिन्न-मतानामनुसारेण जपस्य अनेकानि प्रकाराणि सन्ति परञ्च मुख्यतः जपः चतुर्षु प्रकारेषु विभज्यते।

अस्मिन् एव क्रमे मीमांसकानां मतानुसारेण शब्दमयी एव देवता अस्ति। वेदविहितं यद् यज्ञादिकर्म अस्ति तद् द्रव्यदेवताभ्यां च संपद्यते। यज्ञेषु प्रयुज्यमानं हविष्यम् एव द्रव्यम् इति तद्यथा-घृतं-दुग्धम् इत्यादि। देवता 'शास्त्रैकसमधिगम्या अस्ति।

पश्चाद्वर्त्तिनो मीमांसकाः ईश्वरं स्वीकृतवन्तः, एतदर्थं मीमांसकाः नास्तिकाः न सन्ति, यतोहि उक्तमस्ति यत् 'नास्तिको वेदनिन्दकः' वेदस्य निन्दकाः एव नास्तिकाः कथ्यन्ते। मीमांसकाः तु वेदस्य प्रामाण्यं स्वीकुर्वन्ति। एतदर्थं मीमांसकाः वेदनिन्दकाः न सन्ति। मीमांसकानाम् अनुसारेण यदि वेदस्य सत्ता न स्वीक्रियते। चेत् देवतायाः वा परमात्मनः प्राप्तिः, तस्य ज्ञानं च असम्भवं भविष्यति। परमात्मनः ज्ञानेन एव वेदस्य सार्थकता अस्ति।

तदनन्तरम् वेदान्तदर्शने देवतातत्त्वविषये प्रतिपादितम् अस्ति यत्, वेदान्तस्य सर्वे सम्प्रदायाः स्वेष्टम् उपनिषदि आधारितं वदन्ति, उपनिषदम् च वेदान्तस्य मूलप्रस्थानं मन्यन्ते। शङ्कराचार्येण युक्तियुक्तरूपेण प्रतिपादितं कृतम् यत् अद्वैतमेव उपनिषदां दर्शनमस्ति। शङ्कराचार्येण एकादशसु उपनिषत्सु भाष्यरचना कृता, वेदान्तस्य अन्यसम्प्रदायाचार्यैः न।

सन्दर्भग्रन्थसूची-

1 श्रीमद्भगवद्गीता

2 सांख्यकारिका ईश्वरकृष्णविरचित कारिका

3 आचार्यविज्ञानभिक्षु, सांख्यप्रवचनभाष्य

4 पातञ्जलयोगदर्शनम्

5 कठोपनिषद्

6 बृहदारण्यकोपनिषद्

7 तत्त्वकौमुदी

8 कृत्यकल्पतरु मोक्षकाण्ड

9 भारतीयदर्शनम्

10 तन्त्रवार्तिक

11 श्लोकवार्तिक

12 वेदान्तदर्शनम्

Mob. No. 8219573053

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 150-154
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

"प्राचीन भारत के विदेशी व्यापार में पूर्वी समुद्री मार्गों एवं मध्य एशियाई संपर्क पथों की निर्णायक भूमिका"

दामिनी कुमारी
शोधार्थी, इतिहास विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उत्तर प्रदेश

सार (Abstract)
प्राचीन भारत का विदेशी व्यापार एक विकसित एवं संगठित आर्थिक तंत्र का प्रतिनिधित्व करता था, जिसमें पूर्वी समुद्री मार्गों तथा मध्य एशियाई संपर्क पथों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इन मार्गों के माध्यम से भारत का संपर्क दक्षिण-पूर्व एशिया, चीन एवं मध्य एशिया के विभिन्न क्षेत्रों से स्थापित हुआ। प्रस्तुत अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि ये व्यापारिक मार्ग केवल वस्तुओं के आदान-प्रदान के साधन नहीं थे, बल्कि इन्होंने सांस्कृतिक, धार्मिक एवं बौद्धिक संपर्क को भी सुदृढ़ किया।
भारत से मसाले, वस्त्र, रत्न एवं धातुओं का निर्यात होता था, जबकि स्वर्ण एवं रेशम जैसी वस्तुओं का आयात किया जाता था। पूर्वी समुद्री मार्गों ने विशेष रूप से सुवर्णभूमि, यवद्वीप एवं चंपा जैसे क्षेत्रों के साथ व्यापार को प्रोत्साहित किया, जबकि मध्य एशियाई मार्गों ने भारत को रेशम मार्ग के माध्यम से चीन एवं अन्य क्षेत्रों से जोड़ा। इस प्रकार, इन मार्गों ने प्राचीन भारत की आर्थिक समृद्धि के साथ-साथ उसके सांस्कृतिक प्रभाव के विस्तार में भी निर्णायक योगदान दिया।

मुख्य शब्द (Keywords)
प्राचीन भारत, विदेशी व्यापार, पूर्वी समुद्री मार्ग, मध्य एशियाई संपर्क पथ, रेशम मार्ग, सांस्कृतिक आदान-प्रदान

प्रस्तावना

प्राचीन भारत में व्यापार और वाणिज्य की स्थिति न केवल सुदृढ़ और संगठित थी, बल्कि यह अत्यंत विकसित, बहुआयामी तथा दूरगामी प्रभावों से युक्त भी थी। उस समय की आर्थिक संरचना केवल कृषि पर आधारित नहीं थी, बल्कि उद्योग, शिल्प, हस्तकला और व्यापार भी इसके महत्वपूर्ण अंग थे। किसी भी व्यापारिक प्रणाली की प्रगति अनेक

आधारभूत तत्वों पर निर्भर करती है, जिनमें उत्पादन स्थलों से उपभोग केंद्रों तक वस्तुओं के सुगम, सुरक्षित और नियमित परिवहन की व्यवस्था अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्राचीन भारत में सुव्यवस्थित एवं विस्तृत व्यापारिक मार्गों का विकास किया गया, जिनमें स्थल मार्ग, नदी मार्ग तथा समुद्री मार्ग तीनों का समावेश था।

विषय-वस्तु विश्लेषण - भारत में जहाँ एक ओर आंतरिक व्यापारिक नेटवर्क अत्यंत विकसित था। जो नगरों, ग्रामों और उत्पादन केंद्रों को जोड़ता था वहीं दूसरी ओर विदेशी व्यापार के लिए भी एक सुदृढ़ और व्यापक मार्ग प्रणाली विद्यमान थी। इन मार्गों के माध्यम से भारत का संपर्क न केवल एशिया के विभिन्न क्षेत्रों से था, बल्कि पश्चिमी विश्व विशेषकर रोम और मिस्र से भी था। यह व्यापार केवल आर्थिक विनिमय तक सीमित नहीं था, बल्कि इसके माध्यम से सांस्कृतिक, धार्मिक, तकनीकी और बौद्धिक आदान-प्रदान भी होता था, जिसने भारत को एक वैश्विक सभ्यता के रूप में स्थापित करने में सहायता की।

व्यापारिक मार्गों को किसी भी राष्ट्र की आर्थिक धमनियों के रूप में देखा जा सकता है, क्योंकि इनके माध्यम से ही उत्पादन और उपभोग के बीच संतुलन स्थापित होता है। प्रारंभिक काल से ही इन मार्गों के निर्माण, संरक्षण और विस्तार पर विशेष ध्यान दिया गया। पाषाण काल में जो प्राकृतिक पथ और ट्रैक प्रचलित थे, वे समय के साथ संगठित व्यापारिक मार्गों में परिवर्तित हो गए। पुरापाषाण काल में ये मार्ग विभिन्न मानव समूहों के मध्य संपर्क स्थापित करने का माध्यम बने, जिससे सामाजिक और आर्थिक संबंधों की नींव पड़ी।

नवपाषाण काल में कृषि, पशुपालन और स्थायी जीवन शैली के विकास के साथ व्यापारिक गतिविधियों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। इसके परिणामस्वरूप इन मार्गों का विस्तार हुआ और वे अधिक व्यवस्थित एवं उपयोगी बन गए।[1] सिंधु सभ्यता के काल में भारत और पश्चिमी एशिया के मध्य जो स्थल मार्ग विकसित हुए, वे आगे चलकर अंतरराष्ट्रीय व्यापार के प्रमुख मार्ग बन गए। इन मार्गों के माध्यम से मेसोपोटामिया, सुमेर और अक्काद जैसी सभ्यताओं के साथ व्यापारिक संपर्क स्थापित हुआ, जिसका प्रमाण पुरातात्विक उत्खननों से प्राप्त मोहरों, मनकों और वस्त्रों से मिलता है।

प्राचीन काल में भारत का सुदूर पूर्व के देशों के साथ समुद्री मार्गों के माध्यम से अत्यंत घनिष्ठ और सक्रिय संबंध स्थापित था। इन संबंधों के पीछे केवल आर्थिक हित ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और धार्मिक विस्तार की भावना भी निहित थी। भारतीय व्यापारी, ब्राह्मण तथा बौद्ध भिक्षु इन मार्गों के माध्यम से दक्षिण-पूर्व एशिया के विभिन्न क्षेत्रों जैसे जावा, सुमात्रा, कंबोडिया, चंपा और बाली तक पहुँचे और वहाँ भारतीय संस्कृति, धर्म और भाषा का प्रसार किया। सुदूर पूर्व की यात्रा का एक प्रमुख कारण स्वर्ण की प्राप्ति भी था, क्योंकि उस समय स्वर्ण को आर्थिक स्थिरता, वैभव और राजनीतिक शक्ति का प्रतीक माना जाता था। भारत के पूर्व और दक्षिण-पूर्व में स्थित इन क्षेत्रों को 'सुवर्णभूमि' कहा जाता था, जो अपने प्राकृतिक संसाधनों विशेषकर स्वर्ण, मसाले, काष्ठ, सुगंधित द्रव्य और बहुमूल्य वन उत्पादों के लिए प्रसिद्ध थे। इन्हें भारतीय व्यापारियों द्वारा 'एलडोराडो' अर्थात् स्वर्ण की भूमि के रूप में भी जाना जाता था।[2]

स्वर्ण प्राचीन विश्व की अर्थव्यवस्था में अत्यंत महत्वपूर्ण धातु थी और इसकी मांग निरंतर बनी रहती थी। भारत लंबे समय तक स्वर्ण की आपूर्ति के लिए बैक्टीरिया के व्यापारियों पर निर्भर रहा, जो मध्य एशिया और साइबेरिया से स्वर्ण लाकर भारतीय बाजारों में उपलब्ध कराते थे। किंतु प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में मध्य एशिया में राजनीतिक अस्थिरता, यायावर (खानाबदोश) जनजातियों के आक्रमण और मार्गों की असुरक्षा के कारण यह आपूर्ति बाधित हो गई।

इसके परिणामस्वरूप भारत को वैकल्पिक स्रोतों की खोज करनी पड़ी। दक्षिण भारत में रोमन साम्राज्य के साथ व्यापार के माध्यम से स्वर्ण की आपूर्ति होती थी, क्योंकि भारत द्वारा निर्यात की जाने वाली वस्तुएँ जैसे काली मिर्च, दालचीनी, इलायची, रेशमी वस्त्र, सूती कपड़े, हाथीदांत, मोती और बहुमूल्य रत्न रोम में अत्यंत लोकप्रिय थीं। इसके बदले में भारत को स्वर्ण मुद्रा प्राप्त होती थी। किंतु रोमन सम्राट वेस्पास्यिन (67-79 ई.) द्वारा इस प्रवाह को नियंत्रित कर दिया गया, जिससे भारत को पुनः नए स्रोतों की तलाश करनी पड़ी।[3]

प्लिनी की कृति "पेरिप्लस ऑफ द एरिथ्रियन सी" में इस व्यापार का अत्यंत महत्वपूर्ण और विस्तृत विवरण मिलता है। इसमें उल्लेख किया गया है कि भारत से रोम को विलासिता की वस्तुएँ बड़े पैमाने पर निर्यात की जाती थीं, जिससे रोमन अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता था। प्लिनी ने यह भी कहा कि भारत के साथ व्यापार के कारण रोम से अत्यधिक मात्रा में स्वर्ण और रजत बाहर जा रहा था। इस काल में भारत एक मध्यस्थ व्यापारिक केंद्र के रूप में भी कार्य करता था, जहाँ से चीन का रेशम, दक्षिण-पूर्व एशिया के मसाले और अन्य वस्तुएँ रोमन बाजारों तक पहुँचाई जाती थीं। इस प्रकार भारत न केवल उत्पादक, बल्कि एक महत्वपूर्ण ट्रांजिट (Transit) व्यापारिक शक्ति भी था।

जब स्वर्ण की उपलब्धता में कमी आने लगी, तब भारतीय व्यापारियों ने सुदूर पूर्व के क्षेत्रों की ओर अपना ध्यान केंद्रित किया। जातक कथाओं में अनेक उदाहरण मिलते हैं, जहाँ भारतीय व्यापारी समुद्री यात्राएँ करते हुए सुवर्णभूमि की ओर जाते हुए वर्णित हैं। ये यात्राएँ केवल आर्थिक लाभ तक सीमित नहीं थीं, बल्कि इनके माध्यम से सांस्कृतिक संपर्क, धार्मिक प्रचार और सामाजिक आदान-प्रदान भी हुआ।[4]

भारत और सुदूर पूर्व के मध्य अनेक समुद्री मार्ग प्रचलित थे, जिनमें भरूकच्छ (भड़ौच) से आरंभ होकर सुवर्णभूमि और यवद्वीप तक जाने वाला मार्ग विशेष रूप से महत्वपूर्ण था। मसुलीपट्टनम से प्रारंभ होकर बंगाल की खाड़ी के माध्यम से पूर्वी प्रायद्वीप तक पहुँचने वाला मार्ग भी अत्यंत उपयोगी था। इन मार्गों के माध्यम से व्यापारी जावा, सुमात्रा, चम्पा और कंबोडिया जैसे क्षेत्रों तक पहुँचते थे।

समुद्री यात्राओं के लिए विशेष प्रकार के जहाजों का निर्माण किया गया था, जिन्हें 'कोलंडिया' कहा जाता था। ये जहाज लंबी दूरी की यात्राओं के लिए उपयुक्त थे और ऊँची समुद्री लहरों का सामना करने में सक्षम थे। टॉलेमी द्वारा वर्णित कलिंग का समुद्री मार्ग भी इस संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण था।[5]

ताम्रलिप्ति बंदरगाह प्राचीन भारत का एक प्रमुख और अत्यंत व्यस्त व्यापारिक केंद्र था, जहाँ से पूर्वी एशिया के लिए जहाज प्रस्थान करते थे। यह बंदरगाह गंगा के मुहाने पर स्थित होने के कारण उत्तर भारत के प्रमुख नगरों जैसे पाटलिपुत्र, वाराणसी और कौशाम्बी को समुद्री व्यापार से जोड़ता था। यहाँ से सुवर्णभूमि, यवद्वीप और कंबोज तक व्यापारिक संपर्क स्थापित थे।[6]

मलय प्रायद्वीप भारत और चीन के मध्य एक महत्वपूर्ण संपर्क बिंदु था। तक्कोल बंदरगाह इस क्षेत्र का प्रमुख केंद्र था, जहाँ से व्यापारी स्थल और समुद्री दोनों मार्गों का उपयोग कर आगे बढ़ते थे।[7]

यवद्वीप, जिसमें जावा और सुमात्रा सम्मिलित थे, स्वर्ण, मसालों और वन उत्पादों के लिए प्रसिद्ध था। भारतीयों ने इन क्षेत्रों में न केवल व्यापार किया, बल्कि सांस्कृतिक और राजनीतिक प्रभाव भी स्थापित किया, जिससे भारतीय संस्कृति का व्यापक प्रसार हुआ।[8]

भारतीय व्यापारियों ने चीन के साथ प्रत्यक्ष व्यापारिक संबंध स्थापित किए, जिससे रेशम मार्ग (Silk Route) के साथ-साथ समुद्री मार्ग भी सक्रिय हुआ। स्याम और चंपा जैसे क्षेत्रों में भारतीय प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जहाँ भारतीय धर्म, लिपि और स्थापत्य शैली का प्रभाव आज भी देखा जा सकता है।[9]

चीन के साथ संपर्क के लिए समुद्री और स्थल दोनों प्रकार के मार्गों का उपयोग किया जाता था। दक्षिणी चीन तक समुद्री मार्गों से पहुँचा जाता था, जबकि उत्तरी चीन की यात्रा स्थल मार्ग से की जाती थी। कैंटन (कैटिगारा) जैसे नगर इस व्यापार के प्रमुख केंद्र थे, जहाँ विभिन्न देशों के व्यापारी एकत्रित होते थे।[10]

मध्य एशिया के मार्गों के माध्यम से भारत का संपर्क बैक्टीरिया, काशगर, खोतान और ताशकुरगन जैसे क्षेत्रों से था। ये मार्ग प्रसिद्ध रेशम मार्ग का हिस्सा थे, जो एशिया और यूरोप को जोड़ने वाला एक प्रमुख व्यापारिक नेटवर्क था।[11]

काशगर, खोतान और कुची जैसे नगर न केवल व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण थे, बल्कि ये सांस्कृतिक और धार्मिक आदान-प्रदान के भी प्रमुख केंद्र थे। यहाँ बौद्ध धर्म का व्यापक प्रसार हुआ, जो व्यापारिक संपर्कों और यात्राओं के कारण संभव हुआ।[12]

दूनहुआंग जैसे स्थान कारवां सराय के रूप में विकसित हुए, जहाँ व्यापारी विश्राम करते थे और अपने माल का विनिमय करते थे। यह स्थान सांस्कृतिक आदान-प्रदान का भी केंद्र बन गया, जहाँ भारतीय व्यापारियों और भिक्षुओं की स्थायी बस्तियाँ स्थापित हो गई थीं।[13]

निष्कर्ष

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत के विदेशी व्यापार में पूर्वी समुद्री मार्गों एवं मध्य एशियाई संपर्क पथों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण, बहुआयामी और दूरगामी प्रभावों से युक्त थी। इन मार्गों ने न केवल आर्थिक समृद्धि को बढ़ावा दिया, बल्कि भारत को एक वैश्विक व्यापारिक शक्ति के रूप में स्थापित करने में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया।

इन मार्गों के माध्यम से भारतीय वस्त्र, मसाले, धातुएँ, रत्न और शिल्प उत्पाद विश्व के विभिन्न भागों तक पहुँचे, वहीं भारत ने भी विदेशी वस्तुओं जैसे रेशम, घोड़े और बहुमूल्य धातुएँ का आयात किया। इसके अतिरिक्त, इन मार्गों के माध्यम से बौद्ध धर्म, हिंदू धर्म, भारतीय कला, स्थापत्य और भाषा का भी व्यापक प्रसार हुआ, जिसने दक्षिण-पूर्व एशिया और मध्य एशिया की सभ्यताओं को गहराई से प्रभावित किया।

इस प्रकार प्राचीन भारत केवल एक आर्थिक शक्ति ही नहीं था, बल्कि एक सांस्कृतिक सेतु के रूप में भी उभरा, जिसने विभिन्न सभ्यताओं को जोड़ने का कार्य किया। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि पूर्वी समुद्री और मध्य एशियाई मार्गों ने ही प्राचीन भारत को वैश्विक व्यापार, संस्कृति और सभ्यता के केंद्र के रूप में स्थापित करने में निर्णायक भूमिका निभाई।

संदर्भ ग्रंथ

1. व्हीलर, आर. ई. एम. अर्ली इंडिया एवं पाकिस्तान, बॉम्बे, 1959 पृ. 93
2. मजूमदार, आर. सी., चंपा, बृहत्तर भारत परिषद् ग्रंथावली 1927 पृ 18 - 23
3. वारमिंगटन, ई. एच. कॉमर्स बिटवीन रोमन एम्पायर एंड इंडिया पृ. 213
4. जातक खंड - III पृष्ठ 188, खंड - VI पृष्ठ 30 - 34
5. श्रीवास्तव, बलराम, ट्रेड एंड कॉमर्स इन एंशिएंट इंडिया, पृ. 109
6. मजूमदार, आर. सी., हिंदू कॉलोनिज इन दि फार ईस्ट पृ. 16
7. मजूमदार, आर. सी. हिंदू कॉलोनिज इन दि फार ईस्ट पृ. 16 - 17
8. वारमिंगटन, ई. एच. कॉमर्स बिटवीन रोमन एम्पायर एंड इंडिया पृ. 128

9. मजूमदार, आर. सी. हिंदू कॉलोनिज इन दि फार ईस्ट पृ. 154 - 155
10. मजूमदार, आर. सी., चंपा, पृ. 18
11. बगची, पी. सी., इंडिया एंड चाइना पृ. 17
12. स्टीन, ए. एंशयंट खोतान, खण् - 1 पृ. 48 - 56
13. श्रीवास्तव, बलराम, ट्रेड एंड कॉमर्स इन एंशयंट इंडिया पृ. 117

Email Id. damini165@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com **Bohal Shodh Manjusha** **ISSN: 2395-7115**

Impact Factor: 8.642 **April 2026** **Page No. : 155-158**

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

The Ho Adivasi Uprising of 1837: Poto Ho Struggle against Colonial Rule

Vikram Rajat Dungdung
Assistant Professor,
St. Xavier's College (Autonomous) Mahuadanr, Latehar, Jharkhand

Abstract
We must always remember our freedom, an achievement marked by the immense suffering and sacrifices of Indian revolutionaries. Significant events, such as the first war of independence, the civil disobedience movement, and the Jallianwala Bagh massacre, exemplify the brutality faced and the resilience exhibited by those fighting for independence. However, modern life often causes society to overlook these vital historical narratives, leaving current generations unfamiliar with many unsung heroes of our freedom struggle. This article highlights the story of Shaheed Poto Ho, a martyr from Jharkhand, who exemplified bravery and determination against the British forces. His resistance, which took place in the Kolhan region between 1836 and 1837, represents the struggle of countless individuals who sacrificed their lives for the nation's liberation. Poto Ho's legacy, although obscured in history, showcases his critical role in the anti-British resistance and his unwavering dedication to freeing the Kolhan area from British tyranny. This article attempts to capture Poto's resistance against British rule in the Kolhan region (present-day Jharkhand).
Keywords: Kolhan region, Poto, Mankis, Martyr, Wilkinson, Singhbhum, Rebellion, Traitors

Introduction

According to Munda traditions, after entering Chota Nagpur, they settled in the northwestern plateau. When the Oraons entered Nagpur, the Mundas abandoned their homeland for the Oraons and settled in the plains below the ghats in the east-south direction. Some of these Mundas spread southward, settling in the mountains and forests near present-day Singhbhum, Jharkhand. They were identified by their ancient tribal name, Ho. Due to their fighting nature, they became known as the "Fighting Ho." Their country was named Kolhan after them. Kolhan was divided into peer. A peer comprises 12-15 Munda villages headed by a Manki. Kolhan's main characteristic is that it is composed of undulating hills and ghats. The Ho protected themselves by using these hills and forests as cover, and the British army passing through the valleys faced a barrage of poisoned arrows. The natural geographical structure of Kolhan was the primary reason

for the Ho's invincibility. However, their courage and bravery were readily acknowledged by local kings and British officials. Martyr Poto Sardar was born in the village of Rajabasa, located within the Jagannathpur block of the Kolhan region. Like the people of his own Ho tribe, he was a warrior and a freedom-loving individual. He was a brave leader of the Ho tribe, which had its own traditional Munda-Manki governance system that the British tried to displace.

Conflict

The Ho tribe's members are naturally inclined toward liberty. They continued to have their own independent Munda-Manki government around 1800, complete with their own panchayats and laws. However, in an attempt to force their own British legal system on the tribe, the British violently invaded this system. The Ho tribespeople in the Kolhan region's 22 administrative divisions were incensed by this provocation, which led them to start the Kol movement against the British. The Kol movement, which was sparked by British atrocities and meddling in Munda-Manki governance, swept through the entire Kolhan region and severely damaged the British. The British founded the S.W.F.A. as payback for these defeats. In retaliation for these losses, the British established the S.W.F.A. (South-West Frontier Agency) and appointed Captain Thomas Wilkinson as its A.G.G.—the Agent to the Governor-General. Wilkinson was a notoriously brutal and ruthless British officer. Immediately upon assuming the office of the agent to the governor general, his first act was to set fire to the homes of the revolutionaries involved in the Kol movement. Furthermore, he imprisoned the captured revolutionaries in Kishanpur Jail and subjected them to severe torture. Several revolutionaries tried to flee the prison, but they were unsuccessful.

The Rise of Poto Sardar

Wilkinson brutality ultimately resulted in the deaths of those revolutionaries while still in custody. The death of those revolutionaries ignited a fierce desire for vengeance among the people of the Ho tribe. Consequently, to put an end to the British atrocities, a brave son of the Ho tribe—Poto Ho—rose up and took up arms. He was influenced by the echoes of the Kol Rebellion (1831-32). Poto Ho made it the primary mission of his life to drive the British out of his homeland. However, he understood full well that if he were to dismantle the might of the British empire, he would require a formidable revolutionary force.

Consequently, he began touring the entire Kolhan region, rallying all the Ho tribes to join the movement. He adopted the arrow as his emblem; travelling from village to village across the Ho tribal lands, he garnered the support of the people and successfully united them all under the banner of the resistance. Thomas Wilkinson aimed to uncover the root cause of the Kol rebellion and sought to impose British rule and educate the Kolhan region. Despite the Wilkinson siege from November 1836 to February 1837 resulting in most Mankis accepting British authority, but the Ho tribe, which had always lived an independent life, was experiencing an unbearable suffocation. Ho tribe felt oppressed and formed a martyr group led by Poto of Rajabasa. This group, advocating for freedom, galvanized support from around 22 villages, evolving the rebellion into a widespread movement across Kolhan and extending to the Saraikela and Keonjhar districts of Orissa. A secret base was established. In a secret meeting here, chaired by Poto, the decision was made:

i. To take revenge on the British for those whose relatives were killed or whose houses were burnt due to brutality by the British in the kolhan region.
ii. To capture the strategically important serengsia valley.
iii. To drive out all the British and other people from the land of kolhan, and
iv. To invite other people of this area to join the struggle and drive away the foreign enemies by sending arrows to other villages.

The Battle of Serengsia Valley

The Singhbhum region fell within the boundaries of the Southwest Frontier Agency. Most administrative problems in Singhbhum were related to Kolhan. Upon receiving information about the Poto rebellion, it was taken lightly, and an arrest order was issued, but Poto Sardar and his associates continued with their activities. Local officials believed that Poto had now become a symbol of Kolhan's independence.

On Nov 12, 1837, Thomas Wilkinson, after consultation with the Chaibasa and local authorities, decided to send a force under the command of Captain Armstrong to suppress the rebels. On Nov 17, 1837, Captain Armstrong arrived with 400 soldiers and two cannons to establish British rule in that region. Poto Ho and his warriors used guerrilla tactics in the Serengsia Valley, killing many British soldiers and forcing Armstrong to retreat. Wilkinson felt it necessary to increase his military strength. He demanded immediate reinforcements from the landlords of Kedar and Thakur of Kharsawa. The soldiers captured Poto Sardar's father. The increasing brutality of the British army had now exceeded the limits of tolerance. Finally, the freedom fighters decided to confront the British army directly and challenged the enemy between the villages of Jaipur and Rujya. But before the freedom fighters could reach Rujya village, they were surrounded by the British troops. It was a matter of debate as to which traitor had informed them of the revolutionaries' location. This information was passed to the British. Based on the intelligence, Lieutenant Tickell led a detachment of troops and began to surround the rebels from the direction of Jaipur village, while Captain Armstrong and Lieutenant Simpson, taking three hundred soldiers from the Ramgarh battalion, began to surround the rebels from the direction of Rudya village. Although some fighters were captured, others remained.

Wilkinson perceived his success as only partial, asserting that Singhbhum would remain unsettled until Poto Sardar and other leaders were captured. He requested the Fort William government's authority to prosecute and execute rebels as necessary, which was granted. Wilkinson employed a mix of strictness and gentleness in his approach, engaging with some rebels to convert them into loyal supporters of the company. Some, motivated by greed, disclosed the locations of Poto and assisted in the capture of other rebels, illustrating the notion that British rule in India was established on betrayal and mutual hatred.

An intensive raid at locations designated by traitors led to the arrest of prominent Singhbhum revolutionaries of 1837. On Dec 8, 1837, Poto and his associate were also captured by the British. These freedom fighters were tried in court in Jagannathpur. The trail lasted until Dec 25. The verdict was delivered on Dec 31, 1837. Poto and four other fighters were sentenced to death, while the remaining fighters were sentenced to various years of imprisonment. On Jan 1, 1838, Poto, along with other fighters, was hanged in front of a huge crowd in Jagannathpur.

Conclusion

Poto is recognized as the first martyr of Chota Nagpur, marking a pivotal event as he was executed prior to any freedom fighters from the region. Unlike Tilka Majhi, who hailed from outside Chotanagpur, Poto's sacrifice stood out, leading him to be the first to confront the execution noose courageously. His martyrdom, in conjunction with the notable death of Veer Budhu Bhagat—who was shot twice and subsequently mutilated in battle—highlighted the extreme sacrifices made during the struggle for freedom in Chotanagpur. After Budhu Bhagat, Poto's execution led to significant changes, including the implementation of the Wilkinson rule, which

granted autonomy to the tribal Munda-Manki governance system. Poto's contributions have cemented him as an essential figure in the freedom struggle, aiding the Ho community in their ongoing search for identity and heroes comparable to other regional legends like Baba Tilka Manjhi, Sidu-Kanhu of the Santals, and Birsa Munda of the Mundas. His legacy has been embraced by the people of Kolhan, who now regard him as a martyr and a protective icon for their community. In contemporary times, Poto is often remembered as a forgotten hero, with various government initiatives and awards commemorating his memory and sacrifices for the anticolonial effort.

References

1. Nath, Sanjay, and Dr. Rinu Kumari. "Remembering Poto Ho: The Leader of Adivasi Anti-British Resistance in Kolhan (1836-37)." Journal of Adivasi and Indigenous Studies, vol. IX, no. No. 1, 2019, pp. 1–25.
2. Areeparampil, Mathew. *Struggle for Swaraj: A History of Adivasi Movements in Jharkhand (From the Earliest Times to the Present Day)*. Tribal Training and Research Centre, 2002.
3. Diwakar Minz. *The Martyrs of Jharkhand*. 2020, p.66-69
4. Kumar, Purushottam. *Mutinies and Rebellions in Chotanagpur, 1831-1857*. 1991, p.89
5. Jha, J.C. 1987. The Tribal Revolt of Chotanagpur (1831-32). Patna: K.P. Jayaswal Research Institute. P.249
6. Singh, C.P., 'The Martyrs of Singhbhum', The Journal of the Bihar Research Society, LVII, January-December, 1971, 149-153.
7. Streumer, Paul. 2016. A Land of their Own: Samuel Richard Tickell and the Formation of the Autonomous Ho Country in Jharkhand 1818-1842. Wakkaman. Houten. The Netherlands.
8. Sen, Asoka Kumar. 2011. Representing Tribe: The Ho of Singhbhum Under Colonial Rule. Concept Publishing Company Pvt. Ltd., New Delhi.

Mobile No – 9199670752
Email id – vikramr30.dungdung@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com **Bohal Shodh Manjusha** **ISSN: 2395-7115**
Impact Factor: 8.642 **April 2026** **Page No. : 159-161**
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

वीरेन्द्र जैन के उपन्यासों में प्रमुख पात्र

जोषी सुनिलकुमार भावेशभाई
पीएच.डी. शोधार्थी,
संस्था का नाम- गोविन्द गुरु विश्वविद्यालय, गोधरा (गुजरात)

उपन्यासों में पात्र योजना और चरित्र चित्रण मूल तत्व है। कथावस्तु रोचक तब बनती है, जब उसके पात्रों में विशिष्टता, आकषर्कता और विश्वसनीयता हो। कथावस्तु को पात्रों से ही गति प्रदान होती है। उपन्यास के पात्र सजीव और संवेदित हो।

"ए.एम. फार्स्टर के मत में पात्रों की अवधारणा इस विधि से हो कि उन चरित्रों का उद्घाटन भी इस प्रकार होता रहे और उनमें तथा उनके माध्यम से प्रस्तुत होने वाली कथा के प्रवाह में कुतूहल भी बना रहे।"(1)

'डूब' उपन्यास का प्रधान पात्र इमरित सिंह उर्फ माते गाँव का मुखिया होता है। सब गाँव वाले इन्हें ढेर सारा मान-सम्मान देते हैं। माते भले मानस का निस्वार्थी व्यक्तित्व है, वह गाँव की उन्नति के लिए सदा प्रयत्नवान रहता है। गाँव वाले माते से आदरपूर्ण भाव रखते है। डॉ. गिरिराज किशोर के अनुसार- "कई बार माते में गाँधीवाद के भी दर्शन होते हैं और कई बार परिवार यानी गाँव के उस वयोवृद्ध के भी जो अपने परिवार यानी टूटते गाँव के ढाँचे को लेकर चिंतित है।"(2)

माते की बोलने की शक्ति में अनोखापन दिखाई देता है। वह किसी भी काम को करने, बोलने या निर्णय लेने से पहले अच्छी तरह विचार करता है। वह हमेशा सच्चाई का साथ देता है तथा वह किसी भी चुनौती या बाधा को पहचानने तथा उसके मूल कारण को समझकर अच्छे से समाधान को ढूंढ लेता है। रामदुलारे की परवरिश को लेकर किया गया निराकरण या दीपू और सावित्री के बारे में लिया गया फैसला।

उपन्यास का प्रारंभ प्रधान पात्र माते से होता है। माते के पात्र की विशेषताएँ सभी अंकों में देखने मिलती है। बाँध निर्माण समस्या या डूब विस्तार की समस्या हो, लेकिन माते सब गाँव वालों का अच्छा ही सोचता है। उनके द्वारा बोला गया वाक्य जो ब्रह्म वाक्य हो जाता है। माते का पात्र इस माटी से पैदा हुआ पात्र है, यह पात्र स्वाभाविक रूप से परिपूर्ण है। यह पात्र अनपढ़ होते हुए भी धोखेबाज प्रशासन को भली-भाँति जानता और समझता है। लेखक ने माते के पात्र को इस उपन्यास इस कदर से जोड़कर रखा हुआ है कि इसके विपरीत यह कहना सही होगा कि माते अपने आप में डूब है, जिनके अंदर पानी ही पानी हो। माते का पात्र एक महान व्यक्तित्व है। माते ने खुद के पुत्र का

ब्याह एक ऐसी कन्या से करवाया जिस पर जबरदस्ती हुई थी और उसको एक बच्चा भी हुआ था। भले ही आगे जाकर बालक रामदुलारे सामान्य नहीं अपितु असाधारण बना।

उपन्यासकार ने माते के पात्र को सच्चा, संघर्षशील और प्रामाणिक दिखाया है, इसके साथ ही इस पात्र को काफी समझदार चित्रित किया है। माते गाँव की मिट्टी से पैदा हुआ वह वट वृक्ष है, जो सभी को छाँव देता है। वह सब के अधिकारों के लिए आवाज उठाता है और समर्थन करता है। गाँव छोड़कर चले जाने वालों के लिए चिंतातुर है, सभी ठहर जाएँ इसके लिए प्रयत्न भी करता है। गाँव वाले उसकी सब बातों को मान लेते है, क्योंकि माते सब की भलाई ही सोचेगा, यह सबको यकीन है। 'डूब' उपन्यास में माते का चरित्र अथ से इति तक देखने मिलता है। अंत में यह कहना उचित ही होगा कि माते के जैसा चरित्र बहुत ही सीमित मात्रा में दिखाई पड़ते है।

'पार' उपन्यास को जैन जी ने प्रमुख रूप से आदिवासी समुदाय पर लिखा है, जिसमें आदिवासी संस्कृति को दिखाया गया है। ये आदिवासी खुद को राउत मानते है तथा सभ्यता से दूर रहकर खुद को इंसान नही मानते। वनों को काटने पर उनके जीवन यापन के लिए आवश्यक संसाधन धीरे धीरे समाप्त होते जा रहे है, अब आदिवासियों को वन से सभ्य समाज के साथ रहने की जरूरत पड़ी।

'पार' उपन्यास में यथार्थवादी शैली में चित्रित किए गए आदिवासी समाज के पात्र कम पढें, छल कपट से मुक्त और निराश्रय है। नवीन विचारों से दूर, पहाड़ों से निकलती बेतवा नदी के तट पर रह रहे थे। इस उपन्यास का प्रमुख पात्र मुखिया निस्वार्थी है। लेखक ने सम्पूर्ण उपन्यास में इन्हें 'मुखिया' कहकर संबोधन किया है। बस्ती में मुखिया प्रधान होता है, उसकी बात पूरा गाँव मानता है। मुखिया की बात का अनादर करना मानो गाँव से निकाल देना होता है। बस्ती की फिक्र के साथ गाँव का भला हो यह मुखिया का कर्तव्य होता है। मुखिया शादी नहीं करता क्योंकि शादी के बाद बच्चे होने पर वह परिवार के बारे में सोचता है। गाँव के हित में वह कम सोचने लगता है, इसलिए उसे ब्याह करना मना है। बुढ्ढा होने पर वह अपने उत्तरदायित्व यानी गुनिया का चयन कर लेता है।

'गुनिया' का अर्थ है- मुखिया के बाद का होने वाला मुखिया। मुखिया को ऐसी औरत का चयन करना पड़ता है, जो अपने पुत्र को गुनिया बनाने के बाद दूसरी संतान पैदा ना करें। अब उसे दूसरी बार माता बनने का अवसर नहीं मिलता। उसको अपने पति तक को छोड़ना पड़ता है, तब जाकर उसे गुनिया (अगला मुखिया) के माता का दर्जा मिलता है। गुनिया को ज्ञान ही नहीं होता है, कि उसे करना क्या होता है? मुखिया को देखकर तो वह सब कुछ सीखता है और गुनिया से मुखिया बनता है।

मुखिया बड़ा ही चतुर था। घास के मैदान डूब के क्षेत्र में आने पर लडैई गाँव के पशुधन खेरे के सीमा में आते है। तब उसे वह भगाता नहीं, बल्कि एक रास्ता निकालते वह बोलता है कि "लडैई गाँव के मवेशियों को छरकाओं। हैरान करो। ऐसे छरकाओं की कूत न परे। इतना हैरान करो कि वे हमारे खेरे की गैल धरे से भय खाने लगे।"(3)

मुखिया देखता है, कि पास की बस्ती उजड़ गई है। बेतवा नदी पर बाँध बनता देख मुखिया गुनिया को कहता है- "मुइया जो कहती आई थी कि मुसर खेरे में बाढ़ आ गई थी बिन बरसात.... वह बाढ़ नहीं थी।"(4) आगे जाकर गुनिया भी बड़ा बुद्धिशाली होता है। वह अपने खेरे को आपत्तियों से बचाने के लिए सभी तरह से हल निकाल कर सुरक्षित रखता है।

'पंचनामा' इस उपन्यास में अनाथालय के परिवेश को दिखाया गया है। इस उपन्यास ने समाज के सामने एक घिनौनी सच्चाई रखी है। साथ ही इस उपन्यास में जैनजी ने श्रेष्ठ पात्रालेखन किया है। ऐसा प्रतीत होता है

कि सभी पात्र हमारे निकट ही घूम रहे हो। उपन्यासकार ने इस उपन्यास में भी स्त्री पात्रों को कम और पुरुष पात्रों को अधिक स्थान दिया है। पात्रों को अभिनय के लिए इस उपन्यास में आवश्यकतानुसार ही स्थान मिला है तथा अत्यधिकता को कहीं पर भी स्थान नहीं दिया गया है। अकलंक (पंचम) का पात्र ग्राम जीवन के संयुक्त परिवार से शुरू होता है। समूह में रहने वाला परिवार आपस के लड़ाई झगड़े से किस तरह टूटता है, जिस विषय पर चर्चा की गई है।

इस उपन्यास का प्रमुख पात्र आनंद उर्फ पंचम उर्फ़ अकलंक है। इस उपन्यास से ऐसा प्रतीत होता है, कि लेखक अपने बचपन की बातें बता रहे हो। आनंद का परिवार था, लेकिन वह अनाथों सा जीवन जी रहा था। पहले आनंद का परिवार समृद्ध था, लेकिन आपस के लड़ाई झगड़ों के कारण दरिद्र, निर्धन और निराश्रय हो गया था। आनंद के पिता की खराब परिस्थिति के चलते आनंद का पालन-पोषण और पढ़ाना मुमकिन न था। आनंद के मामा ने आनंद को अनाथालय यह भेज दिया। तब से वह आनंद से 'अकलंक' हो गया।

अकलंक को अनाथालय में बहुत मुश्केलियों का सामना करना पड़ा। प्रथम कठिनाई अकलंक को हिंदी बोलने में आ रही थी। पुस्तकीय हिंदी बोलने का मुहावरा न हो पाने से वह ज्यादातर मौन रहता था, लेकिन उसे अपने वजूद के लिए आवाज उठाना जरुर बन पड़ा था। उसे
अनाथालय की समग्र व्यवस्था भ्रष्ट दिखाई पड़ती है। पहले तो वह सब सहन करता है, लेकिन बाद में वह खुल कर विरोध भी करता है। अनाथालय में रेणुका दीदी द्वारा आयोजित बाल मंच में वह इस बात का खुलकर विरोध करता है। जयपुर के अनाथालय में उसकी विनय से भेट होती है, तब अकलंक उससे बहुत कुछ बातें सीखता है।

अकलंक के पात्र में सत्यता, धीरज, निष्ठा, भरोसा और प्रबल इच्छा होती है। वह इस उपन्यास का साहसिक युवा चेहरा है, परन्तु किस्मत का मारा जब अपने गाँव लौटकर पारिवारिक स्नेह पाने हेतु आता है, तो वहाँ पर उसे सिर्फ तिरस्कार ही मिलता है। यही से अकलंक पूरी तरह से अनाथ बन जाता है। बाद में अकलंक सभी प्रकार के विद्रोह जैसे कि गौ हत्या विरोध, भाषा विरोध करता है। अकलंक का कथन है- "हमें सहानुभूति नहीं चाहिए। उसका तो हमारे पास इतना भंडार है कि अपच होने लगी है।"(5)

अकलंक समाज में काँटेदार झाड़ियों को दूर कर, सुधार लेकर आना चाहता है। अकलंक को लेखन कार्य में बालपन से रुचि देखने मिलती है। उसे पुस्तकों से अति लगाव था। नई पुस्तके पढ़कर उस पर अपने विचार प्रकट करता है। अकलंक थोड़े समय इंद्रदेव शास्त्री के सानिध्य में कुछ सीख कर क्रांतिकारी विचारधारा से समाज और शासन व्यवस्था में आमूल बदलाव लाना चाहता है और इस दौरान अकलंक को अपनी जीवनसंगिनी जयपुर के एक अनाथालय में मिलती है, जो समाज सुधारवादी विचारधारा से प्रेरित थी। सच में इस उपन्यास में अकलंक का पात्र विशेष बन जाता है।

सन्दर्भ सूचि-

1: Aspect of novel, E.M.Forster, ३०.

2: दो संस्कृतियों के बीच का अंतराल, गिरिराज किशोर, ८७.

3: पार, वीरेन्द्र जैन, ३६.

4: पार, वीरेन्द्र जैन, ३५.

5: पंचनामा, वीरेन्द्र जैन, पृ. २६.

डाक पता- अक्ष पार्क, सरकारी आयुर्वेदिक औषधालय के पास,आनंदनगर रोड, नखत्राणा-३७०६१५, तहसील-नखत्राणा, जिला- कच्छ (गुजरात) मो-८१४१८१८१२३

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 162-165
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

दूधनाथ सिंह के उपन्यासों में विसंगति और यथार्थ का विश्लेषण

डॉ. मनोज कुमार द्विवेदी
(अतिथि व्याख्याता हिन्दी)
शासकीय राजमोहिनी देवी कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय अम्बिकापुर, जिला– सरगुजा (छ.ग.)

प्रस्तावना

आज के समय को अगर अध्यात्म की दृष्टि से देखें तो हमारा समाज धीरे–धीरे भौतिकतावादी होता जा रहा है। उपन्यास साहित्य जगत में जिन्दगी के उतार–चढ़ाव को लेखक ने सामान्य जीवन और उनके रहन–सहन को, उनके क्रिया–कलाप, उनके सामाजिक परिवर्तन, धार्मिक विचार एवं राजनीति के छल को चित्रित किया है। इनके उपन्यासों का अध्ययन करके लगता है कि ये आधुनिक भाव–बोध और संवेदना–भाव के लेखक हैं। इन्होंने अपने उपन्यासों में जहाँ एक ओर पूर्व परम्परावादी एवं पारिवारिक सहयोग की भावना को दिखाते हैं वहीं दूसरी ओर समाज के वर्तमान रुढ़िवादी और अहमवादी परिवार का ढाँचा प्रस्तुत करते हैं। इन्होंने अपने उपन्यासों में ग्रामीण क्षेत्रों से विश्वविद्यालय में आने वाले छात्रों का यथार्थ चित्रण किया है। 'निष्कासन' जैसे उपन्यास में इन्होंने शिक्षण संस्थानों में व्याप्त जातिगत भेदभाव, रूढ़िगत मानसिकता का पर्दाफास किया है। साथ ही साथ जातिगत भेदभाव करने वाले ठेकेदारों को भी बेनकाब किया है।

कथा साहित्य में दूधनाथ सिंह का स्थान उच्च रहा है। इन्होंने अपने उपन्यासों में वर्तमान पारिवारिक ढाँचा का वर्णन किया है। उपन्यास, कहानी, नाटक, संस्मरण जैसी विधा में अपनी लेखन क्षमता का लोहा मनवाया है। उन्होंने उपन्यास लेखन में तीन उपन्यास लिखे हैं।

'आखिरी कलाम' दूधनाथ सिंह का बहुचर्चित उपन्यास है। इस उपन्यास में मध्यमवर्गीय परिवार का चित्रण हुआ है। इस परिवार में आचार्य जी अपने परिवार की बात नहीं सुनते जिससे सब लोग नाराज रहते हैं और घर में खट–पिट का माहौल बना रहता है। गुरूजी रविकांत को नौकरी करवाना चाहते हैं। रविकांत अपनी दुकान करता है।

गुरूजी कहते हैं कि– "मैंने एक पीढ़ी का निर्माण किया किस तरह ? मर– खपकर। जीवन देकर, और उसका हश्र अब ये है! कुछ नहीं बचता। नालायक पीढ़ियाँ– बस। मैंने क्या सोचा था और क्या हुआ! सिर्फ हनुमान चालीसा का पाठ और फाटक पट टंका का– प्रोफेसर तत्सत पाण्डेय। और छत पर भरे हैं स्पेयर पार्ट्स और मोबिल और टायर ! वाह, वाह, वाह........। "[1]

दूधनाथ सिंह ने अपने उपन्यास में पारिवार को टूटते, बिखरते रिश्ते को समेटने का प्रयास किया है, ताकि समाज का संतुलन बना रहे। जिस घर, परिवार में पति–पत्नी परस्पर प्रीति एवं सामान भावना नहीं रखते हैं उस घर में दरिद्रता का प्रवेश हो जाता है। दाम्पत्य बिखराव से ही परिवार बिखर रहे हैं। आधुनिक युग में पत्नी अपने पति का विरोध करने लगी है। जिससे अनेकों परिवार विखण्डित हो रहे हैं। बिखराव, विघटन, अजनबीपन जैसी समस्या परिवार को अलग कर रही है। समाज की सबसे बड़ी विसंगति यथार्थ रूप में देखने को मिल रही है।

'निष्कासन' उपन्यास में लेखक कहते हैं कि—"अधिकांश लड़कियाँ हमारे ग्रामीण अंचलों के खाते—पीते घरों, बड़े किसान, परिवार या धुआंये, अँधेरे कस्बों के छोटे—छोटे नौकरी पेशा परिवारों या विचौलियों, व्यापारियों के घरों से आती है। वहाँ के स्कूल, कॉलेजों में वे कंधे झुका कर बड़ी अटपटी चाल से पढ़ने जाती हैं। सारे रास्तों, गली, स्कूलों या सड़कों पर चारों ओर आँखें बिछी होती हैं।"[2]

'निष्कासन' उपन्यास के माध्यम से लेखक ने समाज के दलित वर्ग, स्त्री वर्ग के शोषण उनके साथ हो रहे दुराचार, अनेकों समस्याओं का खुल कर चित्रण किया है। लेखक ने नारी समस्या को भी दिखाया है। अधिनिक युग में नारी को अबला से सबला कहा जाने लगा है। समाज की सबसे बड़ी समस्या नारी ही बन गई है। 'निष्कासन' उपन्यास में एक स्त्री का शोषण स्त्रियों द्वारा ही किया गया है।

अपने समाज का यथार्थ वर्णन करते हुए कथाकार 'निष्कासन' उपन्यास के दूसरे भाग में कहते हैं कि—"जब यह सब हो रहा है, तब पिछली शताब्दी का अवसान है। शताब्दी जो, दमन, ह्रास और विचारों की बड़बोली और विफल स्वप्नों का चीत्कार और एक शालील ले—लपक के नारकीय उत्स्वांत में लिथड़ी हुई है। जिसमे दुस्साहसों का अद्भुत विलास है, जिसमे आदमी के दिनाँक का द्रुतगामी चमत्कार है। जिसमें हर मोड़ पर रोशनियों को लीलते हुए ब्लैक होल है जिसमें सच और झूँठ की चमक—दमक साथ—साथ हर कदम पर ताल देती हुई चलती है।
जिसमें असहायता बार—बार अंगारे की तरह फूट कर लपक मारती है।" [3]

लेखक ने 'आखिरी कलाम' उपन्यास में समाज सुधार की बात की है। दूधनाथ सिंह जी उन विरले उपन्यासकारो में से हैं जिन्होंने हिन्दी को एक नए उपन्यासों में ढाला है। इसमें घर—परिवार की घटनाएँ और स्वाधीनता की घटनाएँ हैं। लेखक ने 'आखिरी कलाम' में अनेकों घटनाओं को चित्रित किया है। रविकांत इण्टर में फेल हो गया और उसने अपने बाबा से कहा कि वह अब नहीं पढ़ेगा। विल्लेश्वर ने भी पढ़ने से मना कर दिया। "बाबा और अम्मा दोनों ने उसका परित्याग कर दिया। अब दोनों निरुदेश्य आवारा, दिन भर दोस्तों के साथ या किसी पार्क में, या साईकिल में सड़कों पर रेस लगाते हुए, अनजान, मस्त और दुनियाँ से बेखबर भटकते रहते और रात में बाबा जब सो जाते या अपनी लाइब्रेरी में होते और अम्मा अपने कमरे में अंगार नेत्र खोले रहतीं।"[4]

'नमो अन्धकारं' उपन्यास में सामाजिक विसंगति का चित्रण किया गया है। लेखक ने कहा है—"गुरु के बिना हमारा जीवन सूना है। हम बहुत तिड़तिड़ाते हैं। ठिन्न—ठिन्न करते हैं। अक्सर गुरु ऐसे—ऐसे काम कर बैठते हैं, इतना नुकसान पेल देते हैं, ऐसी अण्डस में डाल देते हैं कि फटने लगती है। हर जोगी सोचता है कि बस बहुत हो गया। गुरु की ऐसी कि तैसी, लेकिन बाहर बोलने की हिम्मत नहीं।"[5]
लेखक ने वर्तमान समाज में परिवारवाद, अकेलापन, अजनबीपन, बिखराव की विडम्बना का चित्रण किया है। उनके उपन्यासों में घटनाओं की स्थितियों को पात्रों के माध्यम से दिखाया है। तत्कालीन समाज का लेखा—जोखा उनके उपन्यासों में दिखाया गया है।

डॉ. विमल भास्कर जी कहते है कि— "समस्याओं का स्वरूप आज मकड़ी के जाल सदृश्य लग गया है, जो देखने में तो अलग—अलग तंतुमय ही दिखाई देते हैं। परन्तु एक दूसरे से इस तरह निश्चित है कि उन्हें अलग किया नहीं जा सकता।"[6]
"उपन्यासकार एक सामाजिक प्राणी होता है, वह जीवन की विविध समस्याओं और परिस्थितियों से प्रभावित होता है, तभी अपनी रचनाओं में वह उस प्रभाव को प्रदर्शित करता है।"[7]

आज समाज के व्यक्ति कम समय में अधिक धन अर्जित करना चाहते हैं। अर्थाभाव कई कारणों से होता है। गरीब परिवार के लोग गरीब परिवार में जन्म लेते हैं, उन्हें दो वक्त के खाने की पड़ी रहती है। जिनका जीवन गरीबी में बीतता है वह परम्परा पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती है। आधुनिक काल में पूँजीवाद लोग गरीबों का शोषण करते हैं, चाहे वह राजनीतिक रूप से हो या सामाजिक रूप से सभी एक दूसरे का खून चूसने में लगे रहते हैं, इसलिए गरीब व्यक्ति उसी में पिसता रहता है। इसलिए चोरी, तस्करी, लूटपाट, हेराफेरी जैसी आदतों के शिकार हो जाते हैं उनके दुख का यही कारण बनता है। धन की कमी से व्यक्ति अनेकों गुनाह करता जाता है। किसान मजदूर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरों से ऋण भी लेते हैं। मध्यवर्ग के लोग अपने बच्चों की पढ़ाई नौकरी में अपने सम्पूर्ण जीवन की जमा पूँजी को खर्च कर देते हैं। 'नमो अंधकार' उपन्यास के लेखन में पात्रों के माध्यम से आर्थिक समस्या को उजागर किया गया है। लेखक वर्तमान जीवन से जुड़ी समस्याओं को दिखाने की कोशिश की है। "क्या नाम बता रहा था कुमारी, अनुसुईया कुमारी। वैसे वह विवाहित पति है जो वन विभाग में दक्षिण जोंन में है। चोरी

छिपे चन्दन का पेड़ बेचता है, करोड़पति हो गया है। दु:खहर्ता बम–बम कर रहा था फोन पर, खुद चोर साला, चोरी पर रीझ रहा था।"[8]

लेखक ने अपने उपन्यास में दिखाया है कि कैसे बड़े आदमी चोरी कर के अपने घर की अलमारी भरते हैं और गरीब मजदूर का शोषण करते हैं। 'नमो अन्धकार' ने दूधनाथ सिंह पात्रों के माध्यम से बताते हैं– "सबलोग कुछ न कुछ करते ही हैं, सत्ता प्रसाद पढ़ाता है, सीताराम विधि व्याख्याता है, राम सागर बैंक में है, सिंह साहब कोचिंग चलते हैं। किसी की कोई ऊपरी आमदनी नहीं है।"[9]

'नमों अन्धकारं' उपन्यास में गुरूजी ने अपनी नाकामयाबी को देखकर उसकी आलोचना करते हैं, उसे 'भदोही' जाने को कहते हैं जहाँ उसका आर्थिक शोषण किया जाता है। बाल श्रमिकों को मुक्ति दिलवाना चाहता है। 'पलामू' जिले में तीन हजार बच्चों से काम कराया जाता है वे बंधुआ मजदूर बने हुए हैं। आठ साल से सोलह साल तक के बच्चे काम करते हैं।

'निष्कासन' उपन्यास में खुले माहौल एवं लड़की के द्वारा यौन भाव को प्रस्तुत किया गया है। "टूटे हुक वाले ब्लाउज को उतरने के बाद उसे अपनी गोलियों और अर्धचंद्रान्गों से बड़ी कोफ्त हुई जबकि हॉस्टल के कमरे, लम्बे–चौड़े बरामदों में अक्सर इनका खेल करती हुई लडकियाँ इतराती फिरतीं है। अक्सर ये यंग व्यसन की हद तक व्याख्या, अफवाह और खिलखिलाहटों के विषय होते हैं।"[10]

'नमो अंधकारं' उपन्यास में कुंती शिकायत करती है कि गुरु उसकी छोटी बहन को अपने जाल में फंसा रहे हैं उसका शोषण करना चाहते हैं। "फिर उनसे दो अधेड़ लोलुपों की कथा बनाने के लिए कहा और जब वह किचेन में गयी तो पीछे–पीछे जा कर वहाँ पकड़ लिया। एक दूर के रिश्ते में चाचा थे और दूसरे वनिया सेन के परम मित्र नेता जी। देविका ने कहा कि दोनों ही बहन अपना 'सतीत्व' बचाने में सफल हुईं।"[11]

वर्तमान समय में दहेज प्रथा जैसी कुप्रथाएँ बढ़ती जा रही है। लड़कियाँ कुमारी रहने लगी हैं। संस्कृ ति का प्रभाव आदिवासी कबीलों और अन्य शहरी अभिजात वर्ग में होने लगा है। वहीं साथ में काम करने वाले सह–शिक्षा छात्रों और दफ्तरों आदि में एक साथ कामकाज करने या फिल्मों धारावाहिकों नाटकों में अभिनय करने वाले स्त्री–पुरुष सम्बन्धों में अनैतिकता या यौन सम्बन्ध स्थापित होने लगे हैं। इस उपन्यास में शर्मा जी की पत्नी के अनैतिक यौन सम्बन्ध होते हैं।

वहीं लेखक के 'निष्कासन' उपन्यास में लड़कियों को हॉस्टल में किस प्रकार यातनाएँ दी जातीं हैं। उन्हें मानसिक रूप से कमजोर किया जाता है जिसके कारण नायिका आत्महत्या कर लेती है। लेखक ने मनोवैज्ञानिक विसंगति का चित्रण सहज एवं सुलझे रूप में प्रस्तुत किया है।

"तेरा यार चूतिया होगा'

'प्रेम करना अब संभव नहीं बच्ची'

'दूसरी ने जैसे आहें भरते हुए कहा'।

'मैम खुद नहीं उठती? पहली लड़की बोली'।

'उसके दिन लद गए दूसरी लड़की ने कहा'।"[12]

लेखक ने कार सेवकों के मनोविज्ञान को समझने के लिए वर्णित आचार्य के वार्तालाप को दिखाया है। धर्म करने वाला व्यक्ति किस तरह सीमा तक अपनी उम्मीद नहीं छोड़ता है। 'आखिरी कलाम' में हिंदुत्व के उभार के फलस्वरूप हिन्दू नेताओं की नीतियों का चित्रण किया है। ललकार दिवस के दिन एक पुरुष उन्मादी कारसेवकों को नियंत्रित करने में लगे रहते हैं। इस उपन्यास की पृष्ठभूमि में धर्म निरपेक्षता, तथा राजनीति का विस्तार लिए हुए हैं। वहीं पाण्डेय को आत्मग्लानि होती है कि कार सेवकों का तांडव फौजी ब्यूरो का आतंक आदि इस उपन्यास में देखने को मिलता है। वहीं लेखक ने अपने उपन्यासों में नारी के मनोवैज्ञानिक रूप का अध्ययन किया है।

महानगरीय जीवन में मनुष्यों की समस्याएँ बहुत बढ़ गयीं हैं। आज के भाग–दौड़ भरी जिंदगी में मनुष्य अपने आप को अकेला अजनबी महसूस करने लगा है। वो उदासी और निराशा के भावों से जकड़ता जा रहा है संघर्ष करने के बावजूद उसे निराशा ही हाँथ लगी है, कभी–कभी आदमी आत्महत्या तक कर लेता है। दूधनाथ सिंह ने अपने उपन्यासों में मानव मन के भावों को दिखाने का प्रयास किया है इन्होंने मनोवैज्ञानिक विसंगतियों का खुलकर चित्रण किया है।

दूधनाथ के उपन्यासों में लोकसंस्कृति के साथ–साथ लोक भाषा का प्रभाव रहा है। 'आखिरी कलाम' में लोककला को भी चित्रित किया गया है उनके उपन्यासों में स्त्री–पुरुषों के मानसिक द्वन्द, अजनबीपन

से जूझते दिखाई देते हैं। विभिन्न पात्रों के माध्यम से मनोवैज्ञानिक विसंगति का खुलकर चित्रण किया गया है चाहे वे सामाजिक हों या राजनैतिक रूप से सभी एक कटघरे में खड़े रहे हैं उनका जीवन मानसिक रूप से पिसता रहा है। लेखक ने मानसिक विसंगति को अपने उपन्यासों में पात्रों के माध्यम से चित्रित किया है तथा जगह–जगह मानसिकता के जकड़न से मुक्त होने का सन्देश भी दिखाई देता हैं। वर्तमान में सामाजिक विसंगति, राजनैतिक विसंगति एवं मनोवैज्ञानिक विसंगति को लेखक ने उपन्यासों में बड़ी बारीकी से चित्रित किया है जिसे पाठक वर्ग को पढ़ने में असुविधा महसूस न हो तथा उनके गुण–दोषों का भी जिक्र मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है।

निष्कर्ष

इनके उपन्यासों का मुख्य सरोकार साम्प्रदायिकता है। इसके साथ ही मनुष्य को परस्पर विभाजित करने वाली राजनितिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों के प्रवाह में मनुष्य की विसंगतियाँ हैं और संसार के प्रति अपार मोहभंग को रचनात्मक स्तर पर यथार्थ रूप में प्रयुक्त करने का एक सशक्त प्रयास किया गया है। दूधनाथ सिंह का अपना एक यथार्थवादी व्यक्तित्व है और ये वर्तमान जीवन–यथार्थ की सही अक्कासी करने वाले कहे जा सकते हैं। इन्होंने अपने समय की विसंगतियों को न केवल अनुभव किया बल्कि समाज के उस कड़वे अनुभव से अपनी साहित्यिक विरासत को समृद्ध भी किया। इन्होंने अपने 'निष्कासन' उपन्यास में उस सवर्णवादी समाज की क्रूर मानसिकता की घोर भर्त्सना की है।

संदर्भ ग्रंथ–

1– सिंह दूधनाथ– आखिरी कलाम, पृष्ठ– 15
2– सिंह दूधनाथ– निष्कासन, पृष्ठ–21
3– सिंह दूधनाथ– आखिरी कलाम–पृष्ठ–87
4– सिंह दूधनाथ– नमो अन्धकारं, पृष्ठ–15
5– सिंह दूधनाथ– नमो अन्धकारं, पृष्ठ–15
6– भास्कर डॉ. विमल– हिन्दी में समस्या साहित्य, पृष्ठ–10
7– सुनंदा पालकर डॉ.– समाजवादी उपन्यासकार भैरव प्रसाद गुप्त– पृष्ठ– 108
8– सिंह दूधनाथ–नमो अंधकार–पृष्ठ–25
9– सिंह दूधनाथ–नमो अंधकार–पृष्ठ–70
10– सिंह दूधनाथ–निष्कासन, पृष्ठ–1
11– सिंह दूधनाथ–नमो अन्धकारं, पृष्ठ– 41
12– सिंह दूधनाथ–निष्कासन, पृष्ठ–19

फोन नं.– 8982279569

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 166-168
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

पुराणों के आधार पर काशी का भौगोलिक सीमांकन

श्री अभिषेक तिवारी
शोध छात्र,
इतिहास विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
डॉ0 अंजना वर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर,
इतिहास विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

काशी में काशी ही दीप्त है, तेजोमय हैं। काशी हर वस्तु को प्रकाशित करती है। जिसने काशी को जान लिया, उसने काशी को प्राप्त कर लिया। काशी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का आधार भौगोलिक परिदृश्य हीं हैं। भौगोलिक स्वरूप पर ही किसी नगर या राष्ट्र के इतिहास का अध्ययन किया जाता हैं। अतः काशी के भौगौलिक परिदृश्य में काशी की भौगोलिक सम्पदा प्राकृतिक संसाधन, आवागमन के साधन, नदियॉ, कुण्ड, तालाब, वन–वनस्पति, मृदा विवरण तथा काशी की संरचना आदि का अध्ययन किया गया है।

गंगा नदी के वायें तट पर अर्द्धचन्द्राकार स्वंरूप में काशी नगरी (वाराणसी) स्थित हैं। नगर की भौगोलिक स्थिति $28^{0}18'$ उत्तरी अक्षांश एवं $83^{0}1'$ पूर्वी देशान्तर हैं।[1] वर्तमान वाराणसी जनपद $25^{0}1'$ उत्तरी अक्षांश से $83^{0}0'$ पूर्वी देशान्तर तक स्थित स्वीकार किया गया है।[2] वाराणसी जनपद की लम्बाई पूर्व से पश्चिम 82 मील एवं चौडाई उत्तर से दक्षिण 58 मील है। लगभग 1535 वर्ग किलोमीटर में वाराणसी जनपद विस्तृत है। वाराणसी के उत्तर में जौनपुर उत्तर–पूर्व में गाजीपुर, दक्षिण में मिर्जापुर तथा दक्षिण–पूर्व में चन्दौली भभुआ हैं। प्राचीन काशी की मूल स्थिति को लेकर विद्वानों के बीच मतभेद है। पुराणों के अनुसार वरूणा और असी के मध्य गंगा के वायें तट पर वाराणसी नगर का मूल स्थान निर्दिष्ट किया गया है। पौराणिक राजा 'दिवोदास' के समय मूल वाराणसी नगर निकुम्भ मुनि के शाप से जन शून्य हो गयी। इसके बाद राजा दिवोदास ने गंगा–गोमती के संगम पर एक नयी वाराणसी नगरी को बसाया और इसे अपनी राजधानी बनाकर राज्य करने लगा।[3] कलान्तर में राजा दिवोदास वरूणा से असी, तक का भू भाग भगवान शिव को समर्पित कर मोक्ष को प्राप्त किया।[4] पुनः वाराणसी नगरी अपनी मूल स्थान पर पल्लवित–पुष्पित हुयी।

राजनैतिक भौगोलिक तथा परिस्थितिजन्य कारणों से काशी क्षेत्र की सीमा बदलती रही है। विभिन्न पुराणों में भी इसकी सीमा अलग अलग देखने को मिलती है। प्राचीन भारतीय ब्राह्मणग्रन्थों, सूत्र उपनिषद, स्मृति आदि से काशी के संबन्ध में जानकारी प्राप्त होती है। उसका विश्लेषण करने पर यही पता चलता है कि प्राचीन षोडस महाजनपदों की भॉति काशी भी एक महाजनपद के रूप में प्रतिष्ठित थी। काशी महाजनपद काशी क्षेत्र या काशी राज्य की राजधानी के रूप में विख्यात हैं। महाभारत के वनपर्व और भीष्म पर्व में मार्कण्डेय ऋषि का आश्रम, गंगा गोमती संगम, वरूण नदी के समीप वाराणसी नगरी आदि का वर्णन मिलता है, जहॉ कपिलाहृद (कपिलधारा) देव, देव (विश्वेश्वर) के मन्दिर का

उल्लेख किया गया हैं। पतन्जलि के महाभाष्य 'अनुगंज वाराणसी अनुयमुन मथुरा' सूत्र से ज्ञात होता हैं कि दूसरी शती ईसा पूर्व तक वाराणसी नगरी का विकास हो चुका था। वैदिक युग में भी काशी विख्यात थी। तत्कालीन काशी नरेश अजातशत्रु को ब्रह्मविद्या के विद्वान के रूप में बताया गया है। लगभग सभी पुराणों में काशी की भौगोलिक स्थिति का वर्णन मिलता है। सातवीं सदी में चीनी यात्री 'युवान्च्वांग' ने अपनी भारत यात्रा के दौरान वाराणसी की भी यात्रा की थी। उसने वाराणसी को पश्चिमी गंगा तट पर स्थित बताया था।[5] 'गहड़वाल' अभिलेखों तथा 'उक्तिव्यक्ति' प्रकरण से भी वाराणसी नगरी की भौगोलिक स्थिति का वर्णन मिलता है।

भौगोलिक स्वरूप :–

वर्तमान वाराणसी से प्राचीन वाराणसी नगर का स्वरूप निःसन्देह भिन्न रहा होगा क्योंकि साहित्यिक स्रोतों से पता चलता है कि जिन भूभागों में आज सघन बस्ती हैं, वहाँ पौराणिक काल में वन हुआ करते थें। पुराणों, बौद्ध, जैन साहित्यों में काशी के चारों तरफ एवं काशी में भी अनेक वनों एवं उद्यानों का विवरण दिया गया है। जिसे काटकर बस्तियाँ बसा दी गयीं। वाराणसी जनपद का पश्चिमी भाग पूर्वी भाग की अपेक्षा ऊँचा हैं। ताल–तलैया आदि का बहाव गंगा की तरफ हैं। काशी की ऊँचाई समुद्र तल से औसतन 252 फीट है। पूर्व की तरफ बढते इसकी ऊँचाई बलुआ के पास 238 फीट रह जाती है।[6] नगर की संरचना ऊँचे कंकरीले पठार पर हुयी हैं जो गंगा के पश्चिमी तट पर लगभग तीन मील तक फैली है। राजघाट क्षेत्र का चौरस मैदान नदी–नालों के कटाव से मुक्त हैं जो नगर बसने के लिए उपयुक्त था। गंगा–वरूणा और मिर्जापुर, कैमूर की पहाडियॉं काशी की सुरक्षा की दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।[7]स्कन्दपुराण के 'काशी खण्ड' कृत्यकल्पतरू तथा जेम्स प्रिंसेप के मानचित्रीय विवरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गंगा–वरूणा संगम से गंगा–असी संगम के उत्तर तक एक कंकरीला मार्ग था, जिससे होकर गोदौलिया नाले से मिसिर पोखरा, लक्ष्मीकुण्ड तथा बेनियातालाब का जल गंगा में प्रवाहित होता था। मत्स्योदरी (मछोदरी) का जल वरूणा में गिरता था।[8] विलोकतीर्थ (बुलानाला), नीचीबाग, आस भैरव आदि तालाबों का जल मन्दाकिनी (मैदागिन) में एकत्र होकर गंगा में जाता था। वरूणा नदी वर्तमान वाराणसी छावनी की तरफ से आती हुयी दक्षिण–पूर्व की ओर घूम जाती हैं, जो गंगा नदी के उत्तर–पूर्व के तरफ से आती हुयी, आदि केशव तीर्थ पर मिलती हैं। असी नदी को पुराणों में शुष्क नदी बताया गया है। राजघाट क्षेत्र समुद्र तल से 90 मी0 ऊँचा है। चौकाघाट 79 मी0 है। अस्सी से राजघाट तटीय भाग 83 मीटर ऊॅचे है। जी0टी0 रोड के पूर्व तथा विद्यापीठ, दुर्गाकुण्ड के मध्य भूमि की ऊॅचाई 79 मीटर है। भोजूबीर की ऊॅचाई 83 मीटर है।[9]

काशी की सीमा और विस्तार

प्राचीन काशी नगरी विभिन्न काल खण्डों में विभिन्न सीमाओं से क्रमबद्ध रूप से शाश्वत नगरी के रूप प्रतिष्ठित रही है। पुराणों के अनुशीलन से यह बात निर्विवाद रूप स्पष्ट होती है। काशी का सीमा विस्तार मुख्यतः दो आधार बिन्दुओं के माध्यम से बताया जा सकता हैं– 1.राजनैतिक सीमा विस्तार से आशय प्रशासकीय क्षेत्रों–उपक्रमों से हैं जिसमें राजा के राजनय का महत्वपूर्ण स्थान था। 2. सांस्कृतिक सीमा विस्तार की संकल्पना धार्मिक क्षेत्रों से सम्बन्धित है, जिसके अन्तर्गत पुण्य फल, तीर्थादि के लिए यात्रादि का विवरण दिया जाता है। सांस्कृतिक सीमा संबंधी तथ्यों का ज्ञान विभिन्न पुराणों, संस्कृत ग्रन्थों, ब्राह्मणों उपनिषदों, सूत्रग्रन्थो आदि में पर्याप्त मात्रा में उल्लेख प्राप्त होता हैं। पाणिनी, पतंजली के उद्धरणों से वाराणसी नगर का विवरण प्राप्त होता है। महाकाव्यों रामायण एवं महाभारत से भी काशी, काशी राज्य, काशी राज और वाराणसी राजधानी का कई जगहों पर उद्धरण दिखने को मिलता हैं। 'विदेशी यात्री फाह्यान[10] (399–414) ने वाराणसी नगर और काशी जनपद के स्वरूप विवरण दिया तथा 'युवानच्वांग'[11] ने सातवीं सदी में अपने विवरणों में जनपद और नगर दोनों के लिए 'वाराणसी' शब्द का प्रयोग किया है। उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट होता हैं कि काशी एक राज्य जनपद के रूप में थी, जिसकी राजधानी वाराणसी थी। आरम्भ में काशी शब्द तीर्थ स्थल, पौराणिक स्थल के रूप में प्रयुक्त हुआ तथा कालान्तर में वाराणसी नगर तथा वाराणसी जनपद (काशी नगर एवं काशी जनपद) दोनों हीं नामों से प्रसिद्ध हुयी।

काशी का राजनैतिक सीमा विस्तार :–

प्राचीन काशी जनपद बौद्धकाल के काशी जनपद से काफी समृद्ध एवं सशक्त जनपद थी। षोडस महाजनपदों में यह महत्वपूर्ण स्थान रखती थी। तत्कालीन समय में काशी के पूर्व में मगध,

पश्चिम में वत्स, उत्तर में कोशल तथा दक्षिण में सोन नदी बहती थी।[12] काशी एवं मगध के बीच 'आलवी' नामक एक स्वतंत्र राज्य था। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार श्रावस्ती तथा राजगृह के बीच 'आलवी' स्थित था। यह श्रावस्ती से 30 योजन एवं वाराणसी से 12 योजन की दूरी पर था। डा0 अल्तेकर ने काशी जनपद का विस्तार पूर्व में 100 मील तथा उत्तर पश्चिम में 250 मील तक बताया हैं।[13] डा0 मोती चन्द्र के मतानुसार काशी की दक्षिणी सीमा विन्ध्य पर्वत ऋृंखला से घिरी हुयी थी। जातकों के आधार पर डा0 अल्तेकर निष्कर्षतः यह बताते हैं कि काशी का विस्तार पूर्व में बलिया तथा पश्चिम में कानपुर तक रहा होगा। उपयुर्क्त उद्धरणों के अवलोकन से यह कहा जा सकता हैं कि तत्कालीन काशी जनपद वर्तमान के बनारस, मिर्जापुर, जौनपुर, आजमगढ, मऊ, बलिया, गाजीपुर, चन्दौली, भभुआ तथा गोरखपुर के अधिकांश भागों में फैला था। लोहिच्चसुक्त से ज्ञात होता है कि प्रसेनजित काशी और कोशल दोनों का राजा था। अजातशत्रु के समय मगध महाजनपद में काशी और कोसल सम्मिलित हो गये थे। कोसल के राजा महाकोसल ने मगध नरेश बिम्बिसार (528ई0पू0) के साथ अपनी पुत्री कोसला देवी के विवाह के अवसर पर काशी दहेज के रूप में दे दिया था।[14]

काशी की उत्तरी सीमा का निर्धारण हमें रामायण से प्राप्त होता हैं। वन गमन के दौरान कोसल के दक्षिणी तथा काशी के उत्तरी सीमा के संबंध में जानकारी प्राप्त होती है। अयोध्या से श्रीराम दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किये तथा पहला पडाव तमसा (टोंस) नदी के तट पर डाला। इसके बाद वेदश्रुति (बिसुई) को पार करके गोमती को पार किया। तत्पश्चात समन्दिका (सई) नदी को पार किया। इससे स्पष्ट होता हैं कि पौराणिक काल में सई नदी ही काशी का उत्तरी सीमा और कोसल की दक्षिणी सीमा थी। डा0 विशुद्धानन्द पाठक भी यही मानते हैं कि समन्दिका (सई) नदी काशी–कोसल की सीमा निर्धारित करती हैं।[15]

गुप्त शासक, चन्द्रगुप्त (305–32ई0) सम्भवतः गंगा की घाटी में प्रयागराज से लेकर पाटलिपुत्र तक राज्य करता था जिसमें साकेत तथा अवध का प्रदेश भी सम्मिलित था।[16] काशी जनपद मगध के पश्चिम कोसल से दक्षिण, प्रयागराज से पूर्व तथा कुरू और चेर के उत्तर में स्थित था, जिसमें गंगा और गोमती के मैदान सम्मिलित थे। 11वीं 12वीं सदी में काशी एवं कन्नौज गहडवाल शासकों की दो राजधानियों के रूप प्रसिद्व थी। गहड़वाल राज्य का विस्तार वाराणसी और कन्नौज के साथ–साथ अयोध्या से सरयु एवं घाघरा के संगम तक था। राजघाट के पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर वाराणसी का विस्तार 12 योजन स्वीकार किया गया है।[17] पुराणों में दिये गये राजा दिवोदास के कथानकों से यह पता चलता है कि वाराणसी नगर प्रारम्भ में वरूणा गंगा के संगम के आस–पास ही स्थित थी।

संदर्भ सूची

1. सिंह, आर0एल0 : बनारस, ए सिटी इन अर्बन ज्योग्राफी, पृ0 14
2. विश्वकर्मा, ईश्वर शरण : काशी का ऐतिहासिक भूगोल, पृ0 14
3. ब्रह्माण्ड पुराण, अध्याय 11
4. वही, अध्याय 12
5. बील, सैम्युल : चाइनीज एकाउन्ट्स ऑफ इण्डिया, भाग 3, पृ0 291
6. सुकुल, कुबेर नाथ : वाराणसी वैभव, पृ0 57
7. वहीं, पृ0 57
8. सिंह, राम बचन : वाराणसी एक परम्परा नगर, पृ0 28
9. विश्वकर्मा, पूर्वोक्त, पृ0 25, 30, 31
10. जेल्स लेग्गें दि ट्रेवेल्स ऑफ फाह्यान, पृ0 60
11. थामस वाटर्स ; आन युवान्च्वांग ट्रेवेल्स इन इण्डिया, भाग 2, पृ0, 46
12. उपाध्याय, भरत सिंह, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ0, 40
13. अल्तेकर ; हिस्ट्री ऑफ बनारस, पृ0, 58
14. पाठक, विशुद्धानन्द, हिस्ट्री ऑफ कौसल, संयुक्त निकाय, भाग 1, पृ0, 85
15. वही, पूर्वोक्त, पृ0, 42
16. वायु पुराण, 2/30/34/168
17. सिंह, विरेन्द्र प्रताप ; समआसपेक्ट्स ऑफ लाइग इन ऐन्सिएंट वाराणसी एज रिविल्ड थ्रो दि आरर्कियोलॉजिकल सोर्सेज, पृ0, 25 (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध)

www.bohalshodhmanjusha.com **Bohal Shodh Manjusha** **ISSN: 2395-7115**
Impact Factor: 8.642 **April 2026** **Page No. : 169-173**
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

एक अभियान 'बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ': चुनौतियाँ और उपलब्धियाँ

नाहिद प्रवीण
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग
ल० ना० मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सारांश – बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ (BBBP) योजना, 22 जनवरी 2015 को हरियाणा के पानीपत से शुरू हुई, एक जन-आंदोलन है जो एक सरकारी नीति नहीं है, बल्कि एक जन-आंदोलन है जिसका उद्देश्य बेटियों के प्रति सदियों पुरानी सोच को बदलना है और उनके अस्तित्व, सुरक्षा और शिक्षा को सुनिश्चित करना है। दस साल से अधिक की यात्रा में, इस अभियान ने राष्ट्रीय स्तर पर लाभ दिया है—जन्म लिंगानुपात (SRB) 2014-15 में 918 से 2024-25 में 929 हो गया है; माध्यमिक शिक्षा में लड़कियों का सकल नामांकन अनुपात 75.51 प्रतिशत से 80.2% हो गया है, और प्रसूति देखभाल का अनुपात 61 प्रतिशत से 97.3% हो गया है। महिला एवं बाल विकास मंत्री अन्नपूर्णा देवी ने कहा कि योजना एक नीतिगत पहल से एक राष्ट्रीय आंदोलन में बदल गई है, जिसने सरकारी एजेंसियों, मीडिया, नागरिक समाज और आम जनता सहित सभी हितधारकों को एकजुट किया है, जबकि नीति आयोग के तृतीय-पक्ष मूल्यांकन ने योजना की प्रासंगिकता, प्रभावशीलता और स्थिरता को "संतोषजनक" माना है। जामनगर (गुजरात) की सफलता की कहानियाँ, जहां 132 ड्रॉपआउट लड़कियों को स्कूलों में वापस लाया गया, दिखाती हैं कि इच्छाशक्ति से सफलता मिलती है। हालाँकि, हरियाणा का उदाहरण—जहाँ लिंगानुपात 2019 में 923 से 2025 में 909 पर गिर गया—यह दिखाता है कि प्रयासों में कमी आते ही पुरानी मानसिकता फिर से हावी हो जाती है। लेकिन बिहार का चित्र बहुत चिंताजनक है—2022 में यहाँ जन्म लिंगानुपात 891 पर आ गया, जो राष्ट्रीय औसत 943 से 52 अंक कम है; दो वर्षों में 73 अंकों की यह गिरावट बताती है कि लैंगिक भेदभाव और कन्या भ्रूण हत्या अभी भी व्यापक हैं। इसलिए, महात्मा गांधी की दृष्टि को साकार करने के लिए, जिसके अनुसार "स्त्री और पुरुष एक ही सिक्के के दो पहलू हैं और दोनों का विकास का स्तर एक सा होना चाहिए"—BBBP की यह अपूर्ण क्रांति अभी निरंतर और प्रभावी प्रयत्नों की जरूरत है।

कीवर्ड: बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ, बालिका शिक्षा, लिंगानुपात, कन्या भ्रूण हत्या, बालिका सशक्तिकरण, सामाजिक जागरूकता, बाल विवाह, लैंगिक समानता, नारी सशक्तिकरण, बालिका शिक्षा दर, स्कूल में लड़कियों का नामांकन, सामाजिक परिवर्तन

प्रस्तावना: प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 22 जनवरी 2015 को हरियाणा के पानीपत में "बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ" (BBBP) अभियान का शुभारंभ किया। यह सिर्फ सरकारी योजना नहीं थी; यह एक सामाजिक क्रांति का आह्वान था जिसने बेटियों के प्रति समाज की सोच को बदलना चाहा, उनकी सुरक्षा, शिक्षा और अस्तित्व को सुनिश्चित करना चाहा। दस वर्षों में, यह अभियान नीति से एक जन-आंदोलन बन गया है। BBBP सिर्फ एक नीति नहीं थी; यह जन-आंदोलन

बनने वाला था।इसकी "सामाजिक रिकॉल वैल्यू" इसकी सबसे बड़ी ताकत रही—"बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ" का नारा इतना लोकप्रिय हो गया कि यह अभियान हर घर की जुबान पर चढ़ गया। महिला एवं बाल विकास राज्य मंत्री सावित्री ठाकुर ने स्वीकार किया कि इस अभियान की "उत्कृष्ट रिकॉल वैल्यू है और इसने समाज में बेटियों के प्रति सोच बदलने का काम किया है"।[1] लेकिन बिहार की इन राष्ट्रीय उपलब्धियों को देखते हुए स्थिति चिंताजनक है। 2022 के बिहार में जन्म लिंगानुपात 943 से 52 अंक कम होकर 891 पर आ गया है।[2]महात्मा गांधी ने कहा, "स्त्री और पुरुष एक ही सिक्के के दो पहलू हैं..।" एक के बिना दूसरा नहीं हो सकता। "दोनों का विकास समान होना चाहिए" ।[3] इसी गांधीवादी दृष्टि को साकार करने का सरकारी प्रयास BBMP योजना है—एक समाज में जहाँ बेटियों को बेटों के समान अधिकार, अवसर और सम्मान मिले।

बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ- योजना के उद्देश्य और दायरा :

बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ योजना का मुख्य उद्देश्य तीन प्रमुख क्षेत्रों में कार्य करना है-

प्रथम, लिंगानुपात में सुधार: योजना का मुख्य उद्देश्य बाल लिंगानुपात की गिरावट को रोकना है और कन्या भ्रूण हत्या को कम करना है। यह लक्ष्य PNDT (Pre-Conception and Pre-Natal Diagnostic Techniques) अधिनियम को कड़ाई से लागू करने से जुड़ा है।

द्वितीय, बालिका शिक्षा को बढ़ावा देना: लड़कियों को शिक्षा देना, उन्हें स्कूलों में रखना और उच्च शिक्षा की ओर प्रेरित करना इसमें स्कूली शिक्षा के अलावा व्यावसायिक प्रशिक्षण और कौशल विकास भी शामिल है।

तृतीय, बालिका सशक्तिकरण: बालिकाओं के विकास, अधिकार और पोषण को सुनिश्चित करना। यह आयाम बालिकाओं के जीवन की सामान्य गुणवत्ता को सुधारने पर केंद्रित है। यह योजना पहले 100 जिलों में लागू की गई थी, लेकिन अब देश के सभी जिलों में लागू है। 15वीं वित्त आयोग अवधि (2021-22 से 2025-26) में इसका पुनर्गठन किया गया था और अब यह "मिशन शक्ति" के "संबल" उप-योजना का एक हिस्सा है।

नीति से जन-आंदोलन तक - केंद्रीय महिला एवं बाल विकास मंत्री अन्नपूर्णा देवी ने राज्यसभा में कहा कि BBBP कार्यक्रम "एक नीतिगत पहल से एक राष्ट्रीय आंदोलन में बदल गया है, जिसने सरकारी एजेंसियों, मीडिया, नागरिक समाज और आम जनता सहित विभिन्न हितधारकों को संगठित किया है" [4] महिला एवं बाल विकास राज्य मंत्री सावित्री ठाकुर ने कहा कि इस अभियान की "उत्कृष्ट रिकॉल वैल्यू (recall value) है और इसने समाज में बेटियों के प्रति सोच बदलने का काम किया है" ।[5] यह अभियान केवल जन्म के समय लिंगानुपात और लैंगिक भेदभाव से संबंधित चिंताओं को दूर करने की कोशिश नहीं करता, बल्कि बालिका को महत्व देने और उसके अधिकारों और अवसरों को सुनिश्चित करने की दिशा में सांस्कृतिक बदलाव को भी बढ़ावा देता है।[6]

उपलब्धियाँ— लिंगानुपात में सुधार: राष्ट्रीय स्तर पर सकारात्मक बदलाव-

BBBP योजना की सबसे बड़ी उपलब्धियों में से एक जन्म के समय लिंगानुपात में सुधार है (Sex Ratio at Birth, या SRB)। स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के स्वास्थ्य प्रबंधन सूचना प्रणाली (HMIS) के नवीनतम आंकड़ों के अनुसार, राष्ट्रीय SRB 2014-15 में 918 था, लेकिन 2024-25 में 929 हो गया। यह 11 अंकों की वृद्धि बताती है कि जागरूकता अभियानों, कठोर कानूनी कार्रवाइयों और सामुदायिक सहभागिता ने अच्छा प्रभाव डाला है। हालाँकि, यह वृद्धि सभी राज्यों में समान नहीं रही है, जो हम चुनौतियों के खंड में देखेंगे।

बालिका शिक्षा में उल्लेखनीय प्रगति- शिक्षा के क्षेत्र में BBBP योजना का प्रभाव और भी अधिक स्पष्ट दिखता है। शिक्षा मंत्रालय के यूनीफाइड डिस्ट्रिक्ट इंफॉर्मेशन सिस्टम फॉर एजुकेशन (UDISE) के आंकड़े बताते हैं:

लड़कियों का सकल नामांकन अनुपात (Gross Enrolment Ratio) 2014-15 में 75.51 प्रतिशत से 2024-25 में 80.2 प्रतिशत हो गया।[7] यानी लगभग 5% की वृद्धि, जो लाखों लड़कियों को स्कूल जाने के लिए पर्याप्त है। लड़कियों का माध्यमिक शिक्षा में नामांकन 2014-15 में 75.51% से 2022–2023 में 78% हो गया। इस आंकड़े से पता चलता है कि यह वृद्धि निरंतर होती रही है। इसके अलावा, प्रसूति देखभाल (Institutional Deliveries) में भी सुधार हुआ है, जो योजना के तहत 2014-15 में 61% से बढ़ाकर 2023-24 में 97.3% हो गया, जिससे मातृ-शिशु मृत्यु दर को कम करने में मदद मिली है।[8]

नीति आयोग का मूल्यांकन- महिला एवं बाल विकास मंत्रालय की योजनाओं (2019–20–2024) का तृतीय-पक्ष मूल्यांकन नीति आयोग ने किया। अध्ययन ने पाया कि BBBP, एक "मिशन शक्ति" का "संबल" घटक, प्रमुख लैंगिक चुनौतियों को प्रभावी ढंग से हल करता है।[9] तीसरे पक्ष के मूल्यांकनों (2020 और 2025 में किए गए) ने योजना की प्रासंगिकता, प्रभावशीलता और स्थिरता को 'संतोषजनक' पाया है।[10] यह एक महत्वपूर्ण प्रमाण है कि यह योजना अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल रही है।

जमीनी स्तर पर सफलता : BBBP योजना की सबसे बड़ी ताकत, आंकड़ों से बाहर, इसकी व्यावहारिक सफलता है। गुजरात का जामनगर जिला देखें। यहाँ, जिला महिला एवं बाल अधिकारी डॉ. पूजाबेन डोडिया ने गाँव-गाँव घूमकर लड़कियों को स्कूल वापस लाने का अभियान चलाया। इस अभियान के तहत अब तक 132 लड़कियों को स्कूलों, आईटीआईओं और अन्य संस्थानों में प्रवेश मिल चुका है। इनमें उमेरा बंदरी जैसी लड़कियाँ हैं, जिनके माता-पिता ने शुरू में उसे अपने पारंपरिक पूर्वाग्रहों के कारण स्कूल नहीं भेजने दिया था। नियमित जागरूकता अभियान ने उनका विचार बदल दिया, जिससे आज उमेरा कक्षा तीन में पढ़ रही है। उसका लक्ष्य है "अपने माता-पिता और समाज को गौरवान्वित करना"।[11] उमा मोदलिया और उसकी बहन की कहानी भी प्रेरणादायक है। वे स्कूल नहीं गईं क्योंकि उनके पास पर्याप्त धन नहीं था। जागरूकता टीमों ने उनकी माँ मधुरीबेन को बताया और आज दोनों बहनें फिर से स्कूल जा रही हैं। "मैं एक बड़ा अधिकारी बनना चाहती हूँ और अपनी माँ को गर्व महसूस कराना चाहती हूँ" , छठी कक्षा की छात्रा उमा ने कहा। जामनगर जिला मजिस्ट्रेट के.बी. ठक्कर ने बताया कि गुजरात सरकार की "कन्या केलावणी" योजना के तहत इन लड़कियों को मुफ्त शिक्षा दी जा रही है।[12] इच्छाशक्ति सब कुछ कर सकती है।

चुनौतियाँ— BBBP योजना की सफलता के बावजूद, यात्रा में कई गंभीर चुनौतियाँ भी हैं, जिन्हें नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता।

1. हरियाणा का उदाहरण: जब लिंगानुपात फिर लुढ़कने लगा- योजना के मूल स्थान हरियाणा की स्थिति एक चेतावनी है। 2014 में BBBP की शुरुआत होने पर हरियाणा में जन्म लिंगानुपात 871 था। निरंतर प्रयासों से 2019 में 923 तक बढ़ गया। पूरे देश को इससे प्रेरणा मिली और यह एक बड़ी उपलब्धि थी। लेकिन हरियाणा में हाल ही में यह आंकड़ा फिर से गिरने लगा है। मार्च 2025 तक, यह 909 पर था।[13] यह गिरावट दर्शाती है कि सख्ती और जागरूकता में कमी आने पर पुरानी मानसिकता फिर से हावी होती है। यह भी चिंता का विषय है क्योंकि यह अभियान हरियाणा से शुरू हुआ था। बिहार के लिए यह एक चेतावनी है कि स्थिति और भी बिगड़ सकती है अगर प्रयास नहीं किए जाते हैं।

2. धनराशि का कम उपयोग: एक गंभीर चिंता- BBBP योजना की सबसे बड़ी चुनौती में से एक है धन का अपर्याप्त उपयोग। जनसत्ता की एक रिपोर्ट के अनुसार, पिछले ग्यारह वर्षों में इस योजना के लिए निर्धारित धन का एक बड़ा हिस्सा खर्च नहीं हो पाया है। विशेष रूप से, यह 2024 से 25 दिसंबर तक खर्च होने वाली सबसे कम राशि थी। रिपोर्ट बताती है कि बालिका शिक्षा, भोजन और स्वास्थ्य सुविधाओं पर वास्तविक खर्च बहुत कम था, जबकि कई जगहों पर पोस्टर और नारा बनाने पर अधिक धन खर्च किया गया।[14] इससे सवाल उठता है कि क्या यह योजना केवल कागजों में है?

3. बाल विवाह और तस्करी: लगातार बनी हुई चुनौतियाँ- बाल विवाह और बालिकाओं की तस्करी भी एक बड़ी चुनौती हैं। BBBP जैसी योजनाओं के बावजूद, यह एक ऐसी समस्या है जो बहुत गहरी है। बाल विवाह बालिकाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य और भविष्य को सीधे नुकसान पहुंचाता है। यह एक ऐसी चुनौती है जिसके हल के लिए केवल कानून नहीं, बल्कि लोगों की सोच में भी व्यापक बदलाव की जरूरत है। BBBP के लिए आवंटित धनराशि में कटौती की गई है, न्यू इंडियन एक्सप्रेस ने बताया—2024-25 में यह ₹33 करोड़ रह गया, जबकि 2022-23 में ₹92 करोड़ था।[15] योजना को लागू करना अधिक मुश्किल हो सकता है क्योंकि धन की कमी है।

4.मूल्यांकन की सीमाएँ- नीति आयोग द्वारा की गई समीक्षा ने योजना को "संतोषजनक" बताया है, लेकिन इस समीक्षा के कुछ सीमाएँ हैं। सवाल यह है कि क्या मूल्यांकन सिर्फ राष्ट्रीय औसत आंकड़ों पर आधारित है या इसमें स्थानीय असमानताओं और हकीकत भी पर्याप्त रूप से शामिल की गई है? हरियाणा का उदाहरण दिखाता है कि राष्ट्रीय औसत में सुधार के बावजूद कुछ राज्य पीछे हैं या फिर से पीछे जा रहे हैं।

भविष्य का मार्ग:

1. **सतत प्रयासों की आवश्यकता-** BBBP योजना ने दिखाया कि निरंतर प्रयास बदलाव ला सकता है। हरियाणा ने दिखाया कि राजनीतिक शक्ति और सरकारी दबाव लिंगानुपात को सुधार सकते हैं। लेकिन हरियाणा ने भी दिखाया कि कोशिशों में देरी होने से हालात फिर से बिगड़ सकते हैं। इस योजना की सफलता के लिए निरंतरता और सतर्कता आवश्यक है। हरियाणा में सफलतापूर्वक लागू हुए PNDT अधिनियम (Decoy Operations) के तहत की जाने वाली कार्रवाइयाँ और अधिक मजबूत होनी चाहिए।

2. **धनराशि के उपयोग में पारदर्शिता और प्रभावशीलता-** धनराशि के कम उपयोग की समस्या का समाधान किए बिना यह योजना अपनी पूरी क्षमता हासिल नहीं कर सकती। आवश्यकता है:

प्रथम, योजना का कार्यान्वयन पारदर्शी बनाने की कोशिश की। शिक्षा, पोषण, स्वास्थ्य और बालिका कौशल विकास के लिए धन का वास्तविक उपयोग होना चाहिए, न कि सिर्फ प्रचार।

द्वितीय, जिला स्तर पर निगरानी को बढ़ाना यदि धन नहीं खर्च किया जाता है, तो संबंधित अधिकारी जिम्मेदार होंगे।

3.सामुदायिक भागीदारी को और मजबूत करना- BBBP की 'जन-आंदोलन' वाली छवि उसकी सबसे बड़ी ताकत है। जामनगर की सफलता की कहानियाँ बताती हैं कि बदलाव अवश्यंभावी है जब समुदाय जागरूक होता है और आगे आता है। महिला एवं बाल विकास मंत्रालय को स्थानीय नेताओं, शिक्षकों, आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं और सामुदायिक स्वयंसेवकों को और अधिक अधिकार देना चाहिए। "सच्चा लोकतंत्र तभी आएगा जब सबसे निचले स्तर का व्यक्ति भी निर्णय प्रक्रिया में भाग ले सके," गांधी ने कहा था।[16] BBP को सफल बनाने के लिए भी यही आवश्यक है—गाँव-गाँव और मोहल्ले-मोहल्ले में सामुदायिक भागीदारी सुनिश्चित करना।

4.युवा पीढ़ी को जोड़ना- BBBP का सबसे बड़ा दूत आज की युवा पीढ़ी हो सकती है, जो बदलाव के लिए उत्सुक है और सोशल मीडिया पर सक्रिय है। स्कूलों और कॉलेजों में लैंगिक समानता, बालिका शिक्षा और कन्या भ्रूण हत्या के दुष्परिणामों पर बहस होनी चाहिए और अभियान चलाने चाहिए।

निष्कर्ष: बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ अभियान ने निश्चित रूप से सुधार किया है। राष्ट्रीय स्तर पर लिंगानुपात में सुधार हुआ है, लड़कियों की शिक्षा दर बढ़ी है, लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि समाज में बेटियों के प्रति सोच बदलने लगी है। नीति आयोग ने योजना की सफलता को प्रमाणित किया है, और जामनगर की सफलता की कहानियाँ लाखों लड़कियों को आशा देती हैं। लेकिन हरियाणा में लिंगानुपात का फिर से गिरना, धन का अपर्याप्त उपयोग और बाल विवाह जैसी सामाजिक बुराइयों का बढ़ना यह दर्शाता है कि क्रांति अभी भी पूरी नहीं हुई है। यह युद्ध है, जीता नहीं जा

सकता। जीत को बरकरार रखना भी उतना ही चुनौतीपूर्ण है। यह योजना बिहार में एक मिश्रित परिदृश्य प्रस्तुत करती है। एक ओर, किशनगंज, अररिया और नवादा जैसे जिलों ने 2.98 लाख ड्रॉपआउट लड़कियों को वापस स्कूलों में लाने, वैशाली जिले में 34,543 लड़कियों को शिक्षित करने और नवादा, अररिया और किशनगंज जैसे नवाचारों की प्रशंसा की है। विपरीत, बिहार का लिंगानुपात 891 है (राष्ट्रीय औसत 943 की तुलना में) और महिला साक्षरता अभी भी राष्ट्रीय औसत से काफी कम है, जो इस क्रांति को अभी पूरा नहीं करता है। गांधी ने कहा "आँख के बदले आँख की नीति से पूरी दुनिया अंधी हो जाएगी," । BBBP कार्यक्रम की असली कसौटी वह दिन होगा जब देश के हर जिले में लिंगानुपात स्वाभाविक स्तर (950+) पर पहुँच जाएगा, हर बेटी स्कूल जाएगी और उसके सपनों को पूरा करने में कोई बाधा नहीं होगी। सरकार, प्रशासन, समुदाय और युवा पीढ़ी सब मिलकर इस अधूरी क्रांति को पूरा करने का संकल्प लेंगे तो यह लक्ष्य हासिल होगा।

संदर्भ सूची

1. आईएएनएस. (2026, 27 मार्च). Third-party reviews confirm Beti Bachao Beti Padhao's effectiveness: Savitri Thakur. मुंबई: लोकमत टाइम्स, पृ. 1
2. हिंदुस्तान. (2025, 17 जून). बिहार में घटा सेक्स रेशियो, 1000 लड़कों पर महज 891 लड़कियां; रिपोर्ट में खुलासा. पटना: हिंदुस्तान, पृ. 1
3. गांधी, मोहनदास करमचंद. (1940). हरिजन (संपादकीय). अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन मंदिर, पृ. 122
4. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, भारत सरकार. (2026, 4 फरवरी). Beti Bachao Beti Padhao scheme has transformed from a policy initiative into a national movement. नई दिल्ली: पीआईबी दिल्ली, पृ. 2
5. आईएएनएस. (2026, 27 मार्च). Third-party reviews confirm Beti Bachao Beti Padhao's effectiveness: Savitri Thakur. मुंबई: लोकमत टाइम्स, पृ.1
6. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, भारत सरकार. (2026, 4 फरवरी). Beti Bachao Beti Padhao scheme has transformed from a policy initiative into a national movement. नई दिल्ली: पीआईबी दिल्ली, पृ. 2
7. डाउन टू अर्थ. (2026, 6 फरवरी). As told to Parliament (February 4, 2026): Sex ratio at birth, girls' enrolment improve under Mission Shakti Schemes. नई दिल्ली: डाउन टू अर्थ, पृ. 1
8. ईटीवी भारत. (2025, 16 अगस्त). 'Beti Bachao Beti Padhao' Increased Girls' Enrolment In Secondary Education, Show Govt Data. नई दिल्ली: ईटीवी भारत, पृ. 1
9. डाउन टू अर्थ. (2026, 6 फरवरी). As told to Parliament (February 4, 2026): Sex ratio at birth, girls' enrolment improve under Mission Shakti Schemes. नई दिल्ली: डाउन टू अर्थ, पृ. 1
10. आईएएनएस. (2026, 27 मार्च). Third-party reviews confirm Beti Bachao Beti Padhao's effectiveness: Savitri Thakur. मुंबई: लोकमत टाइम्स, पृ.1
11. एएनआई. (2025, 18 अक्टूबर). From dropouts to re-enrollment: Girls return to schools in Gujarat. नई दिल्ली: एएनआई न्यूज़,पृ. 1
12. वही, पृ. 2
13. तेहेलका. (2025, 26 अप्रैल). Haryana begins course correction as Beti Bachao gains start slipping. नई दिल्ली: तेहेलका, पृ. 1
14. जनसत्ता. (2025, 2 अक्टूबर). बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ: निधि उपयोग में कमी और जमीनी अमल पर सवाल. नई दिल्ली: जनसत्ता, पृ. 1
15. द न्यू इंडियन एक्सप्रेस. (2026, 6 फरवरी). Quick Take | Beyond lip service. चेन्नई: द न्यू इंडियन एक्सप्रेस, पृ. 1
16. गांधी, मोहनदास करमचंद. (1940). हरिजन (संपादकीय). अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन मंदिर, पृ. 56

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 174-176
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

शिक्षकों के कार्य-जीवन संतुलन का विश्लेषण

डॉ० सुकन्या चल्ला
ए पी टी डब्लू आर एस गर्ल्स, करेडु, प्रकाशम ज़िला।

Abstract :

वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में शिक्षकों की भूमिका अत्यंत जटिल एवं बहुआयामी हो गई है, जिसके परिणामस्वरूप उनके कार्य-जीवन संतुलन पर गंभीर प्रभाव पड़ रहा है। इस अध्ययन का उद्देश्य शिक्षकों के कार्य-जीवन संतुलन की प्रकृति, उसके असंतुलन के प्रमुख कारणों तथा उसके प्रभावों का विश्लेषण करना है। कार्य-जीवन संतुलन का अभाव शिक्षकों के शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्थिति तथा व्यावसायिक दक्षता को प्रभावित करता है, जिससे शिक्षा की गुणवत्ता में गिरावट देखने को मिलती है। इस लेख में यह स्पष्ट किया गया है कि अत्यधिक कार्यभार, गैर-शैक्षिक कार्यों की अधिकता, तकनीकी दबाव तथा सामाजिक अपेक्षाएँ इस असंतुलन के प्रमुख कारण हैं। इसके अतिरिक्त, यह भी प्रतिपादित किया गया है कि व्यक्तिगत, संस्थागत एवं नीतिगत स्तर पर समन्वित प्रयासों के माध्यम से इस समस्या का समाधान संभव है। अध्ययन के निष्कर्ष यह दर्शाते हैं कि संतुलित कार्य-जीवन न केवल शिक्षकों के कल्याण के लिए आवश्यक है, बल्कि यह विद्यार्थियों के समग्र विकास के लिए भी अनिवार्य है।

कार्य-जीवन संतुलन की संकल्पना (Concept of Work-Life Balance)

शिक्षा प्रणाली के विकास में शिक्षकों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है, क्योंकि वे न केवल ज्ञान के संप्रेषण का कार्य करते हैं, बल्कि वे विद्यार्थियों के व्यक्तित्व, मूल्यों और सामाजिक दृष्टिकोण के निर्माण में भी सक्रिय योगदान देते हैं। वर्तमान समय में शिक्षा के क्षेत्र में तीव्र परिवर्तन, तकनीकी विस्तार तथा नीतिगत सुधारों के कारण शिक्षकों की भूमिका अधिक जटिल और बहुआयामी हो गई है। इस परिवर्तित परिदृश्य में शिक्षकों के सामने सबसे बड़ी चुनौती उनके कार्य और व्यक्तिगत जीवन के बीच संतुलन बनाए रखने की है। कार्य-जीवन संतुलन का अभाव न केवल शिक्षक के व्यक्तिगत स्वास्थ्य और मानसिक स्थिति को प्रभावित करता है, बल्कि इसका प्रत्यक्ष प्रभाव उनके शिक्षण की गुणवत्ता पर भी पड़ता है।

कार्य-जीवन संतुलन एक ऐसी गतिशील स्थिति है जिसमें व्यक्ति अपने पेशेवर दायित्वों और निजी जीवन की आवश्यकताओं के बीच सामंजस्य स्थापित करता है। यह केवल समय के विभाजन का विषय नहीं है, बल्कि यह मानसिक संतुलन, भावनात्मक संतुष्टि और सामाजिक समायोजन का भी द्योतक है। शिक्षकों के संदर्भ में यह संतुलन

विशेष रूप से चुनौतीपूर्ण हो जाता है, क्योंकि उनका कार्य समय अक्सर औपचारिक सीमाओं से परे जाकर व्यक्तिगत समय में भी प्रवेश कर जाता है। पाठ योजना तैयार करना, विद्यार्थियों के कार्यों का मूल्यांकन करना, अभिभावकों के साथ संवाद स्थापित करना तथा प्रशासनिक कार्यों का निर्वहन करना जैसे कार्य उनके दैनिक जीवन का अभिन्न हिस्सा बन जाते हैं, जो अक्सर उनके व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करते हैं।

आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में शिक्षकों पर कार्यभार का दबाव निरंतर बढ़ता जा रहा है। विद्यालयी समय के अतिरिक्त भी उन्हें अनेक प्रकार की जिम्मेदारियों का निर्वहन करना पड़ता है, जिससे उनके पास अपने लिए और अपने परिवार के लिए समय की कमी हो जाती है। विशेष रूप से सरकारी शिक्षकों को कई बार गैर-शैक्षिक कार्यों जैसे सर्वेक्षण, चुनाव ड्यूटी और अन्य प्रशासनिक दायित्वों में भी संलग्न किया जाता है, जिससे उनके मूल शैक्षिक कार्य प्रभावित होते हैं। इसके अतिरिक्त, डिजिटल तकनीकों के बढ़ते उपयोग ने शिक्षकों के कार्य को और अधिक जटिल बना दिया है, जिससे मानसिक दबाव में वृद्धि हुई है।

कार्य-जीवन असंतुलन के परिणामस्वरूप शिक्षकों के शारीरिक, मानसिक और सामाजिक जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। लगातार कार्य करने और पर्याप्त विश्राम न मिलने के कारण वे थकान, अनिद्रा और अन्य स्वास्थ्य समस्याओं से ग्रस्त हो सकते हैं। मानसिक स्तर पर यह असंतुलन तनाव, चिंता और अवसाद जैसी समस्याओं को जन्म देता है, जो उनकी कार्यक्षमता को प्रभावित करता है। इसका सीधा प्रभाव विद्यार्थियों के अधिगम स्तर पर भी पड़ता है, क्योंकि एक तनावग्रस्त शिक्षक प्रभावी शिक्षण करने में सक्षम नहीं होता।

विभिन्न सैद्धांतिक दृष्टिकोण यह स्पष्ट करते हैं कि कार्य-जीवन संतुलन एक बहुआयामी अवधारणा है, जो व्यक्तिगत, सामाजिक और संस्थागत कारकों से प्रभावित होती है। जब व्यक्ति की विभिन्न भूमिकाएँ परस्पर टकराती हैं, तो तनाव उत्पन्न होता है, जो अंततः असंतुलन का कारण बनता है। इसी प्रकार, कार्य और व्यक्तिगत जीवन के बीच पारस्परिक प्रभाव भी इस समस्या को और जटिल बना देता है।

इस स्थिति में सुधार के लिए आवश्यक है कि व्यक्तिगत स्तर पर शिक्षक समय प्रबंधन एवं मानसिक स्वास्थ्य पर ध्यान दें, जबकि संस्थागत स्तर पर प्रशासन को कार्यभार को संतुलित करने और सहयोगात्मक वातावरण प्रदान करने की दिशा में कार्य करना चाहिए। नीतिगत स्तर पर भी यह आवश्यक है कि शिक्षकों को अनावश्यक गैर-शैक्षिक कार्यों से मुक्त रखा जाए और उनके कार्य समय को व्यवस्थित किया जाए।

अंततः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि शिक्षकों का कार्य-जीवन संतुलन शिक्षा प्रणाली की गुणवत्ता से गहराई से जुड़ा हुआ है। यदि शिक्षक संतुलित, स्वस्थ और संतुष्ट होंगे, तो वे विद्यार्थियों को बेहतर शिक्षा प्रदान कर सकेंगे, जिससे समाज के समग्र विकास को बल मिलेगा।

संदर्भ ग्रंथ :

1. Ahuja, R. (2019). Research methods. Rawat Publications.
2. Best, J. W., & Kahn, J. V. (2006). Research in education (10th ed.). Prentice Hall of India.
3. Day, C. (2004). A passion for teaching. Routledge.
4. Greenhaus, J. H., & Allen, T. D. (2011). Work–family balance: A review and extension of the literature. Journal of Management, 37(1), 10–38.

5. Hargreaves, A. (1994). Changing teachers, changing times: Teachers' work and culture in the postmodern age. Teachers College Press.
6. Kyriacou, C. (2001). Teacher stress: Directions for future research. Educational Review, 53(1), 27–35.
7. OECD. (2019). Teachers and school leaders as lifelong learners. OECD Publishing.
8. Skaalvik, E. M., & Skaalvik, S. (2015). Job satisfaction, stress and coping strategies in the teaching profession. Teaching and Teacher Education, 45, 181–192.
9. UNESCO. (2021). Teachers at the heart of education recovery. UNESCO Publishing.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 177-181
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

“प्राचीन काल में उत्तर भारत के नगरों का अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक परिदृश्य ”

दामिनी कुमारी
शोधार्थी, इतिहास विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उत्तर प्रदेश 221002

प्राचीन काल में उत्तर भारत के नगरों का अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक परिदृश्य प्राचीन भारतीय इतिहास के उस महत्वपूर्ण परिवर्तनशील चरण का अध्ययन प्रस्तुत करता है, जिसमें राजनीतिक एकीकरण, नगरीकरण, मुद्रा-प्रणाली तथा व्यापारिक संरचनाओं के क्रमिक विकास ने भारतीय उपमहाद्वीप को व्यापक अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक तंत्र से जोड़ा। चौथी शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर छठी शताब्दी ईस्वी तक का काल केवल साम्राज्यों के उदय और पतन का समय नहीं था, बल्कि यह आर्थिक पुनर्गठन, शहरी विस्तार और व्यापारिक सक्रियता का भी एक महत्वपूर्ण दौर था। इस अवधि में उत्तर भारत के नगर केवल प्रशासनिक इकाइयाँ नहीं रहे, बल्कि वे उत्पादन, विनिमय और वितरण की संगठित एवं जटिल प्रक्रियाओं के प्रमुख केंद्र बनकर उभरे।

महाजनपद काल से प्रारंभ हुई नगरीकरण की प्रक्रिया मौर्य काल में एक सुदृढ़ राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत अधिक व्यवस्थित हुई तथा गुप्त युग में उसका विशिष्ट आर्थिक स्वरूप और अधिक स्पष्ट रूप से सामने आया। राजनीतिक एकता ने व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा, कर-प्रणाली की नियमितता तथा प्रशासनिक नियंत्रण को स्थिरता प्रदान की, जिसके फलस्वरूप वाणिज्यिक गतिविधियों के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ निर्मित हुईं।[1]

मौर्य प्रशासन के अंतर्गत आर्थिक जीवन पर राज्य की निगरानी और संरक्षण ने व्यापारिक व्यवस्था को संगठित आधार प्रदान किया। नगरों में श्रेणी-संगठन, शिल्प-उत्पादन, बाजार संरचना तथा मुद्रा-प्रचलन का विकास इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि आर्थिक व्यवस्था सामाजिक और राजनीतिक ढाँचे से घनिष्ठ रूप से संबद्ध थी।[2]

इस अवधि में व्यापार केवल आंतरिक स्तर तक सीमित नहीं रहा, बल्कि भारत ने पश्चिम एशिया, रोमन साम्राज्य तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ व्यापक संपर्क स्थापित किया। इस प्रकार के अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक संबंधों के प्रमाण साहित्यिक ग्रंथों, अभिलेखों तथा मुद्राशास्त्रीय सामग्री में प्राप्त होते हैं। व्यापारिक संघों, श्रेणियों तथा दान-संबंधी अभिलेख नगरों की आर्थिक सक्रियता को प्रत्यक्ष रूप से प्रमाणित करते हैं।[3]

गुप्त काल में स्वर्ण मुद्राओं की प्रचुरता और उनके व्यापक उपयोग से आर्थिक समृद्धि तथा व्यापारिक उन्नति का संकेत मिलता है। समुद्री और स्थलमार्ग विशेषकर उत्तरापथ और दक्षिणापथ ने उत्तर भारत के नगरों को मध्य एशिया, चीन तथा रोमन विश्व से जोड़ा, जिससे अंतरमहाद्वीपीय संपर्क सुदृढ़ हुआ। भारतीय वस्त्र, मसाले, रत्न तथा अन्य विलासितापूर्ण वस्तुएँ विदेशी बाजारों में अत्यधिक मांग में थीं, जिसका प्रमाण विदेशी स्रोतों तथा भारत में प्राप्त रोमन स्वर्ण मुद्राओं से मिलता है।[4]

उपरोक्त ऐतिहासिक, साहित्यिक, अभिलेखीय तथा पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर यह अध्ययन इस प्रश्न की जांच करता है कि उत्तर भारत के नगर किस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रमुख केंद्र के रूप में विकसित हुए तथा गुप्तकालीन समृद्धि का आधार किस सीमा तक व्यापारिक विकास पर आधारित था। इस शोध का उद्देश्य मौर्य से गुप्त काल के मध्य उत्तर भारत के नगरों में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के स्वरूप, विकास तथा उसके सामाजिक-आर्थिक प्रभावों का विश्लेषण करना है।

उत्तर भारत के नगरों में इस काल के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का अध्ययन बहुआयामी स्रोतों पर आधारित है। यह विषय केवल आर्थिक गतिविधियों तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें राजनीतिक संरचना, सामाजिक संगठन, अभिलेखीय साक्ष्य, मुद्रा-प्रणाली तथा समुद्री एवं स्थलमार्गीय संपर्कों का समन्वित विश्लेषण अपेक्षित है।

मौर्य साम्राज्य के उदय के साथ उत्तर भारत में राजनीतिक एकता स्थापित हुई, जिसने व्यापारिक गतिविधियों को स्थिर आधार प्रदान किया। केंद्रीकृत प्रशासनिक व्यवस्था ने व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा सुनिश्चित की। पाटलिपुत्र साम्राज्य की राजधानी होने के कारण न केवल प्रशासनिक बल्कि व्यापारिक गतिविधियों का भी प्रमुख केंद्र था। [5]

गंगा के किनारे स्थित यह नगर पूर्व और पश्चिम के मध्य संपर्क का महत्वपूर्ण माध्यम बना। व्यापारिक व्यवस्था राजकीय नियंत्रण में संचालित होती थी और राज्य मार्गों, कर-प्रणाली तथा परिवहन साधनों पर नियंत्रण रखता था, जिससे व्यापार में स्थिरता आई। स्थलमार्ग विशेष रूप से महत्वपूर्ण थे। उत्तरापथ और दक्षिणापथ जैसे मार्गों ने उत्तर भारत को पश्चिम एशिया तथा दक्षिण भारत से जोड़ने में प्रमुख भूमिका निभाई। मौर्यकाल में शिल्प और उद्योग नगरों में केंद्रित थे, जिनमें धातु शिल्प, वस्त्र निर्माण तथा हस्तशिल्प उत्पाद निर्यात के आधार बने। इस काल में भारत का पश्चिमी एशिया और भूमध्यसागरीय क्षेत्रों से अप्रत्यक्ष संपर्क था, जो मुख्यतः स्थलमार्गों तथा मध्यस्थ व्यापारियों के माध्यम से स्थापित हुआ। राज्य द्वारा संरक्षित व्यापारिक ढाँचे ने नगरों को आर्थिक गतिविधियों का केंद्र बना दिया, जिससे नगरीकरण और व्यापार का संयुक्त विकास हुआ।[6]

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के विकास में मार्ग-संरचना की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। मौर्यकाल में मार्गों का निर्माण और संरक्षण राज्य के अधीन था। नदीमार्गों का भी व्यापक उपयोग होता था। गंगा और उसकी सहायक नदियाँ वस्तुओं के परिवहन का प्रमुख साधन थीं। समुद्री मार्गों का विकास क्रमिक रूप से हुआ, परंतु उनकी नींव प्राचीन काल में ही रखी जा चुकी थी। भारतीय नाविक अरब सागर और बंगाल की खाड़ी के माध्यम से दूरस्थ क्षेत्रों तक पहुँचते थे। यद्यपि उत्तर भारत के नगर समुद्रतटीय नहीं थे, फिर भी वे आंतरिक व्यापारिक नेटवर्क के माध्यम से समुद्री संपर्कों से जुड़े हुए थे।[7]

मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात राजनीतिक एकता में कुछ कमी अवश्य आई, किंतु इससे व्यापारिक गतिविधियाँ समाप्त नहीं हुईं। इसके विपरीत, उत्तर-मौर्य काल में व्यापार के स्वरूप में परिवर्तन दिखाई देता है। क्षेत्रीय शक्तियों के उदय के बावजूद व्यापारिक मार्गों की निरंतरता बनी रही। विशेषतः उत्तरापथ मार्ग ने उत्तर भारत को उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों तथा मध्य एशिया से जोड़े रखा। कुषाण शासकों के काल में यह क्षेत्र अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के व्यापक जाल

से जुड़ गया। उनका साम्राज्य मध्य एशिया तक विस्तृत था, जिससे स्थलमार्गीय व्यापार को नया आयाम मिला। इस काल की एक प्रमुख विशेषता रोमन साम्राज्य के साथ व्यापारिक संबंधों का विस्तार था। भारतीय मसाले, वस्त्र, रत्न तथा हाथीदांत जैसे उत्पाद पश्चिमी बाज़ारों में अत्यधिक लोकप्रिय थे। रोमन स्वर्ण मुद्राओं की प्राप्ति तथा भारतीय स्वर्ण सिक्कों का प्रचलन व्यापार की व्यापकता का संकेत देता है। मथुरा और पाटलिपुत्र जैसे नगर उत्पादन और वितरण के केंद्र के रूप में इस व्यापारिक प्रक्रिया से जुड़े हुए थे। स्वर्ण के प्रवाह ने स्थानीय अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया और मुद्रा-आधारित लेन-देन को प्रोत्साहित किया, जिससे नगरीय अर्थव्यवस्था को बल मिला।[8]

मथुरा इस काल में धार्मिक और व्यापारिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण नगर के रूप में विकसित हुआ। इसकी भौगोलिक स्थिति इसे उत्तरापथ से जोड़ती थी। यहाँ से प्राप्त अभिलेख और मूर्तिकला यह दर्शाते हैं कि शिल्प-उद्योग और व्यापारिक संगठन सक्रिय थे। वैशाली और कौशांबी जैसे नगर भी व्यापारिक गतिविधियों के केंद्र बने रहे। ये नगर केवल स्थानीय बाजार नहीं थे, बल्कि दीर्घ दूरी के व्यापार से भी जुड़े हुए थे।[9]

अभिलेखों में "श्रेष्ठी", "सार्थवाह" और "सेठ" जैसे पदों का उल्लेख व्यापारिक संगठन की सुदृढ़ता को दर्शाता है। यह केवल आर्थिक गतिविधि नहीं थी, बल्कि सामाजिक प्रतिष्ठा और राजनीतिक प्रभाव से भी संबंधित थी। मुद्राशास्त्रीय साक्ष्य विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि स्वर्ण मुद्राओं का व्यापक प्रचलन बड़े पैमाने पर व्यापारिक लेन-देन और बाहरी संपर्कों का संकेत देता है।

उत्तर-मौर्य काल में व्यापारिक संघों या श्रेणियों की भूमिका अधिक स्पष्ट हो जाती है। अभिलेखों में श्रेणी-प्रधानों और श्रेष्ठियों का उल्लेख मिलता है। ये संघ केवल आर्थिक संगठन नहीं थे, बल्कि सामाजिक और धार्मिक गतिविधियों में भी भाग लेते थे। मंदिरों और बौद्ध विहारों को दिए गए दान उनकी आर्थिक शक्ति का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। यह स्थिति इस बात को दर्शाती है कि राज्य के प्रत्यक्ष नियंत्रण में कमी के बावजूद व्यापारिक संगठन स्वतंत्र रूप से कार्य करने में सक्षम थे।[10]

कुषाण साम्राज्य ने उत्तर भारत को मध्य एशिया और रेशम मार्ग से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस मार्ग के माध्यम से भारत, चीन और रोमन विश्व के बीच वस्तुओं और विचारों का आदान-प्रदान हुआ। उत्तर भारत के नगर इस प्रक्रिया के महत्वपूर्ण केंद्र बने। कुषाण शासकों की स्वर्ण मुद्राएँ अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की सुदृढ़ता को दर्शाती हैं। मुद्रा पर अंकित ग्रीक और भारतीय प्रतीकों का मिश्रण सांस्कृतिक संपर्क का प्रमाण है। मथुरा और तक्षशिला जैसे नगर सांस्कृतिक और आर्थिक संगम स्थल के रूप में उभरे।[11]

उत्तर-मौर्य काल में नगरीकरण की प्रक्रिया जारी रही, किंतु उसका स्वरूप परिवर्तित हुआ। नगर अब केवल प्रशासनिक केंद्र नहीं रहे, बल्कि उत्पादन और वितरण के संगठित स्थल बन गए। शिल्प उत्पादन नगरों में केंद्रित था, जिससे निर्यात को आधार मिला। व्यापारिक समृद्धि ने सामाजिक संरचना को भी प्रभावित किया और व्यापारी वर्ग की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई।[12]

गुप्त काल में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का पूर्ण अवसान नहीं हुआ, बल्कि उसका स्वरूप परिवर्तित हुआ। स्वर्ण मुद्राओं का प्रचलन आर्थिक सक्रियता को दर्शाता है।[13] यद्यपि कुछ इतिहासकार नगरीकरण में मंदता की बात करते हैं, परंतु यह व्यापार के पूर्ण पतन का संकेत नहीं है। बल्कि व्यापारिक मार्गों और संरचना में परिवर्तन अधिक उपयुक्त व्याख्या प्रतीत होती है।

गुप्त काल में समुद्री मार्गों का महत्व बढ़ा और भारतीय संपर्क दक्षिण-पूर्व एशिया तक विस्तृत हुआ। उत्तर भारत के नगर उत्पादन और वितरण केंद्र के रूप में समुद्री व्यापार से जुड़े रहे।[14]

गुप्तकालीन अभिलेखों से यह स्पष्ट होता है कि व्यापारिक वर्ग सक्रिय था। "श्रेष्ठी" और "सार्थवाह" जैसे पदों का उल्लेख उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा को दर्शाता है।[15]

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ने सांस्कृतिक आदान-प्रदान को भी बढ़ावा दिया। कला, स्थापत्य और धार्मिक विचारों में विविधता इसका प्रमाण है।

मौर्य से गुप्त काल तक व्यापारिक संरचना में निरंतरता और परिवर्तन दोनों दिखाई देते हैं। मौर्य काल में केंद्रीकरण, उत्तर-मौर्य काल में व्यापारिक संघों की सक्रियता और गुप्त काल में विकेंद्रीकरण प्रमुख विशेषताएँ थीं।[16]

नगरों ने उत्पादन, विनिमय और वितरण के केंद्र के रूप में कार्य किया और सामाजिक संरचना को प्रभावित किया। गुप्तकालीन नगरीकरण के अवनमन की धारणा को पूर्णतः स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि आर्थिक गतिविधियों की निरंतरता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। इसे "अवनमन" के बजाय "रूपांतरण" के रूप में समझना अधिक उपयुक्त है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ने सांस्कृतिक और आर्थिक दोनों स्तरों पर व्यापक प्रभाव डाला और उत्तर भारत के नगर इस प्रक्रिया के प्रमुख केंद्र बने रहे।

निष्कर्ष

मौर्य से गुप्त काल तक उत्तर भारत के नगरों में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का विकास एक गतिशील और परिवर्तनशील प्रक्रिया थी, जो विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों से प्रभावित होती रही। यद्यपि समय के साथ व्यापार के स्वरूप में परिवर्तन हुआ, फिर भी उत्तर भारत के नगर निरंतर आर्थिक गतिविधियों के केंद्र बने रहे।

मौर्य काल में केंद्रीकृत शासन ने व्यापार को स्थिरता प्रदान की, उत्तर-मौर्य काल में व्यापारिक संगठनों ने इसे आगे बढ़ाया, और गुप्त काल में विकेंद्रीकृत संरचना के बावजूद व्यापारिक जीवन की निरंतरता बनी रही।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उत्तर भारत के नगर केवल आर्थिक गतिविधियों के केंद्र नहीं थे, बल्कि वे सांस्कृतिक और व्यापारिक संपर्कों के भी महत्वपूर्ण माध्यम थे। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ने नगरीकरण, सामाजिक संरचना और आर्थिक विकास को गहराई से प्रभावित किया और भारतीय इतिहास को दीर्घकालिक दिशा प्रदान की।

संदर्भ ग्रंथ

1. रामशरण शर्मा, प्रारंभिक भारत का परिचय, 2009, पृ. 228 - 234
2. डॉ ओ. पी. सिंह, प्राचीन भारतीय समाज एवं शासन, 2020, पृ. 310 - 321
3. मनोज कुमार सिंह, भारत का आर्थिक इतिहास, द्वितीय संस्करण 2012, पृ. 53 - 62
4. राधाकुमुद मुखर्जी, चंद्रगुप्त मौर्य और उसका काल, 2019, पृ. 247 - 265
5. राधाकुमुद मुखर्जी, भारतीय नौ परिवहन, प्रथम संस्करण 2024, पृ. 19 - 24
6. मनोज कुमार सिंह, भारत का आर्थिक इतिहास 2012, पृ. 54 - 56
7. राधाकुमुद मुखर्जी, भारतीय नौ परिवहन, प्रथम संस्करण 2024, पृ. 92 - 101
8. मनोज कुमार सिंह, भारत का आर्थिक इतिहास,2012, पृ. 56 - 60
9. रामशरण शर्मा, प्रारंभिक भारत का परिचय, 2009, पृ. 191 - 202
10. ओ. पी. सिंह, प्राचीन भारतीय समाज एवं शासन, 2020, पृ. 289 - 293
11. रामशरण शर्मा, प्रारंभिक भारत का परिचय, 2009, पृ. 230 - 233
12. मनोज कुमार सिंह, भारत का आर्थिक इतिहास, द्वितीय संस्करण 2012, पृ. 56 - 60

13. मनोज कुमार सिंह, भारत का आर्थिक इतिहास, द्वितीय संस्करण 2012, पृ. 60 - 62
14. राधाकुमुद मुखर्जी, भारतीय नौ परिवहन, प्रथम संस्करण 2024, पृ. 117 - 123
15. मनोज कुमार सिंह, भारत का आर्थिक इतिहास, द्वितीय संस्करण 2012, पृ. 72
16. मनोज कुमार सिंह, भारत का आर्थिक इतिहास, द्वितीय संस्करण 2012, पृ. 54 - 62

Email ID. damini165@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 182-184
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

‘आधुनिक हिन्दी साहित्य के कुछ हस्ताक्षर’: संस्कृति का कवच

डॉ.एस. लीलाकुमारी अम्मा
प्राचार्य,
केरल हिन्दी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम

निबंध, आधुनिक युग की एक अत्यन्त समृद्ध एवं सशक्त साहित्य विधा है। लेखक और पाठक के बीच सबसे सरल, स्पष्ट और सीधा सरोकार स्थापित करने में यह विधा सर्वाधिक समर्थ है। कहानी, उपन्यास, नाटक जैसी विधाओं के जरिए लेखक परोक्ष रूप से, किसी माध्यम के द्वारा ही जहाँ पाठकों से साक्षात्कार कर पाता है, वहाँ निबंध लेखक अपने को ही पाठकों के सम्मुख साफ पेश कर सकता है।

डॉ. एन. जी. देवकी केरल की प्रतिष्ठित हिन्दी लेखिकाओं में प्रमुख हैं। "आधुनिक हिन्दी साहित्य के कुछ हस्ताक्षर" नामक आलोचनात्मक निबन्ध - संग्रह उनके दस निबन्धों का एक बड़ा ही बोधप्रद तथा उपयोगी संकलन है। ये सभी निबन्ध रचना-विधान की दृष्टि से शोध संपुष्ट विचारात्मक और विवेचनात्मक शैली में लिखित है। इनमें से अधिकांश मानवतावाद, बौद्धतत्व, संस्कृति, इतिहास-बोध, बहुस्थायित्व सिद्धांत पर विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रकाश डालते हैं। कुछ समीक्षा, महात्माओं तथा विशिष्ट आठ साहित्यकारों से संबद्ध हैं। तात्पर्य यह, कि इन निबन्धों के शीर्षकों और वर्ण्य विषयों में पर्याप्त बहुरूपता तथा व्यापकता है।

प्रस्तुत ग्रंथ में संकलित साहित्यिक निबंधों के रचयिता की सर्वाधिक प्रमुख कारयित्री प्रेरणा है उसकी युग चेतना। उसमें राष्ट्रीयता, समाजोत्थान और देश-काल सापेक्ष प्रासंगिकता के प्रति गहरी निष्ठा परिलक्षित होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखिका जन जागरण द्वारा राष्ट्रीयता एवं सांस्कृतिक भावना का प्रसार करने के साथ ही समाज में नवनिर्माण करने के प्रति सर्वतोभावेन समर्पित हैं।

डॉ. देवकी जी के निबंध भाव, भाषा, विषय प्रतिपादन और प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से प्रशंसनीय स्तर पर अधिष्ठित हैं। उनपर डॉ. देवकी जी के गंभीर व्यक्तित्व, पांडित्य और चिन्तन मननशील लेखिका रूप की गहरी छाप पड़ी है। "इन निबन्धों में विचारों की सूक्ष्मता, गहनता, स्पष्टता, वर्ण्यविषय की सागोपांग विवेचन-क्षमता, तर्क प्रवणता, तथ्यान्वेषी प्रवृत्ति और सप्रमाण मत-स्थापन की क्षमता सर्वत्र परिलक्षित होती है। डॉ. देवकीजी ने हिन्दी भाषा प्रयोग पर अपनी जबर्दस्त पकड का जो परिचय अपने निबंधों में दिया है, वह आशचर्यजनक है। उनकी भाषा भी प्रसंगानुसार अभिव्यक्ति की अनुगामिनी है। लेखन पर उनकी अद्भुत धारण शक्ति की छाप सर्वत्र प्रमाणित

होती है। सहृदय, भावुक और संवेदनशील कवयित्री में उदात्ता, प्रायो गिक निष्पत्ति तथा मर्मी लेखिका की आत्मानुभूतिमयी व्यंजनाजत्ति का अद्भुत सामंजस्य मिलती है।

'आधुनिक हिन्दी साहित्य के कुछ हस्ताक्षर' नामक ग्रंथ के प्रारंभिक दी निबंधों में गुप्तकाव्य के बहुमूल्य दो पक्षों का उद्धाटन किया गया है। वर्तमान प्रसंगों में भारत की धार्मिक एकता तथा सांस्कृतिक समन्वय की दृष्टि से गुप्तकाव्य का विशेष महत्व है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में रूढमूल अहिंसा, त्याग, करुणा, विश्वप्रेम जैसे बौद्धतत्व ही आधुनिक मानवतावाद के विधायक हैं, प्रस्तुत संग्रह का पहला निबंध इसका प्रतिनिधित्व करता है। भारतीय पुनरुत्थानवादी काव्यचेतना को आत्मसात कर मैथिलीशरण गुप्त जी ने जिन तीन काव्यों की रचना की, वह प्रस्तुत संग्रह के दूसरे निबंध का वर्ण्य विषय है। तीसरे निबंध में 'रघुवंश', 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' जैसे संस्कृत स्रोतों को आधार मानकर ब्रजभाषा में रचित जयशंकर प्रसादजी की दो काव्य कृतियों का विश्लेषण है। चौथे निबंध में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी की समीक्षा संबंधी मान्यताएँ हैं। उनके अनुसार "उनकी समीक्षात्मक कृतियों राष्ट्रीय संस्कृति का उपादान है।"२ गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के सांस्कृतिक नवोत्थान तथा मानवतावादी जीवन दर्शन का गहन और व्यापक प्रभाव हजारी प्रसाद द्विवेदीजी में परिलक्षित होता है। उनका इतिहासबोध निबन्धों में जाग्रत था। ज्योतिष के आचार्य होने से वे प्राचीन मान्यताओं को समकालीन जीवनमूल्यों की शिला पर कसना चाहते थे। प्रस्तुत संग्रह का पाँचवाँ निबन्ध हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के निबन्धों की इन दिशाओं का उद्घाटन है। "न मानुषान्त श्रेष्ठतरं हि किंचित्" 3 जैसी उक्ति का अनुसरण हज़ारी प्रसाद द्विवेदीजी ने किया है। साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखनेवाले द्विवेदीजी की साहित्य संबन्धी मान्यताएँ छठे निबंध में प्रकट है।

एकांकी - नाटक के प्रवर्तक के रूप में विख्यात डॉ. रामकुमार वर्मा ने प्रथम बार काव्यक्षेत्र में ही तूलिका चलाई। तीन महाकाव्यों, पांच खंडकाव्यों तथा सात गीतिकाव्यों में हिन्दी काव्य क्षेत्र की श्रीवृद्धि करनेवाले रामकुमार वर्माजी का काव्य संसार 'उत्तर छायावादी युग कविर्मनीषि" नामक सातवें निबंध का कथ्य है। 'साहित्य या कलाकृतियों के आस्वादन के समय मानव-मस्तिष्क में अनेक "पैटन" विकसित होते हैं और ये "पेटन" स्थायी हो सकते हैं। प्रत्येक पैटन की अपनी प्रकृति है और मस्तिष्क में बहुस्थायित्वप्रक्रिया का दर्शन कराती है। "आधुनिकीकरणान्या" नामक खंडकाव्य का प्रारंभ हिमालय वर्णन से होता है। बावन पृष्ठों वाले प्रथम दल के तेरह पृष्ठों में हिमालय के बर्फीले वातावरण का चित्रण है। बहुस्थायीत्व सिद्धांत के आधार पर अन्यत्र अचर्चित "महाप्रस्थान" के हिमालय वर्णन के महत्व को प्रकाश में लाना आठवाँ निबन्ध का उद्देश्य है।

हिन्दी व्यक्ति व्यंजक निबंधों में भारतीय संस्कृति के महान तत्व अब भी सुरक्षित है। प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक तत्वों के प्रति जो आस्था है यह डॉ. विद्यानिवास मिचजी के व्यक्ति व्यंजक निबन्धों में परिलक्षित है। "व्यक्तिव्यंजक निबन्धों में भारतीय संस्कृति की अस्मिता" शीर्षक नवें निबंध में मिश्रजी के व्यक्तिव्यंजक निबंध विषयक विचारों का उद्धाटन किया गया है, साथ ही भारतीय संस्कृति की मूल मान्यताओं, भारतीय संस्कृति के आराध्यों तथा भारतीय संस्कृति के मांगलिक प्रतीकों पर लिखे गये उनके निबंधों का विवेचन है। व्यक्ति-व्यंजकता की प्रधानता के कारण ललित निबन्धों में भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति होती है।

लोक संस्कृति का भारतीय संस्कृति में चित्रण कुबेरनाथ रायजी के ललित निबंधों में स्पष्ट है। रायजी के निबंधों में एक ओर भारतीय संस्कृति का स्वतंत्र चित्रण उपलब्ध है तो दूसरी ओर पुराण ग्रंथों के आधार पर भारतीय संस्कृति का चित्रण । "ललित निबंधों में संस्कृति बोल उठती है" नामक दसवाँ निबन्ध का प्रतिपाद्य विषय यही है।

अन्त में परिशिष्ट है। इसके अन्तर्गत इसमें संकलित आठ साहित्यकारों के संक्षिप्त जीवन-परिचय तथा उनके रचना- संसार को सम्मिलित किया गया है।

डॉ. देवकीजी का भाषा-प्रयोग प्रसाद गुण संपन्न है। उन्होंने सामान्य हिन्दी छात्र को सदैव अपने समक्ष पाठक या जिज्ञासु के रूप में रखा है और उसके ज्ञान-संवर्द्धन को लक्ष्य-रूप में स्वीकार किया है। फलतः उनका प्रगाढ वैदुष्य उनके इस उद्देश्य और प्रयास पर कहीं से भी हावी होता नहीं प्रतीत होता। यहाँ तक कि समीक्षा संबन्धी विषयों के विवेचन में भी भाषा और अभिव्यक्ति का सारल्य अक्षुण्ण है। कहीं-कहीं लयात्मक गद्य के कारण निबंध की शैली में चारुता, लालित्व, रसात्मकता आदि आ जाती है। प्रवन्धन का निर्वाह ठीक हुआ है लेखिका की पूरी दृष्टि का निचोड़ शीर्षक में होती है। शीर्षक सार्थक है, अपने ढंग के अनूठे भी। कतिपय शीर्षक अतिसारगर्भित सिद्ध हुए हैं और एक मनोरम वातावरण की सर्जना करते हैं।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि 'आधुनिक हिन्दी साहित्य के कुछ हस्ताक्षर' का प्रायः हर निबंध अपने विवेच्य विषय के संबन्ध में अधिकतम जानकारी देने का उद्देश्य अपने कलेवर में समाहित किये हुए हैं। प्रत्येक ज्ञानप्रद तथ्य उचित यथोचित उदाहरण से भी संपुष्ट है। इसी कारण निबन्ध का एक सामान्य मा अंगीभूत रोचकता का तत्व, अपना अभाव खटकने नहीं देता। इसके साथ ही इस संग्रह के निबन्ध राष्ट्रीय भावना और भावात्मक एकता की उदात्त अनुभूति के प्रेरणास्रोत हैं।

आशा है कि इस निबंध संग्रह का हिन्दी जगत में भरपूर म् स्वागत होगा और पाठकों के ज्ञान-क्षितिज के विस्तार में इसकी उपयोगिता प्रशंसित होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य के कुछ हस्ताक्षर - डॉ. एन. जी देवकी, पृ. 67
2. भारतीय जनता के उद्बोधनार्थ उद्रबोघनार्थ गुप्तकाव्य - डॉ. एन.जी देवकी, पृ. 19
3. समीक्षा राष्ट्रीय संस्कृति का उपादान है - वही, पृ.43
4. कलास्वादन प्रक्रिया में बहुस्थायित्व सिद्धान्त तथा महाप्रस्थान - पृ.71

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 185-191
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

21 वी सदी की कविता में चित्रित नारी जीवन विशेष संदर्भ में 'कवयित्रि अनामिका'

डॉ.भूपेंद्र सर्जेराव निकाळजे
हिंदी विभाग,
राधाबाई काळे महिला महाविद्यालय अहिल्यानगर

शोध सारांश:- 21 वी सदी में नारी की भूमिका बहुआयामी और महत्वपूर्ण है।वह जीवन के हरक्षेत्र में पुरुषों के समान कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है। समस्त मानव समाज में आधी जनसंख्या नारियों की हैं। समाज के विकास के लिए जरूरी है कि पुरुष के तरह नारी भी प्रगति करें। विकास की मुख्यधारा में नारी शामिल हो तभी एक सुखमय समाज की कल्पना की जा सकती है। नारी वर्तमान में भी उसी पुरानी पीड़ा के तले दबी हुई है। नारी जीवन के हर क्षेत्र में आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक शोषण का शिकार होती आयी हैं परंतु इन सबके साथ नारी पारिवारीक शोषण का भी शिकार होती हैं। भारतीय नारी ने पुरुष को अपने जीवन में सर्वेसर्वा मान लिया है। पुरुष के बिना वह खुद को अधूरा मानती है। घर के प्रत्येक कार्य में वह पुरुष की राय लेती है। नारी अपने आप को बेटी, पत्नी, बहन तथा मां बनकर रहना ही उसने स्वीकार किया है। नारी ने एक जीव के रूप में जन्म तो लिया है मगर इसके बाद पुरुष की सभ्यता और सत्ता के प्रति अपना सब कुछ समर्पित करती है। नारी के जीवन से जुडी समस्याओं बंधनों और उससे मुक्ति के लिए अपनी कलम को सशक्त बनाना है।

21 वीं शताब्दी का पहला वर्ष महिला 'सशक्तिकरण' के रूप में मनाया गया और यह उम्मीद साकार होती दिखाई दी की इक्कीसवी सदी महिलाओं की सदी है। भारत सरकार ने 20 मार्च 2001 को राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण नीति अपनाई। आजादी के 75 वर्षों से अधिक समय में नारी का सामाजिक, आर्थिक एवं मानसिक स्थिति में उत्साहवर्धन परिवर्तन आया है, तथा इसके साथ-साथ पुरुष मानसिकता भी कुछ-कुछ बदलती है। हम देखते हैं हजारों वर्ष से चली आयी मान्यताओं, रूढ़ियों, विश्वासों एवं नारी के प्रति पुरुष के दृष्टिकोण आदि में कुछ सकारात्मक परिवर्तन हुए है। शिक्षा वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास सामाजिक आर्थिक सुधार एवं वैश्वीकरण आदि में मनुष्य को नई सोच और नई दिशाएं प्रदान की है। नारी चार दिवारों से बाहर आकर शिक्षा के कारण वह कामकाजी नारी बन गई हैं,लेकिन चंद पढ़ी लिखी नारी अपना जीवन अच्छी तरह से जी रही है किंतु आज भी ऐसी महिला है जो शिक्षा से वंचित है। उन्हे घर के कामों तथा चार दिवारों के भितर अपना घुटन भरा जीवन जीना पड़ता है। इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं तो नारी के अस्तित्व को ही नकारा गया है। पुरणी रूढ़ी परंपरा के कारण

नारी का जीवण कठिन था। इसी को लेकर आधुनिक युग में महापुरुषों ने आवाज उठाई साहित्य में भी यह विमर्श के रूप में हमारे सामने आया है। नारी विमर्श जितना नारी की सामाजिक आर्थिक राजनीतिक सांस्कृतिक मुक्ति का पक्षधर है उतना ही वैयक्तिक मुक्ति चाहता है।

21वी सदी की नारी को जब हम देखते हैं तो भारतीय नारी की सामाजिक स्थिति एवं समस्याओं के अनेक रूप है। जिनका सामान्यीकरण कर पाना असंभव है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक आते-आते इस देश के नगरों एवं ग्रामीण परिवेश में नारी को अलग-अलग चुनौतियों से जूझना पड़ाता है। भारतीय नारी ने पुरुष को अपने जीवन में सर्वेसर्वा मान लिया है। पुरुष के बिना वह खुद को अधूरा मानती है। घर के प्रत्येक कार्य में वह पुरुष की राय लेती है। नारी अपने आप को बेटी, पत्नी, बहन तथा मां बनकर रहना ही उसने स्वीकार किया है। नारी ने एक जीव के रूप में जन्म तो लिया है मगर इसके बाद पुरुष की सभ्यता और सत्ता के प्रति अपना सब कुछ समर्पित करती है। नारी को घर के चार दिवार तथा समाज के भीतर उसे नारी होने का संकेत दिया जाता है। नारी को खुलकर कहीं स्वतंत्रता नहीं दी जाती है। प्रसिद्ध फ्रेंच लेखिका सीमोन द बोआ ने नारी की स्थिति को स्पष्ट करते हुए 'द सेकंड सेक्स' नामक पुस्तक में लिखा है, "औरत को औरत होना सिखाया जाता है औरत बनी रहने के लिए अनुकूल बनाया जाता है।"[1] नारी का आत्मसंघर्ष अपनी निरंतर में प्रत्येक युग में विद्यमान रहा है। ऐंतिहासिक दृष्टि से नारी के प्रति व्यवस्था का रवैया निश्चित मानदंडो आदर्शों के नियम व्यवहारों से संचालित होता रहा है।जिसमें स्त्री को तय कर दी गई भूमिका में निर्धारित आदर्श आचारसंहिता के अनुसार जीना है।जिसके निर्धारण का अधिकार शताब्दियों से पुरुष के पास सुरक्षित रखा है।इन्हीं सब आघातों को सहकर साहित्य में नारी जीवन का चित्र हमारे सामने निर्माण करने का प्रयास 21 वी सदी की कवयित्रि अनामिका, कात्यायनी, गगन गिल, रंजना, सविता सिंह, मैत्रेयी पुष्पा और अलका प्रमोद इन लेखिकाओं ने किया है।

आधुनिक हिंदी कवयित्रि में अनामिका अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने अब तक छह काव्य संग्रह तथा तीन उपन्यास एक कहानी संग्रह प्रकाशित हैं। इन काव्य संग्रहों में संग्रहित कविताओं के माध्यम से कवयित्री ने नारी जीवन के विविध पहलुओं को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। उनकी काव्य कृति के आधार पर उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार से नवाजा गया है। अनामिका समकालीन हिंदी कविता की सशक्त हस्ताक्षर है। अनामिका की कविताओं में संसार की प्रत्येक नारी का दुख और उसके संदर्भ व्याख्यायित हैं। अनामिका की कविताओं में नारी संसार अत्यंत समृद्ध और आजाद है। उनकी कविताओं में नारी शोषण पीड़ा का वृतांत है, तो उनसे उबार ने की नसीहतें भी हैं। अनामिका निरंतर अपने लेखन से पितृसत्तात्मक की परत दर परत हो उघाडती चलती है, पर पुरुषों के प्रति वह कभी निर्मम नहीं होती।वह पितृसत्तात्मक विचारधारा का विरोध करती है पर उसकी चपेट में फंसे हुए पुरुषों को भी गहरी ममता के साथ दुलारती है। वे अपनी कविताओं में नारी के दुख दर्द पीड़ा तथा नारी जीवन से जुड़ी अनेक समस्याओं को उद्घाटित करती है। नारी जीवन की व्यथा को अपने काव्य में अभिव्यक्त करते समय वह स्वयं मानती है "कविता कोई मुद्दा लेकर नहीं चलती वह अपनी मौज में उमड पड़ती है ठीक वैसे ही जैसे नदी अपनी नैसर्गिक ढंग से बह निकलती है। वह इसलिए बहती है कि उसके तट पर सभ्यताएं बसे पर यह भी एक बड़ा सच है कि उसके तट पर सभ्यताए बस ही जाती है। ठीक इसी तरह कविता लिखने पढ़ते हुए अच्छाई आपकी हड्डियों में फूल की तरह चटक ही जाती है। पर याद रखने की बात यह है कि अच्छाई कविता का बाईप्रोडक्ट है।कविता लिखते समय कोई कमर नहीं कसता की पढ़नेवाले का मनोवैज्ञानिक परिष्कार करके रहेंगे। उसकी ग्रंथियां मिटाकर रहेंगे।जैसे सूलझे उलझे हुए व्यक्ति के पास बैठकर पेड़ की छाया में बैठने का एहसास होता है और वृत्तीयाँ अपने आप ही शांत हो जाती है वैसे ही सुलझी हुई समझदार रचना एक कौंध में आपका मर्म कुछ ऐसी छूती है, कम से कम कुछ देर की खातिर आपकी वृतियाँ शांत हो जाए और बाद तक भी जब जब स्मृती में वह कौंधे आपका संवेदन जग जाए और आप मनुष्येत्तर हो जाएँ"[2]

नारी स्वतंत्रता की पक्षधर अनामिका का संपूर्ण साहित्य नारी की संवेदनात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति है। अनामिका की कविता में नारी जीवन को व्यक्त किया है। समाज में लड़का और लड़की को पढाते समय लड़के को पूर्ण स्वतंत्रता दी जाती है।लेकिन लड़की को मर्यादा में बांधा जाता है। अप्रत्यक्ष उसकी पढ़ाई में ज्यादा ध्यान नहीं दिया जाता है। नारी प्रयास करती है आगे जाने का पढ़ लिखकर बड़ा बनने का लेकिन उसे बंधन डाले जाते हैं। इसलिए यह कविता 'स्त्रियाँ'

"एक दिन हमने कहा
हम भी इंसान हैं
हमें कायदे से पढ़ो एक -एक अक्षर
जैसे पढा होगा बी.ए के बाद
नौकरी का पहला विज्ञापन
देखा तो ऐसे
जैसे की ठिठुरते हुए देखी जाती है
बहुत जलती हुई आग"[3]

नारी जीवन के पक्ष को उजागर करती यह कविता नारी को संपूर्ण शिक्षा के प्रति आगाज करती है। इस पूरी कविता में स्त्री लेखन और उसके माध्यम से स्त्री जीवन के संघर्ष को समझने के नए दृष्टि विस्तार को अनामिका आवश्य समझती है। यहां अनामिका अपनी कविताओं मे नारी जीवन को स्पष्ट करती है कि वह स्वच्छंद होकर ना पढ़ सकती है। ना घूम सकती है। ना बोल सकती है। वह सिर्फ सुन सकती है। बिना कुछ कहे उसने चुपचाप सहना है। पुराणों में यह भी कहा गया है की "न स्त्री स्वांतत्र्यमर्हति"[4] यानी स्वतंत्रता पर नारी का कोई अधिकार नहीं है। इस तरह से नारी का जीवन होता है।

अनामिका स्त्री विमर्श की प्रबल व्याख्याता बेहतरीन कवयित्रि,उपन्यासकार और आलोचक के रूप में सामने आती है। इनके लेखन में गजब की धार है, क्योंकि अनामिका ने जीवन में जो देखा सहा भोगा उसे अपनी कलम से लिखा है। उनकी कलम और सोच ने स्त्रियों को एक अलग मुकाम दिया है। नारी होने के नाते उनमें स्त्रियों के प्रति संवेदनात्मक लगाव दिखाई देता है। नारी और उनसे जुड़ा मुद्दा उनके हमेशा करीब रहा है। इसलिए वे स्त्रियों से जुड़े मुद्दों को जमीनी हकीकत के साथ पाठकों के समक्ष रखती है। अनामिका की कविताओं में संघर्ष करती नारी का चित्रण बड़े मार्मिक ढंग से किया है। 'नमक' नाम की कविता में यह स्पष्ट होता है ।

"पूछिए उन औरतों से
कितना भारी पड़ता है उनको
उनके चेहरे का नमक
जीने नमक की कीमत
करनी होती है अदा
उन नमकहलालो सें"[5]

अनामिका की कविता गंभीर गहन अर्थवता को दर्शाती है। इनकी कविताओं में मध्यम वर्ग की नारियों की पीड़ा संघर्ष एवं भावनाओं का चित्रण हुआ है, परंतु कहीं भी उसे दयनीय रूप में नहीं चित्रित किया गया है। अपितु वे संघर्ष में भी अदम्य जिजीविषा का परिचय देती है।उनकी 'दरवाजा' नामक कविता में यह स्पष्ट होतो है।

"मैं एक दरवाजा थी
मुझे जितना पीटा गया
मैं उतना ही खोलती गई"[6]

अनामिका इतिहास, पौराणिक गाथाओं से लेकर आधुनिक परिप्रेक्ष्य में नारी की स्थिति की निष्पक्ष जांच पड़ताल करती है। इनकी कविताए इतनी गंभीर है जो पाठक को भाव विभोर होकर कर सोचने पर मजबूर करती है। कवयित्री अपनी कविताओं में नारी द्वारा भोगे हुए यथार्थ का वर्णन बड़ी बारीकी के साथ करती है। 'बीजाक्षर' काव्य संग्रह में नारी जीवन की व्यथा, प्रेम, मैत्री, आम आदमी का चित्रण किया गया है। दुनिया में एक नारी के जैसा मन किसी का नहीं होता परंतु उसका दुख भी अधिक है, लेकिन वह अपने दुःख को छुपाती है। दिखाती नही नारी में सहने की क्षमता अधिक होने के कारण वह अपने दुःख वेदणा को दिखाती नही है। समाज ने उसे हमेशा पिछे ही रखा हैं।

"सड़क की तरह नेकदिल औरत
दुनिया में कोई नहीं होता
बहुत बड़ी है इसकी गोद
और बहुत नमकीन
होंटो के ऊपर की धूल
पैर सड़क पर आदमी के वजूद का
सबसे प्रमाणिक
हस्ताक्षर है"[7]

कवयित्री नारी मन की विशालता उसकी पीड़ा, वेदना और साहस को अभिव्यक्त करती है।'अनुष्टुप' काव्य संग्रह के विषय में केदारनाथ सिंह लिखते हैं "इस संग्रह की कविताएं पाठकों के भीतर एक नई कलात्मक रुचि जगाएगी और साथ ही नए स्त्री लेखन के प्रति एक गहरी सृजनात्मक दृष्टि प्रधान करेगी।"[8] इस तरह से अनामिका का लेखन समाज को प्रभावित करता है।

'खुरदुरी हथेलियां' नामक काव्य संग्रह में कवयित्री नारी जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त करती हुई नारी के प्रति पूर्ण संवेदना व्यक्त करती है। साथ ही नारी-दृष्टि से इस बृहत्तर समाज की क्लिष्ट विंडबनाओ को उभारने का प्रयास करती है। बचपन से ही उसे इस बात का एहसास किया जाता है, नारी पराया धन है। इसलिए अपने माँ बाप के घर में ही वह बेजगह होती हैं। 'बेजगह' कविता में कवयित्री लिखती है।

"राम पाठशाला जा
राधा खाना पक्का
राम आ बताशा खा
राधा झाड़ू लगा
भैया अब सोएगा
जाकर बिस्तर बिछा
आहा नया घर
राम देख यह तेरा कैमरा है
और मेरा?" [9]

भारतीय समाज में नारी का जीवन कैसा है इसे अनामिकाजी ने 'बेजगह' कविता में व्यक्त किया है। भारतीय नारी हमेशा पिता, पति और पुत्र पर निर्भर रहती है। विवाह पूर्व पिता, विवाह के बाद पति और बुढ़ापे में पुत्र पर निर्भर रहती है। पहले से ही भारतीय समाज व्यवस्था ने नारी का जीवन बेजगह किया है।अनामिका अपनी कविता 'बंगाल का काला जादू' इस कविता में नारी के जीवन का इंतजार को दिखाया है। पति काम के हेतु कलकता जाता है। इधर नारी अपने पति का इंतजार करते गांव पर रहती है। नारी जीवन की इस परिस्थिति को देखकर

अनामिका की यह कविता नारी जीवन की करूण व्यथा को दर्शाती है। नारी की व्यथा यह है, कि पति गौने के बाद ही चला जाता था कलकता।पति के इंतजार में दिन कॉटने पडते हैं,इस विवशता को दर्शाया हैं।ससुराल में चाहे कितनी भी परेशानी क्यों ना हो नारी अपने मायके को खुशयाली का संदेश देती है।सबकुछ सहकर नारी अपना जीवन जीती है।

"रेलिया न बैरी जहजिया न बैरी
बैरी नौकरियां हो राम
देखा है औरतों को गाते बिरहा के गीत
कोसते हुए सौतन बैरन नौकरियों को
जिनके चक्कर में पियायों को गौने के बाद ही
चला जाना होता था कलकता"[10]

नारी का जीवन हमेशा काम में रहा है, चाहे वह काम घर संवारने का हो या बच्चों को स्कूल की तैयारी का क्यों ना हो मां सुबह से शाम तक काम में व्यस्त रहती है। परिवार की चिंता उसे हमेशा रहती है। घर में सब खुश रहे ऐसा वह चाहती है। सभी की पेटपुजा समय पर करणा चाहती है। सुबह का नाश्ता दोपहर का भोजन और रात का खाना यह सब नारी के दिमाग में चलते रहता है,किसको क्या पसंद है इसका भी ध्यान रखा जाता है। दिनभर काम करती मॉ जब रात को सोती है, अचानक ही बच्चे कुछ भी माँगते है, तब मॉ ही पुरा करती है,वह हर पल बचों की परवरीश में रहती है। इस कारण नारी की नींद पूरी नहीं होती।अनामिका की कविता 'सत्रह बरस का प्रतियोगी परिक्षार्थी' में मॉ का अपने बच्चों के प्रति लगाव स्पष्ट होता है। दिनभर काम करती थकी माँ बेटे के एक आवाज से उठती है और बचों को जो चाहिए वह पुरा करती है। नारी जीवन के दर्शन भी होते हैं।

"मां भूख लगी ै
इस सनातन वाक्य में
एक स्प्रिंग है लगा
कितनी भी हो आलसी मॉ
वह उठ बैठती ै
और फिर कनस्तर खड़कते हैं
जैसे खड़कती है सुपली"[11]

अनामिका की कविता गंभीर-गहन अर्थव्यवस्था को दर्शाती है। इनकी कविताओं में मध्यम वर्ग की नारियों की पीडा संघर्ष एवं भावनाओं का चित्रण हुआ है। परंतु कहीं भी उसे दयनीय रूप में नहीं चित्रित किया गया है अपितु वे संघर्ष में भी अदम्य जिजीविषा का परिचय देती है।उनकी कविता 'सदयस्त्राता' में उन्होंने स्त्रियों के लिए सौभाग्य के प्रतीक मंगलसूत्र के बिखरने को विशाल नभ से जोडा है। नारी जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी विधवा होने की है। समाज में विधवाओं को शुभ कार्यों में कोई स्थान नहीं दिया जाता तथा समाज विधवा को एक अलग नजरियों से देखता है। इन सब को सहकर भारतीय नारी अपना जीवन जीती है। पुरुष के लिए इस तरह का कोई आधार नहीं होता लेकिन नारी को इस जीवन से गुजरना होता है।

"मंगलसूत्र किसी का टूटा
बिखरे मनकों से तारे
क्षितिज मांग से उसकी फिर
सिंदूर पूछे गया" [12]

नारी जीवन की दशा जन्म से ही आरंभ होती है। लड़की हो गई है यह सुनकर ही एक मातम छा जाता है। घर के भीतर सभी के चेहरों पर उदासी छाई होती है। आगे लडकी की इच्छा अकांशा माँ पिता पर होती है,परंतु घर में उसे नजरअंदाज किया जाता है।घर की यह मानसिकता होती है, लडकी को थोडा बहोत पढ़ाना और उसका विवाह करणा यह होता हैं। इस पर नारी का जीवन कैसा होता है यह 'समय के शहर में ' काव्य संग्रह की एक कविता ‘बीमार बच्ची का एकालाप’ इस संवेदनशील कविता से स्पष्ट होता है। इस कविता के माध्यम से हॉस्टल में रहनेवाली लड़की के दर्द को व्यक्त किया गया है। उसके पिता फोन नहीं करते, मिलने नहीं आते, सिर्फ पढ़ना चाहते है। एक अच्छा लडका शादी के हेतु देखते है। इतना ध्यान पिता को रहता है। बेटे के प्रति अलग भाव दिखाई देता है। बेटा को पिता पढाते है। उसका ध्यान रखते है।पिता का ध्यान बेटी के प्रति किस तरह से है कविता 'इतनी सारी भूले मैंने की’इस कविता में व्यक्त होता है।

"पापा ने कभी तो नहीं डांटा
कभी-कभी ही उदास आंखों से देखा बस
कैसे मैं क्या कर दूँ पापा अब
कैसा प्रायश्चित चाहिए
सांसों के गेट से टिकी हूं मैं
छोटी सी एक लिफ्ट चाहिए "[13]

नारी जीवन का चित्रण करती कवयित्री अनामिका नारी मन की सूक्ष्मता को भी बेखुबी से चित्रित करती है। नारी के विविध गुणधर्म बुद्धि, सहनशीलता, सृजनात्मकता नारी के व्यक्तित्व के विशिष्ट गुण है जो कवियत्री अपनी कविताओं में दर्शाती है। अनामिका के काव्य संग्रह 'खुरदुरी हथेलियां 'के संबंध में कहा गया है “'खुरदुरी हथेलियां’ संग्रह की कविताएं एक स्त्री की दृष्टि से लिखी गई उत्तर आधुनिक समाज और समय की विडम्बनाओं का बयान करती है।कवयित्री अनामिका ने नारी मुक्ति के प्रश्नों संबंधों में आई रिक्तता की भूख साधारण आदमी के दुख दर्द की और अपने हिस्से की धूप तलाशी नारी की पीड़ा को इस कविता संग्रह में व्यक्त किया है। इन कविताओं में एक और जहां वे समय की कड़वडाहट को देखती हैं। वहीं दूसरी और जीवन की कोमलता को भी अनदेखा नहीं करती ै। यह कोमलता चाहे उन्हें घर में काम करनेवाली की खुरदुरी हथेलियां से क्यों ना मिली हो"[14]

"हालांकि ज्योतिषी नहीं मैं
दानवीर कर्ण भी नहीं
पर देखी है मैंने
फैलती - सिकुडती हथेलियां
कई तरह की
हाथों में हाथ लिए और दिए हैं कितनी बार
जानती हूं ये भी
दुनिया का सबसे मजबूत और नाजुक पल होते ैं
दो लोगों के बढ़कर मिले हुए हाथ"[15]

नारियों की इस विवशता का एक मुख्य कारण आर्थिक परतंत्रता भी है। शिक्षा के अभाव में प्रशिक्षित रहने के कारण उन्हें दोहरे दर्जे पर रहने को मजबूर किया जाता है। शिक्षित नारियां अपने अधिकारों को समझ सकेगी और अन्याय का विरोध भी करेगी। समाज की सभी नारीयों ने शिक्षित बनना है। गाँव शहर के भीतर रहनेवाली सभी नारियों ने शिक्षा के माध्यम से अपने पैरों पर खडा होना है। शिक्षा से उनके व्यक्तित्व का विकास होगा और वह

अपने स्व-अस्तित्व को जान सकेगी ।अनामिका नारी के जीवन में भाषा के माध्यम से शिक्षा के महत्व को रेखांकित करती है। शिक्षा ही वह साधन है जिसके माध्यम से स्वतंत्र -जीवन व्यतीत किया जा सकता है।

निष्कर्ष :- 21 वी सदी की कविताओं में नारी जीवन को लेकर अनामिका की कविताओं को आधार बनाकर नारी जीवन को स्पष्ट किया गया है। भारतीय समाजव्यवस्था में नारी को दुय्यम स्थान दिया गया है।आज नारी शिक्षा-राजनीति व्यवसाय और अन्य सभी क्षेत्रों में सक्रिय और सशक्त है लेकिन अभी भी लैंगिक भेदभाव, घरेलू हिंसा और सामाजिक असमानता जैसी चुनौतियों का सामना कर रही है। वह अपनी पहचान और अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही है और समाज में समानता की मांग कर रही है। जहां आज भी नारी विभिन्न क्षेत्रों में पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ रही है। वहीं महिलाओं के प्रति अपराध में अप्रत्याक्षित रूप से वृद्धि हो रही है।नारी के कोख में ही नारी को मार डालने का षडयंत्र रचा जा रहा है। नारी के जीवन में दहेज प्रताड़ना घरेलू हिंसा यौन शोषण महिला तस्करी जैसे अपराधों से सभ्य समाज उद्रीत हो रहा है। हालांकी इन अपराधों पर नियंत्रण के प्रति प्रशासकीय स्तर एवं सामाजिक संगठनों के द्वारा निरंतर प्रयास जारी है।समकालीन महिला रचनाकारों ने नारी की समस्याओं का मनोविश्लेषणात्मक विवेचन किया है। नारी के जीवन संघर्ष शोषण नारी का संवेदनशील यथार्थ प्रभावशाली और हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। वस्तु: 21वीं शताब्दी के हिंदी साहित्य में नारी का जीवन संपूर्ण यथार्थ प्रमाणिक और भावनात्मक निरूपण हुआ है।

संदर्भ :-

1) डॉ.वैशाली देशपांडे, स्त्रीवाद और महिला उपन्यासकार, विकास प्रकाशन कानपूर, पृष्ठ.15

2) राजी सेठी, स्त्री कविता -पहचान और द्वंद (भाग -2), राजकमल प्रकाशन, पृष्ट 67

3) स्त्रीयाँ (कविता) अनामिका कविता कोष से साभार

4) डॉ.ऋषभ देव शर्मा, स्त्री सशक्तिकरण के विविध आयाम, पुष्ट संख्या 138

5) नमक - रचनाकार अनामिका, प्रकाशन - हिंदी के लिए लेखक द्वारा चयनित

6) दरवाजा (कविता) अनामिका - कविता कोश से आभार

7) अनामिका - बीजाक्षर - भूमिका - प्रकाशन नई दिल्ली पृ . 20

8) अनामिका- अनुष्टुप -किताबघर प्रकाशन - नई दिल्ली पृ 23

9) अनामिका -खुरदुरी हथेलियां -राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली पृ .15

10) रचनाकार- अनामिका प्रकाशन, हिंदवी के लिए लेखक द्वारा चयनित

11) सत्रह बरस का प्रतियोगी परीक्षार्थी कविता ' अनामिका कविता कोशिश से आभार

12)अनामिका, शीतल स्पर्श एक धूप को, अमिताभ प्रकाशन पृ. 03

13)अनामिका - समय के शहर में, पराग प्रकाशन दिल्ली पृ. 28

14)प्रगतिशील वसुधा 75 अक्टूबर - दिसंबर 2007 पृ. 292

15)अनामिका -खुरदुरी हथेलियां राधाकृष्ण प्रकाशन – पृ.156

bsnikalje7@gmail.com 9420950941

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 192-194
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

''वाणभट्ट का संस्कृत साहित्य में सामाजिक योगदान''

कृष्णा जाटव
शोधार्थी (संस्कृत)
शोध केन्द्र – महारानी लक्ष्मीबाई शा. उत्कृष्ट महाविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.)

शोध सार :–

वाणभट्ट (7वीं सदी) में संस्कृत साहित्य के महान गद्यकार और कवि थे, जो राजा हर्षवर्धन के दरवारी कवि थे,उनकी प्रमुख रचनाएँ ''कादम्बरी'' (विश्व का पहला उपन्यास) और (हर्षचरित्रम्) हर्षवर्धन का जीवन चरित्र है, जो संस्कृत साहित्य में गद्य की उत्कृश्ट मिसाल है और सामाजिक, सांस्कृतिक चित्रण से भरपूर है।

राजकवि वाणभट्ट की समाज में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। उनके साहित्य के माध्यम से उस समय के समाज का सजीव चित्रण करना था, जिसमें उन्होंने वर्ण, व्यवस्था, रीति–रिवाज, नारी – सम्मान जैसे स्त्री – शरीर को (देव–मंदिर) और लोक कल्याण की बातें की जिससे, तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक पहलुओं की गहरी समझ मिलती है, और उन्होंने अपनी रचनाओं से साहित्य की समृद्ध परंपरा को आगे बढ़ाया।

वाणभट्ट का समाज में योगदान :–

सामाजिक चित्रण :– वाणभट्ट ने अपनी रचनाओं में तत्कालीन समाज की वर्ण व्यवस्था, जाति, प्रथा, आश्रम व्यवस्था और संस्कारों का यथार्थ चित्र सामने आता है। वाणभट्ट की रचना में वर्णित राजाओं के गुणों से उस समय की षासन पद्धति एवं सामाजिक स्थिति का परिज्ञान प्राप्त होता है। शूद्रक की विदिशा नामक राजधानी के वर्णन से ज्ञात होता है कि सातवीं शताब्दी तक विदिशा से उज्जयनी तक मालव जनपद का विस्तार हो गया था और वहाँ के निवासी मालव कहे जाते थे।

साहित्य और संस्कृति का उन्नयन :–

संस्कृत गद्य साहित्य के महान लेखक के रूप में उन्होंने हर्शवर्धन और ''कादम्बरी'' जैसी रचनाएँ, जो भारतीय साहित्य की अमूल्य धरोहर है। उनकी लेखनी ने भावों, अलंकारों और भाषा के सामंजस्य से साहित्य को एक नया आयम दिया, जो आज भी अनुकरणीय है। वाणभट्ट की आत्मकथा (आचार्य द्विवेदी द्वारा) और उनकी रचनाओं में नारी को उच्च स्थान दिया गया है उन्होंने स्त्री –शरीर को पवित्र माना है और स्त्रियों के प्रति समतालूक व्यवहार पर जोर दिया, जो तत्कालीन समाज के रूढ़िवादी विचारों में कार्य करने का उपदेश दिया। वाणभट्ट ने अपनी प्रतिभा से समाज को न केवल साहित्यक रूप से समृद्ध किया, बल्कि तत्कालीन सामाजिक विसंगतियों को उजागर करते हुए स्त्री – सम्मान और समाज कल्यण का संदेश देकर समाज को एक नैतिक और सांस्कृतिक दिशा भी प्रदान की थी वाणभट्ट की सामाजिक कार्यो में महत्त्वपूर्ण भूमिका का आयोजन रहा है। उन्होंने मानव कल्याण के लिए समानता का व्यवहार जनहित में परोपकारी संदेश दिया है।

सामाजिक रीति–रिवाज :–

मानव की चिरकाल से यह प्रकृति रही है कि वह एक दूसरे से मिलता–जुलता रहे ताकि मानव समुदाय जो भोजन, वस्त्र, आचार–विचार एवं अनेक क्रिया कलाप परस्पर हमेशा एक साथ सम्पन्न करते रहे, तथा मानव समाज विकास करता हुआ हमेशा उन्नति के शिखर पर आगे बढ़ता रहा। हर काल एवं शासन व्यवस्था के द्वारा रीति–रिवाजों में परिवर्तन अवश्य होते रहे। महाकवि वाणभट्ट के तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में रीति–रिवाजों एवं प्रचलित प्रथाओं का भी हमें परिचय मिलता है। कवि हमेशा समाज की ओर रहा है कि तत्कालीन समाज में किस प्रकार से रहन सहन हो रहा है।

महाकवि वाणभट्ट न सामाजिक व्यवस्था में प्रचलित रीति–रिवाजों का जो चित्र प्रस्तुत किया। समाज में अंधविश्वास पर आधारित उल्लेख कादम्बरी में किया गया है।

मानव ने स्वयं के विकास एवं समाज और राष्ट्र के विकास में अर्थ की अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिए प्रत्येक युग के साहित्यकारों में अपने सद्साहित्य सर्जना में विविध विजयों के साथ अर्थ को अनिवार्य रूप से रखा है, क्योंकि कोई भी विकास की धारा अर्थ के अभाव में अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाता है। वाणभट्ट ने कादम्बरी में आर्थिक प्रगति के मूलाधार कृषि, पशुपालन, व्यवसाय एवं अनेक प्रकार के उद्योगों का उल्लेख किया है। तत्कालीन समय में कृषि कार्य उन्नत था।

मानव जैव जगत में सर्वाधिक बुद्धिमान एवं विवेकशील प्राणी है इसका कारण मनुष्य का अत्यधिक विकसित मस्तिक है। जिसके द्वारा वह विचारता एवं सोचता है। प्रकृति के गूढ़ रहस्यों को जानने की जिज्ञासा आदिकाल से ही मानव को रही है। भारतीय संस्कृत वाड्मय में प्रकृति चित्रण को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। विश्व के सबसे प्राचीनतम ग्रंथ वेद है तथा इसमें वर्जित ज्ञान–विज्ञान मानव सभ्यता के आरम्भिक समय का घोतक है। प्राचीनकाल से ही भारत ज्ञान–विज्ञान की साधना एवं जनकल्याण के निर्माण में इसका उपयोग करने में अग्रणी रहा है।

वैदिक ऋशियों ने भेद या उपनिशद् तथा अन्य अनेक ग्रन्थों में वैज्ञानिक सोच को प्रधानता दी है। भारतीय वाड्मय में ''प्रकृति के क्रमबद्ध ज्ञान को विज्ञान'' स्वीकार किया है। महाकवि वाणभट्ट के ग्रंथों का समुचित अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समय में ज्योतिष, आयुर्वेद, रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, वास्तुशास्त्र, खनिज विज्ञान, भू–विज्ञान आदि के प्रति मानव की विशेष रूचि थी। महर्षि कणाद ने तत्व के सूक्ष्मतम अवयव को कण की संज्ञा दी।

विश्व चिकित्सा के इतिहास में संसार के तमाम देशों ने रोग निदान की अलग–अलग प्रणालियों को विकसित किया, जिसमें आयुर्वेद पद्धति भारत की सर्वाधिक पुरातन चिकित्सा प्रणाली रही है। वाणभट्ट कालीन समय में राजन्य वर्ग अपनी शान–शौकत को दिखाते हुए दिग्विजय के दौरान अनेक साथियों के समूह को साथ लेकर चलते थे।

निष्कर्ष :–

आदिकाल से मानव का यह स्वभाव रहा है कि उनके दुःखों की निवृत्ति कैसे हो ? उसकी सुख की परिकल्पना भौतिक हो सकती है लेकिन आनन्द की परिकल्पना नितान्त रूप से आध्यत्मिक है। चिन्तनशील मानव के दर्शन से सम्बधिन्त अनेक विषयों की खोज की और कुछ हद तक उसे सफलता भी मिली है।

इस प्रकार साहित्य समाज का दर्पण होता है साहित्य में मानव समाज के समस्त क्रिया कलाप एवं इच्छाओं का उद्‌घाटन करता है।

वाणभट्टने अपनी प्रतिभा से समाज को न केवल साहित्यिक रूप से समृद्ध किया बल्कि तत्कालीन सामाजिक विसंगतियों को उजागर करते हुए स्त्री सम्मान और समाज कल्याण का संदेश देकर समाज को एक नैतिक और सांस्कृतिक दिशा देने का कार्य किया है। वाणभट्ट की रचनाओं में श्रीहर्श, शूद्रक, तारापीड आदि राजाओं का वर्णन देखकर अनुमान किया जा सकता है कि उस समय प्रजा का शासन राजा करते थे तथा ये राजा न्यायप्रिय, वीर गुणग्रही, प्रजा, सेवक थे। वाण की रचना में वर्णित राजाओं के गुणों से उस समय की शासन पद्धति एवं सामाजिक स्थिति का परिज्ञाल प्राप्त होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क्रं.	ग्रंथ का नाम	संपादक/लेखक	प्रकाशन स्थान
1.	कादम्बरी	(वाणभट्टकृत) चन्द्रकला पं. श्रीकृष्णमोहन शास्त्री	चौखम्भा संस्कृत सीरीज,वाराणसी (उ.प्र.)
2.	हर्षचरित्रम्	डॉ.गजानन शास्त्री मुसलगांवकर	चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी (उ.प्र.)
3.	संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास	डॉ. कपिल द्विवेदी	रामनारायण विजय कुमार प्रकाशन इलाहाबाद
4.	संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	डॉ. वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी	महालक्ष्मी मार्ग नूरी दरवाजा आगरा (उ.प्र.)
5.	भारतीय सामाजिक व्यवस्था	वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा	पंचशील प्रकाशन फिल्म कॉलोनी जयपुर
6.	वैदिक साहित्य और संस्कृति	आचार्य वलदेव उपाध्याय	विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी (उ.प्र.)
7.	प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका	रामजी उपाध्याय	चौखम्भा विद्या भवन वाराणसी (उ. प्र.)

E-mail ID: krishnamoury97697@gmail.com
मो. नं. 8435254120

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 195-202
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

त्रिलोचन के काव्य में जनपदीय चेतना एवं मानव मूल्य

डॉ० राम आशीष तिवारी
सहायक प्राध्यापक- हिंदी,
शासकीय राजमोहिनी देवी कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय अंबिकापुर सरगुजा (छ.ग.)

शोध सारांश – त्रिलोचन हिंदी कविता के ऐसे सशक्त हस्ताक्षर हैं, जिनके काव्य में जनपदीय जीवन और मानवीय संवेदनाओं का गहरा समन्वय मिलता है। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य उनके काव्य में निहित जनपदीय चेतना और मानवतावादी दृष्टिकोण का विश्लेषण करना है। इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि त्रिलोचन की कविताएँ ग्रामीण जीवन की यथार्थपरक अभिव्यक्ति हैं, जहाँ खेत-खलिहान, किसान, श्रमिक, लोकभाषा और लोकसंस्कृति के विविध रूप सजीव हो उठते हैं। उनकी जनपदीय चेतना केवल बाह्य चित्रण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह गाँव के जीवन-मूल्यों, संघर्षों और सामूहिक संवेदना का आंतरिक अनुभव भी प्रस्तुत करती है। साथ ही, उनके काव्य में मानवतावादी दृष्टिकोण प्रमुख रूप से उभरकर सामने आता है। वे मनुष्य को केंद्र में रखकर उसके दुख-दर्द, संघर्ष, श्रम और सम्मान को अभिव्यक्ति देते हैं। उनकी कविताएँ सामाजिक विषमता, शोषण और अन्याय के विरुद्ध स्वर उठाते हुए समानता, करुणा और मानवीय गरिमा की स्थापना की पक्षधर हैं। त्रिलोचन की भाषा सरल, सहज और लोकजीवन से जुड़ी हुई है, जो उनकी जनपदीय चेतना को और सशक्त बनाती है। वे कविता को केवल कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक प्रतिबद्धता का माध्यम मानते हैं। त्रिलोचन का काव्य जनपदीय जीवन के यथार्थ और मानवतावादी मूल्यों का सशक्त दर्पण है, जो समकालीन समाज में भी अपनी प्रासंगिकता बनाए रखता है।

बीज शब्द – जनपदीय चेतना, मानवतावाद, ग्रामीण जीवन, लोकसंस्कृति, लोकभाषा, किसान जीवन, श्रमिक वर्ग, सामाजिक यथार्थ, मानवीय संवेदना, समानता, सामाजिक न्याय, प्रगतिशील दृष्टिकोण, यथार्थपरकता, सामाजिक प्रतिबद्धता, प्रच्छन्न आभिजात्य।

शोध आलेख – त्रिलोचन के काव्य में जनपदीय चेतना का अर्थ है—गाँव जनपद के जीवन, संस्कृति, भाषा, परंपराओं और वहाँ के सामान्य लोगों के सुख-दुःख के प्रति गहरी संवेदनशीलता और आत्मीय जुड़ाव। यह केवल ग्रामीण जीवन का वर्णन नहीं, बल्कि उसे भीतर से समझने और उसके साथ तादात्म्य स्थापित करने की दृष्टि है। जनपदीय चेतना के प्रमुख तत्व, ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण करते हुए त्रिलोचन गाँव का जीवन अपनी वास्तविकता के साथ उपस्थित होते हैं, खेत-खलिहान, ऋतुएँ, श्रम और प्रकृति गरीबी, संघर्ष और अभाव ग्रामीण समाज की सरलता वे गाँव को रोमानी रूप में नहीं, बल्कि जैसा है वैसा दिखाते हैं। लोकभाषा का प्रयोग उनकी

जनपदीय चेतना भाषा में भी प्रकट होती है—अवधी, भोजपुरी जैसी लोकभाषाओं का प्रयोग बोलचाल की सहज शैली लोक मुहावरों और कहावतों का उपयोग इससे उनकी कविता सीधे आम जनता से जुड़ जाती है। किसान और श्रमिक के प्रति जुड़ाव त्रिलोचन के काव्य में किसान और मजदूर केंद्रीय स्थान पर हैं। श्रम का सम्मान श्रमिक जीवन की कठिनाइयों का चित्रण शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति लोकसंस्कृति और परंपराएँ जनपदीय चेतना का एक पहलू लोकजीवन की सांस्कृतिक पहचान भी है। त्योहार, रीति-रिवाज लोकगीत, लोकमान्यताएँ सामूहिक जीवन शैली आत्मीयता और अपनापन त्रिलोचन गाँव के जीवन को बाहर से नहीं, बल्कि अपने जीवन का हिस्सा मानकर प्रस्तुत करते हैं। उनके काव्य में कृत्रिमता नहीं होती। पाठक को लगता है जैसे वह उसी परिवेश का हिस्सा हो।

जनपदीय चेतना का आशय है ग्राम्य जीवन के यथार्थ, लोकसंस्कृति, लोकभाषा और सामान्य जन के संघर्ष व संवेदना के प्रति गहरी आत्मीय समझ और प्रतिबद्धता। यह चेतना उनकी कविता को जमीन से जोड़ती है और उसे आम आदमी की आवाज़ बनाती है।

"उस जनपद का कवि हूँ जो भूखा-दूखा है,
नंगा है, अनजान है, कला-नहीं जानता
. . . . .
चला जा रहा है वह, अपने आँसू बोता,"1

वह उस जनपद (गाँव/क्षेत्र) का कवि है, जहाँ के लोग भूखे, दुखी और अभावग्रस्त हैं। वे इतने गरीब हैं कि उनके पास पहनने के लिए वस्त्र भी पर्याप्त नहीं हैं—इसलिए उन्हें "नंगा" कहा गया है। यहाँ "नंगा" शब्द केवल शारीरिक अवस्था ही नहीं, बल्कि आर्थिक और सामाजिक वंचना का भी प्रतीक है।

"अनजान है, कला नहीं जानता"—इसका आशय यह है कि उस जनपद के लोग औपचारिक शिक्षा, कलात्मकता और शहरी सभ्यता से दूर हैं। वे सरल, सीधा जीवन जीते हैं, परंतु उन्हें समाज में उचित सम्मान नहीं मिलता।

"चला जा रहा है वह, अपने आँसू बोता"—इस पंक्ति में अत्यंत गहरी संवेदना है। यहाँ "आँसू बोना" एक प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। इसका अर्थ है कि वह व्यक्ति अपने दुख, पीड़ा और संघर्ष के साथ जीवन में आगे बढ़ रहा है। वह निरंतर कष्ट सहते हुए भी जीवन-यात्रा जारी रखे हुए है।

"स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध शरीर की दूसरी आवश्यकताओं भूख, प्यास, नींद की तरह ही आवश्यक है। इसमें मनुष्य को स्वतन्त्रता होनी चाहिए, परन्तु प्यास लगने पर शहर की गन्दी नाली में मुँह डालकर पानी पीना उचित नहीं। उचित है, स्वच्छ जल पीना।"2

स्त्री-पुरुष का संबंध उतना ही स्वाभाविक और जरूरी है जितनी कि भूख, प्यास और नींद। जैसे शरीर को भोजन, पानी और विश्राम की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार मनुष्य के जीवन में प्रेम और यौन संबंध भी एक प्राकृतिक आवश्यकता है। इसलिए इस क्षेत्र में मनुष्य को स्वतंत्रता मिलनी चाहिए—अर्थात् उसे अपनी भावनाओं और संबंधों को लेकर अनावश्यक सामाजिक बंधनों में नहीं जकड़ा जाना चाहिए। लेकिन कवि यहाँ एक महत्वपूर्ण मर्यादा भी स्थापित करता है। वह उदाहरण देता है यदि प्यास लगी है, तो इसका अर्थ यह नहीं कि मनुष्य गंदी नाली का पानी पी ले। इसका आशय यह है कि स्वतंत्रता का अर्थ असंयम या अनैतिकता नहीं है। संबंधों में शुद्धता, मर्यादा और नैतिकता आवश्यक है। स्वच्छ जल का अर्थ है शुद्ध, स्वस्थ और सम्मानजनक संबंध प्रेम, विश्वास और सामाजिक जिम्मेदारी पर आधारित संबंध

"व्यक्ति ही तो मूल है यहाँ जहाँ जो कुछ है
लेकिन व्यक्ति कितना असहाय है अकेले में. . .।"3

इस संसार में व्यक्ति ही मूल तत्व है—अर्थात् समाज, संस्कृति और सभी व्यवस्थाएँ व्यक्ति से ही निर्मित होती हैं। व्यक्ति के बिना किसी भी सामाजिक संरचना का अस्तित्व नहीं हो सकता। लेकिन साथ ही कवि यह भी स्वीकार करता है कि अकेला व्यक्ति बहुत असहाय होता है। वह अपनी सीमाओं और कमजोरियों से घिरा होता है उसे सहयोग, संबंध और सामूहिकता की आवश्यकता होती है इसलिए मनुष्य केवल अकेले रहकर पूर्ण नहीं हो सकता, उसे दूसरों के साथ जुड़ना पड़ता है। आगे कवि कहता है कि यदि संबंधों में घनिष्ठता निकटता ऐसी हो, जो एक-दूसरे की स्वतंत्रता का सम्मान करे, तो किसी प्रकार का द्वंद्व अथवा संघर्ष उत्पन्न नहीं होगा। अक्सर संबंधों में टकराव इसलिए होता है क्योंकि लोग एक-दूसरे की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करते हैं यदि हर व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता के साथ-साथ दूसरों की स्वतंत्रता का भी आदर करे, तो जीवन अधिक संतुलित और सामंजस्यपूर्ण हो सकता है हमारी स्वतंत्रता औरों की स्वतंत्रता के साथ है व्यक्ति की स्वतंत्रता पूर्णतः व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामाजिक है। हमारी आज़ादी वहीं तक है, जहाँ तक वह दूसरों की आज़ादी का उल्लंघन न करे स्वतंत्रता और जिम्मेदारी एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं।

"जिस समाज में तुम रहते हो यदि तुम उस की एक शक्ति हो जैसे सरिता की अगणित लहरों कोई एक लहर हो तो अच्छा है...उस की ललकारों में से ललकार एक हो उस की अमित भुजाओं में से दो भुजा तुम्हारी चरणों में दो चरण तुम्हारे आँखों में दो आँख तुम्हारी तो निश्चय समाज जीवन के तुम प्रतीक हो निश्चय हो जीवन, चिर जीवन।"4

जिस समाज में हम रहते हैं, यदि हम स्वयं को उस समाज की एक शक्ति के रूप में स्वीकार करें, तो हमारा जीवन सार्थक हो जाता है। वह समाज की तुलना बहती हुई सरिता (नदी) से करता है और व्यक्ति को उसकी एक लहर के रूप में देखता है। जैसे नदी की अनेक लहरें मिलकर उसका अस्तित्व बनाती हैं,वैसे ही समाज अनेक व्यक्तियों से मिलकर बनता है। इसलिए व्यक्ति को अपने अस्तित्व को समाज से अलग नहीं, बल्कि समाज का अभिन्न अंग मानना चाहिए।

"तरुण
तुम्हारी शक्ति अतुल है
जहाँ कर्म में वह बदली है
वहाँ राष्ट्र का नया रूप
सन्मुख आया है
वैयक्तिक भी कार्य तुम्हारा
सामूहिक है।"5

युवाओं में अपार ऊर्जा, उत्साह और परिवर्तन की क्षमता होती है यदि यह शक्ति सही दिशा में प्रयुक्त हो, तो बड़े परिवर्तन संभव हैं। जहाँ कर्म में वह बदली है जब यह ऊर्जा केवल विचार या भावना न रहकर कर्म में बदलती है, तब उसका वास्तविक प्रभाव दिखाई देता है। वहाँ राष्ट्र का नया रूप सन्मुख आया है अर्थात जहाँ-जहाँ युवाओं ने अपनी शक्ति को कर्म में परिवर्तित किया, वहाँ राष्ट्र ने नई प्रगति, नव निर्माण और विकास का स्वरूप प्राप्त किया है।

"मैंने उन के लिए लिखा है जिन्हें जानता हूँ जीवन के लिए लगा कर अपनी बाजी जूझ रहे हैं, जो फेंके टुकड़ों पर राजी कभी नहीं हो सकते हैं। मैं उन्हें मानता हूँ आगामी मनुष्यताओं का निर्माता।"6

किसी काल्पनिक या अभिजात वर्ग के लिए नहीं, बल्कि वास्तविक जीवन के लोगों के लिए लिखता है ये वे लोग हैं, जिन्हें वह अपने आसपास देखता और पहचानता है जीवन के लिए लगा कर अपनी बाजी जूझ रहे हैं ये लोग जीवन-निर्वाह के लिए निरंतर संघर्ष कर रहे हैं वे कठिन परिस्थितियों में भी हार नहीं मानते उनका जीवन

संघर्ष, श्रम और जिजीविषा से भरा हुआ है जो फेंके टुकड़ों पर राजी कभी नहीं हो सकते हैं ये स्वाभिमानी लोग हैं वे किसी के दिए हुए टुकड़ों पर संतुष्ट नहीं होते वे अपने अधिकार और सम्मान के साथ जीना चाहते हैं यहाँ कवि आत्मसम्मान और स्वावलंबन की भावना को महत्व देता है। मैं उन्हें मानता हूँ आगामी मनुष्यताओं का निर्माता कवि इन संघर्षशील, स्वाभिमानी लोगों को ही भविष्य का निर्माता मानता है वही लोग एक बेहतर और न्यायपूर्ण समाज का निर्माण करेंगे उनके श्रम और संघर्ष से ही नई मानवता का विकास होगा। उसकी कविता आम, संघर्षशील और स्वाभिमानी लोगों के लिए है। जो लोग अपने अधिकारों के लिए लड़ते हैं और दया पर निर्भर नहीं रहते, वही भविष्य की सच्ची मानवता के निर्माता हैं

श्यामाचरण दुबे ने बड़ी ही सटीक टिप्पणी की है- "सत्ता के मद से नेताओं में कुछ सांमती प्रवृत्तियाँ बढ़ीं। भाई-भतीजावाद आया तो प्रच्छन्न भ्रष्टाचार भी। राजनीतिक दाँव-पेंच में सांप्रदायिकता, जातिवाद, भाषावाद और क्षेत्रीयवाद का दोहन आरंभ हुआ।... महत्त्वाकांक्षी राजनीतिज्ञ खुलकर कहने लगे कि पाँच करोड़ रुपये जमा कर और इस राशि के कुशल उपयोग से भारत का प्रधानमंत्रित्व पाया जा सकता है। राजकीय बड़े सौदों में कमीशन लिया जाने लगा। आयाराम-गयाराम की राजनीति में विधायिकाओं के सदस्य खुले बाजार अपने आपको नीलाम करने लगे।"7

सत्ता मिलने के बाद कई नेता अहंकारी और निरंकुश हो गए वे जनता के सेवक के बजाय शासक (सामंती मानसिकता) की तरह व्यवहार करने लगे। भाई-भतीजावाद आया तो प्रच्छन्न भ्रष्टाचार भी अर्थात राजनीति में रिश्तेदारी और पक्षपात बढ़ा। इसके साथ ही छिपा हुआ भ्रष्टाचार भी फैलने लगा। योग्य लोगों की बजाय अपने लोगों को लाभ मिलने लगा। सांप्रदायिकता, जातिवाद, भाषावाद और क्षेत्रीयवाद का दोहन आरंभ हुआ। राजनीतिक लाभ के लिए समाज को धर्म, जाति, भाषा और क्षेत्र के आधार पर बाँटा जाने लगा। नेताओं ने इन विभाजनों का उपयोग वोट बैंक बनाने के लिए किया। इससे सामाजिक एकता कमजोर हुई। राजनीति में धनबल के बढ़ते प्रभाव को दर्शाता है। सत्ता प्राप्ति के लिए योग्यता और सेवा की बजाय पैसे और संसाधनों को महत्व मिलने लगा। सरकारी कार्यों और सौदों में घूस कमीशनखोरी आम हो गई। इससे प्रशासनिक व्यवस्था में भ्रष्टाचार गहराया। "आयाराम-गयाराम की राजनीति" यह वाक्यांश राजनीतिक दलबदल की प्रवृत्ति को दर्शाता है। विधायक और नेता अपने स्वार्थ के लिए बार-बार पार्टी बदलने लगे।, वे मानो बाजार में बिकने वाली वस्तु की तरह हो गए। स्वतंत्रता के बाद राजनीति में आदर्शों का ह्रास हुआ। सत्ता, धन और स्वार्थ की प्रवृत्तियाँ बढ़ीं। समाज को बाँटकर राजनीतिक लाभ उठाया जाने लगा। लोकतांत्रिक मूल्यों को गंभीर क्षति पहुँची।

रचनाकार ने निराशा भरे भावों को इस तरह प्रकट किया है-

"फलों की चाह में मैंने लगाया
कल्पतरु कोई,
बराबर अश्रु से सींचा कभी फलते कहाँ पाया।"8

उसने अच्छे परिणाम की आशा में कल्पतरु जैसा महान और आदर्श कार्य आरंभ किया। कल्पतरु यहाँ प्रतीक है बड़े सपनों का, उच्च आदर्शों का, श्रेष्ठ प्रयासों का। बराबर अश्रु से सींचा उस कार्य को अश्रुओं से सींचा, अर्थात् उसने अत्यंत कष्ट, दुख और संघर्ष सहते हुए निरंतर प्रयास किया। यहाँ अश्रु मेहनत, त्याग और पीड़ा का प्रतीक है। कभी फलते कहाँ पाया इतने प्रयास और त्याग के बावजूद उसे अपेक्षित परिणाम नहीं मिला। यह जीवन की उस विडंबना को दर्शाता है, जहाँ कड़ी मेहनत और सच्चे प्रयास के बाद भी सफलता निश्चित नहीं होती। मनुष्य बड़े सपने और आदर्श लेकर प्रयास करता है, वह कष्ट और संघर्ष सहते हुए उन्हें पूरा करने की कोशिश करता है, लेकिन कई बार उसे सफलता नहीं मिलती, जिससे निराशा उत्पन्न होती है।

"नव मनुष्यता का ले कर विश्वास
अधिकारी मनुष्य के अत्याचार
के विरुद्ध करते ही चलो प्रहार
अत्याचारी को निस्तेज बनाओ"9

कवि नई मानवता में विश्वास रखने की प्रेरणा देता है। यह नई मानवता समानता, न्याय, करुणा और मानवीय मूल्यों पर आधारित है। अधिकारी मनुष्य के अत्याचार के विरुद्ध करते ही चलो प्रहार यहाँ अधिकारी मनुष्य से आशय उन लोगों से है, जिनके पास सत्ता या अधिकार है। यदि वे अपने अधिकार का दुरुपयोग करते हैं और अत्याचार करते हैं, तो उनके विरुद्ध निरंतर संघर्ष करना चाहिए। प्रहार का अर्थ है—अन्याय के खिलाफ सक्रिय विरोध और प्रतिरोध, अत्याचारी को निस्तेज बनाओ। कवि का कहना है कि अत्याचार करने वाले व्यक्ति की शक्ति को समाप्त करना आवश्यक है। यहाँ हिंसा नहीं, बल्कि सत्य, न्याय और संगठित प्रयास से अत्याचार को कमजोर करने की बात है। हमें एक नई, न्यायपूर्ण मानवता में विश्वास रखना चाहिए, सत्ता के दुरुपयोग और अत्याचार के खिलाफ संघर्ष करना चाहिए। अन्याय के विरुद्ध सक्रिय रहकर ही समाज में परिवर्तन संभव है।

भारत: गांधी के बाद' पुस्तक में इस तथ्य का उल्लेख है- "सन् 1951 में जब अमेरिकी कांग्रेस इस बात पर बहस कर रही थी कि भारत की खाद्यान्न सहायता की माँग पर विचार किया जाए या नहीं, सोवियत संघ ने बिना किसी लोकतांत्रिक बहस के तत्काल भारत को 50,000 टन गेहूँ भेज दिया।... अब मुद्दा यह नहीं था कि कोई देश समाजवादी है या नहीं, बल्कि मुद्दा यह था कि कोई देश किस खेमे में है।"10

यह कथन स्वतंत्रता-पश्चात् के बाद के आरम्भिक दशक के विश्व राजनीति अर्थात् शीत युद्ध एवं भारतीय स्थिति को स्पष्ट करता है। सन् 1951 के संदर्भ में बताया गया है कि भारत को खाद्यान्न संकट का सामना करना पड़ रहा था और उसने अमेरिका से सहायता की अपेक्षा की। उस समय संयुक्त राज्य अमेरिका की कांग्रेस में इस विषय पर बहस चल रही थी कि भारत को सहायता दी जाए या नहीं। दूसरी ओर सोवियत संघ ने बिना किसी लंबी लोकतांत्रिक प्रक्रिया के तुरंत 50,000 टन गेहूँ भारत को भेज दिया। यह अंतर दोनों महाशक्तियों की राजनीतिक प्रणालियों और कार्य-शैली को दर्शाता है। अमेरिका में लोकतांत्रिक प्रक्रिया के कारण निर्णय लेने में समय लगता है। सोवियत संघ में केंद्रीकृत सत्ता होने के कारण त्वरित निर्णय संभव था। गहरा आशय अब मुद्दा यह नहीं था कि कोई देश समाजवादी है या नहीं, बल्कि मुद्दा यह था कि कोई देश किस खेमे में है। उस समय दुनिया दो प्रमुख गुटों में बँटी हुई थी। अमेरिका का पूँजीवादी गुट, सोवियत संघ का समाजवादी गुट, देशों के साथ संबंध उनकी विचारधारा से अधिक इस बात पर निर्भर करने लगे थे कि वे किस गुट के करीब हैं। यहां भारत की स्थिति देखें तो भारत ने गुटनिरपेक्ष आंदोलन की नीति अपनाई। वह किसी एक गुट के साथ पूरी तरह नहीं जुड़ना चाहता था। लेकिन दोनों महाशक्तियाँ भारत को अपने-अपने पक्ष में लाने का प्रयास कर रही थीं। इसलिए सहायता देना भी एक प्रकार से राजनीतिक प्रभाव बढ़ाने का माध्यम बन गया था। इस उद्धरण के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि, शीत युद्ध के दौर में अंतरराष्ट्रीय संबंध विचारधारा से अधिक राजनीतिक गुटबंदी पर आधारित हो गए थे। सहायता और सहयोग भी रणनीतिक हितों से प्रभावित थे। भारत जैसी नवस्वतंत्र राष्ट्रों की स्थिति जटिल थी, क्योंकि उन्हें संतुलन बनाकर चलना पड़ता था।

"झुकी आँखों को देखा तो समझ में आ गया मेरी,
ये आँखें हैं जिन्होंने पल में दुनिया सारी तोली है
त्रिलोचन हँस के औरों को हँसाओं तब तो हम मानें,
यह दुनिया घर के घेरे में बहुत बँध बँध के रो ली है"11

व्यक्ति की झुकी हुई आँखों को देखकर ही उसके अनुभव और जीवन-संघर्ष का अंदाज़ा लगाया जा सकता है। झुकी आँखें यहाँ विनम्रता, थकान, पीड़ा और जीवन के गहरे अनुभव का प्रतीक हैं। दुनिया सारी तोली है का अर्थ है कि उस व्यक्ति ने जीवन के विविध सुख-दुःख, उतार-चढ़ाव और वास्तविकताओं को भली-भाँति समझ लिया है। त्रिलोचन हँस के औरों को हँसाओं तब तो हम मानें यहाँ कवि एक आदर्श प्रस्तुत करता है कि सच्चा मनुष्य वही है, जो स्वयं मुस्कुराने के साथ-साथ दूसरों को भी खुशी दे सके। केवल अपने दुःख में डूबे रहना पर्याप्त नहीं, बल्कि दूसरों के जीवन में आनंद लाना ही सच्ची मानवता है। यह दुनिया घर के घेरे में बहुत बँध बँध के रो ली है। मनुष्य अपने छोटे-छोटे दायरों (घर-परिवार, व्यक्तिगत जीवन) में बँधकर बहुत रो चुका है। वह अपने सीमित संसार में दुखों से घिरा रहता है और व्यापक जीवन को नहीं देख पाता। इसलिए संकेत है कि व्यक्ति को अपने सीमित दायरे से बाहर निकलकर व्यापक मानवता के बारे में सोचना चाहिए। जीवन के अनुभव व्यक्ति की आँखों और व्यवहार में झलकते हैं। सच्चा मनुष्य वही है, जो दूसरों को भी खुशी दे। सीमित स्वार्थ और दुख से बाहर निकलकर व्यापक दृष्टि अपनानी चाहिए।

''मुक्ति कहाँ है, मुक्ति कहाँ। जीवन बंदी है।
पंख फड़फड़ाती है मन में मुक्ति बिचारी,
तन के बंधन में जन-मन निरुपाय पड़ा है।
भँवरों में बहुजन हैं, कोई आनंदी है।
हो आनंद न सब का तो मानवता हारी''12

मनुष्य वास्तव में स्वतंत्र नहीं है, बल्कि अनेक बंधनों में जकड़ा हुआ है। जीवन बंदी है अर्थात् सामाजिक, आर्थिक और मानसिक परिस्थितियाँ मनुष्य को कैद किए हुए हैं। पंख फड़फड़ाती है मन में मुक्ति बिचारी मनुष्य के भीतर स्वतंत्रता की तीव्र इच्छा है। लेकिन वह इच्छा केवल मन तक सीमित रह जाती है। बिचारी शब्द से उसकी असहायता और अधूरी आकांक्षा का भाव प्रकट होता है। तन के बंधन में जन-मन निरुपाय पड़ा है। मनुष्य का शरीर और परिस्थितियाँ उसे बाँध देती हैं। वह चाहकर भी अपनी इच्छाओं के अनुसार स्वतंत्र नहीं हो पाता उसकी स्थिति लाचार और विवश है। भँवरों में बहुजन हैं, कोई आनंदी है समाज का अधिकांश बहुजन संघर्षों और समस्याओं के भँवर में फँसा हुआ है। केवल कुछ लोग ही सुख और आनंद का अनुभव कर पाते हैं, यह सामाजिक असमानता का संकेत है। यदि सुख और आनंद केवल कुछ लोगों तक सीमित है और सबके लिए नहीं है, तो वह सच्ची मानवता नहीं है। सच्चा मानवतावाद तभी संभव है, जब सभी को समान सुख मिले सभी को स्वतंत्रता और सम्मान प्राप्त हो मनुष्य स्वतंत्र नहीं, बल्कि बंधनों में जकड़ा हुआ है। उसकी मुक्ति की इच्छा अधूरी रह जाती है समाज में असमानता है, जहाँ कुछ ही लोग सुखी हैं। सच्ची मानवता तभी है, जब सबके लिए समान आनंद और स्वतंत्रता हो

"इन दिनों मनुष्य का महत्त्व कोई नहीं है
मूल्य गिर गया है अब मनुष्य का
सिंधु में बिंदु का जो स्थान है
वह भी स्थान नहीं है मनुष्य का''13

आज के समय में मनुष्य का कोई विशेष महत्व नहीं रह गया है। समाज में व्यक्ति की गरिमा और सम्मान कम हो गए हैं। मनुष्य को उसके मानवीय गुणों के आधार पर नहीं, बल्कि अन्य मापदंडों धन, पद, शक्ति से आँका जा रहा है। मूल्य गिर गया है अब मनुष्य का मानवीय मूल्यों का ह्रास हो रहा है, मनुष्य का सम्मान और उसकी संवेदनाएँ अब पहले जैसी नहीं रही। वह केवल एक साधन या संख्या बनकर रह गया है। सिंधु में बिंदु का जो स्थान है वह भी स्थान नहीं है मनुष्य का यहाँ कवि एक अत्यंत प्रभावशाली उपमा देता है। सिंधु में एक बिंदु का भी एक

छोटा-सा स्थान होता है। आज के समाज में मनुष्य की स्थिति उससे भी अधिक तुच्छ और नगण्य हो गई है, आधुनिक समाज में मनुष्य की गरिमा और महत्व घट गया है, मानवीय मूल्य कमजोर हो गए हैं, व्यक्ति भीड़ में खो गया है और उसकी पहचान नगण्य हो गई है।

"साथी है मेरा एक
सेमल का पेड़
जो पुराना है...
अपने इस साथी का परस पा के
मेरी भी सिराओं में
नई रवानी आती है
रुधिर की तरंग बढ़ जाती है
साथी है न !"14

कवि का कहना है कि उसका एक साथी है—सेमल का पेड़, जो बहुत पुराना है। यहाँ पेड़ को केवल एक प्राकृतिक वस्तु नहीं, बल्कि जीवंत और आत्मीय मित्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है। पुराना शब्द यह संकेत करता है कि यह संबंध लंबे समय से बना हुआ है और उसमें गहराई व स्थायित्व है। अपने इस साथी का परस पा के जब कवि इस पेड़ के संपर्क में आता है छूता है या उसके पास रहता है, तो उसे एक विशेष प्रकार की ऊर्जा और स्फूर्ति का अनुभव होता है। मेरी भी सिराओं में नई रवानी आती है रुधिर की तरंग बढ़ जाती है। इसका अर्थ है कि उस पेड़ के साथ जुड़कर कवि के भीतर नवजीवन का संचार होता है। उसके शरीर में जैसे रक्त का प्रवाह तेज हो जाता है, अर्थात् वह अधिक जीवंत, उत्साही और ऊर्जावान महसूस करता है। गहरी आत्मीयता और विश्वास झलकता है। कवि यह मानता है कि सच्चा साथी वही होता है, जो हमें ऊर्जा, शांति और आनंद प्रदान करे—चाहे वह मनुष्य हो या प्रकृति का कोई तत्व।

"चोंच दबाए एक तिनका
गौरय्या
मेरी खिड़की के खुले हुए
पल्ले पर
बैठ गई
और देखने लगी"15

गौरैया अपने घोंसले के निर्माण में लगी हुई है। वह परिश्रम, लगन और सृजन का प्रतीक है। खिड़की के खुले हुए पल्ले पर बैठ गई। यह मनुष्य और प्रकृति के बीच निकटता और सहज संबंध को दर्शाता है। खुली खिड़की एक प्रकार से खुले मन और स्वागत की भावना का प्रतीक है। गौरैया का कवि को देखना एक आत्मीय संवाद का आभास देता है। ऐसा लगता है मानो वह मनुष्य और प्रकृति के बीच मौन संबंध स्थापित कर रही हो।

निष्कर्ष – त्रिलोचन के काव्य में जनपदीय चेतना और मानवतावादी दृष्टिकोण का अत्यंत सशक्त एवं स्वाभाविक समन्वय देखने को मिलता है। उनकी कविताएँ ग्राम्य जीवन की यथार्थपरक अभिव्यक्ति करते हुए लोकसंस्कृति, लोकभाषा और सामान्य जन के संघर्षों को केंद्र में स्थापित करती हैं। त्रिलोचन केवल ग्रामीण जीवन का चित्रण ही नहीं करते, बल्कि उसके भीतर निहित मानवीय मूल्यों—समानता, करुणा, श्रम की गरिमा और सामाजिक न्याय—को भी प्रमुखता देते हैं। उनका काव्य शोषित और वंचित वर्ग की आवाज़ बनकर सामाजिक विषमताओं के विरुद्ध सजग चेतना उत्पन्न करता है।

इस प्रकार, त्रिलोचन की काव्य-दृष्टि साहित्य को जनजीवन से जोड़ते हुए उसे मानवीय सरोकारों का सशक्त माध्यम बनाती है। उनके काव्य में निहित जनपदीय चेतना और मानवतावाद आज भी समाज को संवेदनशील, न्यायपूर्ण और मानवीय बनाने की प्रेरणा प्रदान करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. त्रिलोचन, उस जनपद का कवि हूं, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण- 1982, पृष्ठ 17
2. शर्मा रामविलास, मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण- 2002, पृष्ठ 273
3. त्रिलोचन, ताप के ताए हुए दिन, संभावना प्रकाशन, हापुड़, संस्करण- 1980, पृष्ठ 61-62
4. त्रिलोचन, धरती, साहित्यवाणी, इलाहाबाद, दूसरी आवृत्ति- 1996, पृष्ठ 92
5. त्रिलोचन, मेरा घर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2002, पृष्ठ 25
6. त्रिलोचन, दिगंत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2006, पृष्ठ 25
7. दुबे श्यामाचरण, समय और संस्कृति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2017, पृष्ठ 162-163
8. त्रिलोचन, गुलाब और बुलबुल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 1985, पृष्ठ 69
9. त्रिलोचन, सबका अपना आकाश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 1987, पृष्ठ 10
10. गुहा रामचंद्र, भारत: गांधी के बाद, पेंगुइन बुक्स इंडिया यात्रा बुक्स, दिल्ली, हिंदी संस्करण- 2011, पृष्ठ 203
11. त्रिलोचन, गुलाब और बुलबुल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 1985, पृष्ठ 88
12. त्रिलोचन, दिगंत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2006, पृष्ठ 41
13. त्रिलोचन, धरती, साहित्यवाणी, इलाहाबाद, दूसरी आवृत्ति- 1996, पृष्ठ- 98
14. शर्मा विष्णुचंद्र, (संपादक) त्रिलोचन अरघान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण- 2015, पृष्ठ 42-43
15. त्रिलोचन, ताप के ताए हुए दिन, संभावना प्रकाशन, हापुड़, संस्करण- 1980, पृष्ठ 15

Email id – drramashishtiwari@gmail.com
मोबाइल नं. - 9451782292

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 203-207
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

फणीश्वरनाथ रेणु के साहित्य में चित्रित आंचलिकता और वर्तमान ग्रामीण : एक तुलनात्मक अध्ययन

आकाश कुमार बाल्मीकि
शोधार्थी,
हिन्दी विभाग,
बर्दवान विश्वविद्यालय, पश्चिम बंगाल

शोध-सार

यह शोध 'फणीश्वरनाथ रेणु के साहित्य में चित्रित आंचलिकता और वर्तमान ग्रामीण : एक तुलनात्मक अध्ययन।' हिन्दी साहित्य में अंचल क्षेत्र और उसके ग्रामीण जीवन में व्याप्त समस्याओं के चित्रण का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन में प्रमुख रूप से फणीश्वरनाथ रेणु की कथा-साहित्य का अध्ययन किया गया है। कथा-साहित्य के माध्यम से वर्तमान भारतीय ग्रामीण समाज में हो रहे परिवर्तनों को समझने की कोशिश की है।

बीजक शब्द : आंचलिकता, कथा-साहित्य, आर्थिक विषमता, जातिगत विभाजन, ग्रामीण परिवेश, स्त्री जीवन, सामाजिक न्याय, संवेदनात्मक यथार्थवाद, वर्ग-संघर्ष, उत्पादन, संसाधन, पंचायत व्यवस्था, वैश्वीकरण, बाजारवाद, औपनिवेशिक व्यवस्था, अंधविश्वास, राजनीतिक भ्रष्टाचार, भूदान आंदोलन।

प्रस्तावना

स्वतंत्रता पश्चात हिन्दी कथा-साहित्य में नया बदलाव देखने को मिलता है। यह कथा-साहित्य ग्रामीण पृष्ठभूमि पर आधारित है। इनमें स्थानीय रंग और जीवन की झलक साफ दिखाई देती है, जिसे 'आंचलिकता' कहा गया। आंचलिक कथा-साहित्य लिखने वालों की परंपरा में फणीश्वरनाथ रेणु का नाम सर्वप्रथम आता है। फणीश्वरनाथ रेणु अपने पहले उपन्यास 'मैला आँचल' की भूमिका में लिखा है- "यह है मैला आँचल एक आंचलिक उपन्यास। कथानक है पूर्णिया। मैंने इसके एक हिस्से के एक गाँव को पिछड़े का प्रतीक मानकर कथा का क्षेत्र बनाया है।"[1]

हिन्दी कथा-साहित्य में 'आंचलिक' शब्द का इस्तेमाल यही से शुरू हुआ। हालांकि इससे पूर्व कई कथाकारों ने ग्रामीण पृष्ठभूमि पर आधारित कथा-साहित्य का प्रणयन किया था और आगे भी करते रहें। यह पहली बार था जब रेणु

ने अपने साहित्य में किसी अंचल क्षेत्र भाषा, संस्कृति और जीवन को बहुत गहराई से चित्रित किया। इसी कारण वे आगे चलकर आंचलिकता कथा-साहित्य के रूप में हिन्दी कथा-साहित्य में प्रसिद्ध हुए।

अंचलों की अपनी सामाजिक समस्याएं होती हैं। इनकी अपनी संस्कृति होती है। 'अपने नैतिक मापदंड होते हैं। सामाजिक परिवेश के कुशल चित्रण से लेखक वातावरण को प्रभावोत्पादकता प्रदान करता है। सभी आंचलिक उपन्यासों का सामाजिक जीवन समस्याग्रस्त होता है क्योंकि अंचल पिछड़े हुए क्षेत्र होते हैं और पिछड़ापन समस्याओं का जनक होता है।'[2] ये सामाजिक समस्याएं अपने तरह की होती है। इस सामाजिक विन्यास व मानवीय संबंधों की उलझनों को समझने के लिए जिस प्रकार की आंचलिक दृष्टि चाहिए, वह रेणु में भलीभांति थी।

रेणु ने अपने कथा-साहित्य का आधारभूमि बिहार प्रान्त की पूर्णिया जनपद को बनाया है। उनका जन्म पूर्णिया जिले के औराही हिंगना नामक गाँव में एक साधारण किसान परिवार में हुआ था। उन्होंने काफी समय इस क्षेत्र में बिताया था। वे यहाँ की हर समस्या से भलीभांति परिचित थें। यही वजह है कि उनकी रचनाओं के पात्रों के इर्द-गिर्द का वातावरण इसी भूमि से निर्मित हुआ है। उनका प्रथम उपन्यास 'मैला आँचल' 1954 में प्रकाशित हुआ। यह एक आंचलिक उपन्यास था। इस उपन्यास और अपने कथा-साहित्य के संबंध में वे लिखते हैं कि- "मैं पूर्णिया जिले के साथ-साथ इससे जुड़े अनेक गाँवों को अपने कथा का आधार बनाया है, जिसमें अंचल की समस्त धड़कने कैद हैं।"[3]

रेणु के साहित्य में लोकतात्विक और शैलीगत विशेषताएं उन्हीं अंचलों से संबंधित है। कथा-साहित्य में विविध सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विद्रुपताओं एवं विशिष्ठताओं का चित्रण किया गया है। इनके पात्र देश की आधुनिक संस्कृति से हटकर अपनी आंचलिक प्रवृतियों के कारण संत्रास का जीवन व्यतीत कर रहे हैं इसलिए वे स्वतंत्रता की लड़ाई के प्रति भी कम गंभीर नहीं हैं। कथा-साहित्य में वर्णित पात्र आजादी के लिए तड़प रहे हैं, ताकि मुख्य धारा में शामिल हो सकें।

'मैला आँचल' में परंपरागत ढ़ंग से स्वार्थ के बोलबाला है। ऐसे हजारों जमींदार हैं जो अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए गरीबों का खून चूस रहे हैं। उनकी कोठियाँ ऊँची हो रही हैं तथा गरीब और गरीब होता जा रहा है। एक-दूसरे को आपस में लड़वाकर वोटें बटोरने जैसी नीच कार्य कर रहे हैं। इस उपन्यास में अंधविश्वासी लोगों की भरमार है। यहाँ के ग्रामीण लोग भूत-प्रेत जंगली देवी-देवता पर विश्वास करते हैं तथा डॉक्टर को रोग बढ़ाने वाला बताते हैं। दवाइयाँ कुआँ में डाल देते हैं। इनका मानना है कि दवा ईलाज करवाने से गाँव वाले मर जायेंगे। इसलिए ऑपरेशन कराने से मर जाना श्रेष्ठ मानते हैं। "अपशब्द कह देने मात्र से तुरन्त सराप मिल जाता है तथा दुहाई बाबा पीर भूल-चूक माफ करो। मेरे बच्चे की मति फेर दो महातिमा"[4] इत्यादि वाक्यांश अंधविश्वासों से भरे पड़े हैं।

फणीश्वरनाथ रेणु का दूसरा आंचलिक उपन्यास 'परती परिकथा' है, जिसका प्रकाशन 1957 ई. में हुआ। उपन्यास में बिहार प्रान्त के परानपुर गाँव की परिकथा का वर्णन किया गया है, जहाँ बंजर, जड़ रूपी धरती को ज्ञान रूपी हल से जोतकर नई फसल के होने की कल्पना रेणु ने किया है। परंपरागत रूप में यहाँ जातिवाद का बोलबाला है। "पिछले आठ दस वर्षों से जातिवाद ने काफी जोर पकड़ा है। राजनीतिक पार्टियां भी जातिवाद की सहायता से संगठन करना जायज समझती है....आठ वर्षों से जातिवाद के दीमकों का मुख्य आहार है मनुष्य का हृदय।"[5] लोगों में जादू-टोने का गहरा प्रभाव है। "जादू-टोना में लोग बड़ू माहिर हैं। जादू के बल पर ही जबधारी लाल ब्रह्म पिशाच से भेंट करा सकता है। पंचहरिया मूर्छावान डिवियों के खोलने से अमावस्या की पात होना तथा अंगूठे के नगीने से आंधी-पानी को छोड़ना।"[6] जैसे अनेक उदाहरण इस उपन्यास में जादू-टोने के प्रभाव को दिखाते हैं।

रेणु के कथा-साहित्य में यथार्थ का प्रमुख आयाम सामाजिक यथार्थ है, जो जातिवादी संरचना, गरीबी, अशिक्षा और स्त्री-विमर्श आदि को आत्मसात किए हुए है। ‘मैला आँचल’ में जहाँ रूढ़ियाँ, अशिक्षा, भुखमरी, अंधविश्वास और जातिगत भेदभाव का नग्न स्वरूप दिखाई देता है, वहीं ‘परती परिकथा’ में प्राकृतिक संकटों से साथ-साथ सामाजिक विषमता, भूमिहीनों की विवशताओं और प्रशासनिक उपेक्षा को चित्रित किया है।

रेणु द्वारा लिखित उपन्यास ‘जुलूस’ का प्रकाशन 1965 में हुआ था। इस उपन्यास में आंचलिक जीवन को आदिवासी और दलित समुदायों की दृष्टि से देखने का प्रयास किया गया है। उपन्यास के केंद्र में बांग्ला शरणार्थियों, भूमिहीनों और मजदूरों के जीवन संघर्षों को रखा गया है। यहाँ नायक कोई व्यक्ति नहीं है, बल्कि सामूहिक चेतना एक आंदोलन का रूप लिए हुए है। इस उपन्यास में आंचलिक जीवन के भीतर के राजनीतिक चेतना, वर्गीय संघर्ष और सामाजिक गतिशीलता का मुखर रूप दिखाई पड़ता है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। स्वतंत्रता के बाद जो अर्थव्यवस्था हमें मिली, उसमें देश का विकास करना असंभव था। औपनिवेशिक व्यवस्था का आर्थिक दुष्प्रभाव सम्पूर्ण समाज पर गहरा था, जिसके चलते किसानों, मजदूरों और देश के निम्नवर्गीय समाज के लोग आर्थिक तंगियो से जूझते रहे। देश में लम्बे समय तक विदेशी शासन रहा, फलस्वरूप उन्होंने देश का अत्यधिक आर्थिक शोषण किया। गाँवों की दशा दिन प्रतिदिन खराब होती गई। महाजनी व्यवस्था में किसानों का खूब शोषण हुआ। ग्रामीण आर्थिक समस्याएं इन्हीं आर्थिक नीतियों का परिणाम थीं। रेणु ने अपने साहित्य में इन्हीं सबका चित्रण किया है। रेणु आर्थिक असमानता, निर्धनता, बेरोजगारी जैसे आर्थिक विषयों की बारिकों को समझते हैं और अपने कथा-साहित्य में उचित स्थान देते हैं। अर्थ के अभाव में मानवीय रिश्तों में उतार-चढ़ाव आता है। रिश्तों में आने वाले उतार-चढ़ाव को रेणु अपने पात्रों के माध्यम से दिखाते हैं।

वर्ग-संघर्ष की अवधारणा मार्क्सवादी चिंतन पर आधारित होती है। इस चिंतन के अनुसार समाज दो वर्गों में विभाजित है। समाज का एक वर्ग उत्पादन के संसाधनों पर अधिकार रखता है और दूसरा वर्ग साधनविहीन होता है। ‘संसाधनों का असमान वितरण ही साधनविहीन वर्ग के शोषण का कारण बनता है। जब तक उत्पादन के साधनों पर सबका समान नियंत्रण नहीं होगा, तब तक समाज में समानता स्थापित करना असंभव है। रेणु ने अपने उपन्यासों में समाज के वर्ग-संघर्ष को चित्रित किया है। बहुत कम उपन्यासों में पिछड़े हुए गाँवों के वर्ग-संघर्ष, वर्ग-शोषण और वर्ग-अत्याचारों का ऐसा जीता जागता चित्रण मिलेगा।’[7]

‘परती परिकथा’ में भूख, बेरोजगारी, पलायन और श्रमशोषण जैसे आर्थिक यथार्थ को व्यक्त किया है। इस उपन्यास में परती भूमि की समस्या केवल भूगोल की चिंता नहीं, बल्कि ग्रामीण भारत की आर्थिक संकट का रूपक बन जाती है। किसानों की दयनीय दशा, भूमि सुधारों की विफलता और सरकार की निष्क्रियता का यथार्थवादी चित्रण उन्हें लोकचेतना के लेखक के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

रेणु ने सांस्कृतिक विविधता को संजीवता से प्रकट किया है। इसके लिए देशज शब्दावली, मुहावरे, कहावते और बोली के विविध रूपों का प्रयोग किया है। इस भाषा ने पाठक को अंचल की जमीन से जोड़ा है।

रेणु के पात्र भले ही ग्रामीण आंचलिक क्षेत्र से आते हो, वे अपनी परिस्थितियों से संघर्ष करते हैं। कभी निराश नहीं होते हैं। उनमें करुणा, प्रेम, त्याग और सामाजिक जिम्मेदारी की चेतना विद्यमान है। यही दृष्टिकोण रेणु को संवेदनात्मक यथार्थवादी बनाती है।

रेणु के उपन्यासों की विशेषता यह है कि वे समय से परे होते हुए भी समय-सापेक्ष है। उनका यथार्तवादी दृष्टिकोण, आंचलिक जीवन का सूक्ष्म चित्रण करता है। उनके यहाँ ग्रामीण राजनीति की जटिलताएँ देखने को मिलती है। समाज में सामाजिक विषमता विद्यमान है। स्त्रियों की स्थिति बद-से-बद्तर है। यहाँ के लोग विकास के नाम पर उपेक्षित जीवन जीने को मजबूर हैं। ऐसे में रेणु की दृष्टि हर स्तर पर मूल्यवान संवाद प्रस्तुत करने की कोशिश करती है।

आज भारत की विकास यात्रा शहरों से गाँवों की ओर बढ़ने लगी है। ऐसे समय में रेणु के उपन्यासों में चित्रित ग्रामीण यथार्थ हमें नीतिगत विमर्श के लिए मूल्यवान संकेत देते हैं। रेणु के कथा-साहित्य में जिस प्रकार से स्वराज और स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण जनता की अपेक्षाओं का टूटना दर्शाया गया, वह आज भी पंचायत व्यवस्था, भ्रष्टाचार और सत्ता के केंद्रीकरण के संदर्भ में उतना ही मौलिक है। उनका 'मैला अंचल' उपन्यास इसका प्रमाण है।

आज वैश्वीकरण और बाजारवाद से गाँवों की संस्कृति प्रभावित हो रही है। ऐसे समय में रेणु की रचनाएँ सांस्कृतिक संरक्षण का कार्य कर ग्रामीण संस्कृति को बचाने की प्रेरणा देती है। 'परती परिकथा' उपन्यास में उन्होंने खेती की समस्या, पलायन और पारंपरिक ज्ञान के क्षरण दिखाया है। ये समस्या आज की समाज और अर्थव्यवस्था से जुड़ी हुई है।

स्त्री के प्रति रेणु की दृष्टि अत्यंत मानवीय है। 'मैला आँचल' की प्रभा हो या 'दीर्घतपा' की मृदुला, ये पात्र आज भी ग्रामीण भारत में महिलाओं की संघर्षशील पहचान को उजागर किया है। यह तथ्य बहुत ही महत्वपूर्ण है कि रेणु ने स्त्री को सिर्फ करुणा की मूर्ती न मानकर संघर्षशील और विचारशील व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है। रेणु के उपन्यासों में आये नारी पात्रों में राजनीतिक चेतना है। वे प्रेमजाल में पड़ती हैं, इसके बावजूद राजनीतिक व सामाजिक नेतृत्व करना चाहती है। कमला, लक्ष्मी, फुलिया, मलारी, बिजली, इंद्रावती, छवि, रमला, बेला, मिसेज आनन्द, पवित्रा चटर्जी आदि स्त्री पात्र अपने ढ़ंग से अपनी बातों पर दृढ़ हैं। इन सभी पात्रों में नेतृत्व की क्षमता है- "बिजली अपने कमरे में लेटी, चुपचाप अपनी तस्वीर बना रही है, अपने मानसपटल पर! कांग्रेस कमेटी के महिला विभाग की इंचार्ज-बिजली?.....देशनायिका बिजली....हजारों-हजार जनता के सामने खड़ी होकर भाषण दे रही है।....वह हजारों-हजार जनता को जिधर चाहती है, मोड़ देती है।.....वह देश की दुर्दशा पर रोती है तो सब रो देते हैं, और जब हँसती है तो सब हँस पड़ते हैं। हजारों-हजार जनता, हजारों-हजार मुरलीमनोहर के मुखड़े....।"[8]

रेणु ने बहुत पहले ही लोकतांत्रिक संकटों की पहचान कर ली थी। उनके कथा-साहित्य में राजनीति का अपराधीकरण, सत्ता का दुरुपयोग और सामाजिक न्याय का क्षरण आदि का बखूबी चित्रित हुआ है। 'जुलूस' उपन्यास में जनता और सत्ता के बीच की दूरी और विचारधारा के नाम पर जो राजनीति की जा रही है, वह आज के सामाजिक-राजनीतिक संदर्भों में सटीक प्रतीत होता है। स्वतंत्र भारत की जनता को एक नई आशा थी कि नई शासन व्यवस्था में, नये समाज में, जातिगत भेदभाव समाप्त हो जायेगा। स्वराज की स्थापना होने से जाति-पाति के नाम पर होने वाले भेदभाव में कमी आयेगी। शायद, इसी आशा से 'जुलूस' उपन्यास की पात्र रेशमी बोलती है- "अरी अब कौन जात ऊँच और जात नीच? सब जात बराबर हो गया। सुराज के बाद से।"[9] लेकिन ऐसा नहीं हुआ। जातीय बंधन और ज्यादा जटिल होते गये।

गाँधीवादी सोच के लोग नैतिक पक्ष का पालन करते हैं। अहिंसा के मार्ग पर चलते हैं। आचार्य विनोबा भावे के नेतृत्व में 18 अप्रैल 1951 ई. को तेलंगाना राज्य के 'पोचमल्ली' ग्राम से भूदान आंदोलन की शुरुआत हुई। भूदान आंदोलन का उद्देश्य था कि भूमि सुधार हो, कृषि में संस्थागत परिवर्तन और भूमि का पुनर्वितरण। यह माना गया कि

सिर्फ कानूनी प्रयासों के माध्यम से यह कार्य नहीं हो सकता, बल्कि इसके लिए आंदोलन की आवश्यकता है। इसमें गाँधीवादी तरीके, रचनात्मक कार्य और ट्रस्टीशिप के विचार अपनाएँ गए। विनोबा भावे ने 'सर्वोदय समाज' की स्थापना की। यह कार्यकर्ताओं का एक अखिल भारतीय संघ था। वे जमींदारों से अपनी जमीन का छठा भाग भूदान के रूप में भूमिहीनों और गरीब किसानों को देने का अनुरोध करते थे। इस आंदोलन के तहत 1961 तक लगभग 8 लाख 72 हजार एकड़ जमीन दान में बांटी गई। यह भूदान आंदोलन मेरीगंज और परानपुर में भी चल रहा है।

निष्कर्ष

इस शोध कार्य में हमने भारतीय समाज में हो रहे परिवर्तनों को समझने की कोशिश की है। रेणु की यह लेखन यात्रा स्वतंत्रता से पूर्व शुरू होकर सत्तर के दशक तक चलती रही। इस अवधि के दौरान सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों को उसके कथा-साहित्य में देख सकते हैं। उनके कथा-साहित्य का विषय स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्र-निर्माण की उभरती हुई चुनोतियाँ है। इनमें आधुनिक-प्राचीनता, परिवर्तन-जड़ता, निर्माण-विध्वंस के बीच टकराहट है। इन परिवर्तनों को वर्तमान संदर्भ में जानने का प्रयास किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1. फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल 'भूमिका' नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, संस्करण : 1954
2. आदर्श सक्सेना, हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि, बीकानेर : सूर्य प्रकाशन मन्दिर, संस्करण : 1971, पृष्ठ 216
3. फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल 'भूमिका' नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, संस्करण : 1954
4. फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, संस्करण : 1954, पृष्ठ 193
5. फणीश्वरनाथ रेणु, परती परिकथा, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, संस्करण : 1957, पृष्ठ 27
6. फणीश्वरनाथ रेणु, परती परिकथा, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, संस्करण : 1957, पृष्ठ 14
7. डॉ. रामविलास शर्मा, आस्था और सौंदर्य, किताब महल : इलाहाबाद, 1883, पृष्ठ 120
8. फणीश्वरनाथ रेणु, रेणु रचनावली, भाग-3, पृष्ठ 47
9. फणीश्वरनाथ रेणु, जुलूस, नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ 176

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 208-214
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

अज़ीज़ आजाद के साहित्य में दृश्यात्मकता और उसका सिनेमाई प्रभाव

भुराराम मेघवाल
शोधार्थी,
आचार्य डॉ एजाज अहमद कादरी
शोध निर्देशक,
हिन्दी विभाग, डूंगर महाविद्यालय बीकानेर
महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय बीकानेर राजस्थान

शोध सारांश: यह शोध–पत्र अज़ीज़ आज़ाद के साहित्य में अंतर्निहित दृश्यात्मकता और उसके संभावित सिनेमाई प्रभावों का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। आधुनिक हिंदी साहित्य में दृश्य–संवेदना केवल वर्णनात्मक शैली तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह कथा–संरचना, चरित्र–निर्माण, संवाद–विन्यास और परिवेश–चित्रण के विविध आयामों में विस्तृत रूप से प्रकट होती है। अज़ीज़ आज़ाद की रचनाओं में घटनाएँ मात्र वर्णित नहीं होतीं, बल्कि वे पाठक के सामने सजीव दृश्यों के रूप में साकार होती हैं, जिससे पाठ का अनुभव अधिक प्रभावपूर्ण और संवेदनात्मक बन जाता है। उनके साहित्य में स्थान, काल और वातावरण का सूक्ष्म एवं चित्रात्मक अंकन पाठक को एक प्रकार की दृश्य–अनुभूति से जोड़ देता है। यही विशेषता उनके कथ्य को सिनेमाई संवेदना से अभिसिंचित करती है, जहाँ शब्द कैमरे की भाँति दृश्य रचते प्रतीत होते हैं।

इस अध्ययन में दृश्यात्मकता की सैद्धांतिक अवधारणा को स्पष्ट करते हुए यह विश्लेषण किया गया है कि अज़ीज़ आज़ाद की कथा–रचना में फ्रेम–संरचना, दृश्य–परिवर्तन, फ्लैशबैक, मोंटाज–सदृश संयोजन तथा संवादों की नाटकीयता जैसे तत्त्व किस प्रकार अंतर्निहित हैं। शोध यह भी प्रतिपादित करता है कि उनकी रचनाएँ पटकथा–अनुकूलता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं तथा उनमें दृश्य–माध्यमों में रूपांतरण की सशक्त संभावनाएँ निहित हैं। इस प्रकार उनका साहित्य शब्द और दृश्य के अंतर्संबंध का एक सजीव उदाहरण प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य साहित्य और सिनेमा के पारस्परिक संबंधों को रेखांकित करते हुए अज़ीज़ आज़ाद की रचनात्मक विशिष्टता को स्थापित करना है।

मुख्य शब्द: अज़ीज़ आज़ाद, दृश्यात्मकता, सिनेमाई प्रभाव, कथा–संरचना, बिंब–योजना, यथार्थवाद, संवाद–विन्यास, साहित्य और सिनेमा संबंध।

प्रस्तावना: साहित्य और सिनेमा अभिव्यक्ति के दो ऐसे प्रभावशाली माध्यम हैं, जिनका उद्देश्य मानव जीवन और सामाजिक यथार्थ को संवेदनात्मक रूप में प्रस्तुत करना है। साहित्य शब्दों के माध्यम से पाठक के मन में कल्पनात्मक दृश्य निर्मित करता है, जबकि सिनेमा उन दृश्यों को दृश्य–श्रव्य तकनीक के सहारे प्रत्यक्ष अनुभव में परिवर्तित करता है। वर्तमान युग में दृश्य–संस्कृति के व्यापक प्रसार ने साहित्य की अभिव्यक्ति–प्रणाली को भी गहराई से प्रभावित किया है। परिणामस्वरूप आधुनिक कथा–साहित्य में चित्रात्मकता, दृश्य–निर्माण और फ्रेम–जैसी संरचनात्मक प्रवृत्तियाँ अधिक सुस्पष्ट रूप में दिखाई देती हैं। इसी संदर्भ में अज़ीज़ आज़ाद का साहित्य उल्लेखनीय है, क्योंकि उनकी रचनाओं में भाषा केवल कथन का उपकरण नहीं रहती, बल्कि वह सजीव दृश्य रचने का माध्यम बन जाती है। अज़ीज़ आज़ाद की कृतियों में परिवेश, पात्र और घटनाएँ अत्यंत सजीव एवं मूर्त रूप में उभरते हैं। उनकी वर्णन–शैली पाठक को यह अनुभव कराती है मानो घटनाएँ उसके समक्ष घटित हो रही हों। स्थान और प्रकृति का विस्तृत चित्रण, सामाजिक यथार्थ का सघन प्रस्तुतीकरण तथा पात्रों की आंतरिक मनोदशाओं का सूक्ष्म विश्लेषण—ये सभी तत्व उनकी रचनाओं को दृश्यात्मक गहराई प्रदान करते हैं। संवादों की प्रभावशीलता, दृश्य–क्रम का स्वाभाविक प्रवाह और कथा–विन्यास की तकनीकी सजगता उनके साहित्य को सिनेमाई शिल्प के निकट ले जाती है। वर्तमान समय में साहित्य और सिनेमा के अंतर्संबंधों पर बढ़ती आलोचनात्मक चर्चाओं के परिप्रेक्ष्य में अज़ीज़ आज़ाद की रचनाओं का अध्ययन विशेष महत्त्व रखता है। यह शोध इस तथ्य की पड़ताल करता है कि उनकी कृतियों में दृश्यात्मकता किस प्रकार प्रकट होती है और वह किस सीमा तक सिनेमाई प्रभाव उत्पन्न करती है। साथ ही यह भी विश्लेषित किया जाएगा कि उनकी कथा–संरचना में कौन–से ऐसे शिल्पगत तत्व निहित हैं, जो उन्हें दृश्य–माध्यमों में रूपांतरित होने योग्य बनाते हैं। इस प्रकार यह अध्ययन साहित्य और सिनेमा के पारस्परिक संबंध को स्पष्ट करने के साथ–साथ अज़ीज़ आज़ाद की सर्जनात्मक विशिष्टता को रेखांकित करने का प्रयास करता है।

अजीज आजाद: व्यक्तित्व और कृतित्व : समकालीन हिन्दी–उर्दू साहित्य के परिदृश्य में अज़ीज़ आज़ाद एक ऐसे बहुआयामी रचनाकार के रूप में स्थापित होते हैं, जिन्होंने कविता, ग़ज़ल, कहानी और उपन्यास जैसी विविध विधाओं में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई। 21 मार्च 1944 को जन्मे अज़ीज़ आज़ाद ने इतिहास विषय में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की। इतिहास–बोध ने उनकी दृष्टि को गहराई प्रदान की, जिससे वे अतीत और वर्तमान के अंतर्संबंधों को सूक्ष्मता से समझ सके। यही ऐतिहासिक चेतना उनकी रचनाओं में समकालीन यथार्थ के साथ समन्वित रूप में प्रकट होती है और उन्हें वैचारिक दृढ़ता प्रदान करती है। उनकी साहित्यिक साधना विविध आयामों में विस्तृत रही। 'टूटे हुए लोग' (उपन्यास), 'उम्र बस नींद-सी' और 'भरे घर का सन्नाटा' (ग़ज़ल-संग्रह), 'हवा और हवा के बीच' (कविता-संग्रह) तथा 'कोहरे की धूप' (कहानी-संग्रह) उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं। इन रचनाओं में व्यक्ति के आंतरिक एकांत, संबंधों की जटिलता, सामाजिक विडंबनाएँ और बदलते समय की अस्थिरता का मार्मिक चित्रण मिलता है। उनकी भाषा संवेदना और बिंबात्मकता से समृद्ध है, जो पाठक के मन में सजीव दृश्य रचती है। यही कारण है कि उनकी रचनाएँ अपनी अंतर्निहित दृश्यात्मकता के कारण संभावित रूप से सिनेमाई रूपांतरण के लिए भी उपयुक्त प्रतीत होती हैं। रचनात्मक लेखन के साथ-साथ वे संपादन और सांस्कृतिक गतिविधियों में भी सक्रिय रहे। राजस्थान उर्दू अकादमी द्वारा प्रकाशित 'तजकरा शोरा-ए-बीकानेर' के संपादन में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही, जो उनके साहित्यिक योगदान का एक विशिष्ट आयाम

है। उनकी ग़ज़लें, कविताएँ और कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं तथा संकलनों में नियमित रूप से प्रकाशित होती रहीं। आकाशवाणी और दूरदर्शन से उनकी हिन्दी–उर्दू रचनाओं का प्रसारण हुआ, जिससे उनकी सृजनशीलता व्यापक पाठक और श्रोता वर्ग तक पहुँची। प्रख्यात गायक रफ़ीक सागर की आवाज़ में उनकी ग़ज़लों का एलबम 'आज़ाद परिन्दा' भी प्रकाशित हुआ, जो उनकी लोकप्रियता और स्वीकार्यता का परिचायक है। राष्ट्रीय स्तर के मुशायरों और कवि सम्मेलनों में उनकी सक्रिय भागीदारी ने उन्हें एक सम्मानित शायर के रूप में प्रतिष्ठित किया। साहित्य के साथ-साथ सामाजिक प्रतिबद्धता भी उनके व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण पक्ष रही। वे राजस्थान उर्दू अकादमी की संचालन-परिषद के सदस्य रहे और पी.यू.सी.एल. के जिला अध्यक्ष के रूप में सामाजिक सरोकारों से जुड़े रहे। विभिन्न साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं ने उनके योगदान को सम्मानित किया। 20 सितम्बर 2006 को अल्पकालिक अस्वस्थता के बाद उनका निधन हो गया। अज़ीज़ आज़ाद हिन्दी–उर्दू साहित्य में एक संवेदनशील सर्जक, जागरूक सामाजिक चिंतक और सक्रिय सांस्कृतिक व्यक्तित्व के रूप में सदैव स्मरणीय रहेंगे।

साहित्य से सिनेमा : रूपांतरण का सैद्धांतिक आधार साहित्य से सिनेमा की ओर रूपांतरण केवल कथा–वस्तु का स्थानांतरण नहीं, बल्कि अभिव्यक्ति–माध्यम के परिवर्तन के साथ अर्थ–संरचना के पुनर्गठन की प्रक्रिया है। साहित्य शब्दों के माध्यम से कल्पना का निर्माण करता है, जबकि सिनेमा दृश्य, ध्वनि, संगीत, संपादन और अभिनय के माध्यम से उसी कल्पना को मूर्त रूप देता है। इसीलिए रूपांतरण को 'अनुवाद' नहीं, बल्कि 'पुनर्सृजन' की संज्ञा अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है। डॉ. नामवर सिंह ने साहित्य और अन्य कलाओं के संबंध पर विचार करते हुए लिखा है— "साहित्य की शक्ति उसकी कल्पनाशीलता में है, परंतु जब वही कल्पना किसी अन्य कला में रूपांतरित होती है तो उसका रूप बदल जाता है, सार नहीं।"[1] यह कथन स्पष्ट करता है कि रूपांतरण में मूल संवेदना सुरक्षित रह सकती है, किंतु उसकी प्रस्तुति भिन्न हो जाती है। भारतीय सिनेमा में साहित्यिक रूपांतरण की परंपरा प्रारंभ से ही समृद्ध रही है। मुंशी प्रेमचंद की कहानियों और उपन्यासों पर आधारित फिल्मों ने सामाजिक यथार्थ को परदे पर जीवंत किया। इसी प्रकार शरतचंद्र चट्टोपाध्याय के उपन्यास देवदास पर बनी फिल्में यह सिद्ध करती हैं कि साहित्यिक कथा सिनेमा में नए अर्थ-संकेत अर्जित कर सकती है। रूपांतरण की प्रक्रिया में निष्ठा और सृजनात्मक स्वतंत्रता के बीच संतुलन आवश्यक है। इस संदर्भ में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का यह कथन प्रासंगिक है— "रचना का जीवन उसकी पुनर्रचना में भी बना रहता है; प्रत्येक युग उसे अपने ढंग से पढ़ता और गढ़ता है।"[2] सिनेमा जब किसी साहित्यिक कृति को ग्रहण करता है, तो वह उसे अपने समय, तकनीक और दर्शक–रुचि के अनुरूप ढालता है। परिणामतः कथानक में परिवर्तन, पात्रों का पुनर्गठन और अंत का पुनर्संयोजन स्वाभाविक हो जाता है। अतः रूपांतरण को मूल कृति के प्रति पूर्ण निष्ठा या पूर्ण विचलन के पैमाने से नहीं आँकना चाहिए। यह एक सृजनात्मक संवाद है, जिसमें साहित्य और सिनेमा दोनों की स्वतंत्र सत्ता बनी रहती है। यही सैद्धांतिक आधार आगे चलकर अज़ीज़ आज़ाद की कृतियों के संभावित सिनेमाई विश्लेषण को समझने में सहायक होगा।

अज़ीज़ आज़ाद की कृतियों का सिनेमाई विश्लेषण : दृश्यात्मकता और संरचनात्मक रूपांतरण अज़ीज़ आज़ाद की रचनात्मकता का एक महत्त्वपूर्ण आयाम उनकी दृश्य–संवेदना है, जो शब्दों को केवल अर्थ–संप्रेषण का माध्यम नहीं रहने देती, बल्कि उन्हें सजीव दृश्य–अनुभव में रूपांतरित कर देती है। उनकी कथात्मक संरचना, वातावरण–निर्माण, संवाद–विन्यास और मनोवैज्ञानिक अंत:प्रवेश इस प्रकार संयोजित हैं कि पाठक पढ़ते समय मानो एक चलचित्र का अनुभव करता है। विशेष रूप से उनका उपन्यास 'टूटे हुए लोग' और कहानी–संग्रह 'कोहरे की धूप' इस संदर्भ में

उल्लेखनीय हैं। इन कृतियों में कथानक का विकास क्रमिक दृश्य–विन्यास के रूप में होता है, जहाँ प्रत्येक प्रसंग किसी फिल्मी अनुक्रम (सीक्वेंस) की तरह खुलता है। 'टूटे हुए लोग' में पारिवारिक विघटन और मानसिक एकाकीपन को जिस सूक्ष्मता से उकेरा गया है, वह सिनेमाई संरचना के अत्यंत समीप प्रतीत होता है। लेखक लिखते हैं— "घर की दीवारें जैसे धीरे-धीरे सिकुड़ रही थीं, और उनके बीच खड़े लोग अपने ही सायों से डरने लगे थे।"[3] यहाँ 'दीवारों का सिकुड़ना' मनोवैज्ञानिक दबाव का रूपक होने के साथ-साथ एक सशक्त दृश्य–बिंब भी है। सिनेमा में इसे क्लोज–फ्रेम, संकुचित प्रकाश–व्यवस्था और सीमित स्पेस के माध्यम से मूर्त किया जा सकता है। यह दृश्यात्मकता पाठकीय अनुभूति को दृश्य–अनुभव में बदलने की क्षमता रखती है। उपन्यास में ही एक अन्य प्रसंग में समय की ठहरावपूर्ण त्रासदी को इस प्रकार व्यक्त किया गया है— "घड़ी की सूइयाँ चलती रहीं, पर घर के भीतर समय जैसे ठहर गया था।"[4] यह कथन केवल वातावरण–निर्माण नहीं करता, बल्कि एक स्थिर कैमरा–शॉट की संभावना को जन्म देता है, जहाँ बाह्य गति और आंतरिक जड़ता का द्वंद्व स्पष्ट होता है। सिनेमा में 'टाइम–लैप्स' और 'साइलेंट फ्रेम' के माध्यम से इस बिंब को अत्यंत प्रभावशाली रूप दिया जा सकता है।इसी प्रकार 'कोहरे की धूप' की कहानियों में सामाजिक यथार्थ का चित्रण प्रतीकात्मक होते हुए भी अत्यंत दृश्यात्मक है। एक कहानी में लेखक लिखते हैं— " साहित्यकार भीतर से टूट गया। जब इस तरह वह एकदम शांत हो कर बैठ गया तो लोगों ने कहा- निराशावादी।"[5]

यह वाक्य सामाजिक विडंबना का रूपक है, किंतु साथ ही प्रकाश और छाया के द्वंद्व पर आधारित एक दृश्य–संरचना का संकेत भी देता है। सिनेमा में धुँधले फ्रेम, लो–लाइट और अस्पष्ट आकृतियों के माध्यम से इस प्रतीक को सशक्त दृश्य में बदला जा सकता है।एक अन्य कहानी में पात्र की आंतरिक स्थिति इस प्रकार व्यक्त होती है— "अब बीमार अब्बू का इलाज, बहन की शादी, नई मां की निशानी एक भाई की पढ़ाई की जिम्मेदारी उसी पर थी।"[6]

फिल्म–माध्यम में प्रतिबिंब, मल्टी–एंगल शॉट्स और म्यूट साउंड–डिज़ाइन के द्वारा इस मानसिक द्वंद्व को प्रभावी ढंग से रूपांतरित किया जा सकता है।अज़ीज़ आज़ाद के संवाद भी विशेष उल्लेखनीय हैं। वे न्यूनतम शब्दों में गहन अर्थ–संप्रेषण की क्षमता रखते हैं। उदाहरणतः— "हम साथ तो हैं, मगर जैसे किसी खाली मकान में रखी दो कुर्सियाँ।"[7] यह संवाद संबंधों की रिक्तता को मूर्त कर देता है। फ्रेम–कंपोज़ीशन में दो पात्रों के बीच दूरी, पृष्ठभूमि में सन्नाटा और धीमा संगीत इस संवाद की भाव–गहनता को कई गुना बढ़ा सकता है। यहाँ साहित्यिक कथन सीधे दृश्य–भाषा में अनूदित होने की क्षमता रखता है।इस प्रकार अज़ीज़ आज़ाद की रचनाओं में दृश्यात्मक ऊर्जा, प्रतीक–निर्माण और मनोवैज्ञानिक गहराई का ऐसा संयोजन मिलता है, जो उन्हें संभावित सिनेमाई रूपांतरण के लिए उपयुक्त आधार प्रदान करता है। यद्यपि रूपांतरण की प्रक्रिया में समय–सीमा, बाज़ार–मूल्य और तकनीकी आवश्यकताओं के कारण संरचनात्मक परिवर्तन अनिवार्य हो सकते हैं, फिर भी यदि निर्देशक मूल संवेदना और वैचारिक आधार को सुरक्षित रखते हुए दृश्य–भाषा का निर्माण करे, तो कृति की आत्मा अक्षुण्ण रह सकती है।अतः अज़ीज़ आज़ाद का साहित्य यह सिद्ध करता है कि शब्दों में निहित चित्र, यदि संवेदनात्मक निष्ठा के साथ रूपांतरित किए जाएँ, तो वे परदे पर भी अपनी मूल चेतना और भाव–गहनता को सुरक्षित रख सकते हैं।

रूपांतरण की सफलताएँ और सीमाएँ : अज़ीज़ आज़ाद के संदर्भ मेंअज़ीज़ आज़ाद के साहित्य की प्रमुख विशेषता उसकी दृश्यात्मक संरचना और भाव-संवेदनात्मक गहराई है। उनके उपन्यास टूटे हुए लोग तथा कहानी-संग्रह कोहरे की धूप में घटनाएँ क्रमिक रूप से इस प्रकार विकसित होती हैं कि वे दृश्य-दर-दृश्य निर्मित होती प्रतीत होती हैं। वातावरण, मौन, प्रतीक और संवाद—ये सभी तत्व एक संभावित सिनेमाई भाषा का संकेत देते हैं। इसी कारण उनके साहित्य का

रूपांतरण विचारणीय हो उठता है।रूपांतरण की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि फिल्म मूल रचना की संवेदना को किस सीमा तक सुरक्षित रख पाती है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का यह कथन यहाँ प्रासंगिक है— "रचना का जीवन उसके पाठ में ही नहीं, उसकी पुनर्रचना में भी बना रहता है।"[8] यदि इस दृष्टि से देखा जाए तो अज़ीज़ आज़ाद की रचनाओं में उपस्थित मानवीय अकेलापन, संबंधों की टूटन और सामाजिक विडंबना—ये ऐसे सार्वकालिक विषय हैं जिन्हें सिनेमा प्रभावी रूप से आत्मसात कर सकता है। किन्तु उनकी रचनाओं की एक विशिष्टता यह भी है कि वे सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और अंतर्मुखी भाव-प्रवाह पर आधारित हैं। सिनेमा, जो मूलतः दृश्य-माध्यम है, कई बार इस आंतरिकता को बाह्य क्रिया में रूपांतरित करने के लिए विवश होता है। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार— "कला का प्रत्येक माध्यम अपनी स्वतंत्र संरचना और सीमाओं के भीतर कार्य करता है।"[9] अतः यदि अज़ीज़ आज़ाद के साहित्य का रूपांतरण किया जाए, तो संभव है कि निर्देशक आंतरिक एकालाप को दृश्य प्रतीकों, प्रकाश-छाया और मौन के माध्यम से व्यक्त करे। सीमाओं की दृष्टि से बाज़ारवादी दबाव भी उल्लेखनीय हैं। अज़ीज़ आज़ाद का साहित्य प्रायः संवेदनात्मक और गंभीर है; उसमें चमत्कारिक घटनाओं की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक तनाव अधिक है। व्यावसायिक सिनेमा में ऐसी गहनता को बनाए रखना चुनौतीपूर्ण हो सकता है। फिर भी उनकी रचनाओं की दृश्यात्मकता—जैसे बंद कमरों का वातावरण, धुंध और प्रकाश के प्रतीक, संवादों की संक्षिप्तता—रूपांतरण को सहज बना सकती है। सफलता की स्थिति में फिल्म न केवल मूल संवेदना को सुरक्षित रखेगी, बल्कि उसे व्यापक दर्शक-वर्ग तक भी पहुँचाएगी। इस प्रकार अज़ीज़ आज़ाद के संदर्भ में रूपांतरण की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि फिल्मकार उनकी रचनात्मक संवेदना को कितनी आत्मीयता से समझते हैं। यदि मूल विचारधारा और भाव-संरचना सुरक्षित रहती है, तो दृश्य-माध्यम उनके साहित्य को नई जीवंतता प्रदान कर सकता है; अन्यथा वह केवल कथानक का बाह्य रूप बनकर रह जाएगा।

सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव : अज़ीज़ आज़ाद के साहित्य और संभावित सिनेमाई रूपांतरण के संदर्भ मेंअज़ीज़ आज़ाद का साहित्य आधुनिक भारतीय समाज की विडंबनाओं, संबंधों की जटिलताओं तथा सांस्कृतिक संक्रमण की प्रक्रिया का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। उनके कथासाहित्य में व्यक्ति और समाज के बीच उत्पन्न तनाव केवल व्यक्तिगत समस्या नहीं, बल्कि व्यापक सामाजिक संरचना का द्योतक है। विशेष रूप से 'टूटे हुए लोग' में मध्यमवर्गीय जीवन की अस्थिरता, संबंधों का कृत्रिम स्वरूप और नैतिक मूल्यों का ह्रास स्पष्ट रूप से उभरता है। एक स्थान पर वे लिखते हैं— "रिश्ते अब विश्वास से नहीं, आवश्यकता से टिके हुए थे।"[10] यह पंक्ति केवल पारिवारिक विघटन का संकेत नहीं देती, बल्कि उस सामाजिक मानसिकता को भी उद्घाटित करती है जहाँ संबंध उपयोगितावादी दृष्टि से संचालित होने लगते हैं। यह आधुनिक उपभोक्तावादी संस्कृति की आलोचना भी है, जो मानवीय भावनाओं को भी व्यवहारिक लाभ-हानि के तराजू पर तौलती है।इसी उपन्यास में एक अन्य संदर्भ में लेखक कहते हैं— "हर आदमी अपने भीतर एक अधूरा सच छुपाए चलता है।"[11] यह कथन आधुनिक व्यक्ति की आंतरिक असुरक्षा और दोहरे जीवन की ओर संकेत करता है। सामाजिक प्रतिष्ठा और निजी सत्य के बीच की दूरी व्यक्ति को मानसिक रूप से विभाजित कर देती है। यदि इस मन:स्थिति का सिनेमाई रूपांतरण किया जाए, तो निर्देशक प्रतीकात्मक दृश्य-रचना, दर्पण-प्रतिबिंब, एकांत फ्रेम और मौन के माध्यम से इस 'अधूरे सच' को दृश्य रूप दे सकता है।उनके कहानी-संग्रह 'कोहरे की धूप' में सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया और अधिक सूक्ष्मता से व्यक्त होती है। एक स्थान पर वे लिखते हैं— "समय बदलता गया, पर लोगों की संवेदनाएँ सिकुड़ती चली गईं।"[12] यह पंक्ति केवल समय-परिवर्तन का उल्लेख नहीं करती, बल्कि सामाजिक संवेदनहीनता की आलोचना करती है। आधुनिकता के साथ आई भौतिक उन्नति ने जहाँ जीवन-स्तर को

बदला, वहीं मानवीय आत्मीयता और पारस्परिक विश्वास में कमी भी आई।यदि इन रचनाओं का फिल्मी रूपांतरण किया जाए, तो उसका प्रभाव व्यापक सामाजिक स्तर पर देखा जा सकता है। सिनेमा दृश्यात्मक शक्ति के कारण साहित्यिक भावों को सामूहिक अनुभव में बदल देता है। जहाँ पाठक अकेले पढ़ते समय आत्ममंथन करता है, वहीं दर्शक सामूहिक रूप से उसी संवेदना का अनुभव करता है। इस प्रकार अज़ीज़ आज़ाद का साहित्य और उसका संभावित रूपांतरण समाज में संवाद और आत्मचिंतन की प्रक्रिया को सशक्त कर सकता है।तः यह कहा जा सकता है कि अज़ीज़ आज़ाद की रचनाएँ सामाजिक यथार्थ की आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करती हैं और उनका सिनेमाई रूपांतरण सामाजिक-सांस्कृतिक विमर्श को और अधिक व्यापक आयाम प्रदान कर सकता है।

निष्कर्ष: अज़ीज़ आज़ाद का साहित्य और उसके संभावित सिनेमाई रूपांतरण इस अध्ययन के माध्यम से यह स्पष्ट करते हैं कि उनका लेखन केवल कथा-निर्माण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय आयामों का गहन दर्शन प्रस्तुत करता है। उनके कृतियों में आधुनिक जीवन की जटिलताएँ, पारिवारिक विघटन, व्यक्तिगत अकेलापन और सामाजिक अस्थिरता बड़ी सूक्ष्मता से उभरती हैं। यह शोध दर्शाता है कि उनके पात्रों की आंतरिक भावनाएँ और कथा की दृश्यात्मक संरचना उन्हें सिनेमा जैसे दृश्य-माध्यम के अनुकूल बनाती है। साहित्य और सिनेमा के अंतर्संबंध की दृष्टि से अज़ीज़ आज़ाद की रचनाओं का रूपांतरण अत्यंत महत्व रखता है। उनकी कहानियों में संवादों की संक्षिप्तता, प्रतीकात्मक बिंब और वातावरण-निर्माण जैसी विशेषताएँ ऐसी हैं जो सिनेमाई भाषा में सहज रूप से परिवर्तित की जा सकती हैं। रूपांतरण की प्रक्रिया में न केवल मूल कृति की संवेदना को सुरक्षित रखना आवश्यक है, बल्कि दृश्य-माध्यम की सृजनात्मक संभावनाओं का प्रभावी प्रयोग भी महत्वपूर्ण होता है। अध्ययन यह भी दर्शाता है कि अज़ीज़ आज़ाद का साहित्य सामाजिक-सांस्कृतिक विमर्श को सक्रिय करने की क्षमता रखता है। उनके बिंब और प्रतीक समाज में व्यक्तियों की आंतरिक असुरक्षा, नैतिक द्वंद्व और संबंधों की जटिलताओं को उद्घाटित करते हैं, जिन्हें सिनेमा दृश्य और ध्वनि के माध्यम से व्यापक दर्शक-समूह तक पहुँचाकर संवेदनात्मक जागरूकता उत्पन्न कर सकता है। इस दृष्टि से, उनका साहित्य केवल कलात्मक सृजन नहीं, बल्कि सामाजिक संवाद और विचार-विमर्श का भी माध्यम बन सकता है। अंततः यह कहा जा सकता है कि अज़ीज़ आज़ाद की रचनाएँ यथार्थवाद, प्रतीकात्मकता और भाव-संवेदना का संतुलित मिश्रण प्रस्तुत करती हैं। उनका साहित्य पाठक के मानसिक और भावनात्मक अनुभव को समृद्ध करता है और संभावित सिनेमाई रूपांतरण के माध्यम से सामाजिक चेतना और सामूहिक अनुभूति को सशक्त बनाने में सक्षम है। इस प्रकार, यह शोध अज़ीज़ आज़ाद के साहित्य और उसके सिनेमा रूपांतरण की प्रासंगिकता, महत्व और संभावनाओं को स्पष्ट रूप से उद्घाटित करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. सिंह, नामवर. कहानी: नई कहानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1966, पृ. 112.
2. द्विवेदी, हजारीप्रसाद. साहित्य का मर्म, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज ,1955, पृ. 74.
3. आज़ाद, अज़ीज़. टूटे हुए लोग, साहित्य प्रकाशन, बीकानेर,1998, पृ. 47.
4. आज़ाद, अज़ीज़. टूटे हुए लोग,साहित्य प्रकाशन, बीकानेर, 1998, पृ. 102.
5. आज़ाद, अज़ीज़. कोहरे की धूप, ऋचा इण्डिया पब्लिशर्स, बीकानेर,2002, पृ. 29.
6. आज़ाद, अज़ीज़. कोहरे की धूप, ऋचा इण्डिया पब्लिशर्स, बीकानेर ,2002, पृ. 64.
7. आज़ाद, अज़ीज़. टूटे हुए लोग, साहित्य प्रकाशन, बीकानेर 1998, पृ. 83.

8. द्विवेदी, हजारीप्रसाद. साहित्य का मर्म, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज ,1955, पृ. 74.
9. सिंह, नामवर. कहानी: नई कहानी. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,1966, पृ. 118.
10. आज़ाद, अज़ीज़. टूटे हुए लोग. साहित्य प्रकाशन, बीकानेर,1998,पृ.86.
11. आज़ाद, अज़ीज़, टूटे हुए लोग, साहित्य प्रकाशन,बीकानेर, 1998,पृ.89.
12. आज़ाद, अज़ीज़, कोहरे की धूप, ऋचा इण्डिया पब्लिशर्स, बीकानेर,2002,पृ.84.

फोन : +91 8302334001, ईमेल : b.r.meghwal25@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 215-224
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

21 वीं सदी की हिन्दी कविता कीपर्यावरणीय चेतना का सिनेमाई परिप्रेक्ष्य

विमला देवी यादव
शोधार्थी,
आचार्य डॉ अनुपमा सक्सेना
शोध निर्देशक,
हिन्दी विभाग, पंडित दीनदयाल उपाध्याय शेखावाटी विश्वविद्यालय सीकर राजस्थान

शोध सारांश :इक्कीसवीं सदी वैश्विक पर्यावरण संकट, जलवायु परिवर्तन, जैव-विविधता के क्षय तथा अनियंत्रित विकास-नीतियों के कारण उत्पन्न गहरे पारिस्थितिक असंतुलन का काल है। यह संकट केवल वैज्ञानिक अथवा राजनीतिक विमर्श तक सीमित नहीं रहा, बल्कि साहित्य और सिनेमा जैसे रचनात्मक माध्यमों को भी व्यापक रूप से प्रभावित कर रहा है। प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य 21वीं सदी की हिन्दी कविता में व्यक्त पर्यावरणीय चेतना का विश्लेषण करना तथा उसे समकालीन हिन्दी इस प्रकार समकालीन हिन्दी कविता पर्यावरण–संरक्षण का सशक्त संदेश देती है। वह जनमानस को जागरूक करते हुए यह स्मरण कराती है कि प्रकृति के साथ संतुलित संबंध ही स्थायी विकास का आधार बन सकता है। निश्चित ही इक्कीसवीं सदी की कविता ने इस वैश्विक संकट को गंभीरता से रेखांकित कर सामाजिक चेतना को नई दिशा प्रदान की है। के संदर्भ में समझना है।

आधुनिक हिन्दी कविता में प्रकृति अब मात्र सौंदर्य के आस्वाद का विषय नहीं है, बल्कि वह प्रतिरोध, संवेदनात्मक व्यथा और चेतावनी के रूप में उभरती है। नदी, वन, पर्वत, मिट्टी और पक्षियों जैसे प्रतीक उपभोक्तावाद और अंध-विकास की प्रवृत्तियों के विरुद्ध सांस्कृतिक हस्तक्षेप का रूप ग्रहण करते हैं। इसी प्रकार समकालीन हिन्दी सिनेमा में भी जलवायु परिवर्तन, पर्यावरण विनाश, कृषि संकट, वन्यजीवन संरक्षण तथा विस्थापन जैसे प्रश्नों को सशक्त दृश्यात्मक अभिव्यक्ति मिली है, जिसके माध्यम से पर्यावरणीय सरोकार व्यापक समाज तक पहुँचते हैं।

यह अध्ययन तुलनात्मक और आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए कविता और सिनेमा के अंतर्संबंधों को स्पष्ट करता है। शोध का उद्देश्य यह स्थापित करना है कि दोनों माध्यम अपनी विशिष्ट अभिव्यक्ति-शैली के बावजूद पर्यावरणीय संकट को केंद्र में रखकर सामाजिक चेतना के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

मुख्य शब्द: पर्यावरण चेतना,समकालीन हिन्दी सिनेमा, पारिस्थितिकी,वैश्वीकरण, जलवायु संकट, विकास विमर्श, प्रकृति-मानव संबंध, विस्थापन, सांस्कृतिक प्रतिरोध।

प्रस्तावना : इक्कीसवीं सदी को जहाँ एक ओर अभूतपूर्व वैज्ञानिक उपलब्धियों और तकनीकी क्रांतियों का युग कहा जाता है, वहीं दूसरी ओर यह गहन पर्यावरणीय संकटों का भी कालखंड है। जलवायु परिवर्तन, वैश्विक तापवृद्धि, जल-संकट, वनों की कटाई, जैव-विविधता का ह्रास तथा प्रदूषण जैसी चुनौतियाँ मानव सभ्यता के भविष्य को संकटग्रस्त बना रही हैं। अनियंत्रित औद्योगीकरण, तीव्र शहरीकरण और उपभोक्तावादी मानसिकता ने मनुष्य और प्रकृति के बीच स्थापित संतुलन को भंग कर दिया है। फलस्वरूप प्रकृति अब केवल सौंदर्य या संसाधन का आधार नहीं रह गई, बल्कि वह संघर्ष, प्रश्न और प्रतिरोध का केंद्र बनती जा रही है। इस व्यापक वैश्विक संदर्भ का प्रभाव साहित्य और सिनेमा जैसे रचनात्मक क्षेत्रों पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

हिन्दी कविता की परंपरा में प्रकृति का चित्रण लंबे समय तक सौंदर्यबोध, प्रेम और जीवन-स्पंदन के प्रतीक के रूप में मिलता रहा है। किन्तु इक्कीसवीं सदी की कविता में यह दृष्टि अधिक सजग, संवेदनशील और प्रतिरोधपरक रूप धारण कर लेती है। समकालीन कवि प्रकृति को मात्र रमणीय दृश्य के रूप में नहीं, बल्कि मानव अस्तित्व की अनिवार्य शर्त के रूप में देखता है। नदी, वन, पर्वत, मिट्टी और पक्षियों के प्रतीक अब पर्यावरणीय असंतुलन, विस्थापन तथा सांस्कृतिक विघटन के संकेतक बन जाते हैं। कविता के माध्यम से प्रकृति की करुण पुकार, मनुष्य की असंवेदनशील प्रवृत्तियाँ और विकास की विडंबनाएँ मुखरित होती हैं। इस प्रकार कविता पर्यावरणीय चेतना के निर्माण में एक प्रभावी सांस्कृतिक माध्यम के रूप में उभरती है।

दूसरी ओर सिनेमा, जो दृश्य और श्रव्य तत्वों का सशक्त संयोजन है, पर्यावरण संबंधी मुद्दों को व्यापक समाज तक पहुँचाने में विशेष भूमिका निभाता है। समकालीन हिन्दी सिनेमा में जलवायु संकट, कृषि समस्याएँ, वन्यजीवन संरक्षण, आदिवासी अस्तित्व और विकासजनित विस्थापन जैसे विषयों को प्रभावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्ति मिली है। कैमरे की संवेदनशील दृष्टि प्रकृति के वैभव और विनाश—दोनों को समान तीव्रता से प्रस्तुत करती है, जिससे दर्शक समस्या के साथ भावनात्मक और वैचारिक रूप से जुड़ते हैं। इस प्रकार सिनेमा पर्यावरणीय विमर्श को अधिक व्यापक और सजीव बनाता है।

इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता में पर्यावरण चेतना:इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता में पर्यावरणीय चेतना का रूप पहले की तुलना में अधिक तीखा, आत्मचेतस और प्रतिरोधधर्मी दिखाई देता है। समकालीन कवि केवल प्रकृति–सौंदर्य का गान नहीं करते, बल्कि पर्यावरण के विकृत होते स्वरूप पर गंभीर चिंतन प्रस्तुत करते हैं और संरक्षण की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं। पूर्ववर्ती काव्यधारा में जहाँ प्रकृति का चित्रण अधिकतर भावुक या प्रतीकात्मक था, वहीं वर्तमान कविता पर्यावरणीय संकट को सामाजिक, राजनीतिक और नैतिक प्रश्न के रूप में सामने लाती है।

बीसवीं सदी के अंतिम वर्षों में मनुष्य ने भौतिक उपलब्धियों को ही प्रगति का मानदंड मान लिया। उपभोक्तावादी दृष्टिकोण ने प्रकृति को संसाधन मात्र बना दिया, जिसका मनचाहा दोहन किया जा सकता है। उद्योगों की तीव्र वृद्धि ने वातावरण को प्रदूषित किया; फैक्ट्रियों की चिमनियों से निकलता धुआँ वायु को विषाक्त करने लगा। विकास की योजनाओं के नाम पर अंधाधुंध वृक्षों की कटाई हुई, सड़कों और रेलमार्गों का विस्तार हुआ, नदियों पर बाँध बने और प्राकृतिक प्रवाह बाधित हुआ। इसका परिणाम जैव-विविधता के क्षरण और पारिस्थितिक संतुलन के विघटन के रूप में सामने आया। इस संकट को देखकर कवि विजय राठौर मानवता को चेताते हैं—

"अगर हमें नहीं बनना है पुरावशेष
तो बचाएँ जल को वृक्षों को बढ़ायें
जनसंख्या को घटाएँ।"[1]

यह आह्वान केवल काव्यात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि भविष्य की सुरक्षा के लिए सामूहिक उत्तरदायित्व का संकेत है। औद्योगीकरण के विस्तार के साथ ही विकास की अवधारणा प्रतिस्पर्धा और शक्ति–प्रदर्शन से जुड़ गई। राष्ट्र एक-दूसरे से आगे निकलने की होड़ में संसाधनों का अंधाधुंध उपयोग करने लगे। इसी क्रम में आणविक अस्त्रों का निर्माण और परीक्षण प्रारंभ हुआ। परमाणु शक्ति को सामर्थ्य का प्रतीक मान लिया गया, किंतु उसके दुष्परिणामों पर गंभीरता से विचार नहीं किया गया। पर्यावरणीय प्रदूषण और वैश्विक विनाश की आशंका को व्यक्त करते हुए नरेश सक्सेना लिखते हैं—

"हम तो होंगे नहीं
पता नहीं पृथ्वी पर जीवन भी होगा या नहीं शायद
आणविक राख से सनी ईंटें ही कहेगी कथा और ईंटें ही सुनेंगी।"[2]

इन पंक्तियों में भविष्य की भयावहता और मानव सभ्यता के संभावित अंत की त्रासद कल्पना निहित है।

इसी संदर्भ में कवि सुधीर रंजन की वेदना भी उल्लेखनीय है—"दुनिया को नष्ट करने के लिए जो कुछ बनाया जाता है, काश वह भी सिर्फ देखने के लिए बना होता।"[3]

यह व्यंग्यात्मक पीड़ा उस मानसिकता पर प्रहार करती है, जो विनाशकारी साधनों को शक्ति का पर्याय मानती है।

मानव का स्वार्थ उसे प्रकृति पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए प्रेरित करता है। वह धरती, जल, आकाश, वन और पर्वत—सभी को अपने अधिकार में कर लेना चाहता है। इस अतिरेक का परिणाम अंततः अकेलेपन और विनाश में बदलता है। लीना मल्होत्रा राव इस प्रवृत्ति की परिणति को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती हैं—

"पेड़ काट डालूँ
समंदर माप डालूँ
और चिड़िया को मार भूनकर खा जाऊँ
फिर समाधि भी मेरी
पहाड़ भी मेरा
पंख भी आकाश भी
साथ देने को पेड़ तक न मिला
पक्षी की चहचहाट तक न थी
मर्सिया पढ़ती पहाड़
उसकी मुट्ठियों में दबे
दम तोड़ गये
निविड़ एकान्त बनकर
मरा वह अकेला आदमी।"[4]

यह कविता मनुष्य के उस अंत की तस्वीर है, जहाँ प्रकृति से कटकर वह स्वयं भी नष्ट हो जाता है।

नव-साम्राज्यवादी वैश्वीकरण के दौर में विकास का मॉडल नक्शों और आँकड़ों तक सिमट गया है। वास्तविक जंगल, नदियाँ और पहाड़ केवल प्रतीकों में रह गए हैं। नरेश सक्सेना की पंक्तियाँ इस विडंबना को उद्घाटित करती हैं—

"नक्शे में जंगल हैं पेड़ नहीं
नक्शे में नदियों हैं पानी नहीं
नक्शे में पहाड़ हैं पत्थर नहीं
नक्शे में देश हैं लोग नहीं
समझ ही गए होंगे आप
कि हम सब एक नक्शे में रहते हैं....
तफ़रीह की जगह नहीं है यह
नक्शों से फौरन बाहर निकल आइए
मुझे लगता है
एक दिन सारे नक्शों को मोड़कर
जेब में रख लेगा कोई मसखरा
और चलता बनेगा।"[5]

यहाँ नक्शा उस कृत्रिम विकास का प्रतीक है, जिसमें वास्तविक जीवन अनुपस्थित है।

वृक्षों की उपयोगिता और उनके संरक्षण की आवश्यकता को रेखांकित करते हुए कवि पुनः मानवता को सचेत करते हैं। नरेश सक्सेना की यह अंतिम इच्छा अत्यंत मार्मिक है—

"लिखता हूँ अंतिम इच्छाओं में
कि बिजली के दाहघर में हो मेरा संस्कार
ताकि मेरे बाद
एक बेटे और एक बेटी के साथ
एक वृक्ष भी बचा रहे संसार में।"[6]

यह संवेदना दर्शाती है कि आने वाली पीढ़ियों के लिए वृक्षों का संरक्षण कितना अनिवार्य है।

इक्कीसवीं सदी का कवि केवल समस्या का चित्रण नहीं करता, बल्कि मनुष्य की विडंबनापूर्ण मानसिकता को भी उजागर करता है—

"बढ़ते मनुष्य और घटते पेडों की चिंता
पेड़ कर ही नहीं सकते
और मनुष्य करना ही नहीं चाहते
किसी प्रकार की चिंता
जल्दी मरने को सारी प्रक्रिया पूरी करके भी
मनुष्य मरना नहीं चाहता बहुत जल्दी
हालांकि वह सब कुछ कर रह है
अपनी साँसों के विरुद्ध।"[7]

इन पंक्तियों में आधुनिक मनुष्य की आत्मविरोधी प्रवृत्ति स्पष्ट है—वह अपने ही अस्तित्व के विरुद्ध कार्य करते हुए भी दीर्घायु की आकांक्षा रखता है।

वर्तमान समय में जल प्रदूषण एक गम्भीर वैश्विक संकट के रूप में उभर कर सामने आया है। सामाजिक संस्थाएँ, स्वयंसेवी संगठन, धार्मिक नेतृत्व तथा आम नागरिक विभिन्न जागरूकता अभियानों के माध्यम से इस समस्या को नियंत्रित करने का प्रयास कर रहे हैं। जब सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर जल–संकट पर विमर्श सक्रिय है, तब साहित्य विशेषकर कविता में इस विषय की उपस्थिति स्वाभाविक है। इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता में जल संरक्षण और नदियों की पीड़ा के प्रति गहरी संवेदनशीलता दिखाई देती है।

भारतीय संस्कृति में नदियों को सदैव जीवनदायिनी और पूज्य माना गया है। वे केवल जलधाराएँ नहीं, बल्कि सभ्यता और संस्कृति की वाहक रही हैं। किंतु आधुनिक विकासवादी दृष्टिकोण ने इन्हीं नदियों को प्रदूषण और अवरोध का शिकार बना दिया। मानवीय महत्वाकांक्षाओं ने उनके स्वाभाविक प्रवाह को बाधित किया और उन्हें औद्योगिक कचरे तथा शहरी अपशिष्ट से दूषित कर दिया। इस विडंबना को प्रेमशंकर रघुवंशी अपनी कविता में मार्मिक रूप से अभिव्यक्त करते हैं—

"सूखते जा रहे हैं झरने
और उजड़ते जा रहे हैं पहाड़
उजाड़ पहाड़ों को देखती रात-दिन
विलाप में लीन है नदी
तिस पर चाहे जो चाहे जहाँ
रोक लेता है उसे
तो ठीक से चल फिर भी नहीं पाती नदी।"[8]

इन पंक्तियों में नदी का अवरुद्ध प्रवाह उस सभ्यता का प्रतीक बन जाता है, जिसने अपने ही जीवन–स्रोत को जकड़ लिया है।

आज विकास की अंधी दौड़ में प्रकृति का संतुलन लगातार बिगड़ रहा है। नीतियों और पर्यावरणीय नियमों की अनदेखी करते हुए जल, जंगल और जमीन का दोहन हो रहा है। विशाल परियोजनाओं और निर्माण कार्यों के नाम पर प्राकृतिक संरचना से छेड़छाड़ की जा रही है। यह प्रक्रिया केवल पर्यावरण को ही नहीं, बल्कि मानव सभ्यता के भविष्य को भी संकटग्रस्त कर रही है। इक्कीसवीं सदी की कवयित्री ग्रेस कुजूर इस स्थिति पर गहन चिंता व्यक्त करती हैं और चेतावनी भी देती हैं—

'आज तुम अपने स्वार्थ के लिए
पर्वतों के पत्थर तोड़ रहे हो
बारूदी गंध से जीवन को मरोड़ रहे हो
क्या कभी नदियाँ लौट कर पूछेगी
अपने खंडहर होते पर्वतों से
कि कहाँ गया उनका उद्गम?
कहाँ गया उनका वैभव?

तब पर्वत रोएगा सूख जाएंगी उसकी धाराएँ।"[9]
यह कविता मनुष्य के स्वार्थ और उसके दूरगामी परिणामों को उजागर करती है। पर्वतों का विखंडन केवल भौगोलिक परिवर्तन नहीं, बल्कि जीवन–चक्र के विघटन का संकेत है।

पर्वत पर्यावरणीय संतुलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे वायु के शुद्धीकरण, वर्षा–चक्र और जैव विविधता के संरक्षण में सहायक होते हैं। किंतु मैदानी क्षेत्रों के प्रदूषण के बाद अब पहाड़ी अंचल भी मानवीय हस्तक्षेप से अछूते नहीं रहे। पर्यटन, सड़क निर्माण और अवैज्ञानिक विकास कार्यों ने पहाड़ों की पारिस्थितिकी को प्रभावित किया है। वनों की कटाई, शिकार और लापरवाही से छोड़ी गई आग व्यापक विनाश का कारण बनती है। यह स्थिति किसी एक क्षेत्र तक सीमित नहीं, बल्कि वैश्विक समस्या का रूप ले चुकी है। अश्वघोष की पंक्तियाँ इस त्रासदी को तीव्रता से व्यक्त करती हैं—

'इस वक्त कुल्हाडी और आग के शिकंजे में है जंगल
हरियाली भोग रही है तडीपार की सजा
किसी कोड़ी की भाँति एकान्त में सिसक रहे हैं पहाड़
अजगर की तरह इठलाती सड़कें धीरे-धीरे
निगल रही हैं पहाड़ों का जिस्म ।"[10]

यहाँ सड़कें और विकास योजनाएँ विनाश के प्रतीक बनकर उभरती हैं, जो धीरे-धीरे प्राकृतिक अस्तित्व को समाप्त कर रही हैं।

समग्र रूप से देखा जाए तो इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता पर्यावरणीय संकट का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करती है। यह कविता केवल वर्णन तक सीमित नहीं रहती, बल्कि चेतना और प्रतिरोध का स्वर भी निर्मित करती है। कवि यह भली-भाँति समझते हैं कि मानव जीवन का अस्तित्व प्रकृति के संतुलन पर आधारित है। यदि विकास और पर्यावरण के बीच सामंजस्य स्थापित नहीं किया गया, तो प्रगति का यह मॉडल स्वयं मानवता के लिए घातक सिद्ध होगा।

हिन्दी सिनेमा में पर्यावरणीय विमर्श: पिछले कुछ वर्षों में सिनेमा को सामाजिक विसंगतियों और वैचारिक प्रश्नों को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने वाले माध्यम के रूप में स्वीकार किया गया है। सांप्रदायिकता, राजनीति, लैंगिकता और न्याय जैसे विषयों पर अनेक फिल्में बनी हैं, किंतु पर्यावरण संकट जैसे जीवन–मरण के प्रश्न पर मुख्यधारा अपेक्षाकृत मौन दिखाई देती है। यह मौन केवल विषयगत कमी नहीं, बल्कि सामूहिक उदासीनता का संकेत भी है। जबकि पर्यावरण–संरक्षण दर्शकों की चेतना को गहराई से प्रभावित कर सकता है।

भारतीय संदर्भ में साहित्य और सिनेमा ने कई सामाजिक मुद्दों को स्थान दिया है, पर वैश्विक पारिस्थितिक संकट का प्रतिनिधित्व सीमित रहा है। हिन्दी फिल्म उद्योग ने भ्रष्टाचार, राजनीति, खेल और न्याय जैसे विषयों पर काम किया है, पर पर्यावरण संकट पर गंभीर और निरंतर हस्तक्षेप कम दिखता है। इससे स्पष्ट होता है कि समस्या केवल प्रकृति की नहीं, बल्कि हमारी सांस्कृतिक प्राथमिकताओं की भी है।

हालाँकि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण–केंद्रित सिनेमा का विकास हुआ है। “1980 के दशक के उत्तरार्ध में से कुछ प्रकृति संबंधित चैनलोंयाइको मीडिया जैसे नेशनल ज्योग्राफिक, डिस्कवरी, एनिमल प्लेनेट आदि की स्थापना के साथ ग्रीन मूवीज का निर्माण बहुत प्रचलन में है।”[11]

इसी संदर्भ में 'इको सिनेमा' या 'हरित फिल्में' एक विशिष्ट धारा के रूप में उभरी हैं—"सैद्धांतिक रूप से हरित फिल्में जिनकोइको सिनेमा के रूप में भी जाना जाता है, रचनात्मक प्रस्तुतियों की विविधता का प्रतिनिधित्व करती है जो मानव और प्राकृतिक दुनिया के बीच के संबंधित मुद्दों को संबोधित करती है।"[12]

इन फिल्मों को सामाजिक चेतना के उपकरण के रूप में देखा जा सकता है—"ये फिल्में न केवल मनुष्य और प्राकृतिक पर्यावरण के बीच सहजीवी संबंधों की खोज पर ध्यान केंद्रित करती हैं, बल्कि वैश्विक जलवायु परिवर्तन, रासायनिक विषाक्तता और खाद्य-उत्पादन, जैविक और अकार्बनिक प्रदूषकों, भूजल संरक्षण से संबंधित अन्य पारिस्थितिक खतरों और वास्तविकता को उजागर करती है जो लगभग हर व्यक्ति के जीवन को तीव्र रूप से प्रभावित करती हैं।"[13]

केवल पर्यावरण दिवस मनाने या जलवायु सम्मेलनों के आयोजन से संरक्षण का लक्ष्य पूरा नहीं होता। दीर्घकालिक प्रभाव उत्पन्न करने की क्षमता सिनेमा जैसे सशक्त माध्यम में निहित है, जो दर्शकों की चेतना को प्रभावित कर सामाजिक परिवर्तन को गति दे सकता है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अनेक फिल्मों और टेलीविजन कार्यक्रमों ने पारिस्थितिक संकट को दृश्य रूप देकर इसे सार्वजनिक विमर्श के केंद्र में लाने का प्रयास किया है।

भारतीय संदर्भ में हरित सिनेमा अभी सीमित और अपेक्षाकृत कम प्रभावशाली है, जबकि देश वनों की कटाई, जलवायु परिवर्तन, वायु प्रदूषण और संसाधनों के क्षरण जैसे गंभीर संकटों से जूझ रहा है। इन समस्याओं से निपटने हेतु वन्यजीव संरक्षण अधिनियम 1972, जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम 1974, वन संरक्षण अधिनियम 1980, वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम 1981 तथा पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 जैसे कई कानून बनाए गए हैं। इसके बावजूद सिनेमा में पर्यावरणीय विमर्श अपेक्षित विस्तार नहीं पा सका है; कुछ वृत्तचित्रों और सीमित फिल्मों ने ही इस दिशा में प्रयास किए हैं। मुख्यधारा की फिल्मों में भी जल–संकट और प्रदूषण जैसे प्रश्नों को उठाने के प्रयास हुए हैं, जैसे कौन कितने पानी में (2015) और इरादा (2017)। इन फिल्मों ने जल–कमी, प्रदूषण तथा उससे जुड़े राजनीतिक और सामाजिक आयामों को अलग-अलग दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया और मनुष्य–प्रकृति संबंध के पारंपरिक भारतीय आदर्श की ओर संकेत किया।

इक्कीसवीं सदी में जल–संकट वैश्विक स्तर पर गंभीर सामाजिक और राजनीतिक चुनौती बन चुका है। ब्रिटिश कवि डब्ल्यू. एच. ओडेन ने इस यथार्थ को रेखांकित करते हुए लिखा—

"हजारों लोग प्यार के बिना रह सकते हैं, पानी के बिना नहीं।"[14]

जल स्रोतों के असमान वितरण और बढ़ती मांग के कारण स्थिति चिंताजनक होती जा रही है। संयुक्त राष्ट्र विश्वविद्यालय की 'ग्लोबल वाटर क्राइसिस, 2017' रिपोर्ट के अनुसार—"यह धारणा कि पानी प्रचुर मात्रा में है और यह पृथ्वी के 70% हिस्से को कवर करता है, गलत है। क्योंकि सारे पानी का केवल 2.5% ही ताजा पानी है। इस सीमित संसाधन के चलते 2050 तक दुनिया की 40% से अधिक आबादी गंभीर जलसंकट का सामना करेगी।"[15]

भारत को औपचारिक रूप से जल-अभावग्रस्त राष्ट्र नहीं माना जाता, किंतु दुरुपयोग, कुप्रबंधन और अनियोजित विकास के कारण स्वच्छ पेयजल की उपलब्धता निरंतर घट रही है। बढ़ती जनसंख्या और अव्यवस्थित उपभोग–संस्कृति ने स्थिति को और जटिल बना दिया है। ऐसे में जल–संरक्षण और संसाधनों के संतुलित उपयोग का प्रश्न अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो उठता है। इस गंभीर मुद्दे को व्यापक जनचेतना तक पहुँचाने में सिनेमा प्रभावी भूमिका निभा सकता है, यदि इसे रचनात्मक प्राथमिकता दी जाए।

पानी की समस्या आज वैश्विक स्तर पर पर्यावरणीय और मानवीय संकट बन चुकी है। हॉलीवुड में जल संकट और जलवायु परिवर्तन जैसे विषयों पर अनेक फिल्में बनी हैं, जिससे वहाँ सिनेमा में वैचारिक विस्तार दिखाई देता है। इसके विपरीत भारतीय सिनेमा में जल संकट को प्रत्यक्ष और मुख्य विषय के रूप में प्रस्तुत करने वाली फिल्में अपेक्षाकृत कम हैं; प्रायः यह विषय पृष्ठभूमि या प्रतीक के रूप में ही उभरता है।

प्रसिद्ध फिल्म निर्देशक आशुतोष गोवारीकर द्वारा निर्देशित लगान (2001) इसका महत्वपूर्ण उदाहरण है। यह फिल्म चंपारण जैसे एक काल्पनिक ग्रामीण परिवेश में स्थापित है, जहाँ भीषण सूखा और जलाभाव की स्थिति है। वर्षा न होने के कारण किसानों की फसलें नष्ट हो जाती हैं और अंग्रेज शासक उन पर कर का अतिरिक्त बोझ डालते हैं। यहाँ पानी की कमी केवल प्राकृतिक संकट नहीं, बल्कि औपनिवेशिक शोषण की पृष्ठभूमि बन जाती है। अंततः यही संकट ग्रामीणों और अंग्रेजों के बीच क्रिकेट प्रतियोगिता का कारण बनता है। पूरी कथा में जल संकट राष्ट्रवादी चेतना और स्वाधीनता की भावना को जागृत करने वाला प्रतीक बन जाता है। इस प्रकार फिल्म में पानी की अनुपस्थिति राजनीतिक प्रतिरोध और सामूहिक आत्मसम्मान की भावना को उभारने का माध्यम बनती है।

इसी निर्देशक की एक अन्य कृति स्वदेश (2004) भी जल और विद्युत संकट को अपनी कथा की पृष्ठभूमि में रखती है। यह फिल्म एक अनिवासी भारतीय युवक की अपने मूल देश और सांस्कृतिक जड़ों की खोज की कहानी है। गाँव में व्याप्त जलाभाव और बिजली की समस्या वहाँ के सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन को रेखांकित करती है। नायक का वैज्ञानिक दृष्टिकोण और उसके प्रयास ग्रामीण समाज को आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर करते हैं। यहाँ जल संकट केवल पर्यावरणीय समस्या नहीं, बल्कि विकास, पहचान और दायित्व के प्रश्न से जुड़ा हुआ दिखाई देता है।

मुख्यधारा की इन फिल्मों से पूर्व देव बेनेगल द्वारा निर्देशित स्प्लिटवाइड ओपन में महानगर मुंबई की झुग्गी बस्तियों में जल संकट का यथार्थ चित्रण मिलता है। यह फिल्म तथाकथित जल माफिया की भूमिका को उजागर करती है, जो पानी को एक वस्तु बनाकर गरीबों से छीनकर संपन्न वर्ग को बेचते हैं। इसमें पानी के मूल्य निर्धारण की राजनीति और सामाजिक असमानता को तीखे रूप में प्रस्तुत किया गया है। जल यहाँ जीवन का आधार होने के साथ-साथ सत्ता और नियंत्रण का उपकरण भी बन जाता है।

वर्ष 2010 में श्याम बेनेगल द्वारा निर्देशित वेल डन अब्बा ने जल संकट को व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया। यह फिल्म हैदराबाद के निकट एक गाँव की कथा कहती है, जहाँ एक साधारण व्यक्ति अपने खेत में कुआँ खुदवाने के लिए सरकारी योजना का लाभ उठाने का प्रयास करता है। प्रशासनिक भ्रष्टाचार, लालफीताशाही और राजनीतिक स्वार्थ के कारण उसे अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। यह फिल्म जल संकट को सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था की विडंबनाओं से जोड़ते हुए यह दिखाती है कि समस्या केवल प्राकृतिक नहीं, बल्कि तंत्रगत भी है।

इसी क्रम में गिरीश मलिक द्वारा निर्देशित 'जल' (2014) उल्लेखनीय है। यह फिल्म शुष्क और मरुस्थलीय क्षेत्र की पृष्ठभूमि में मानव मनोवृत्तियों के जटिल पक्षों को उद्घाटित करती है। पानी की अनुपलब्धता मनुष्य के भीतर स्वार्थ, लालच और संघर्ष की प्रवृत्तियों को तीव्र कर देती है। फिल्म यह स्थापित करती है कि जल केवल संसाधन नहीं, बल्कि जीवन का मूलाधार है, जिसके अभाव में सामाजिक संतुलन भी टूट सकता है।

इन सभी उदाहरणों से स्पष्ट है कि भारतीय सिनेमा में जल संकट का विषय उपस्थित तो है, परंतु प्रायः इसे मुख्य कथ्य के स्थान पर सहायक पृष्ठभूमि के रूप में ग्रहण किया गया है। कई बार इसे राजनीतिक या सामाजिक व्यंग्य के माध्यम से प्रस्तुत किया गया, तो कहीं यह राष्ट्रवाद या व्यक्तिगत पहचान के रूपक के रूप में उभरा। पर्यावरणवाद का

व्यापक दृष्टिकोण अपेक्षाकृत कम दिखाई देता है। व्यावसायिक सफलता की आकांक्षा ने भी कई बार इस विषय को गौण बना दिया है। फिर भी इन फिल्मों ने जल संकट को जनचेतना के केंद्र में लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया है और यह संकेत दिया है कि भविष्य में भारतीय सिनेमा इस विषय को अधिक गहराई और गंभीरता से अपनाएगा।

हिन्दी कविता और सिनेमा का अन्तर्सम्बन्ध: हिन्दी कविता और सिनेमा का संबंध केवल अभिव्यक्ति के दो माध्यमों का संबंध नहीं है, बल्कि यह संवेदना, यथार्थबोध और सामाजिक चेतना के साझा सरोकारों का अंतर्संबंध है। कविता जहाँ शब्दों के माध्यम से भाव-जगत का निर्माण करती है, वहीं सिनेमा दृश्य और ध्वनि के माध्यम से उसी संवेदना को व्यापक जनसमूह तक पहुँचाता है। जल संकट, पर्यावरणीय असंतुलन और ग्रामीण जीवन की विडंबनाएँ जैसे विषय इस अंतर्संबंध को स्पष्ट रूप से उद्घाटित करते हैं।

हिन्दी कविता में प्रकृति और जल को जीवन, करुणा और अस्तित्व के प्रतीक के रूप में देखा गया है। कवि केदारनाथ सिंह लिखते हैं—"पानी की स्मृति में बसी है पूरी सभ्यता की आवाज़।"[6] यह पंक्ति जल को केवल प्राकृतिक तत्व नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और ऐतिहासिक चेतना का आधार सिद्ध करती है। इसी प्रकार जब लगान और स्वदेश जैसी फिल्में जल संकट को कथा की पृष्ठभूमि बनाती हैं, तो वे वस्तुतः उसी काव्यात्मक संवेदना को दृश्यात्मक रूप देती हैं, जो कविता में रूपक के रूप में व्यक्त होती है।

हिन्दी कविता में पर्यावरणीय संकट को लेकर जो व्यथा व्यक्त हुई है, वह सिनेमा में सामाजिक-राजनीतिक संदर्भों के साथ विस्तार पाती है। वेल डन अब्बा और जल जैसी फिल्मों में पानी केवल संसाधन नहीं, बल्कि व्यवस्था, नैतिकता और मानवीय संबंधों की परीक्षा का माध्यम बन जाता है। यह वही संवेदना है जिसे कविता में प्रतीकात्मक रूप से व्यक्त किया गया है। धूमिल की पंक्ति—"इस देश की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि सवाल अभी भी ज़िंदा है"[7]—सामाजिक विडंबनाओं को रेखांकित करती है; यही प्रश्न सिनेमा में प्रशासनिक भ्रष्टाचार और असमानता के रूप में मूर्त हो उठता है।

कविता की भाषा सूक्ष्म और संकेतमयी होती है, जबकि सिनेमा उस संकेत को दृश्य अनुभव में परिवर्तित कर देता है। जल संकट पर आधारित कथाएँ यह सिद्ध करती हैं कि हिन्दी कविता की पर्यावरणीय चेतना ने सिनेमा को विषय-वस्तु और संवेदनात्मक गहराई प्रदान की है। रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है—"समर शेष है, नहीं पाप का भागी केवल व्याध; जो तटस्थ हैं, समय लिखेगा उनका भी अपराध।"[8] यह चेतावनी पर्यावरणीय संदर्भ में भी प्रासंगिक है, जहाँ मौन रहना भी अपराध है।

इस प्रकार हिन्दी कविता और सिनेमा का अंतर्संबंध विचार और दृश्य, संवेदना और क्रिया, प्रतीक और यथार्थ के बीच एक जीवंत सेतु के रूप में उभरता है। दोनों मिलकर जल संकट जैसे विषयों को जनचेतना के केंद्र में स्थापित करते हैं।

निष्कर्ष:21वीं सदी की हिन्दी कविता और सिनेमा दोनों ने पर्यावरण संकट को केवल विषय के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक दायित्व के रूप में ग्रहण किया है। कविता ने प्रकृति के सूक्ष्म बिंबों, प्रतीकों और भाषा-संवेदना के माध्यम से पारिस्थितिक विघटन, विस्थापन और मानवीय संकट को गहराई से अभिव्यक्त किया है, जबकि सिनेमा ने दृश्यात्मक प्रभाव, कथानक और चरित्रों के माध्यम से विकास और विनाश के द्वंद्व को व्यापक जनसमूह तक पहुँचाया है। दोनों माध्यम जल, जंगल और जमीन के प्रश्न को केंद्र में रखते हुए मनुष्य और प्रकृति के संतुलित संबंध की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं। इस प्रकार हिन्दी कविता और सिनेमा पर्यावरण चेतना के निर्माण में परस्पर पूरक सिद्ध होते हुए सामाजिक जागरूकता और संवेदनशील भविष्य की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:

1. राठौर, विजय. इत्यादि के पहले (काव्य संग्रह), बोधि प्रकाशन, जयपुर, वर्ष-2010, पृष्ठ संख्या-68.
2. सक्सेना, नरेश. सुनो चारुशीला (काव्य संग्रह), भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, वर्ष-2012, पृष्ठ संख्या-42.
3. रंजन, सुधीर. परिकथा (अंक-13), दिल्ली, मार्च-अप्रैल 2008, पृष्ठ संख्या-91.
4. मल्होत्रा राव, लीना.मेरी यात्रा का जरूरी सामान (काव्य संग्रह), बोधि प्रकाशन, जयपुर, वर्ष-2012, पृष्ठ संख्या-82-83
5. सक्सेना, नरेश.समुद्र पर हो रही है बारिश (काव्य संग्रह), राजकमल प्रकाशन , नयी दिल्ली, वर्ष-2001, पृष्ठ संख्या-91.
6. सक्सेना, नरेश. रेवान्त (जनवरी-दिसम्बर अंक), लखनऊ, वर्ष-2014, पृष्ठ संख्या-10.
7. राठौर, विजय. इत्यादि के पहले (काव्य संग्रह), बोधि प्रकाशन, जयपुर, वर्ष-2010, पृष्ठ संख्या-67.
8. रघुवंशी, प्रेमशंकर.पहल (अंक-89), जबलपुर, जुलाई 2018, पृष्ठ संख्या-210.
9. कुजूर, ग्रेस. समकालीन आदिवासी कविता (सं. हरिराम मीणा), अलख प्रकाशन, जयपुर, वर्ष-2013, पृष्ठ संख्या-24.
10. घोष, अश्व. सीढ़ियों पर बैठा पहाड़ (काव्य संग्रह), मेधा बुक्स, दिल्ली, वर्ष-2010, पृष्ठ संख्या 55.
11. बी.भारली.आईओएसआरजर्नल ऑफ़ ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंस, 19(12), वर्ष 2014, पृष्ठ संख्या 44.
12. बी.भारली.आईओएसआरजर्नल ऑफ़ ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंस, 19(12), वर्ष 2014, पृष्ठ संख्या 45.
13. रस्ट एस. और मोनानी एस. इंट्रोडक्शनकट्सटूडिजोल्वडिफाइनिंग एंड सिचुएटिंगइकोसिनेमा स्टडीज, एस.रस्ट, एस. मोनानी एंड एस. क्यूबिट (संपा) इको सिनेमाः थ्योरी एंड प्रैक्टिस, रुटलेज प्रकाशन, न्यूयॉर्क, वर्ष 2013, पृष्ठ संख्या 13 .
14. डब्ल्यू. एच. ओडेन. फर्स्टथिंग्सफर्स्ट, द न्यूयॉर्कर, मार्च 09, वर्ष 1957, पृष्ठ संख्या 38.
15. https://tinyurl.com/5fzu7543
16. सिंह, केदारनाथ. उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2003, पृष्ठ संख्या 45।
17. धूमिल. संसद से सड़क तक,ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली , वर्ष 1972, पृष्ठ संख्या 67.
18. दिनकर, रामधारी सिंह. रश्मिरथी,लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद , वर्ष 1952, पृष्ठ संख्या 112.

19. फोन : +91 9783764800 , ईमेल : yvimala94@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 225-232
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

हिन्दी गद्य साहित्य और भारतीय सिनेमा में किसान विमर्श: एक तुलनात्मक अध्ययन

बिरदी चंद जाट
शोधार्थी,
हिन्दी विभाग डूंगर महाविद्यालय बीकानेर
(महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय बीकानेर राजस्थान)

शोध सारांश: प्रस्तुत शोध पत्र हिन्दी गद्य साहित्य और भारतीय सिनेमा में किसान विमर्श का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। भारतीय समाज की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संरचना में किसान की भूमिका सदैव महत्वपूर्ण रही है, किंतु उसके जीवन-संघर्ष, शोषण और पीड़ा की अभिव्यक्ति के माध्यम समय के साथ बदलते रहे हैं। हिन्दी गद्य साहित्य, विशेषतः कथा-साहित्य, ने किसान जीवन के यथार्थ को गहन संवेदनशीलता और मानवीय दृष्टि के साथ उकेरा है, जहाँ किसान मात्र एक सामाजिक वर्ग नहीं बल्कि एक सजग मानवीय चेतना के रूप में सामने आता है। इसके विपरीत, भारतीय सिनेमा ने दृश्य–श्रव्य माध्यम के सहारे किसान जीवन को व्यापक जनसमुदाय तक पहुँचाया है, हालाँकि इसमें यथार्थ और मनोरंजन के बीच सतत द्वंद्व स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यह अध्ययन किसान विमर्श की वैचारिक पृष्ठभूमि के आलोक में हिन्दी गद्य साहित्य और भारतीय सिनेमा में किसान की छवि, उसके संघर्ष, सामाजिक स्थिति तथा सत्ता-संरचनाओं से उसके संबंधों का विवेचन करता है। प्रेमचन्द से लेकर समकालीन लेखकों तक हिन्दी गद्य में उभरने वाली किसान की पीड़ित, संघर्षशील और चेतन छवि की तुलना सिनेमा में प्रस्तुत किसान पात्रों से की गई है। सिनेमा में जहाँ यथार्थवादी और समानांतर धाराओं के अंतर्गत किसान की वास्तविक समस्याएँ प्रामाणिक रूप में सामने आती हैं, वहीं व्यावसायिक सिनेमा में कई बार किसान एक प्रतीकात्मक अथवा रोमानी पात्र तक सीमित रह जाता है। शोध यह भी रेखांकित करता है कि साहित्य किसान के आंतरिक द्वंद्व, मानसिक पीड़ा और सामाजिक अन्याय को अधिक गहराई से अभिव्यक्त करता है, जबकि सिनेमा दृश्य प्रभावों और कथा-संरचना के माध्यम से किसान जीवन को व्यापक सामाजिक संदर्भों से जोड़ने का कार्य करता है।

मुख्य शब्द : किसान विमर्श, हिन्दी गद्य साहित्य, भारतीय सिनेमा, ग्रामीण जीवन, सामाजिक यथार्थ, शोषण, वर्ग-संघर्ष, सांस्कृतिक चेतना।

प्रस्तावना: भारतीय समाज की बुनियाद कृषि पर टिकी रही है, जहाँ किसान केवल आर्थिक ढाँचे का केंद्र ही नहीं रहा, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन की निरंतरता का भी प्रमुख आधार रहा है। सभ्यता के आरंभिक चरण से लेकर आधुनिक काल तक किसान की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है, परंतु यह भी एक कटु सत्य है कि समय के साथ वही किसान शोषण, हाशियेकरण और निरंतर संघर्ष का प्रतिनिधि बनता चला गया। औपनिवेशिक व्यवस्था के अंतर्गत ज़मींदारी प्रथा, महाजनी व्यवस्था और कठोर कर-नीतियों ने किसान जीवन को गंभीर संकट में डाल दिया, जिसकी छाया स्वतंत्रता के पश्चात भी विभिन्न रूपों में बनी रही। यही सामाजिक-आर्थिक यथार्थ हिन्दी साहित्य और भारतीय सिनेमा में गहन रूप से अभिव्यक्त हुआ है। हिन्दी गद्य साहित्य, विशेषकर कथा-साहित्य, ने किसान जीवन के दुख, संघर्ष और संवेदनात्मक पक्ष को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। प्रेमचन्द से आरंभ होकर समकालीन लेखकों तक किसान की छवि एक मात्र सामाजिक वर्ग के रूप में नहीं, बल्कि मानवीय पीड़ा, नैतिक द्वंद्व और सामाजिक अन्याय के प्रतीक के रूप में उभरती है। हिन्दी गद्य में किसान को ज़मींदार, महाजन, राज्य तथा बाज़ार जैसी सत्ता-संरचनाओं के जटिल तंत्र के बीच फँसा हुआ दिखाया गया है, जिससे किसान विमर्श सामाजिक यथार्थ की तीखी आलोचना का रूप ग्रहण करता है। भारतीय सिनेमा ने भी अपने आरंभिक काल से ही सामाजिक यथार्थ से संवाद स्थापित किया है और किसान जीवन इसमें एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में उपस्थित रहा है। विशेषतः यथार्थवादी और समानांतर सिनेमा ने किसान की वास्तविक समस्याओं, संघर्षों और विवशताओं को संवेदनशील दृष्टि से चित्रित किया है। इसके विपरीत व्यावसायिक सिनेमा में कई बार किसान की छवि आदर्शवादी, भावुक अथवा प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत की जाती है, जिसके कारण उसके जीवन की जटिल सामाजिक सच्चाइयाँ सीमित रूप में ही सामने आ पाती हैं। फिर भी सिनेमा की व्यापक पहुँच किसान विमर्श को जनसामान्य तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस परिप्रेक्ष्य में हिन्दी गद्य साहित्य और भारतीय सिनेमा का तुलनात्मक अध्ययन विशेष महत्व रखता है। दोनों माध्यम अपनी-अपनी अभिव्यक्ति शैली, संवेदनात्मक तीव्रता और सामाजिक प्रभाव में भिन्न होते हुए भी किसान जीवन से जुड़े मूल प्रश्नों को उजागर करते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य इन दोनों माध्यमों में किसान विमर्श की समानताओं एवं भिन्नताओं का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट करना है कि साहित्य और सिनेमा किस प्रकार मिलकर भारतीय समाज में किसान चेतना के निर्माण तथा सामाजिक यथार्थ के उद्घाटन में योगदान देते हैं।

किसान विमर्श : सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य- किसान विमर्श भारतीय समाज की उस मूल संरचना से जुड़ा हुआ है, जहाँ कृषि केवल आजीविका का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन का आधार रही है। भारतीय सभ्यता का विकास कृषि पर आधारित रहा है, किंतु विडम्बना यह है कि उत्पादन का प्रमुख वाहक होते हुए भी किसान सदैव शोषण, असमानता और अभाव का सामना करता रहा है। इसी अंतर्विरोध से 'किसान विमर्श' की वैचारिक पृष्ठभूमि निर्मित होती है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण के अनुसार समाज की संरचना वर्ग-संबंधों पर आधारित होती है। कार्ल मार्क्स ने स्पष्ट किया है कि "अब तक का समस्त इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास है।"[1] भारतीय संदर्भ में यह वर्ग-संघर्ष किसान और जमींदार, किसान और महाजन, तथा किसान और राज्य-सत्ता के मध्य दिखाई देता है। भूमि पर श्रम करने वाला किसान उत्पादन करता है, किंतु अधिशेष पर उसका अधिकार नहीं होता। इस प्रकार आर्थिक संरचना में निहित असमानता किसान जीवन के संकट को जन्म देती है। यथार्थवादी साहित्यिक दृष्टिकोण भी किसान विमर्श को सैद्धान्तिक

आधार प्रदान करता है। साहित्य समाज के यथार्थ को प्रतिबिंबित करता है और सामाजिक विषमता को उजागर करता है। प्रेमचन्द का कथन है कि ''साहित्य समाज का दर्पण है।''[2] इस दर्पण में किसान केवल करुणा का पात्र नहीं, बल्कि संघर्षशील चेतना के रूप में उपस्थित होता है। उपनिवेशोत्तर संदर्भ में भी किसान की स्थिति जटिल रही है। औपनिवेशिक नीतियों, लगान-प्रणाली और बाद में पूँजीवादी बाजार व्यवस्था ने किसान को असुरक्षित बनाया। आज के समय में बाजार, पूँजी और नीतिगत संरचनाएँ किसान जीवन को गहराई से प्रभावित कर रही हैं। अतः किसान विमर्श केवल आर्थिक प्रश्न नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, सत्ता-संबंध और मानवीय गरिमा का प्रश्न है। यह विमर्श साहित्य और सिनेमा दोनों में उस वर्ग की आवाज़ के रूप में उभरता है, जो समाज की आधारशिला होते हुए भी निरंतर संघर्षरत रहा है।

हिन्दी गद्य साहित्य में किसान विमर्श :हिन्दी गद्य साहित्य में किसान विमर्श का सर्वाधिक सशक्त और संगठित रूप प्रेमचन्द के साहित्य में दृष्टिगत होता है। उन्होंने किसान जीवन की आर्थिक विवशता, सामाजिक अपमान, जातिगत संरचना, धार्मिक रूढ़ियों और मानवीय संघर्ष को जिस यथार्थवादी और संवेदनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किया, वह हिन्दी साहित्य में मील का पत्थर सिद्ध हुआ। प्रेमचन्द के यहाँ किसान केवल करुणा का पात्र नहीं, बल्कि शोषणकारी व्यवस्था के विरुद्ध मौन प्रतिरोध का प्रतीक है। उनके साहित्य में किसान की त्रासदी व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामूहिक और संरचनात्मक है, जो भारतीय ग्रामीण समाज की जटिलताओं और विसंगतियों को उद्घाटित करती है। उपन्यास ''गोदान'' में होरी भारतीय किसान की सामूहिक नियति का प्रतिनिधि चरित्र है। उसकी जीवन-यात्रा ऋण, परम्परा, जातिगत दबाव, पारिवारिक जिम्मेदारियों और सामाजिक प्रतिष्ठा की जटिलताओं में उलझी रहती है। वह श्रमशील, सहनशील और नैतिक व्यक्ति है, परंतु शोषण की महाजनी और सामंती संरचना से मुक्त नहीं हो पाता। प्रेमचन्द लिखते हैं— ''होरी ने जीवन भर हल चलाया, खेत जोते, पसीना बहाया, पर उसके भाग्य में सुख नहीं था। कर्ज उसके सिर पर सवार था और अभाव उसकी छाया की तरह उसके साथ लगा रहता था।''[3] यह उद्धरण स्पष्ट करता है कि किसान का श्रम उसकी मुक्ति का साधन नहीं बन पाता, बल्कि वह निरंतर आर्थिक दासता में जकड़ा रहता है। होरी की 'गोदान' की आकांक्षा केवल धार्मिक कर्मकांड नहीं, बल्कि सामाजिक प्रतिष्ठा और आत्मसम्मान की लालसा है। इस प्रकार प्रेमचन्द ने किसान जीवन को धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक त्रिकोण में बाँधकर उसकी जटिलता को उजागर किया है। इसी क्रम में कहानी ''पूस की रात'' कृषक जीवन की दारुण यथार्थता को अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती है। हल्कू का चरित्र उस किसान का प्रतिनिधित्व करता है जो अपनी ही खेती की रखवाली करते हुए प्रकृति और व्यवस्था—दोनों से संघर्ष करता है। प्रेमचन्द लिखते हैं— ''हल्कू ने आकाश की ओर देखा; तारे काँप रहे थे, जैसे वे भी ठंड से थरथरा रहे हों। वह सोच रहा था कि यह खेती किस काम की, जिसमें रात भर ठंड से काँपना पड़े और बदले में भी पेट भर रोटी न मिले।''[4] यहाँ किसान की आंतरिक पीड़ा, असुरक्षा और व्यवस्था के प्रति मौन निराशा अभिव्यक्त होती है। खेती उसके लिए जीवन का आधार होते हुए भी संतोष का कारण नहीं बन पाती। अंततः हल्कू का खेत जल जाना एक प्रकार से उसकी मानसिक पराजय नहीं, बल्कि उस व्यवस्था के प्रति निःशब्द विद्रोह है जिसने उसे असहाय बना दिया है। प्रेमचन्द की कहानी ''कफन'' में भी घीसू और माधव के माध्यम से ग्रामीण निर्धनता और अमानवीय परिस्थितियों का चित्रण मिलता है। यद्यपि यह कहानी सीधे किसान-जीवन पर केंद्रित नहीं, फिर भी ग्रामीण अभाव और सामाजिक संवेदनहीनता का यथार्थ यहाँ उभरकर आता है। इससे स्पष्ट होता है कि किसान विमर्श केवल खेत और ऋण तक सीमित नहीं, बल्कि ग्रामीण सामाजिक संरचना की व्यापक विडंबनाओं से जुड़ा है। प्रेमचन्द का प्रसिद्ध कथन— ''साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि जीवन की आलोचना और सुधार है।''[5] उनके किसान-विमर्श की मूल वैचारिक भूमि को स्पष्ट करता है।

उनके लिए साहित्य सामाजिक परिवर्तन का माध्यम है; अतः किसान का चित्रण भी सामाजिक न्याय की स्थापना की दिशा में एक वैचारिक हस्तक्षेप है। उत्तर-प्रेमचन्द काल में फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने ग्रामीण जीवन को आंचलिकता और लोक-संस्कृति के व्यापक संदर्भ में चित्रित किया। "मैला आँचल" में वे लिखते हैं— "गाँव की मिट्टी में जीवन की गंध है; वहाँ अभाव है, बीमारी है, पर मनुष्यता की ऊष्मा भी है।"[6] रेणु के यहाँ किसान केवल शोषित और अभावग्रस्त नहीं, बल्कि सांस्कृतिक जीवंतता और सामुदायिक चेतना से संपन्न है। वे ग्रामीण जीवन के रंग, बोली, लोकगीत और सामूहिकता को उभारते हैं। इस प्रकार किसान विमर्श केवल करुणा तक सीमित न रहकर सांस्कृतिक पुनर्पाठ का रूप ग्रहण करता है। नागार्जुन के उपन्यास "बलचनमा" में किसान जीवन की वर्गीय चेतना और शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध अधिक स्पष्ट रूप से उभरता है। बलचनमा का संघर्ष किसान को क्रांतिकारी चेतना से जोड़ता है। यहाँ किसान दया का पात्र नहीं, बल्कि परिवर्तन का वाहक है। इसी प्रकार रांगेय राघव और अमृतलाल नागर ने भी ग्रामीण जीवन के विविध आयामों को चित्रित करते हुए किसान की समस्याओं को सामाजिक संरचना से जोड़ा। समकालीन हिन्दी गद्य में किसान विमर्श नए संदर्भों में सामने आता है। अब किसान केवल जमींदारी या महाजनी शोषण से नहीं, बल्कि भूमंडलीकरण, बाजारवादी नीतियों, ऋणग्रस्तता, जलवायु परिवर्तन और आत्महत्या जैसे गंभीर प्रश्नों से जूझता दिखाई देता है। समकालीन कथाकारों ने किसान आत्महत्या को केवल व्यक्तिगत त्रासदी नहीं, बल्कि नीतिगत विफलता और संरचनात्मक असमानता का परिणाम माना है। यहाँ किसान विमर्श सामाजिक-आर्थिक नीतियों की आलोचना का माध्यम बन जाता है। इस प्रकार हिन्दी गद्य साहित्य में किसान विमर्श एक सतत विकसित होती धारा है। प्रेमचन्द ने इसकी वैचारिक और यथार्थवादी नींव रखी, रेणु ने उसे सांस्कृतिक विस्तार दिया, नागार्जुन और अन्य लेखकों ने उसमें प्रतिरोध की चेतना जोड़ी, और समकालीन लेखन ने उसे वैश्विक आर्थिक संदर्भों से जोड़ा। किसान अब केवल करुणा का पात्र नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, समानता और मानवीय गरिमा के प्रश्न का केंद्र बन गया है। यही हिन्दी गद्य साहित्य में किसान विमर्श की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

भारतीय सिनेमा में किसान विमर्श: भारतीय सिनेमा ने अपने प्रारम्भिक काल से ही समाज के विविध वर्गों और उनके जीवन-संघर्षों को अभिव्यक्ति दी है। यद्यपि व्यावसायिक सिनेमा में लंबे समय तक शहरी मध्यवर्गीय जीवन प्रमुख रहा, फिर भी किसान जीवन की पीड़ा, संघर्ष और विस्थापन समय-समय पर सिनेमा के केंद्र में आते रहे हैं। साहित्य की भाँति सिनेमा भी सामाजिक यथार्थ का दर्पण है, किंतु उसका दृश्य–श्रव्य स्वरूप उसे अधिक प्रभावशाली और व्यापक बनाता है। कैमरा, संगीत, दृश्य-रचना और संवाद मिलकर किसान जीवन के यथार्थ को संवेदनात्मक तीव्रता प्रदान करते हैं।

भारतीय सिनेमा में किसान विमर्श की सशक्त शुरुआत बिमल रॉय की फिल्म "दो बीघा ज़मीन" (1953) से मानी जाती है। यह फिल्म जमींदारी शोषण और औद्योगीकरण के कारण विस्थापित होते किसान की त्रासदी को मार्मिक रूप में प्रस्तुत करती है। शंभू महतो का चरित्र उस भारतीय किसान का प्रतीक है जिसकी भूमि ही उसका अस्तित्व है। फिल्म में शंभू का संवाद— "ज़मीन चली गई तो जैसे हमारी साँस ही चली गई।"[7] भूमि और जीवन के अभिन्न संबंध को रेखांकित करता है। यहाँ किसान केवल आर्थिक रूप से नहीं, बल्कि भावनात्मक और सांस्कृतिक रूप से भी अपनी धरती से जुड़ा हुआ है। 1957 की फिल्म "मदर इंडिया" में राधा का चरित्र भारतीय कृषक जीवन की संघर्षशील नारी शक्ति का प्रतीक है। यह फिल्म ऋण, सूखा और सामाजिक नैतिकता के बीच किसान जीवन की जटिलताओं को दर्शाती है। यहाँ किसान की छवि त्याग, श्रम और नैतिकता के साथ जुड़ी हुई है। सत्तर के दशक में समानांतर सिनेमा ने किसान

और ग्रामीण समाज को अधिक यथार्थवादी दृष्टि से प्रस्तुत किया। श्याम बेनेगल की अंकुर (1974) सामंती शोषण और वर्गीय असमानता को उजागर करती है, जबकि मंथन (1976) सहकारी आंदोलन के माध्यम से ग्रामीण आत्मनिर्भरता और सामूहिक चेतना को सामने लाती है। इन फिल्मों में किसान केवल पीड़ित नहीं, बल्कि परिवर्तन की संभावनाओं से युक्त सामाजिक शक्ति के रूप में दिखाई देता है। व्यावसायिक सिनेमा में भी किसान विमर्श ने प्रतीकात्मक रूप ग्रहण किया है। लगान (2001) में किसान औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध सामूहिक प्रतिरोध का प्रतीक बनता है। फिल्म का कथन— "हमारी मेहनत पर किसी और का हक़ नहीं हो सकता।"[8] किसान के स्वाभिमान और अधिकार-बोध को प्रकट करता है। यद्यपि फिल्म ऐतिहासिक और नाटकीय संरचना में बुनी गई है, फिर भी यह किसान की सामूहिक शक्ति को रेखांकित करती है। समकालीन दौर में पीपली लाइव (2010) ने किसान आत्महत्या जैसे गंभीर प्रश्न को व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत कर मीडिया और राजनीति की संवेदनहीनता पर प्रहार किया। इसी प्रकार "किसान" (2009) और "कड़वी हवा"(2017) जैसी फिल्मों में ऋणग्रस्तता, जलवायु परिवर्तन और आर्थिक संकट से जूझते किसान की यथार्थ तस्वीर सामने आती है। विशेषतः "कड़वी हवा" में सूखे और पर्यावरणीय संकट का प्रभाव किसान जीवन पर गहराई से दिखाया गया है, जो समकालीन कृषि संकट का संकेतक है। इस प्रकार भारतीय सिनेमा में किसान विमर्श विविध रूपों में विकसित हुआ है—विस्थापन, शोषण, प्रतिरोध, सामूहिकता और समकालीन संकट के रूप में। समानांतर सिनेमा यथार्थ के अधिक निकट जाकर संरचनात्मक अन्याय को उजागर करता है, जबकि व्यावसायिक सिनेमा किसान को कभी आदर्शवादी तो कभी प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत करता है। फिर भी दोनों धाराएँ मिलकर किसान जीवन की जटिलताओं को व्यापक समाज तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

हिन्दी गद्य साहित्य और हिन्दी सिनेमा में किसान विमर्श: तुलनात्मक विश्लेषण हिन्दी गद्य साहित्य और हिन्दी सिनेमा, दोनों ही भारतीय समाज के यथार्थ को अभिव्यक्त करने के सशक्त माध्यम रहे हैं। किसान विमर्श के संदर्भ में दोनों की संवेदनात्मक प्रतिबद्धता समान दिखाई देती है, किंतु उनकी अभिव्यक्ति की शैली और उपकरण अलग-अलग हैं। साहित्य शब्दों के माध्यम से किसान के अंतर्मन, उसके मनोवैज्ञानिक द्वंद्व और सामाजिक परिस्थिति का सूक्ष्म चित्रण करता है, जबकि सिनेमा दृश्य और ध्वनि के संयोजन से उसी यथार्थ को व्यापक दर्शक-वर्ग तक प्रभावशाली ढंग से पहुँचाता है। हिन्दी गद्य साहित्य में किसान विमर्श का स्वर अधिक आत्मविश्लेषणात्मक और गहन है। प्रेमचन्द ने "गोदान" में किसान की स्थिति को सामाजिक संरचना से जोड़ते हुए लिखा है— "किसान की कमर इसलिए टूटी हुई नहीं है कि वह आलसी है, बल्कि इसलिए कि उस पर बोझ इतना अधिक है कि सीधा खड़ा होना भी उसके लिए कठिन हो गया है।"[9] यह कथन किसान की दयनीय स्थिति को उसके व्यक्तिगत गुण-दोषों से हटाकर सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था की विफलताओं से जोड़ता है। साहित्यकार किसान के भीतर के भय, आशा, निराशा और संघर्ष को विस्तार से उद्घाटित करता है, जिससे पाठक उसके जीवन की जटिलताओं को गहराई से समझ पाता है। इसके विपरीत, हिन्दी सिनेमा में किसान विमर्श अधिक दृश्यात्मक और प्रतीकात्मक रूप में सामने आता है। उदाहरणस्वरूप फिल्म "मंथन" में सहकारी आंदोलन के संदर्भ में किसान की सामूहिक शक्ति को रेखांकित करते हुए संवाद आता है— "अगर हम बँटे रहेंगे तो हमारा दूध भी सस्ता बिकेगा, और अगर साथ खड़े होंगे तो हमारी मेहनत की कीमत हम खुद तय करेंगे।"[10] यह संवाद संगठन और एकजुटता की आवश्यकता को स्पष्ट करता है। सिनेमा यहाँ विचार को दृश्य, अभिनय और संवाद के माध्यम से सजीव बनाता है, जिससे संदेश तत्काल और व्यापक प्रभाव उत्पन्न करता है।तुलनात्मक दृष्टि से साहित्य में किसान का चित्र अधिक बहुआयामी और जटिल दिखाई देता है। प्रेमचन्द, रेणु और नागार्जुन जैसे लेखकों ने किसान

को उसकी कमजोरियों, विश्वासों और अंतर्विरोधों सहित प्रस्तुत किया है। साहित्य में किसान का संघर्ष एक दीर्घ सामाजिक प्रक्रिया के रूप में विकसित होता है। इसके विपरीत सिनेमा में कथा की गति और प्रभाव को बनाए रखने के लिए किसान कई बार प्रतीकात्मक रूप धारण कर लेता है। "लगान" में किसान औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध प्रतिरोध का प्रतीक बनता है, जबकि "मदर इंडिया" में वह नैतिक आदर्श और त्याग की मूर्ति के रूप में चित्रित होता है। यथार्थवादी प्रस्तुति की दृष्टि से समानांतर सिनेमा साहित्य के अधिक निकट प्रतीत होता है। "दो बीघा ज़मीन" और "अंकुर" जैसी फिल्मों में किसान जीवन की विडंबनाओं को बिना अतिरंजन के प्रस्तुत किया गया है। इसके विपरीत व्यावसायिक सिनेमा कई बार नाटकीयता और भावुकता के माध्यम से किसान की छवि को आदर्शीकृत रूप दे देता है। समकालीन परिप्रेक्ष्य में दोनों माध्यमों में एक महत्वपूर्ण साम्य यह है कि किसान की समस्या को अब नीतिगत और संरचनात्मक संकट के रूप में देखा जा रहा है। साहित्य में किसान आत्महत्या, ऋणग्रस्तता और बाज़ारवाद पर गंभीर विमर्श हो रहा है, वहीं सिनेमा में "पीपली लाइव" जैसी फिल्में मीडिया और राजनीति की संवेदनहीनता को उजागर करती हैं।इस प्रकार स्पष्ट है कि हिन्दी गद्य साहित्य और हिन्दी सिनेमा दोनों का उद्देश्य किसान जीवन की वास्तविकताओं को सामने लाना है, यद्यपि उनके उपकरण भिन्न हैं। साहित्य गहन चिंतन और विश्लेषण की भूमि तैयार करता है, जबकि सिनेमा संवेदनात्मक विस्तार और दृश्यात्मक प्रभाव के माध्यम से समाज का ध्यान आकर्षित करता है। दोनों मिलकर किसान की पीड़ा, संघर्ष और स्वाभिमान को सामाजिक विमर्श के केंद्र में स्थापित करते हैं।

समकालीन सन्दर्भ में किसान विमर्श : वर्तमान समय में किसान विमर्श केवल साहित्यिक सहानुभूति या करुणा का विषय भर नहीं रह गया है, बल्कि यह सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विमर्शों के केंद्र में स्थापित हो चुका है। भूमंडलीकरण, उदारीकरण और बाजारवादी अर्थव्यवस्था के विस्तार ने कृषि क्षेत्र की पारंपरिक संरचना को गहराई से प्रभावित किया है। कृषि-नीतियों में निरंतर परिवर्तन, जलवायु संकट, बढ़ती लागत, ऋणग्रस्तता और अस्थिर बाजार व्यवस्था ने किसान जीवन को जटिल संकटों से घेर लिया है। आज का किसान केवल जमींदारी या महाजनी शोषण से नहीं, बल्कि बैंक ऋण, महंगे बीज, रासायनिक उर्वरकों, फसल बीमा की जटिल प्रक्रियाओं और न्यूनतम समर्थन मूल्य की अनिश्चितताओं से संघर्ष कर रहा है। समकालीन हिन्दी साहित्य में यह संकट अधिक तीव्र और प्रत्यक्ष रूप में अभिव्यक्त हुआ है। कवि राजेश जोशी अपनी कविता में लिखते हैं— "वे खेतों में बोते हैं अन्न और शहरों में उगती हैं इमारतें, पर उनके हिस्से में बचती है सिर्फ कर्ज की पथरीली जमीन।"[11] इन पंक्तियों में उत्पादन और उपभोग के बीच का गहरा असंतुलन उजागर होता है। जो वर्ग अन्न उपजाता है, वही वर्ग अभाव, असुरक्षा और ऋण के बोझ तले दबा रहता है। श्रम और प्रतिफल के बीच का यह विरोधाभास समकालीन किसान विमर्श का केंद्रीय प्रश्न बन जाता है। किसान आत्महत्या की समस्या आधुनिक भारत की सबसे मार्मिक और चिंताजनक वास्तविकताओं में से एक है। कथाकार संजीव अपने उपन्यासों और कहानियों में कृषि-व्यवस्था की विघटित होती संरचना को रेखांकित करते हुए लिखते हैं— "जब फसल खेत में खड़ी-खड़ी मर जाती है, तो किसान के भीतर भी कुछ स्थायी रूप से मर जाता है।"[12] यह कथन केवल आर्थिक नुकसान का बोध नहीं कराता, बल्कि उस मानसिक, भावनात्मक और अस्तित्वगत आघात की ओर संकेत करता है जिसे किसान झेलता है। फसल का नष्ट होना उसके श्रम, आशा और भविष्य के सपनों के विफल हो जाने का प्रतीक बन जाता है। हिन्दी सिनेमा ने भी इस यथार्थ को प्रभावी ढंग से सामने रखा है। "पीपली लाइव" और "कड़वी हवा" जैसी फिल्मों ने किसान आत्महत्या, मीडिया की संवेदनहीनता और पर्यावरणीय असंतुलन जैसे मुद्दों को केंद्र में लाकर समकालीन संकट को रेखांकित किया है। विशेष रूप से जलवायु परिवर्तन के कारण उत्पन्न सूखा, बाढ़ और

अनियमित वर्षा ने कृषि को अत्यंत अस्थिर बना दिया है, जिससे किसान की निर्भरता और जोखिम दोनों बढ़े हैं। समकालीन किसान विमर्श की एक प्रमुख विशेषता यह है कि अब यह दया या करुणा की भावना तक सीमित नहीं है। यह अधिकार, नीति-संशोधन, न्यूनतम समर्थन मूल्य की गारंटी, ऋणमुक्ति और सामाजिक न्याय की माँग से जुड़ा हुआ विमर्श बन गया है। हाल के किसान आंदोलनों ने स्पष्ट किया है कि कृषि का प्रश्न केवल ग्रामीण अर्थव्यवस्था का नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक सहभागिता, आर्थिक समानता और नीतिगत पारदर्शिता का भी प्रश्न है। अतः वर्तमान संदर्भ में किसान विमर्श साहित्य और सिनेमा दोनों में एक सक्रिय, जागरूक और प्रतिरोधशील स्वर के रूप में उभरता है। यह हमें याद दिलाता है कि किसान की समस्या किसी एक वर्ग या क्षेत्र तक सीमित नहीं, बल्कि समूचे राष्ट्र की सामाजिक-आर्थिक संरचना से गहराई से जुड़ी हुई है।

निष्कर्ष: हिन्दी गद्य साहित्य और हिन्दी सिनेमा में विकसित किसान विमर्श भारतीय समाज की सामाजिक-आर्थिक जटिलताओं को समझने की एक प्रभावी वैचारिक भूमि प्रदान करता है। यह केवल किसान जीवन की दयनीय स्थितियों का वर्णन भर नहीं है, बल्कि शोषण की संरचनाओं, विस्थापन की पीड़ा, वर्गीय असंतुलन, नैतिक संघर्ष और प्रतिरोध की चेतना का बहुआयामी विश्लेषण भी है। प्रेमचन्द से लेकर रेणु, नागार्जुन और समकालीन लेखकों तक हिन्दी गद्य ने किसान को ग्रामीण यथार्थ के केंद्रीय पात्र के रूप में स्थापित किया है। साहित्य ने किसान के भीतर की बेचैनी, उसकी सामाजिक बंधनशीलता, धार्मिक आस्थाओं और संघर्षशील मनःस्थिति को सूक्ष्मता से उद्घाटित करते हुए यह रेखांकित किया कि उसकी दुर्दशा किसी एक व्यक्ति की विफलता नहीं, बल्कि व्यापक सामाजिक और नीतिगत ढाँचों का परिणाम है। इसी क्रम में हिन्दी सिनेमा ने किसान जीवन के इसी यथार्थ को दृश्य और संवेदना के स्तर पर व्यापक विस्तार दिया। समानांतर सिनेमा ने ग्रामीण समाज की वास्तविक समस्याओं को अधिक यथार्थपरक ढंग से प्रस्तुत किया, जबकि मुख्यधारा के सिनेमा ने किसान को प्रतीकात्मक रूप में जनमानस से जोड़ा। वर्तमान समय में साहित्य और सिनेमा दोनों ने आत्महत्या, ऋण संकट, बाजारवादी दबाव और पर्यावरणीय चुनौतियों जैसे मुद्दों को प्रमुखता देकर किसान विमर्श को समकालीन संदर्भों से जोड़ा है। तुलनात्मक दृष्टि से यह स्पष्ट होता है कि अभिव्यक्ति के माध्यम अलग होने पर भी दोनों की संवेदनात्मक प्रतिबद्धता समान है। साहित्य जहाँ विचार की गहराई प्रदान करता है, वहीं सिनेमा उसे व्यापक सामाजिक संवाद का हिस्सा बनाता है। अंततः किसान विमर्श भारतीय समाज में न्याय, समानता और मानवीय गरिमा की स्थापना की दिशा में एक सार्थक और आवश्यक हस्तक्षेप के रूप में उभरता है, जिसकी प्रासंगिकता आज के समय में और भी अधिक बढ़ गई है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. मार्क्स, कार्ल एवं एंगेल्स, फ्रेडरिक. कम्युनिस्ट घोषणापत्र. अनुवाद: रामविलास शर्मा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 2004, पृ. 35.
2. प्रेमचन्द. साहित्य का उद्देश्य,हंस प्रकाशन, वाराणसी 1936, पृ. 12.
3. प्रेमचन्द. गोदान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,2012, पृ. 145.
4. प्रेमचन्द. पूस की रात, मानसरोवर (भाग-1).राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,2010, पृ. 56
5. प्रेमचन्द.साहित्य का उद्देश्य, हंस प्रकाशन, वाराणसी 1936, पृ. 18.
6. रेणु, फणीश्वरनाथ. मैला आँचल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2011, पृ. 32.
7. दो बीघा ज़मीन. निर्देशक: बिमल रॉय. 1953.

8. लगान. निर्देशक: आशुतोष गोवारिकर. 2001.
9. प्रेमचन्द. गोदान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012,पृ. 112.
10. मंथन. निर्देशक: श्याम बेनेगल. 1976.
11. जोशी, राजेश.मिट्टी का चेहरा , राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014,पृ. 58.
12. ंजीव. प्रासंगिक कथा-साहित्य,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,2009,पृ. 134.

फोन : +91 9602816826, ईमेल : aryan.1259@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 233-236
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

MANAGEMENT OF MIND BY ANCIENT INDIAN WISDOM

Dr. Ravindra Singh
Assistant Professor,
Department of Commerce,
R.S.G.U. P.G. College, Pukhrayan, Kanpur Dehat

ABSTRACT

In the present world in which information is being provided as sky and human are making their decision to fulfill what is said by commercial communication which ultimately creating never ending wants through exchange and mind always busy with its six friends (Desire, aggression, infatuation, arrogance and envy). Information is a necessary tool for learning to become a citizen to life with in society by helping each other in mutual way but these six friends of mind make him covet to exploite others for self fulfilment and making other deprive that leads to social unjustice that causes hatred, frustration agony struggle for existence which is now seen in the form of various metabolic diseases like blood pressure, depression, Bipolar disorder, dementia schi zophrenea etc. Indian ancient sages like Patanjali through their YOGA philosophy had given important aphorism which are helpful in reducing the unnecessary wants created by marketers that become a stressors in life which limit the psychological capabilities of every individual in present material world. This paper is an attempt to explore how yogic philosophies of Indian scripture can be helpful in meeting with present life struggle being faced by citizen of India.

Key word: Metabolic diseases, Yoga Aphorism.

INTRODUCTION

Management of mind involves two aspects 1 - Ability to concentrate his attention on an object and 2nd Capacity to remain calm at will. In present world where cultural transmission has so much infused and information is so much pervasive that it is very difficult for people to remain unattached with the physical object and store peace in mind. According to WHO (World Health Organization) Health is defined as "state of complete physical mental and social wellbeing not merely an absence of infirmity or disease" while Indian ancient scriptures says that disturbance. In the mind creates all the psychosomatic and degenerative ailments in which psychological factors play a greater role, These ailments arise when excessively strong feeling like and dislike become amplified and obstruct the flow of energy causes physical elements and make people feel restless and discontented. This starts with Ambition to achieve something in life to play a role which is recognised by society and ignoring to achieve happiness

contentment and peace. Modern marketers are pulling the attention of people by heavy promotional campaign to drag human mind to receive happiness and comfort by materialistic things become they know that humans are actually being driven by their desires. Humans are driven into market in search of health. Happiness and comfort which they procure for satisfying their needs which are of fire kinds and attached in hierarchy as suggestion by A.H. Maslow in his paper A Theory of Human motivation in 1943. This hierarch is split between deficiency needs and growth needs that involves a human being in their prioritization while making action to satisfy them. Maslow Portrayed it as a shape of a Pyramid with the largest physiological needs (the most fundamental needs) at the base and need for self actualization at the top. Deprivation is the cause of deficiency therefore if one has unment needs this motivate them to fullfill although human are very complex because they have many different motivation factors running at same time at various levels of Maslow's hierarchy which the termed as primarily general and relative factors but at a given time certain factors of motivation dominates and result in action for solicitation but they are arranged in hierarchy because basic Instinet and its satisfaction is very necessary for pursing higher level of needs if a person is struggling to meet their biogenic needs they would be unwilling to seen safety social esteem and self actualization. Economic safety manifest in variety of ways like preference of job, security grievance, procedure saving accounts, insurance policy Health, safe environment and all is to have stability in their life which are maintained by personal emotional, financial, health. An Security acceptance in the social and work group like family to workers religious groups sports art and literature, colleges is very important because its security leads to loneliness anxiety and depression and adversely affects the individual ability to maintain emotional relation with others in groups because sharing feeling with other reduce the chance of depression and if it is not mate it leads to loneliness and reduce their belongings' with others causes mental instability. Receiving and giving love and affection showing trust intimacy with others helps in social ac acceptance that stabilize role position and acceptance with in social gathering. Esteem is acceptable from administration from others which is two types one form others like fame, prestige attention status and recognition and other for self respect which a person achieved through competence through their knowledge skill and ability which leads to mastery and self confidence. This self confidence peoples acquires through learning and experience so they try to create and ensure for maintaining an environment that support and provide opportunity for their achievements. In self actualization state humans being start searching knowledge that satisfy their greater sense of cognition for their ultimate purpose of existence on this planet as a human so they try to get insight from their real self with all the components of nature and develop their full potential that nature has endowed them.

Indian ancient tool for harmonizing mental instincts and social wants. Every individual in the society want to achieve economic and social upliftment by enhancing their potential through learning and experience which make them competent so that they accumulate what are available in the world. This process of uplifting requires struggle with many factors like political, economical social technological and legal and creates many hindrance due to immense competition and unethical practices being used by these forces that leads to despondent frustration and depression, Ancient Indian wisdom as suggested by our sage PATANJALI in Yog Sutra highlights the way through which a person can attain the supreme purpose of their existence in this planet these steps are, YAMAN NIYAMA which helps in management of KAMA (Desire) and Krodha (Anger) because by knowing the reason which motivate humans to interact with others world for achievement. These precepts helps in training disciplining and educating human mind to manage anger, aggression, stress anxiety carelessness because practice of Yama Niyama helps in forgiveness let go of the negative things and enhancing respect and honour for everybody. Negativity gains from society keeps on

building until one day it explode that is the reason one showed not harbour resentment and animosity because they disturb the whole environment other two important reason for mental disturbance and turmoil are attachment and detachment, attachment is due to latent expectations due to need and want for inanimate object a momentary behaviour and expression which all start with awareness that triggers a need desire and expectation for providing security comfort satisfaction happiness and help in fulfilling the reason for which a person see attachment in their consciousness. This attachment if require to be fulfill must be procured with support from others and if one develop supporting nature a fruitful interactive and creative relationship develops based on trust and understanding.

Detachment does not mean negation but it prepare the mind a behaviour in appropriate applications which ultimately support and nourishes the social connection and develop harmonious relationship with family friends and society. Two resolve the ego and envy one have to contemplate on his like and dislike that is created with in yourself because our action with other and their response are guided by ego which is reflected in our self esteem people with higher self esteem have bigger ego and confrontation with ego is like fighting with oneself. The only tool advised by Indian sages are humility which pacify the ego and save from troubles because there will be continuous action and reaction in life and many times it creates conflict and develop envy and if one strive to work for other by observation understanding and cultivating positive attitude it helps in the management of these mental instincts.

Therapeutic Yoga in Management of Worldly impulse generated in mind

A person having disturbance in easiness approach to doctor as patient and seek advice to correct his physical or psychological disturbance which is caused by infections, malnutrition or disturbed metabolism but when their goal blocked behaviour causes psychological disorder due to social interactions humans efficiency decreases due to tension anxiety despondent frustration and start piling in mind. Out ancient sages has prescribed many aphorisms in scripture which defines how mental equipoise can be mentioned in adversities that are bound to come in humans life. The first rule of Yoga is to cultivate your awareness to such degree that nothing occurs in a subtle way or any other way every movement any thought movement is observed. This awareness leads to attachment while they are being created and perceive whether they are essentially required or merely infatuation. Yoga says that desire to possess something must be evaluated on SWAN principle which is knowing the strength weakness ambition and need and if humans would be able to categories their expectation in these four categories and comprehended them in the light of their strength ambition and need that make one free from the bondage of attachment. Yoga says that if attachment is need then it is valid and if it ambition then it will not provide fulfilment. The SWAN principle is a strong tool to manage the intelligence and association of mind with different object in the environment that cause desire would be guided properly and appropriately if judged. SWAN principle which slowly and slowly transform the thinking of human mind. Yoga says that awareness leads to change the perception because it is possible to change the circumstances as you view them first in your consciousness and in yogic disciplines a higher life can be discovered with in and than reflect it in simple word change the subject and the object is bound to change. yogic sutras of YAM NIYAM AASAN and PRAYAYAM for physical body PRATYAHARA, DHARNA, DHYAN is for mental body and its discipline lead to SAMADHI or unending bliss.

REFERENCES

1. Swami Amar Jyoti (2019) Conscious living Anand Niketan Trust Pune.
2. Swami Satyanand (2010) Antar Dhyan Yoga publication trust Munger Bihar.
3. Swami Niranjananad (2011) Sanyas Yoga publication trust Munger Bihar.
4. Swami Niranjananad (2012) My inheritance of Sannays Yoga publication trust Munger Bihar.

5. K. Shridharan Bhatt (2002) Management and Behavioural Process Himalaya Publication House Mumbai.
6. Margie Parikh, Rajen Gupta (2012) Organizational Behaviour Tata Mc Graw Hill New Delhi.
7. Sant Gyaneshwar (2019) Sri Gyaneshwari Gita Press Gorakhpur.

Email: dr.ravindrasingh79@gmail.com
Mob.: 9919566866

www.bohalshodhmanjusha.com **Bohal Shodh Manjusha** **ISSN: 2395-7115**
Impact Factor: 8.642 **April 2026** **Page No. : 237-239**
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

नीलेश रघुवंशी की कविता 'ढाबा' : समस्यापरक अध्ययन

दिव्या एम. एस.
हिन्दी विभाग, कार्यवट्टम कैंपस, केरल विश्वविद्यालय

'ढाबा' नीलेश रघुवंशी की बहु चर्चित कविता है। यह आठ कविताओं की यात्रा है। इन कविताओं से नीलेश जी आम जनता और पारिवारिक जीवन की ओर संकेत करती है। साधारण लोग कई तरह की समस्याओं से गुज़र रही है, परिवार को आगे बढ़ाना उनके जीवन का बहुत बड़ा सवाल है। आज के यात्रिंक जीवन में परिवारिक संबंधों को सामने रखकर प्रस्तुत करने में निलेश रघुवंशी सफल हुई है। परिवार की अस्ली स्थिति , आजिविका चलाने के लिए कितनी यातनाएँ माँ-बाप सहते हैं और इन प्रतिकून वातावरण को सहकर वह कैसे लेखिका बनी इन सभी प्रश्नों का उत्तर इन कविताओं में हैं। इन कविताओं को जनवादी कविता कहे तो गलत नहीं होगी।

"मोटरों के शोर और
बैलगाड़ियों की धीमी रफ़्तार के बीच था ढाबा
सड़क किनारे लगा हैंडपंप
आसपास जिसके घूमती रहती गायें
खडे रहते किनारे हाथ ठेले और रिक्शे
टूटी-फूटी बेंचों
जिन पर बैठ बतियाती मंडी से आयें थके-हारे लोग
जाने – अनजाने करते तय रुकेंगे अगले ढाबे पर"।[1]

'ढाबा' कविता का नाम है लेकिन उसमें जीवन की झलक है, और जीवित रहने की कोशिश भी देख सकते हैं। मोटरों और बैलगाडियों की रफ्तार के बीच का ढाबा का चित्रण हमें एक पुराने जीवन दृश्य की ओर जाने का अवसर देता है। थे ढाबा तो उन परिवार की आजीविका चलाने की एक मात्र उपाधी है।ढाबे में दूर से थके हारे लोग आते जाते हैं। जाने - अनजाने कभी कभी ढाबा उनके घर बन जाता है और अपनी यादों व स्मृतियों का तलाश भी करते हैं।

यहाँ जो ढाबे का चित्रण हुआ है वह कई रूप से हमारे आसपास देख सकते हैं। यहाँ काम करनेवाले परिवार हमें परिचित भी हैं। यह ढाबा ग्यारह परिवारवालों का जीवन बिताने की एकमात्र उपाधी है। वे सभी लोगों की तरह घर में आराम करना और स साथ सफर करना चाहते हैं, लेकिन एक दिन भी आराम करना सोच भी नहीं सकते हैं।

"स्कूल के दिन होंगे औरों के यहाँ तो
ढाबे और स्कूल के बीच गुज़र गए दिन
लौटते ही स्कूल से बस्ता चलकर
दौड जाते थे हम ढाबे की ओर
हाथों में होमवर्क की कॉपियाँ और लिये" [2]

यहाँ बच्चों की मानसिक स्थिति का चित्रण प्रभावशाली ढंग से किया है। यहाँ के बच्चे भी अन्य बच्चों की तरह स्कूल जाते हैं। स्कूल में पढ़ाते समय उनके मन में ढाबा ही है। क्योंकि उनके मन में तभी कई तरह का सवाल उठता है – पिता कैसे अकेला ढाबे में और माँ सारी काम कैसे करेंगी जैसे अनेक प्रश्न उनके मन में आते - जाते हैं। स्कूल के बाद सभी बच्चे घर जाने के लिए दौड़े तो वे ढाबे में पहुंचने के लिए दौड़ते हैं। जैसे बच्चों का चेहरा खिलौना देखकर चमकते हैं वैसे ढाबे की आग के प्रतिफलन से उनका चेहरा चमकते हैं।

रोटियाँ और सब्जी का गंध है उन सबों के साँसों में। इस गंध से उन सबों के दिन की शुरूआत, थकते पाँवों के साथ कंधे भी ..... पानी से भरते बर्तनों की बोझ से वे अधिक थके होते हैं। यह देखकर माँ अधिक व्याकुल हो जाती है। लेकिन उन्हें ढाबे में रहते समय सभी व्याकुलताऐं दूर हो जाती हैं। ढाबा उन्हें सभी समय पास ही रखते हैं। ढाबा उन्हें धीरज से रहते को सिखाते हैं।

जो बच्चे स्कूली जीवन से आनंदित करते हैं, यहाँ बच्चे ढाबे में काम करने के बाद कुछ समय स्कूल में जाते हैं। लोग इन बच्चों को आश्चर्य से देखते हैं क्योंकि ये लोग कैसे पढ़ते हैं? लेकिन रिसल्ट आते समय अच्छे अंकों में पास करते हैं और लोग पिता का अभिनंदन भे करते हैं। अब पिता की आँखों से दर्द भरी आँसु बहती है। इसका अर्थ कोई भी समझ नहीं सकते हैं क्योंकि वह पिता अपने बच्चों को सुविधाएँ देने के लिए असमर्थ है। यह असहायता उनकी आँखों में झलकती है।

"आठ बहनों का इकलौता भाई
कलाई पर जिसके बँधती पूरी आण राखियाँ
आठों के आठ डोरे झुलसे हर बार भट्ठी में।" [3]

इस कविता में भाई-बहन का आपसी संबंध सुंदर भाषा में चित्रित है। यहाँ आठ बहनों का इकलौता भाई होने के कारण रक्षाबंधन के वक्त उनके हाथों में आठ राखियाँ पहनाती हैं। जो राखियाँ बहनों से बँधा गया वह ढाबे में मेहनत करते वक्त राखों से काले वर्ण और कभी – कभी बिखरा भी गया है। यह देखकर बहनों को इतना दुख होता है कि इस उम्र में भाई परिवार के लिए कितना दर्द सहते हैं।

"वह वक्त बेवक्त की बारिश
भीगता हुए सेंकी जिसमें हमने रोटियाँ
ग्राहक की जगह को पानी से बचाने भीग जाते थे हम पूरे के पूरे
भीगते हुए देखती माँ

खडी रहती दरवाज़े पर सूखे कपडे लिए
हमारे गीले सिरों पर हाथ फेरते हुए
मन ही मन बुदबुदाती
आयेगी अगली बारिश में सबके लिए बरसाती।" [4]

यहाँ ढाबे का दयनीय स्थिति और उस परिवार की गरीबी हालत की ओर ज़िक्र किया है। समय-समय पर मरम्मत न करने के कारण ढाबा टूटा फूटा पडा है। अकालिक बारिश में ढाबे की हालत इतनी बुरी थी कि पानी बाहर से अधिक अंदर ही आते हैं। रोटियाँ और ग्राहक की जगह को पानी से बचाने के लिए बच्चे पूरे के पूरे भीगते हैं। माँ बच्चों के गीले कपड़े और सिरों को देखकर विवश हो जाती है, और मन ही मन बुदबुदाती है अगली बारिश में उन सबके लिए बरसानी खरीदूंगा। माँ अच्छी तरह जानती भी कि ढाबे का पुनर्निर्माण और बरसाती खरीदना ये दोनों असंभव है क्योंकि उनके परिवार अब इतनी गरीबी से गुज़र रहा है। लेकिन भविष्य की ओर उनकी प्रतीक्षा यहाँ देख सकते हैं।

"उसी हाँसी को ढूंढती हूँ आज भी
जब भी कभी दिखता है कोई ढाबा
हँसी में डूबी शाम आ जाती है याद।" [5]

'ढाबा' की अंतिम कविता प्रेम संबंधी है। ढाबे में काम करते समय सामनेवाली पान की गुमटी पर एक लड़का खडे होकर उसकी ओर देख रही थी। वही उनका पहला प्रेम है। वह उस लडके की हँसी को ढूंढ़ती है आज भी। पहला प्रेम ऐसी ही है वर्षों के बाद भी मन में प्रणय की झलक उसी तीक्ष्णता से हैं। वही शाम आने की प्रतीक्षा आज भी कवयित्री के यानि हम सब के मन में छिपती हैं।

ढाबा में गुजरते दिनों भुलाए नहीं भूलते। क्योंकि ढाबा उन्हें धीरज से जीने के लिए सिखाता है। जिंदगी के बारे में जो पढ़ा है, क्षमा, प्रेम धैर्य, स्नेह सब ढाबे से ही सीखा है। ढाबा की आवाँ ने उन्हें सब सिखा दिया है।

निष्कर्ष के रूप में यह कहना उचित है कि ढाबा और आश्रित जीवन वहाँ और यहाँ, किसी अलग रूप में हम देख सकते हैं। 'ढाबा' से जीवन के विभिन्न स्तरों का अध्ययन हमें मिलते हैं। ढाबे की आग जीवन की विविध समस्याएँ है और वहाँ आनेवाले मुसाफिर भविष्य जीवन की प्रतीक्षाएँ हैं। अगर यह ढाबा नहीं है तो नीलेश रघुवंशी जैसी लेखिका भी नहीं। अब भी ढाबे की आग उन्हें दृढ़ता और आत्मसम्मान से आगे बढ़ने का रास्ता खुला ही देती है।

संदर्भ सूची

1. नीलेश रघुवंशी, 'घरनिकासी' (2009), किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ सं-100
2. नीलेश रघुवंशी, 'घरनिकासी' (2009), किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ सं-102
3. नीलेश रघुवंशी, 'घरनिकासी' (2009), किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ सं-103
4. नीलेश रघुवंशी, 'घरनिकासी' (2009), किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ सं-105
5. नीलेश रघुवंशी, 'घरनिकासी' (2009), किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ सं-106

9645510153
divyahindi15@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 240-244
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

कामायनी में वर्णित संवेदना का आलोचनात्मक मूल्यांकन

डॉ. नीलम कुमारी
एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी – 221005

शोध सार:- जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित कामायनी पर समकालीन आलोचकों ने सबसे अधिक ध्यान केंद्रित किया है। प्रसाद ने कामायनी में मिथकीय रूपक के द्वारा **'सभ्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास'** प्रतिपादित करना चाहा है। आलोचकों ने इसे 'सभ्यता-समीक्षा' के रूप में रेखांकित किया है। प्रसाद मानवता के विकास को इच्छा-शक्ति का विकास मानते हैं। अतः उन्होंने सभ्यता-संकट का निदान मानव-प्रवृत्तियों में रूपान्तरण के रूप में प्रस्तुत किया है। विगत सदी में समाज-राजनीतिक सारणियों की मान्यता रही कि व्यवस्था-परिवर्तन द्वारा व्यक्ति-परिवर्तन से मानव-सभ्यता की समस्याओं का समाधान हो जाएगा। नवीन अध्ययनों से यह पुष्ट हुआ है कि समाज की इकाई व्यक्ति-रूपान्तरण द्वारा ही समाज-व्यवस्था रूपान्तरित हो सकती है। कामायनी की अन्विति में रूपान्तरण का केन्द्र व्यक्ति है। छायावादी चित्रण के कारण यह रहस्यवादी पलायन प्रतीत होता है किन्तु साहित्य में यथार्थ की अभिव्यक्ति विभिन्न रूपों में होती है। साहित्य में रहस्यवाद का अनिवार्य अर्थ पलायन नहीं है। कामायनी में सभ्यता-विकास का विकल्प भी अन्तर्निहित है। मानव सभ्यता पर पूँजीवादी उपभोक्ता-संस्कृति के कारण आसन्न पर्यावरणीय संकट के सन्दर्भ में भी कामायनी के विकल्प की प्रासंगिकता जाँच का विषय है।

बीज शब्द :- रहस्यवाद, सभ्यता-समीक्षा, मार्क्सवाद, उत्तर-मार्क्सवाद, समाज, व्यक्ति रूपान्तरण, बाज़ारवाद, उपभोक्तावादी-संस्कृति, प्रकृति, पूँजीवाद, गांधी दर्शन इत्यादि।

मूल आलेख :- सभ्यता विकास के क्रम में मनुष्य प्रकृति से विलग होता गया। आहार संग्रही युग में मानव ने पत्थर के हथियार और आग का आविष्कार किया। कृषि-युग में खेती और पशुपालन के आधार पर मनुष्यता का विकास हुआ। इसी युग में आरम्भिक बड़े नगरों का निर्माण और व्यापार का विस्तार होने लगा। मनुष्य प्रकृति पर विजय प्राप्त करता गया। विकास की इस यात्रा में मनुष्य के लिए प्रकृति 'अन्य' होती गयी। अब वह प्राकृतिक नहीं सामाजिक प्राणी हो गया। आधुनिक युग में 17वीं से 19वीं शताब्दी के बीच हुए औद्योगिक विकास और तद्जन्य पूँजीवादी विश्व-व्यवस्था ने मानव और प्रकृति के इस विलगाव को और गहन कर दिया। सभ्यता-विकास और विलगाव की यह परिघटना किसी एक दिन या युग विशेष की नहीं बल्कि सदियों-सहस्राब्दियों का योगफल है। सभ्यता-निर्माण की प्रक्रिया मनुष्य की अस्तित्वगत आवश्यकताओं से प्रेरित रही है। मनुष्य ने अपनी जैविक-अस्तित्वगत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपनी जिजीविषा से सभ्यता-निर्माण किया लेकिन इस उपक्रम में

स्वार्थ और शक्ति की प्रधानता होती गयी। प्रकृति से विलगाव के बाद सभ्यता के जटिल स्तरों पर मनुष्य आत्म से भी अलग होता गया। कामायनी में सारस्वत-सभ्यता के नियामक मनु का कथन है-

"…क्या सब साधन स्ववश हो चुके?" नहीं अभी मैं रिक्त रहा-देश
बसाया पर उजड़ा है सूना मानस-देश यहाँ।" [1]

यहाँ 'सभ्यता-विकास' के क्रम में मनुष्य के विलगावग्रस्त मानस की ही पीड़ा अभिव्यक्त हुई। "मानवीय अस्तित्व को इसने एकाकी और अकिंचन बना दिया। एक तरफ़ निरंतर सभ्यता की महान प्रगति और विलक्षण उपलब्धियां जारी रहीं, दूसरी ओर मनुष्य हीन होता गया। उसका अंतःकरण संकुचित और विडंबनाओं का कोष बन गया। उसका अस्तित्व पराश्रित, निरर्थक, बेगाना हो गया। प्रकृति से विलग हुए मनुष्य को पूँजीवाद ने पहले समाज से फिर स्वयं से भी विलग कर दिया।"[2]

कामायनी रचते समय प्रसाद के समक्ष युगों का सभ्यता-सत्य तो था ही, तत्कालीन विश्व-व्यवस्था के विषमताग्रस्त चित्र भी थे। पूँजीवादी पद्धति का सभ्यता-विकास साम्राज्यवाद में परिणत हुआ। इस सभ्यता के केन्द्र में प्रकृति और मनुष्य का दोहन व हिंसा है। "प्रसाद जी की आँखों के सामने पूँजीवाद की निर्माणात्मक कार्यावली तो थी ही, उसके साथ ही उसकी विनाशशील प्रवृत्तियों का जीता जागता नज़ारा, प्रथम महायुद्ध और उसके उपरान्त नयी अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति थी।"[3] इससे उपजी विषमता और शोषण का दृश्य श्रद्धा के कथनों में परिलक्षित हुआ है-

" विश्व विपुल-आतंक-त्रस्त है अपने ताप विषम-से,
फैल रही है घनी नीलिमा अंतर्दाह परम- से।…
जगती-तल का सारा क्रंदन यह विषमयी विषमता,
चुभने वाला अंतरंग छल अति दारुण निर्ममता ...
यह विराग संबंध हृदय का कैसी यह मानवता
प्राणी को प्राणी के प्रति बस बची रही निर्ममता
जीवन का संतोष अन्य का रोदन बन हँसता क्यों?
एक - एक विश्राम प्रगति को परिकर सा कसता क्यों?" [4]

श्रद्धा के ये कथन मनु द्वारा की जा रही जीव-हिंसा के रूपक से तत्कालीन विश्व की अराजक दशा की काव्याभिव्यक्ति है। बीसवीं सदी के उस दौर में प्रथम विश्वयुद्ध घट चुका था और अति-राष्ट्रवाद की परिणति द्वितीय विश्वयुद्ध में होने वाली थी। " प्रसादजी के सम्मुख अगोचर रूप में वास्तविक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक-राजनीतिक तथा व्यक्तिगत जीवन क्षेत्र में लोभ-लालच, अहंकार, मुनाफ़ा, शोषण, अत्याचार, दमन और लूट-खसोट का विभ्राट खड़ा हुआ है, और उसके कारण आपस में एक-दूसरे के लिए हिकारत, घृणा, बदले की भावना, आतंक, भय, मिथ्या का आश्रय, दमन और रक्तपात के विशाल दृश्य दिखायी दे रहे हैं। उनके सम्बन्ध में श्रद्धा की क्षोभपूर्ण संवेदनात्मक जिज्ञासा उपर्युक्त वाक्यों में प्रकट हुई है। "[5]

प्रसाद ने कामायनी में विश्व की विषमताग्रस्त-अराजक दशा का कारण मानव की अतिसंग्रही वृत्ति, उपभोगवाद और अति स्पर्धा को माना है। उन्होंने इन्हीं प्रवृत्तियों की आलोचना और प्रतिकार किया क्योंकि मानवीय-प्रवृत्तियों का समुच्चय ही सभ्यता के रूप में संघनित होता है। इसलिए सभ्यता में परिवर्तन के लिए उसकी घटक वृत्तियों में रूपान्तरण आवश्यक है। शोषण पर टिकी सभ्यता समाज में श्रम, समता, स्वतन्त्रता और व्यक्ति सम्बन्धों में प्रेम का हनन करती है। कामायनी में मनु का चरित्र सभ्यता के इन्हीं लक्षणों का प्रतिरूप है। समाज, प्रकृति व व्यक्ति-सम्बन्धों में विलगावग्रस्त और अतिशय उपभोग के आकांक्षी मनु के कथन हैं-

" तुच्छ नहीं है अपना सुख भी श्रद्धे वह भी कुछ है,

दो दिन के इस जीवन का तो वही चरम सब कुछ है।"[6]

"तुम कहती हो विश्व एक लय है, मैं उसमें

लीन हो चलूँ? किन्तु धरा है क्या सुख इसमें। "[7]

मनु जैसा विभक्त-विलग चरित्र सामाजिक व व्यक्तिगत सम्बन्धों में आत्मग्रस्त व्यवहार करता है। वह व्यक्ति-सम्बन्धों में श्रद्धा-परित्याग करता है और समाज सम्बन्धों में सारस्वत-सभ्यता के सर्वाधिकारवादी नियामक की भाँति अतिचारी व्यवहार करता है। मनु प्रसाद जी द्वारा सृजित चरित्र है। इस चरित्र के निर्माण का कच्चा माल बाह्य जीवन से उन्होंने प्राप्त किया था। उनका स्वयं का जीवन भी इस व्यापक बाह्य जीवन का ही एक अंश था, उनकी 'अंतःवृत्तियों' तथा 'प्रवृत्ति-मंडल' की छाया मनु के चरित्र पर पड़ी होगी। पर वह सारतः पूँजीवादी-सामंती सभ्यता का व्यापक प्रारूप है। ऐसा इसलिए है क्योंकि यह सभ्यता इसी तरह के मनुष्य ढालती है। आत्मग्रस्त, आत्ममुग्ध ऐसे ही मनुष्यों की बहुसंख्या इस व्यवस्था को चलाती है, गति देती है और उसकी दीर्घजीविता को बनाए रखती है। यदि मनुष्य में मनु के विपरीत गुण अर्थात् विषयपरकता, वस्तुनिष्ठता, तार्किकता आदि व्यापक रूप से शिक्षा-व्यवस्था, जनसंचार, सामाजिक संस्कार, परिवर्तनकारी प्रचार आदि के ज़रिए विकसित होकर व्यापक हो जाए तो न सामंतवादी सामाजिक ढांचा बचेगा न पूँजीवादी आर्थिक-राजनीतिक प्रणाली...। मानव सभ्यता कोई अमूर्त चीज़ नहीं है, यह अपनी इकाई 'व्यक्तियों' का ही योगफल है। अतः 'मनु-समस्या' इस सभ्यता की समस्या है। मुक्तिबोध, 'मनु-समस्या' को सभ्यता-संकट का प्रमुख कारण मानते हैं - "मनु-समस्या इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि उसके प्रतिबिंब हमें समाज में सर्वत्र दिखाई देते हैं।"[8]

मनु की आत्मग्रस्त प्रवृत्तियों के रेखांकन व रूपान्तरण की कोशिश कामायनी में आद्यन्त विद्यमान है। उपभोगवादी और आत्मकेन्द्रित देव-सभ्यता का परिणाम प्रलय हुआ। मनु ने 'चिन्ता' सर्ग में देव सभ्यता के पतन का कारण इन्हीं प्रवृत्तियों को मानते हुए कहा है, "अरे अचानक हुई इसी से कड़ी आपदाओं की वृष्टि।" आगे 'कर्म' सर्ग में भी मनु के भीतर इन्हीं देव-प्रवृत्तियों के उभार को श्रद्धा ने शमित करना चाहा है। श्रद्धा, मनु को प्रकृति, समाज व व्यक्ति-सम्बन्धों में समन्वित होने का मार्ग दिखाती है जिससे व्यक्ति का आत्मविस्तार हो सकता है-

"…अपने में सब कुछ भर कैसे व्यक्ति विकास करेगा,

यह एकांत स्वार्थ भीषण है अपना नाश करेगा।

औरों को हँसता देखो मनु—हँसो और सुख पाओ,

अपने सुख को विस्तृत कर लो सब को सुखी बनाओ!"[9]

श्रद्धा, मनु के आत्मविकास और नवीन जीवन-क्षेत्रों के अन्वेषण की मानवीय जिज्ञासा का संकुचन नहीं चाहती। श्रद्धा सभ्यता-निर्माण में लगी है, मनु उससे संलग्न नहीं हैं। अपनी आत्ममुग्धता में मनु, श्रद्धा के प्रयासों की आत्मकेंद्रित आलोचना करते हुए पलायन कर जाते हैं। आगे सारस्वत-नगर में भी मनु सभ्यता-निर्माता नहीं, मात्र असंपृक्त 'सभ्यता-नियामक' हैं। सभ्यता निर्माता तो प्रजा है। मनु आत्मकेन्द्रित प्रवृत्ति से संचालित सर्वाधिकारवादी अतिचारी शासक ही हो पाते हैं। यह स्थिति सभ्यता के समता मूलक विकास के विरुद्ध है। "जीवन निर्माण का स्वप्न मनु का स्वप्न नहीं है।"[10] इड़ा और सारस्वत-प्रजा सभ्यता-निर्माण में बाधक शक्तियों के प्रतीक मनु का प्रतिरोध करती है। इड़ा के स्वर में सर्वाधिकारवाद का प्रत्याख्यान है-

"किंतु नियामक नियम न माने,

तो फिर सब कुछ न निश्चय जाने।"...

"मनु, सब शासन स्वत्त्व तुम्हारा सतत निबाहें,

तुष्टि, चेतना का क्षण अपना अन्य न चाहें

आह प्रजापति यह न हुआ है, कभी न होगा,
निर्वाधित अधिकार आज तक किसने भोगा?"[11]

"इड़ा एक चरित्र के साथ-साथ प्रतीक भी है–आधुनिक पूँजीवादी सभ्यता के विज्ञानमय बौद्धिक स्वरूप का। प्रसाद मानव की विज्ञान-यात्रा का निषेध नहीं कर रहे, पर यह उनकी भविष्य-दृष्टि थी कि मात्र वर्ग-वैषम्य सामाजिक-विडंबना ही नहीं, उपभोक्तावाद और यांत्रिक-सभ्यता द्वारा उत्पादन के विस्तार से नष्ट होती पृथ्वी के प्रति संवेदनशीलता को भी उन्होंने स्वर दिया। हम भोगवाद कहें या उपभोक्तावाद, यांत्रिकी के विस्तार, उत्पादन के स्वरूप (समाजवादी हो या पूँजीवादी), पृथ्वी का क्षरण, पृथ्वी के परिमंडल का क्षरण अब जिस चरम स्थिति पर पहुंच चुका है, वह आगामी समय में सर्वोपरि विचारणीय विषय है।"[12]

'संघर्ष सर्ग' में आत्मघाती मूल्य-आधारों पर निर्मित सारस्वत सभ्यता का ध्वंस होता है। इड़ा सर्ग में 'काम का सभ्यता' के इन्हीं विसंगत आधारों की त्रासद परिणति की पूर्वकल्पना है। भारतीय वाङ्गमय में शाप एक काव्यरूढ़ि है। किसी साहित्यिक रचना में शाप के द्वारा रचनाकार कार्य-कारण परिणाम न्याय से किन्हीं वस्तुस्थिति की परिणति के विषय में पूर्व कथन प्रस्तुत करता है। यदि रचनाकार अपनी विश्वस्थिति के यथार्थ ज्ञान व अनुभूतियों से संपृक्त हो तो इस पूर्वकथन में सामयिक विश्वबोध अभिव्यक्त हो सकता है। 'काम' के अभिशाप में नर-नारी सम्बंधों, समाज और राज्य की विद्रूप स्थितियों के कारक व उनके भयावह परिणाम अंकित हैं। यह मनु द्वारा पोषित पतनशील मूल्यों पर आधारित सभ्यता के आत्मध्वंसक फलन की ज्ञान-संवेदनात्मकता व्याख्या है। इसका सम्बन्ध व्यक्ति के मनोविज्ञान और अन्तर्विश्व से भी है। "काम का शाप वस्तुतः शाप कम सभ्यता का यथार्थ अधिक है। यह मानव सभ्यता का वह यथार्थ है, जो 20वीं सदी में जटिलतर होते गए मानव-मन और जीवन का सारांश लिए हुए है। ...काम का शाप कवि की ऐसी उद्भावना है, जो उसकी युग दृष्टि और संवेदना के प्रसारात्मक रूप की गवाही देती है। इस शाप का कथ्य और इस कथ्य का विस्तार जीवन-यथार्थ के जटिलतम विस्तारों के प्रति कवि की काव्यात्मक प्रतिक्रिया है।"[13]

प्रसाद कृत सभ्यता-समीक्षा का सघनतम रूप काम के अभिशाप में अभिव्यक्त है। यह न सिर्फ़ सभ्यता के मात्र एक चरण 'पूँजीवाद' की बल्कि मनुष्य के दीर्घ साभ्यतिक इतिहास की भी आलोचना है। इसका मूल आधार व उद्देश्य मानव-प्रवृत्तियों की आलोचना और परिष्कार है। "प्रसाद की इस सभ्यता-समीक्षा का रूप मुख्यतः मनोवैज्ञानिक है, मगर यह उन आधारों से अनिवार्य रूप से संबद्ध है, जिन पर सभ्यताओं की प्रगति व निर्माण अवलंबित होता है। तकनीक, विज्ञान, श्रम, पूँजी, उत्पादन प्रक्रिया, वितरण, अतिरिक्त-मूल्य, निवेश, उपभोग आदि वे तत्त्व हैं, जो मानव-विकास के हर दौर में किसी-न-किसी रूप में पाए जाते हैं। वर्तमान पूँजीवादी-सभ्यता में विकसित होकर इन तत्त्वों ने विराट रूप धारण कर लिया है। सदियों की विकास-परंपरा में इन सभी तत्त्वों का मनुष्य की अंतः प्रेरणा व आंतरिक जीवन से जो संबंध रहा है, उसने ही मानव-मनोविज्ञान का निर्माण किया है। अब पूँजीवाद के इस चरम दौर में यह मानव-मनोविज्ञान का निर्धारक तत्त्व है। काम के शाप में मानव-प्रगति से उत्पन्न द्वंद्वों का मानव-मनोविज्ञान से संबंध दिखाकर प्रसाद ने इसे बदलने की ज़रूरत और इस परिवर्तन की संभावना का चित्र खींचा है, ...यह चित्र हमारा अपना ही युग है। इसी कारण प्रसाद की सभ्यता-समीक्षा और उसमें निहत मनोवैज्ञानिक तत्त्व उनके तीव्र युग-बोध का परिणाम हैं।"[14]

निष्कर्ष :- इस तरह कामायनी में सभ्यता-समीक्षा का स्वरूप स्पष्ट है। कामायनी की सभ्यता-समीक्षा का मूल आधार मनोवैज्ञानिक है। इसलिए इसमें सभ्यता-समस्या का निदान व समाधान भी मनोवैज्ञानिक स्तर पर प्रस्तुत हुआ है। कामायनी में सभ्यता-संकट का हल सभ्यता-रूपान्तरण के द्वारा हुआ है। सभ्यता में रूपान्तरण समाज की इकाई 'व्यक्ति' की प्रवृत्तियों में रूपान्तरण के द्वारा घटित होता है। रूपान्तरण का यह स्वरूप किसी कृत्रिम और आरोपित व्यवस्थागत परिवर्तन से अधिक स्थाई होता है। कामायनी में जगह-जगह उपस्थित रहस्यवाद यथार्थ से

सम्बद्ध है। यह ब्रह्माण्ड और प्रकृति की विराटता के प्रति जिज्ञासा के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। इसका उद्देश्य मनुष्य के अस्तित्व और प्रकृति से उसके अनिवार्य सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में सभ्यता के संकटों को सम्बोधित करना है। जयशंकर प्रसाद ने सभ्यता-विकास को प्रकृति-संवेदना से समन्वित करने की आवयश्कता रेखांकित की है। आज मानवता के समक्ष विकास की यात्रा में प्रकृति के अतिशय दोहन से होने वाले आत्मविध्वंसक परिणाम स्पष्ट हैं। कामायनी में इस संकट के संज्ञान से ही प्रकृति-साहचर्य का दर्शन चित्रित है। कामायनी के समाधान वर्तमान सभ्यता विमर्शों के उन सन्दर्भों में प्रासंगिक हैं जिनमें ये प्रकृति, समाज और व्यक्ति-सम्बन्धों की चिन्ताओं को सम्बोधित हैं। हमें कामायनी की सभ्यता-समीक्षा और विकल्प में वे सूत्र प्राप्त हो सकते हैं जिनके द्वारा सभ्यता के एकायामी निर्माण के दुष्परिणामों से बचा जा सकता है। इन निर्माणसूत्रों से एक समग्र सभ्यता के विकास का प्रयास संसाधित हो सकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. गजानन माधव मुक्तिबोध : कामायनी : एक पुनर्विचार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, बारहवाँ संस्करण, 2015, पृ.- 63
2. जयशंकर प्रसाद : कामायनी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2017, पृ.- 38-39
3. गजानन माधव मुक्तिबोध : कामायनी : एक पुनर्विचार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, बारहवाँ संस्करण, 2015, पृ.- 80
4. जयशंकर प्रसाद : कामायनी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2017, पृ.- 41
5. वही, पृ.- 74
6. 6.आलोक श्रीवास्तव : नील लोहित ज्वाल जीवन की: महाकवि जयशंकर प्रसाद की काव्य यात्रा-2, संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2022, पृ.- 497
7. गजानन माधव मुक्तिबोध : कामायनी : एक पुनर्विचार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, बारहवाँ संस्करण, 2015, पृ.- 56
8. जयशंकर प्रसाद : कामायनी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2017, पृ.- 42
9. गजानन माधव मुक्तिबोध : कामायनी : एक पुनर्विचार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, बारहवाँ संस्करण, 2015, पृ.- 48
10. जयशंकर प्रसाद : कामायनी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2017, पृ.- 72
11. आलोक श्रीवास्तव : नील लोहित ज्वाल जीवन की: महाकवि जयशंकर प्रसाद की काव्य यात्रा-2, संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2022, पृ.- 223-224
12. वही, पृ.- 374
13. वही, पृ.- 528
14. अच्युतानंद मिश्र : बाज़ार के अरण्य में: उत्तर मार्क्सवादी चिंतन पर केंद्रित, आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा), 2018, पृ.- 119

पत्राचार का पता – सा 10/21, के-5, बुद्धा सिटी कॉलोनी, गंज सारनाथ, वाराणसी, उत्तर प्रदेश - 221007

मो. नं. (WhatsApp) – 9453641788 Email- nilamhindi@bhu.ac.in

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 245-249
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

वैदिकोपनिषद्शास्त्रदर्शनेषु धर्मस्य दार्शनिकाधारभूतिः

विनीत कुमार शुक्ल
शोध-छात्र,
वेद विभाग – सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी

प्रस्तावना
भारतीयसंस्कृतेः अखण्ड-परम्परायां 'धर्म' इति शब्दः केवलं कश्चन सम्प्रदायः वा मतविशेषः नास्ति, अपितु सः विश्वब्रह्माण्डस्य धारणाशक्तिः वर्तते। 'धियते लोकः अनेन इति धर्मः ' अथवा 'धारणाद्धर्ममित्याहुः ' इति महावाक्यैः स्पष्टं भवति यत् धर्मः सः शाश्वतः नियमः अस्ति यः समष्टिं व्यष्टिं च सन्तुलने स्थापयति। अस्य धर्मस्य दार्शनिकः आधारः वेदेषु बीजपेयवत् निहितः अस्ति, उपनिषत्सु अङ्कुरितः जातः,तथा च षड्दर्शनेषु महावृक्षवत् फलितः अभवत्। वैदिककाले धर्मस्य आद्यं स्वरूपं 'ऋत' इति तत्त्वे दृश्यते। 'ऋत' नाम सा वैश्विकव्यवस्था या सूर्याचन्द्रमसौ स्वमार्गे परिचालयति। वेदेषु धर्मः न केवलं वैयक्तिकं कर्तव्यं, अपितु सः यज्ञीयभावनया सह सम्बद्धः अस्ति। 'यज्ञो वै धर्मः ' इति सिद्धान्तानुसारं सृष्टिप्रक्रियायां स्वकीयं योगदानमेव धर्मस्य प्राथमिकं स्वरूपम् आसीत्। मन्त्राणां गहनचिन्तनेन ज्ञायते यत् वैदिककालस्य धर्मः आधिभौतिकसमृद्धेः आध्यात्मिकशान्तेः च मध्यस्थः सेतुः आसीत्। यदा वयं उपनिषत्सु धर्मस्य दार्शनिकं पक्षं पश्यामः, तदा धर्मः 'कर्मकाण्डात्' निर्गत्य 'आत्मतत्त्वं' प्रति धावति। उपनिषदः घोषयन्ति यत् धर्मस्य परमलक्ष्यं 'ब्रह्मज्ञानम्'अस्ति। अत्र धर्मः 'श्रेय'तथा 'प्रेय'इति द्वयोः मार्गयोः विवेकः अस्ति। कठोपनिषदि नचिकेतोपाख्यानेन स्पष्टं भवति यत् शाश्वतधर्मस्य आधारः त्यागः वैराग्यं च वर्तते। उपनिषत्सु धर्मः 'सत्यम्'इति पदेन सह एकीकृतः भवति 'यो वै स धर्मः सत्यं वै तत्' (बृहदारण्यकोपनिषद्)। अर्थात् धर्मस्य दार्शनिकः आधारः सत्यस्य अन्वेषणम् अस्ति। दर्शनशास्त्रेषु धर्मस्य विश्लेषणं तर्कस्य तुलायां कृतम्। मीमांसादर्शनं 'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः ' इति ब्रुवन् वेदानां विधिकथनं धर्मस्य आधारं मन्यते, यदा तु वैशेषिकदर्शनं 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः ' इति सूत्रेण धर्मस्य लौकिक-पारलौकिक-उपयोगितां प्रतिपादयति। साङ्ख्य-योग-वेदान्तदर्शनेषु धर्मः अन्तःकरणस्य शुद्धिः तथा च मोक्षप्राप्तेः सोपानत्वेन स्वीकृतः। अतः, वैदिक-उपनिषद्-दर्शनप्रवाहेषु धर्मस्य दार्शनिकः आधारः कश्चन स्थिरः सिद्धान्तः न, अपितु सः एकः प्रवहमानः निर्झरः अस्ति, यः मनुष्यं पशुत्वात् देवत्वं प्रति नेतुं समर्थः। सः आधारः अस्ति आत्मनः विस्तारः, विश्वस्य सेवा, सत्यस्य साक्षात्कारश्च। अस्मिन् शोधपत्रे एतस्यैव त्रिविधस्य आधारस्य (वैदिक, उपनिषदिक, दार्शनिक) तुलनात्मकं विवेचनं प्रवाहात्मकरीत्या क्रियते।

मुख्यशब्दाः - धर्म, ऋत, ब्रह्मविद्या, दर्शन, मोक्ष, वैदिकपरम्परा

मुख्य विषयवस्तु-

वैदिकसंहितासु धर्मस्य दार्शनिकाधारभूतिः

वैदिकवाङ्मये धर्मस्य परिकल्पना कस्यचित् सम्प्रदायस्य परिधौ न तिष्ठति, अपितु सा ब्रह्माण्डस्य शाश्वतनियमेन सह सम्बद्धा अस्ति। वेदेषु धर्मस्य आदिमः दार्शनिकः आधारः**'ऋत[1]'**इति तत्त्वे दृश्यते। ऋतं नाम सा वैश्विकी व्यवस्था (Cosmic Order), या जगतः प्रत्येकं शक्तिं सन्तुलने धारयति। ऋग्वेदस्य ऋषिः उद्घोषयति यत् सूर्याचन्द्रमसौ, अग्निः, वायुः च सर्वे ऋतस्य अनुशासने एव स्वकार्यं कुर्वन्ति। अयं ऋत-नियमः यदा मानवीय-आचरणे अवतरति, तदा स एव**'धर्म'**इति संज्ञां लभते। अतः वैदिकदृष्ट्या धर्मस्य प्रथमः आधारः**'सत्यम्'**अस्ति। अथर्ववेदे स्पष्टमुक्तं यत् सत्यं, बृहत् ऋतं, दीक्षा, तपः च इमां पृथिवीं धारयन्ति **'सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति '** (अथर्व. १२.१.१)। अत्र 'धारणात् धर्मः' इति दार्शनिकं बीजं स्फुटं भवति।धर्मस्य द्वितीयः अनिवार्यः आधारः**'यज्ञः'**अस्ति। वैदिकपरम्परायां यज्ञः न केवलं हविःप्रक्षेपः, अपितु सः एकः महान् दार्शनिकः सिद्धान्तः अस्ति, यः मनुष्यं समष्ट्या सह संयोजयति। **'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म '**इति श्रुत्यनुसारं यज्ञः सृष्टेः नाभिः वर्तते। यज्ञस्य दार्शनिकः पक्षः अस्ति'विनिमयः' (Reciprocity)। प्रकृतितः अस्माभिः यत् किमपि प्राप्तं, तत् कृतज्ञतापूर्वकं पुनरपि प्रकृतये अर्पणमेव धर्मः। अयं यज्ञभावः मनुष्यं स्वार्थात् निष्कास्य परोपकारे स्थापयति, येन सामाजिकस्य राष्ट्रियस्य च सन्तुलनस्य रक्षा भवति।वैदिकसंहितासु धर्मस्य तृतीयः दार्शनिकः आधारः**'वरुणस्य पाशः'**अथवा**'नैतिकता'**अस्ति। वरुणदेवः ऋतस्य गोपा (रक्षकः) मन्यते। सः पश्यति यत् किमपि तत्त्वं ऋतमार्गात् विचलितं तु न भवति। अत्र धर्मस्य दार्शनिकः आधारः 'अन्तःकरणस्य शुद्धिः' अस्ति। पापं नाम ऋतस्य उल्लङ्घनम्, पुण्यं च ऋतस्य पोषणम्। एवं प्रकारेण वैदिकधर्मः मनुष्यं प्रकृत्या सह तादात्म्यं स्थापयितुं प्रेरयति।वेदेषु धर्मस्य दार्शनिकाधारः**'एकात्मबोधः'**अपि अस्ति। यदा ऋषिः वदति **'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'** तदा धर्मस्य आधारः कश्चन भेदमार्गः न भूत्वा समन्वयमन्त्रात्मकः भवति। धर्मः सः सेतुः अस्ति यः व्यष्टि-चेतनां वैश्विक-चेतनायाःविराट्-रूपेण सह एकीकृतं करोति। अतः वेदेषु धर्मः न तु कश्चन आरोपितः नियमः, अपितु सः तु प्रकृतेः, सत्यस्य, न्यायस्य च सजीवः साक्षात्कारः अस्ति।**कृण्वन्तो विश्वमार्यम्[2]।**

उपनिषत्सु धर्मस्य दार्शनिकाधारः

उपनिषत्सु धर्मस्य दार्शनिकाधारः संहितागतबाह्यकर्मकाण्डात् समुत्थाय-**'आत्मविद्यायाः'**गम्भीरप्रवाहे प्रतिष्ठितः अस्ति। अत्र धर्मः न कश्चन रूढिगतः नियमः, अपितु सः जगतः परमं सत्यं वर्तते। बृहदारण्यकोपनिषदि धर्मस्य दार्शनिकं स्वरूपं स्पष्टयन् ऋषिः घोषयति **'यो वै स धर्मः सत्यं वै तत्, तस्मात्सत्यं वदन्तमाहुर्धर्मं वदतीति, धर्मं वा वदन्तं सत्यं वदतीति '** (बृहदारण्यक १धर्मयोः मध्ये किमपि द्वैतं -। अस्य तात्पर्यमिदं यत् सत्य(१४.४. नास्ति; सत्यं यदि ब्रह्माण्डस्य 'स्थितिः'अस्ति, तर्हि धर्मः तस्य 'गतिः'वर्तते। धर्मः सा शक्तिः अस्ति, यया निर्बलोऽपि बलवन्तं जेतुं शक्नोति, यतोहि धर्मस्य आधारः स्वयं 'ब्रह्म'विद्यते। समस्तउपनिषदां चिन्तने धर्मस्य - द्वितीयः महान् आधारः**'विवेकः'**अस्ति। कठोपनिषदि आचार्ययमः नचिकेताय कथयति यत् धर्मस्य मार्गः**'श्रेय'** (परमकल्याणम्तथा (**'प्रेय'** (इन्द्रियसुखम्इति द्वयोः मार (्गयोः निरन्तरं चयने निहितः अस्ति। अत्र धर्मस्य दार्शनिकाधारः अस्ति अनित्यं परित्यज्य नित्यस्य आत्मतत्त्वस्य अन्वेषणम्। मुण्डकोपनिषद् प्रतिपादयति यत् ये धर्माः केवलं कर्मकाण्डमात्रे सीमिताः सन्ति, ते 'अदृढाः प्लवाः' (जर्जरनौकाःइव सन्ति (, येन संसारसागरस्य तरणं न सम्भवति। अतः उपनिषत्सु धर्मस्य आधारः**'चित्तशुद्धिः'**तथा**'अध्यात्मसाधना-'**एव अस्ति। ईशावास्योपनिषदि धर्मस्य एकः अनुपमः दार्शनिकाधारः दृश्यते **'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्**

---

[1]ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः॥

[2]यजुर्वेद

‘। अत्र धर्मस्य मूलं ‘त्यागपूर्वकउपभोगः-’अस्ति। यदा मनुष्यः इदं जानाति यत् **‘ईशावास्यमिदं सर्वम्** ‘अर्थात् सर्वत्र ईश्वरस्यैव वासः अस्ति, तदा तस्य मनसि ‘ममत्वस्य’विनाशः भवति। अत्र धर्मस्य दार्शनिकाधारः**‘अहिंसा’**तथा**‘अद्वैतबोधः’**अस्ति; यतः यदा कोऽपि ‘अन्यः’नास्ति, तदा हिंसायाः द्वेषस्य च आधारः एव विनश्यति। छान्दोग्योपनिषदि**‘पञ्चाग्निविद्या-’**माध्यमेन जीवस्य जन्मचक्रं वर्णितम्-मरण-, यस्य दार्शनिकः निष्कर्षः अयं यत् सम्पूर्णं जीवनम् एकः ‘यज्ञः’अस्ति, तत्र संयमः एव धर्मस्य आधारः। उपनिषत्सु धर्मस्य परमः दार्शनिकाधारः**‘आत्मविस्तारः’**अस्ति। तैत्तिरीयोपनिषदः शिक्षा **‘सत्यं वद, धर्मं चर** ‘इत्यस्याः गूढार्थः अयं यत् स्वकीयेन आचरणेन तस्य ‘ऋत’नियमस्य पालनं करणीयं यः अस्मान्**‘ब्रह्मभावं’**प्रति नयति। उपनिषदां मते धर्मः कश्चन स्वर्गादिलोकानां प्राप्तिसाधनं मात्रं न-, अपितु सः तु**‘अविद्या’**विनाशस्य, **‘असतो मा सद्गमय’**इति यात्रया सह अमृतत्वप्राप्तेः सोप-ानमस्ति।

पुराणशास्त्रेषु धर्मस्य दार्शनिकाधारभूतिः

पुराणशास्त्रेषु धर्मस्य स्वरूपं वेदानां गूढतथ्येभ्यः निर्गत्य**‘सर्वजनहिताय’**सरलीकृतं जातम्। अत्र धर्मस्य दार्शनिकः आधारः न केवलं शुष्कतर्कः-, अपितु**‘भक्तिः’**एवं**‘परोपकारः’**अस्ति। पुराणानि उद्घोषयन्ति यत् धर्मस्य मूलं भगवतः नारायणस्य स्वरूपमस्ति **‘धर्मो नारायणः साक्षात्** ‘। अस्य दार्शनिकः अर्थः अयं यत् यत् किमपि लोकहितकरं कर्म अस्ति, तत् भगवतः पूजा एव। अत्र धर्मस्य आधारः**‘भागवतधर्मः-’**अस्ति, यत्र व्यक्तिः स्वकीयं सर्वस्वं ईश्वराय समर्प्य निष्कामभावेन कर्तव्यपालनं करोति।

पुराणेषु धर्मस्य दार्शनिकः आधारः अष्टादशसु पुराणेषु व्यासदेवेन केवलेन एकेन श्लोकेन स्पष्टीकृतः **‘अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्। परोपकारः पुण्याय पापाय परपीड़नम्॥** ‘। अत्र धर्मस्य दार्शनिकाधारः**‘सहानुभूतिः’**तथा**‘लोकसङ्ग्रहः’**अस्ति। यः अन्येषां दुःखं हरति, स एव धार्मिकः; यश्च अन्यान् पीडयति, सः अधार्मिकः। अत्र धर्मः क्रियात्मकः)Active) अस्ति, न तु केवलं सैद्धान्तिकः।**श्रीमद्भागवतपुराणे**धर्मस्य दार्शनिकः आधारः ‘अहैतुकी भक्तिः’ इति रूपेण वर्णितः, यत्र फलेच्छां विना भगवत्प्रीत्यर्थं क्रियमाणं कर्म एव धर्मः अस्ति **‘स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे’**।पुराणशास्त्रेषु धर्मस्य अन्यः प्रमुखः आधारः**‘वर्णाश्रममर्यादा-’**अस्ति, यस्य दार्शनिकः उद्देश्यः सामाजिकं सन्तुलनम् अस्ति। अत्र धर्मः ‘स्वधर्म’ रूपेण प्रतिष्ठितः।**मार्कण्डेयपुराणे**तथा**विष्णुपुराणे**स्पष्टीकृतं यत् स्वकीयेन विहितेन कर्मणा समाजस्य सेवा एव वास्तविकः धर्मः। अत्र धर्मस्य आधारः**‘कर्मयोगः’**अस्ति। अपि च, पुराणेषु धर्मस्य आधारः**‘संस्काराः’**अपि सन्ति, ये मनुष्यस्य पाशविकवृत्तीनां परिशोधनं कृत्वा तं दिव्यं मानवं कुर्वन्ति। पुराणेषु - धर्मस्य दार्शनिकाधारः**‘सहिष्णुता’**तथा**‘सदाचारः’**अस्ति।**पद्मपुराणे**तथा**स्कन्दपुराणे**तीर्थादिव्रतानां चर्चा - अस्ति, किन्तु तेषां मूलउद्देश्यः अन्तःकरणस्य शुद्धिः एव। पुराणानि घोषयन्ति यत् सर्वेषां धर्माणां - सारः**‘अहिंसा’**अस्ति। अतः पुराणशास्त्रेषु धर्मस्य दार्शनिकाधारः अत्यन्तं सरलः किन्तु गम्भीरः अस्ति**‘आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्’**। एष एव दार्शनिकः आधारः मनुष्यं भगवतः समीपम् आनयति।

भारतीयदर्शनशास्त्रेषु धर्मस्य स्वरूपं

भारतीयदर्शनशास्त्रेषु धर्मस्य स्वरूपं न केवलं नैतिकं वर्तते, अपितु तत् परमतार्किकं क्रियात्मकं च अस्ति। अत्र धर्मः**‘जीवननियमः’**इति रूपेण स्वीकृतः।**मीमांसादर्शनस्य**मते धर्मस्य दार्शनिकः आधारः**‘चोदना’** (Vedic Command) अस्ति। महर्षिः जैमिनिः कथयति **‘चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः** ‘। अत्र धर्मस्य तात्पर्यं वेदोक्त-कर्तव्यपालनम् अस्ति। उदाहरणत्वेन, यदा वयं**‘अग्निहोत्रं जुहुयात्’**इति विधिवाक्यं पालयामः, तदा तस्मात् उत्पन्नः**‘अपूर्वः’**अस्मान् फलं प्रति नयति। अतः मीमांसायाः धर्म कॉन्सेप्टः-‘निष्काम-कर्तव्यनिष्ठा’अस्ति।**वैशेषिकदर्शनस्य**दृष्टिः अतीव व्यापिका अस्ति। महर्षिः कणादः धर्मं भौतिकआध्यात्मिकयोः -

सन्तुलनस्य आधारं मन्यते **'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः '**। अत्र धर्मस्य दार्शनिकः आधारः अस्ति यत् येन आचरणेन इहलोके ऐश्वर्यं तथा परलोके मोक्षः लभ्यते, स एव धर्मः। यथा एकः श्रेष्ठः नागरिकः सत्यभाषणेन समाजे विश्वासं प्राप्नोति (अभ्युदयं), अन्ते च स एव सदाचारः तस्य आत्मिक (निःश्रेयसम्) शान्तिं-जनयति।**साङ्ख्ययोगदर्शनयोः**-धर्मस्य आधारः**'अन्तःकरणस्य परिशुद्धिः'**अस्ति। योगदर्शने**'यम-नियमाः'**धर्मस्य दार्शनिकाधाराः सन्ति। अत्र धर्मः बाह्यप्रदर्शनं नास्ति, अपितु सा चित्तस्य एकाग्रता अस्ति। उदाहरणत्वेन, **'अहिंसा'**केवलं शस्त्रपरित्यागः न, अपितु मनसि कस्यापि प्रति द्वेषस्य अभावः। एषा 'अहिंसा'एव सः धर्मः यः योगिनं समाधिं प्रति नयति।**न्यायदर्शनस्य**मते धर्मः**'तत्त्वज्ञानस्य'**अङ्गभूतः अस्ति। महर्षिः गौतमः मन्यते यत् धर्मः सः आचारः अस्ति यः मनुष्यं संशयात् मुक्त्वा निश्चयात्मिकां बुद्धिं प्रयच्छति। अत्र धर्मस्य आधारः**'प्रमाणिकत्वम्'**अस्ति। यथा कश्चन न्यायप्रियः पुरुषः तर्केण सत्यं निश्चित्य अधर्मं त्यजति (पक्षपातं), स एव तस्य धर्मः।**वेदान्तदर्शने**धर्मस्य दार्शनिकः आधारः**'एकात्मभावः'**अस्ति। अद्वैतवेदान्ते धर्मः 'ब्रह्मभावस्य'अभिव्यक्तिः अस्ति। अत्र धर्मस्य श्रेष्ठतमं उदाहरणं**'आत्मौपम्यम्'**अस्ति। यथा 'यथा अहं पीडां न इच्छामि, तथैव अन्येषां पीडा न करणीया। ' इयं**'वसुधैव कुटुम्बकम्'**इति भावना एव वेदान्तस्य धर्मकॉन्सेप्टः।-

अतः वक्तुं शक्यते यत् सर्वेषु दर्शनेषु धर्मः न तु केवलं विश्वासः, अपितु सः तु**'सेतुः'**अस्ति यः मनुष्यं पाशविकप्रकाशं प्रति नयति। धर्मः सः दार्शनिकः आधारः अस्ति यः समाजं -वृत्तीनां अन्धकारात् आध्यात्मिक-व्यवस्थायां, राष्ट्रं च गौरवे धारयति।

निष्कर्षः- वैदिकपुराणानां गम्भीरानुशीलनेन इदमयमायातं यत् धर्मस्य दार्शनिकाधारभूमिः -दर्शन-शास्त्र-उपनिषद्-न कश्चन कालजयी रूढिः, अपितु सा**'शाश्वती जीवनसंस्कृतिः-'**वर्तते। अद्यतने विज्ञानाश्रिते, स्पर्धात्मके, भौतिकतावादि-आधारभूमिः पूर्वमपेक्षया अधिकं प्रासङ्गिकी प्रतिभाति।अद्यतन-युगे च धर्मस्य एषा दार्शनिक-परिदृश्ये यदा राष्ट्रानि परस्परं संघर्षरतानि सन्ति-वैश्विक, तदा वेदानां**'ऋतनियमः-'**तथा**'यज्ञीयभावना-'**एव वैश्विक शान्तेः एकमात्रं समाधानं वर्तते। यः-'यज्ञः'वेदेषु वर्णितः, स एव आधुनिकसन्दर्भे-**'पर्यावरण-सन्तुलनस्य'**तथा**'संसाधनानां न्यायपूर्णवितरणस्य-'**मूलाधारः अस्ति। **'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः '**इति उपनिषदिक सिद्धान्तः अद्यतने-'अतिउपभोगवादि-'समाजे 'सन्तुलितजीवनपद्धतेः-'दार्शनिकं दिग्दर्शनं करोति।दर्शनशास्त्रेषु वर्णितः धर्मस्य**'विवेकपक्षः-'**आधुनिकद्वन्द्वेषु मार्गदर्शकः अस्ति। यदा -मनुष्याय मानसिक-समाजः मूल्यहीनतायाः गर्ते पतति, तदा वैशेषिकस्य**'अभ्युदयनिःश्रेयस-'**सिद्धान्तः भौतिक-उन्नतिं आत्मिक- शान्तिना सह संयोजयति। सांप्रतकाले यदा'धार्मिकअसहिष्णुता-'वर्धते, तदा वेदान्तस्य**'आत्मौपम्य'**दर्शनं तथा च पुराणानां**'परोपकार'**भावना एव 'विश्वबन्धुत्वस्य-'आधारं सुदृढं कर्तुं शक्नोति।

अतः निष्कर्षतः वक्तुं शक्यते यत् धर्मस्य दार्शनिकाधारः कश्चन मृतइतिहासः नास्ति-, अपितु सः तु राष्ट्रस्य समाजस्य च**'चैतन्यप्रवाहः-'**अस्ति। यदि वयं अस्मिन् आधुनिके युगे वैदिकसत्यं-, उपनिषदिकज्ञानं-, दर्शनशास्त्रस्य तर्कं च स्वजीवने अवतारयामः, तर्हि भारतस्य**'विश्वगुरु'**पदस्य संकल्पः नूनं सिद्धः भविष्यति। धर्मः सः शाश्वतः आलोकः अस्ति, यः मनुष्यं संकुचितअहङ्कारातु विमुच्य-**'वसुधैव कुटुम्बकम्'**इति वैश्विक-चेतनायां विलीनीकरणस्य सामर्थ्यं रक्षति।**'स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां, ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।** 'एष एव धर्मस्य परमः दार्शनिकः निष्कर्षः, एषा च तस्य साम्प्रतिकी प्रासङ्गिकता।

सन्दर्भ सूची-ग्रन्थ-

१.**उपाध्याय, बलदेव.**_संस्कृत साहित्य का इतिहास._शारदा संस्थान, वाराणसी, २०१०।

२.**उपाध्याय, बलदेव.**_वैदिक साहित्य और संस्कृति._शारदा संस्थान, वाराणसी, २०१२।

३.**कणाद, महर्षि.**_वैशेषिक.(सहितम्-प्रशस्तपादभाष्य) दर्शनम्_-चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९९८।
४.**गौतम, महर्षि.**_न्याय.(सहितम्-वात्स्यायनभाष्य) दर्शनम्_-चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९८५।
५.**तिलक, बालगङ्गाधर.**_गीता रहस्य._तिलक मन्दिर, पुणे, २०१५।
६.**पतञ्जलि, महर्षि.**_योग.(सहितम्-व्यासभाष्य) सूत्रम्_-भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, १९७४।
७.**बादरायण, महर्षि.**_ब्रह्म.(सहितम्-शाङ्करभाष्य) सूत्रम्_-अच्युत ग्रन्थमाला, वाराणसी, १९६४।
८.**मिश्र, वाचस्पति .(संपादक)**_साङ्ख्य.(व्याख्या-तत्त्वकौमुदी) कारिका_-मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९८३।
९.**राधाकृष्णन, एस.**_भारतीय दर्शन २ और १ भाग))._राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, २००८।
१०.**व्यास, महर्षि .(कृष्णद्वैपायन)**_श्रीमद्भागवतपुराणम् .(सहितम्-टीका-श्रीधरस्वामी)_गीता प्रेस, गोरखपुर, २००८।
११.**व्यास, महर्षि .(कृष्णद्वैपायन)**_विष्णुपुराणम्._सम्पादकश्री मुनीलाल गुप्त :, गीता प्रेस, गोरखपुर, २००१।
१२.**शङ्कराचार्य, आदि.**_ईशावास्योपनिषद् .(सहिता-भाष्य)_गीता प्रेस, गोरखपुर, २०१५।
१३.**शङ्कराचार्य, आदि.**_कठोपनिषद् .(सहिता-भाष्य)_सम्पादकस्वामी गम्भीरानन्द :, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, २००६।
१४.**शङ्कराचार्य, आदि.**_बृहदारण्यकोपनिषद् .(सहिता-भाष्य)_मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९९२।
१५.**शङ्कराचार्य, आदि.**_तैत्तिरीयोपनिषद् .(व्याख्या-शिक्षावल्ली)_गीता प्रेस, गोरखपुर, २०१०।
१६.**शबरस्वामी .(भाष्यकार)**_मीमांसा.(जैमिनि प्रणीत) सूत्रम्_-सम्पादककीथ .बी .ए :, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, १९७४।
१७.**सायणाचार्य .(भाष्यकार)**_ऋग्वेद.(सहिता-वेदार्थप्रकाश-माधवीय) संहिता_-सम्पादकमक्समूलर :, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, १९९५।
१८.**सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर .(सम्पादक)**_अथर्ववेद.(शौनकीय शाखा) संहिता_-स्वाध्याय मण्डल, पारडी, १९६०।
१९.**सरस्वती, दयानन्द.**_सत्यार्थ प्रकाशः._आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, २०१८।
२०.**श्री अरविन्द.**_वेद.(सहित-व्याख्या-सूक्त) रहस्य_-श्री अरविन्द आश्रम, पुदुच्चेरी, १९९८।

Email- ptvineetshukla.pr@gmail.com
संपर्क सूत्र –9936933912

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 April 2026 Page No. : 250-252
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

भारतीय ज्ञान परंपरा और जय भगवान सिंगल के साहित्य में आधुनिक संदर्भ

सुनीता
शोधार्थी, भाषा विभाग (हिंदी),
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

सारांश :
हमारी प्राचीन ज्ञान परंपरा ने व्यक्ति के सर्वांगीण विकास पर ध्यान केंद्रित किया है तथा शिक्षा का स्वरूप व्यावहारिकता को प्राप्त करने के योग्य जीवन के लिए सहायक है। संपूर्ण वैदिक वांग्मय–रामायण, महाभारत, पुराण, स्मृति ग्रंथ, धर्मग्रंथ, दर्शन, काव्य, नाटक व्याकरण तथा ज्योतिषी शास्त्र संस्कृत भाषा में ही उपलब्ध होकर उनकी महिमा को बढ़ाते हैं। जो भारतीय सभ्यता संस्कृति की रक्षा करने में पूर्णतया सिद्ध होती है। सुसंस्कृत ज्ञान से ही संस्कारवाने समाज का निर्माण होता है। संस्कारों से कायिक, वाचिक, मानसिक, पवित्रता के साथ पर्यावरण भी स्वस्थ होता है।
बदलते सामाजिक परिवेश और भारतीय मूल्यों के बीच हमारी शिक्षा व्यवस्था को समावेशी बनाना आवश्यक है। यह समावेशी व्यवस्था भारतीय ज्ञान परंपरा के लिए बिना नहीं फल शक्ति है। क्योंकि एक तरफ तो हम आधुनिकता के और तेजी से अग्रसर है वही दूसरी और हमारी संस्कृति में निहित ज्ञान–विज्ञान परम्परा को भूल रहे हैं। प्राचीन काल की भारतीय ज्ञान परंपराएं और संस्कृति मानवता को प्रोत्साहित करती रही है।पुराणों में भी ज्ञान को अप्रतिम माना गया है। प्राचीन भारतीय ज्ञान विज्ञान की गौरवमयी परंपरा समस्त जगत को आलोकित करने वाली है।
भारतीय ज्ञान विज्ञान की परंपरा की इसी कड़ी में प्रमुख सफल साहित्यकार, समाजसेवी एवं उद्योगपति जय भगवान सिंगला ने अपनी कविताओं, कहानियों, संस्मरण आदि विधाओं का लेखन किया है। इन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज देश धर्म राजनीति अर्थव्यवस्था आदि में व्याप्त भिन्नता, भेदभाव, बुराइयों कुरितियो, आडंबरों शिक्षा व ज्ञान, संस्कृति संरक्षण, प्रेम और विरह, अंधविश्वास, नैतिकता और सामाजिक विसंगतियों का वर्णन किया है। अपनी रचनाओं में नारी की स्थिति व्यावसायिक स्तर पर पारिवारिक समस्याएं, परोपकार भावना का उत्तम वर्णन किया है।
सिंगला जी की कुरुक्षेत्र की प्रसिद्ध संस्था प्रेरणा वृद्ध आश्रम के संस्थापक अध्यक्ष हैं इनको अनेक पुरस्कार और सम्मान भी मिल चुके हैं। ये चावल मिल के मालिक हैं एवं चावल व्यापार में प्रतिष्ठित और ख्याति प्राप्त व्यवसायी है।
मुख्य शब्द : ज्ञान–परंपरा, संस्कृति, सांस्कृतिक मूल्य

प्रस्तावना :–

प्राचीनकाल की भारतीय परंपराएँ और संस्कृति मानवता को प्रोत्साहित करती है। पुराणों में ज्ञान को अप्रितम करती है। पुराणों में ज्ञान को अप्रितम करती है। भारत में तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, वल्लभी, उजजयिनी, काशी आदि विश्व प्रसिद्ध शिक्षा एवं शोध के प्रमुख केन्द्र थे तथा जहाँ कई देशों से शिक्षार्थी ज्ञान अर्जन के लिए आते थे। प्राचीन भारतीय ज्ञान–विज्ञान की गौरवमयी परंपरा समस्त जगत को आलोकित करने वाली है। संस्कृत भाषा में ज्ञान–विज्ञान की महती श्रृंखला है जो वर्तमान वैज्ञानिक जगत के लिए कुतुहल का विषय ही है। जहाँ भारतीय ज्ञान परंपरा, जो वेदों उपनिषदों, पुराणों और अन्य ग्रंथो में समाहित और जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालती है और मानव सभ्यता को आकार देने में महत्वपूर्ण वही है।

प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा की गौरव मयी परंपराः–

भारतीय ज्ञान परंपरा अद्वितीय ज्ञान और प्रज्ञा का प्रतीक है जिसमें ज्ञान और विज्ञान लौकिक और पारलौकिक, कर्म और धर्म, भोग और त्याग का अदभुत समन्वय है। ऋग्वेद के समय से ही शिक्षा प्रणाली जीवन के नैतिक, भौतिक, आध्यात्मिक और बौद्धिक मूल्यों पर केन्द्रित होकर विन्रमता, सच्यता, अनुशासन, आत्मनिर्भरता और सभी के लिए सम्मान जैसे मूल्यों पर जोर देती थी। वेदो में विद्या को मनुष्यता की श्रेष्ठता का आधार स्वीकार किया गया था। शिक्षा प्रणाली ने सीखने और शारीरिक विकास दोनों पर ध्यान केन्द्रित किया। प्राचीन काल की ज्ञान परंपराएँ और प्रथाएँ मानवता को प्रोत्साहित करती थी। पुराण में ज्ञान को अप्रतिम माना गया है।

आधुनिक संदर्भ में भारतीय ज्ञान परंपरा की भूमिका :–

भारत की महान् भूमि ने ज्ञान की अविरल धारा से जगत को सींचा है। भारतीय ज्ञान पंरपरा पुरातन युग में बहुत समृद्ध रही है। भारतीय ज्ञान परंपरा का समृद्ध होने के प्रमाण, आधुनिक युग में प्रचलित ज्ञान और विदेशों में हो रही नवीन खोज जो हमारे ग्रंथो में उल्लिखित है। हजारों वर्षो की दास्ता की जंजीरो में भी हमारी सैकड़ों पीढ़ियों ने पीड़ा सहन करते हुए भी इस ज्ञान को संजो कर रखा। परंतु समय के साथ इसकी उपयोगिता कम होती जा रही है। भारत का ज्ञान गंगा जल के समान पवित्र एवं निर्मल है। अतः भारत के ज्ञान की छाया में पोषित हो विश्व को यह बताने का समय है कि भारत का गुरूत्व अभी कायम है। भारत ने विश्व को अनेक ज्ञान प्रणाली तथा विज्ञान को अनेक प्रकार के आयाम दिए हैं। समय है भारतीय ाान प्रणाली की चिंता और चितंन करने और उसकी उषादेयता को जनमानस तक पहुँचाने के लिए महत्री आवश्यकता है। जयभगवान मिगंला का साहित्य भी ज्ञान पंरपरा की कड़ी के रूप में देखा जा सकता है। उनके साहित्य में राजनीति, धर्म अथव्यवस्था, संस्कृति, रीति–रिवाज, परंपरा, शिक्षा एवं ज्ञान सामाजिक व्यवस्था का वर्णन किया है।

आधुनिक सदंर्भ में भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रांसगिकता :–

भारतीय ज्ञान पंरपरा, जो वैदिक काल से चली आ रही है, आधुनिक सदंर्भ में भी महत्वपूर्ण है। यह दर्शन विज्ञान, कला, संस्कृति और जीवन के विभिन्न पहलुओ पर आधारित है। जो आज भी प्रांसगिक है और विश्व को ज्ञान और मार्ग दर्शन प्रदान करता है।

भारतीय ज्ञान पंरपरा विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास में योगदान कर सकती है, विशेष रूप से पांरपरिक ज्ञान और नवाचार को बढ़ावा देकर कर सकते हैं।

पांरपरिक ज्ञान और कौशल को बढ़ावा देकर, भारतीय ज्ञान परंपरा सामाजिक और आर्थिक विकास में सहायता कर सकते हैं।

हमारी सांस्कृतिक विरासत को भारतीय ज्ञान परंपरा के माध्यम से संरक्षित करने मदद मिल सकती है।

विश्वशांति, सद्भाव को भारतीय ज्ञान परंपरा का मानवतावादी दृष्टिकोण तथा समावेशिता के कारण बढ़ाया जा सकता है।

उपसहारः–

भारतीय ज्ञान परंपरा एक समृद्ध एवं विकसित व बहुमुखी ज्ञान की प्रणाली है। इसे आधुनिक संदर्भ में शामिल करने के कारण ज्ञान, शिक्षा संस्कृति, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास में महत्वपूर्ण उपलब्धि रही है।

संदर्भ सूची :–

1. पण्डित मधुसुदन ओझा, भारत वर्षःद इण्डियन नरेटिव ऐज टोल्ड इन इन्द्रविजसाह रूपा 2017
2. नीतिशतकम
3. सत्यार्थ प्रकाश, किरण प्रकाशन
4. भारतीय ज्ञान प्रणाली : "अवधारणाएँ और अनुप्रयोग"

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/1 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. गीता शमार्

असिस्टेंट प्रोफेसर-विभागाध्यक्ष-संगीत विभाग

जैन कन्या पाठशाला (स्नातकोत्तर) महाविद्यालय, मुजफ्फनगर

for the paper titled,

पारंपरिक और डिजिटल संगीत का संगम

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 11-14

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/2

https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. जगदीप सिंह

मानव मंगल शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय संगरिया

for the paper titled,

बी.एड व डी.एल.एड के परिक्षणाथियों की अध्यापन व्यवसाय के प्रति अभिवृति तथा बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 15-19

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/3 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. सांटी जोसफ ,

सह आचार्या ,

हिंदी विभाग , संत अलोशियस महाविद्यालय,एडत्वा,आलप्पुषा ,

केरल। पिन : 689 573

for the paper titled,

पद्मश्री के. जे. येसुदास और हिंदी सिनेमा में उनके अनमोल योगदान

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 20-23

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com   Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/4   https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

मोनिका

सहायक आचार्य (हिंदी),

बी०के०डी० डिग्री कॉलेज फॉर वुमन पांवटा साहिब, जिला सिरमौर,हिमाचल प्रदेश

for the paper titled,

शिवानी के उपन्यासों में नारी की सामाजिक अस्मिता और आत्मनिणय़

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 24-27

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/5 **https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949**

Certificate of Publication

is awarded to

अभिषेक कुमार

शोधार्थी ,

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

for the paper titled,

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यास भागोंवाली में सामाजिक चेतना : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 28-32

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/6 **https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949**

Certificate of Publication

is awarded to

Miss Nivedita Singh

PhD.Scholar , ID – 24PHBS104

Department Of Business Studiess ,

Joseph School of Business Studies and Commerce ,

Sam Higginbottom University of Agriculture Technology and Science ,

for the paper titled,

Impact Of Skill Development Programs On MSME Productivity And Entrepreneurship

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 33-37

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/7 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

मोनिका

पीएच डी० शोधार्थी,

हिन्दी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय,चंड़ीगढ़।

for the paper titled,

राजेन्द्र टोकी का काव्य-आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 38-41

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/8 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

डा. प्रकाश नारायण सिंह चैहान
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी
कमला स्मृति महाविद्यालय सीधी (म.प्र.)
डा. सुरेन्द्र बहादुर सिंह चैहान
सेवा नि. प्राध्यापक, हिन्दी
शास. कन्या महाविद्यालय सीधी (म.प्र.)

for the paper titled,

हिन्दी साहित्य में प्रयुक्त 'भदेसपन' का स्वरूप

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 42-44

9 772395 711007

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/9 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

श्रीमती किरण कुमारी,
शोधार्थी,
हिन्दी विभाग, पंडित दीनदयाल उपाध्याय शेखावटी विश्वविद्यालय, सीकर(राज.)।
डॉ. हंसराज चौहान
शोध निर्देशक,
सह आचार्य, हिन्दी विभाग, राजकीय कन्या महाविद्यालय, होंद, सीकर (राज.)।

for the paper titled,

शेखावटी नाथ साहित्य में गुरु- शिष्य सम्बन्धों का विश्लेषण, विशेष संदभर्- श्रद्धानाथ महाराज

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 45-48

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/10 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Sanjeev Vijay

Associate Professor,

Education Department, Jagannath University, Jaipur

Prof. (Dr.) Ankush Sharma

Head,

Education Department, Jagannath University, Jaipur

for the paper titled,

Innovation for higher education

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 49-53

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/11 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

अमृता के,
शोधार्थी ,
हिंदी विभाग, कार्यवट्टम कैंपस , केरल विश्वविद्यालय

for the paper titled,

गाँव भीतर गाँव' उपन्यास में जातिगत वचसृव और प्रतिरोध: एक विश्लेषण

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 54-57

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/12 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

अफसाना परवीन

सहायक प्राध्यापिका,

फातमा टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज दुबलिया, चंदवे, राँची (झारखण्ड)

for the paper titled,

रांची जिला में महिला शिक्षा की स्थिति: समानता और लैंगिक न्याय के परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 58-62

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/13 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. राजकुमारी परिहार

अतिथि व्याख्याता (अर्थशास्त्र)

शासकीय स्नातक महाविद्यालय डभरा जिला - शक्ति (छ.ग.)

for the paper titled,

आथिक् विकास के लिए शिक्षा एक महतवपूणर्पहलू : महिलाओं के विशेष संदभर्में

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 63-66

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/14 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

शाहज़ाद अनवर
प्रभारी प्रधान अध्यापक,
मध्य विद्यालय बेलवा काशीपुर, किशनगंज

for the paper titled,

सोशल मीडिया का बच्चों पर प्रभाव

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 67-71

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/15 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. अर्चना वर्मा

असिस्टेंट प्रोफेसर,

राजकीय महाविद्यालय अमोढ़ी (चम्पावत)

for the paper titled,

गाँधी जी के सपनों का भारत

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 72-74

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/16 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

रामकुमार साहू
शोधार्थी,
संत गहिरा गुरु विश्वविद्यालय सरगुजा, अम्बिकापुर (छ.ग.)
संप्रति: सहायक प्राध्यापक (हिन्दी),
शासकीय महाविद्यालय रामानुजनगर, जिला-सूरजपुर (छ.ग.)

for the paper titled,

छत्तीसगढ़ में रंगमंच कला

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 75-80

9 772395 711007

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/17 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

PRIYA SHUKLA

Research Scholar,

MGKVP Varanasi

for the paper titled,

The Role of Geographical Indications in Sustainable Development

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 81-83

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/18 **https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949**

Certificate of Publication

is awarded to

Mr. Jitendra Pratap Singh

Assistant Professor (Yoga Vibhag)

Jagadguru Rambhadracharya Divyang State University (U.P)

Ramana Mohan Pusapati

(M.A Yoga)

Jagadguru Rambhadracharya Divyang State University (U.P)

for the paper titled,

The Role of Nishkama Karma and Applicability of Karma Yoga in Contemporary Society

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 84-89

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/19 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

সুপ্রিয় প্রামাণিক,

সহকারী শিক্ষক,

১১ নং কুমারপুর প্রাথমিক বিদ্যালয়, কুমারপুর, মুর্শিদাবাদ, 742189

for the paper titled,

ভবিষ্যপুরাণোক্ত সর্পদষ্ট ব্যক্তির আয়ুর্বেদিক চিকিৎসা পদ্ধতি ও আধুনিক চিকিৎসা পদ্ধতির তুলনাত্মক অধ্যয়ন

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 90-96

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/20 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

सुमन मिश्रा

शोधार्थी, असिस्टेंट प्रोफेसर हिन्दी विभाग,

आचार्य नरेन्द्र देव किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय बभनान गोन्डा ।

प्रोफेसर दीपा त्यागी

विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग,

इस्माईल नेशनल महिला पी०जी० कॉलिज मेरठ

for the paper titled,

क्षमा शमार् तथा मृदुला गगर् एवं ममता कालिया के विविध विमर्शों का तुलनात्मक विश्लेषण

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 97-105

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/21

https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. खुशबू

सहायक प्राध्यापक हिंदी विभाग,

गंगा देवी महिला महाविद्यालय पाटलिपुत्र वि. वि., पटना।

for the paper titled,

'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास में आदिवासी जीवन की समस्याएं एवं संघषर्

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 106-108

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/22 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

रिम्पल सिंह

शोधार्थी,

डॉ. वंदना तिवारी

शोध निर्देशक,

जे.जे.टी. विश्वविद्यालय, चुड़ैला, झुंझनू (राजस्थान)

for the paper titled,

भीष्म साहनी कृत 'मुआवजा' नाटक में मानवीय संवेदना और सामाजिक चेतना : एक आलोचनात्मक अध्ययन

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 109-111

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/23 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

दीपक कुमार

शोधार्थी,

डॉ॰ अनिल पंवार

सहायक प्रोफेसर,

महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय रोहतक

for the paper titled,

भारतीय ज्ञान परंपरा और सांस्कृतिक संरक्षण

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 112-115

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/24 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. निलोफर चौधरी

सहायक प्राध्यापक,

हिंदी विभाग, एस. जी. आर. जी.शिंदे महाविद्यालय, परंडा

ता. परंडा,जिल्हा - धाराशिव,महाराष्ट्र - 413502

for the paper titled,

हबीब तनवीर के नाटकों में छत्तीसगढ़ी लोक नाट्य शैली का महत्व

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 116-119

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/25 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

Mamtesh Solanki

Monad University, Hapur

for the paper titled,

हापुड़ में शिक्षा का अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन में विद्यालय प्रबंधन समिति की भागीदारी

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 120-124

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/26 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

Rahul Soni

Research Scholar,

Monad University, Hapur

for the paper titled,

ब्रिटिश शासन के अंतर्गत जाति व्यवस्था का विकास (1872-1941): एक अध्ययन

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 125-128

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/27 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

Divya

UGC NET English,

House no. 15/327 Bhagat Singh Colony

Barnala Road Sirsa, Haryana-125055

for the paper titled,

Silence as Testimony: Narrating Partition Trauma Through the Private Sphere in Anita Desai's Fiction

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 129-134

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/28 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

श्री जितेन्द्र प्रताप सिंह

सहायक आचार्य (योग विभाग)

जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग राज्य विश्वविद्यालय चित्रकूट (उ.प्र.)

रिजवान

(एम. ए. - योग विभाग)

जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग राज्य विश्वविद्यालय चित्रकूट (उ.प्र.)

for the paper titled,

विद्यार्थियों में तनाव प्रबंधन में योग की भूमिका

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 135-139

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/29 **https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949**

Certificate of Publication

is awarded to

पूजा

एम. ए. हिंदी, (नेट उत्तीर्ण),
H.No- 363 sec 20 Huda kaithal Haryana- 136027

for the paper titled,

समकालीन हिंदी कथा-साहित्य में वृद्ध विमर्श (बदलते पारिवारिक मूल्यों और एकाकीपन का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 140-142

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/30 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

Farzana Nazeer

Research Scholar,

Department of Hindi, Maharaja's College, Ernakulam

for the paper titled,

गांधी चिंतन की अवधारणा

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 143-145

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/31 **https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949**

Certificate of Publication

is awarded to

अनिल कुमार

शोधार्थी- संस्कृत पाली एवं प्राकृत,

हिमाचलप्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला, काँगड़ा (हि.प्र.)

for the paper titled,

आस्तिकदर्शनेषु देवतातत्त्वम् उपासना च

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 146-149

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/32 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

दामिनी कुमारी
शोधार्थी, इतिहास विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उत्तर प्रदेश

for the paper titled,

"प्राचीन भारत के विदेशी व्यापार में पूर्वी समुद्री मार्गों एवं मध्य एशियाई संपर्क पथों की निर्णायक भूमिका"

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 150-154

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/33 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

Vikram Rajat Dungdung

Assistant Professor,

St. Xavier's College (Autonomous) Mahuadanr, Latehar, Jharkhand

for the paper titled,

The Ho Adivasi Uprising of 1837: Poto Ho Struggle against Colonial Rule

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 155-158

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/34 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

जोषी सुनिलकुमार भावेशभाई
पीएच.डी. शोधार्थी,
संस्था का नाम- गोविन्द गुरु विश्वविद्यालय, गोधरा (गुजरात)

for the paper titled,

वीरेन्द्र जैन के उपन्यासों में प्रमुख पात्र

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 159-161

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/35 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. मनोज कुमार द्विवेदी

(अतिथि व्याख्याता हिन्दी)

शासकीय राजमोहिनी देवी कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय अम्बिकापुर

- जिला सरगुजा (छ.ग.)

for the paper titled,

दूधनाथ सिंह के उपन्यासों में विसंगति और यथार्थ का विश्लेषण

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 162-165

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/36 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

श्री अभिषेक तिवारी
शोध छात्र,
इतिहास विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
डॉ० अंजना वर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर,
इतिहास विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्‌यापीठ, वाराणसी

for the paper titled,

पुराणों के आधार पर काशी का भौगोलिक सीमांकन

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 166-168

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/37 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

नाहिद प्रवीण

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग

ल० ना० मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

for the paper titled,

एक अभियान 'बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ': चुनौतियाँ और उपलब्धियाँ

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 169-173

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/38 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ० सुकन्या चल्ला

ए पी टी डब्लू आर एस गर्ल्स, करेडु, प्रकाशम ज़िला।

for the paper titled,

पारंपरिक और डिजिटल संगीत का संगम

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 174-176

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/39 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

दामिनी कुमारी

शोधार्थी, इतिहास विभाग,

महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उत्तर प्रदेश 221002

for the paper titled,

"प्राचीन काल में उत्तर भारत के नगरों का अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक परिदृश्य"

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 177-181

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/40 **https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949**

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ.एस. लीलाकुमारी अम्मा

प्राचार्य,

केरल हिन्दी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम

for the paper titled,

'आधुनिक हिन्दी साहित्य के कुछ हस्ताक्षर': संस्कृति का कवच

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 182-184

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/41 **https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949**

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ.भूपेंद्र सर्जेराव निकाळजे
हिंदी विभाग,
राधाबाई काळे महिला महाविद्यालय अहिल्यानगर

for the paper titled,

21 वी सदी की कविता में चित्रित नारी जीवन विशेष संदर्भ में ‘कवयित्रि अनामिका’

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 185-191

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/42 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

कृष्णा जाटव
शोधार्थी (संस्कृत)
शोध केंद्र - महारानी लक्ष्मीबाई शा. उत्कृष्ट महाविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.)

for the paper titled,

“वाणभट्ट का संस्कृत साहित्य में सामाजिक योगदान"

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 192-194

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/43 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ० राम आशीष तिवारी

सहायक प्राध्यापक- हिंदी,

शासकीय राजमोहिनी देवी कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय अंबिकापुर सरगुजा (छ.ग.)

for the paper titled,

त्रिलोचन के काव्य में जनपदीय चेतना एवं मानव मूल्य

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 195-202

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/44 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

आकाश कुमार बाल्मीकि
शोधार्थी,
हिन्दी विभाग,
बर्दवान विश्वविद्यालय, पश्चिम बंगाल

for the paper titled,

फणीश्वरनाथ रेणु के साहित्य में चित्रित आंचलिकता और वर्तमान ग्रामीण : एक तुलनात्मक अध्ययन

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 203-207

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/45 **https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949**

Certificate of Publication

is awarded to

भुराराम मेघवाल

शोधार्थी,

आचार्य डॉ एजाज अहमद कादरी

शोध निर्देशक,

हिन्दी विभाग, डूंगर महाविद्यालय बीकानेर

महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय बीकानेर राजस्थान

for the paper titled,

अज़ीज़ आजाद के साहित्य में दृश्यात्मकता और उसका सिनेमाई प्रभाव

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 208-214

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/46 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

विमला देवी यादव

शोधार्थी,

आचार्य डॉ अनुपमा सक्सेना

शोध निर्देशक,

हिन्दी विभाग, पंडित दीनदयाल उपाध्याय शेखावाटी विश्वविद्यालय सीकर राजस्थान

for the paper titled,

21 वीं सदी की हिन्दी कविता कीपर्यावरणीय चेतना का सिनेमाई परिप्रेक्ष्य

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 215-224

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/47 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

बिरदी चंद जाट

शोधार्थी,

हिन्दी विभाग डूंगर महाविद्यालय बीकानेर

(महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय बीकानेर राजस्थान)

for the paper titled,

हिन्दी गद्य साहित्य और भारतीय सिनेमा में किसान विमर्श: एक तुलनात्मक अध्ययन

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 225-232

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/48

https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Ravindra Singh

Assistant Professor,

Department of Commerce,

R.S.G.U. P.G. College, Pukhrayan, Kanpur Dehat

for the paper titled,

MANAGEMENT OF MIND BY ANCIENT INDIAN WISDOM

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 233-236

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/49 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

दिव्या एम. एस.

हिन्दी विभाग, कार्यवट्टम कैंपस, केरल विश्वविद्यालय

for the paper titled,

नीलेश रघुवंशी की कविता 'ढाबा' : समस्यापरक अध्ययन

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 237-239

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/50 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. नीलम कुमारी
एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी - 221005

for the paper titled,

कामायनी में वर्णित संवेदना का आलोचनात्मक मूल्यांकन

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 240-244

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/51 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

विनीत कुमार शुक्ल

शोध-छात्र,

वेद विभाग - सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी

for the paper titled,

वैदिकोपनिषद्शास्त्रदर्शनेषु धर्मस्य दार्शनिकाधारभूतिः

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 245-249

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. April 2026/52 https://doi.org/10.5281/zenodo.19036949

Certificate of Publication

is awarded to

सुनीता

शोधार्थी, भाषा विज्ञान विभाग (हिंदी),

बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

for the paper titled,

भारतीय ज्ञान परंपरा और जय भगवान सिंगल के साहित्य में आधुनिक संदर्भ

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 23, Issue-4(part-one), Page No. 250-252

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)